M.A./M.Sc. GE-04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पर्यावरण भूगोल

M.A./M.Sc. GE - 04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पर्यावरण भूगोल

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

संयोजक/समन्वयक

विषय समन्वयक / सलाहकार

प्रोफेसर (डॉ.)एस.सी. कलवार
पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर(राज.)

सदस्य सचिव

डॉ. अशोक शर्मा
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

सदस्य

1. **प्रोफेसर (डॉ.) संतोष शुक्ला**
   प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,
   सामान्य एवं व्यावहारिक भूगोल विभाग
   एच.एस. गौर विश्वविद्यालय, सागर(मध्य प्रदेश)
2. **डॉ. जे.के. जैन**
   पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर(राज.)
3. **डॉ. बी.एल. शर्मा**
   विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा(राज.)
4. **प्रोफेसर (डॉ.) एन.एल. गुप्ता**
   पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   मोहनलाल सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर(राज.)
5. **डॉ. मनोज गौतम**
   वरिष्ठ व्याख्याता, भूगोल विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा(राज.)

सम्पादन तथा पाठ लेखन

सम्पादक

डॉ. आर.बी. सिंह
भूगोल विभाग
देहली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

लेखक

3. **डॉ. बी.एल. शर्मा**
   विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा(राज.)
1. **डॉ. रतन जोशी**
   विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
   मांडलगढ़, जिला भीलवाड़ा(राज.)
2. **डॉ. (श्रीमती) पूजा सक्सेना**
   वरिष्ठ व्याख्याता, भूगोल विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
   बून्दी(राज.)
4. **डॉ. बी.एल. गुप्ता**
   असिस्टेंट प्रोफेसर,
   भूगोल विभाग
   राजस्थान
   विश्वविद्यालय,जयपुर(राज.)
5. **डॉ. (श्रीमती) सीमा कलवार**
   व्याख्याता, भूगोल
   सेन्ट जोसफ महिला महाविद्यालय,
   जयपुर(राज.)
6. **डॉ. राहुल सक्सेना**
   वरिष्ठ व्याख्याता, भूगोल विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
   बून्दी(राज.)

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो. (डॉ.) एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	**अकादमिक**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन-पुनः मुद्रण : अक्टूबर, 2011 ISBN NO- 13/978-81-8496-094-5

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

अनुक्रमणिका

इकाई संख्या		इकाई	पृष्ठ संख्या
इकाई - 1	:	पर्यावरण भूगोल की परिभाषा, विषय क्षेत्र एवं प्रकृति तथा इसका अन्य प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध	7–24
इकाई - 2	:	भूगोल में मानव-पर्यावरण सम्बन्ध: नियतिवाद, नव-निश्चयवाद एवं अन्य विचार	25–36
इकाई - 3	:	प्राकृतिक वातावरण पर मानवीय प्रभाव	37–50
इकाई - 4	:	पर्यावरण अवकर्षण: प्रकृति और प्रकार	51–67
इकाई - 5	:	वायु प्रदूषण: स्रोत, प्रभाव एवं नियंत्रण के उपाय	68–90
इकाई - 6	:	जल प्रदूषण: स्रोत, प्रभाव एवं नियंत्रण के उपाय	91–120
इकाई - 7	:	शोर, मृदा/ भूमि एवं रेडियो धर्मिता प्रदूषण- स्रोत, प्रभाव एवं नियंत्रण के उपाय	121–160
इकाई - 8	:	मानव जनसंख्या एवं पर्यावरण : जनसंख्या वृद्धि एवं वितरण, जनसांख्यिकीय संक्रमण, जनसंख्या वृद्धि पर पारिस्थितिकी, पर्यावरण एवं मानवीय स्वास्थ्य, भारतीय परिदृश्य	161–187
इकाई - 9	:	प्राकृतिक संसाधन एवं उनका संरक्षण	188–213
इकाई - 10	:	पर्यावरण प्रबन्धन: आवश्यकता, संकल्पनायें एवं उपागम	214–232
इकाई - 11	:	जैव विविधता एवं इसका प्रबन्धन	233–269
इकाई - 12	:	पर्यावरणीय प्रभाव का मूल्यांकन	270–281
इकाई - 13	:	सतत् विकास: संकल्पना का विकास मूल आधार, नियंत्रक सिद्धान्त एवं सूचकांक, सतत् विकास हेतु विश्वव्यापी प्रयास	282–290
इकाई - 14	:	भूमण्डलीय पर्यावरणीय मुद्दे: ओजोन परत की विरलता, हरित गृह प्रभाव एवं विश्व तापमान वृद्धि	291–304
इकाई - 15	:	मरुस्थलीकरण एवं वनोन्मूलन	305–324
इकाई - 16	:	पर्यावरण की भू- राजनीति एवं संयुक्त राष्ट्र संघ	325–334
इकाई - 17	:	भारत की प्रमुख पर्यावरणीय समस्याएँ: वायु, जल एवं ध्वनि प्रदूषण, ठोस अपशिष्ट निस्तारण, वनोन्मूलन एवं मृदा अवकर्षण	335–361
इकाई - 18	:	भारत में पर्यावरणीय विधि व्यवस्था	362–374

परिचयात्मक

पर्यावरण भूगोल का उद्भव भूगोल की एक नई शाखा के रूप में अस्सी के दशक में हुआ । पर्यावरण समस्या आज एक विश्वव्यापी चुनौती के रूप में मानी जा रही है क्योंकि ये हमारे अस्तित्व से जुड़ी हुई है । पर्यावरण का तात्पर्य वह परिवेश जहाँ हम रहते हैं । इसके अन्तर्गत वायु, जल, भूमि, पेड़ पौधे एवं जीव -जन्तु आते हैं । प्रकृति तथा मानव का सम्बन्ध पुराना है । प्रकृति भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रही है । भारतीय संस्कृति में पर्यावरण का संरक्षण परम पुनीत कर्त्तव्य माना गया है । प्रकृति हमारे लिए है और हम प्रकृति के लिए - ये मान्यता भारतीय दृष्टि से प्रचलित है । राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का एक कथन बहुत ही उपयुक्त है - 'प्रकृति का यह नियम है कि वह सभी लोगों की आवश्यक आवश्यकताओं को पूरी कर सकती है, परन्तु किसी एक का भी लालच पूरा नहीं कर सकती' ।

जनसंख्या की लगातार वृद्धि, अव्यवस्थित विकास, गरीबी तथा तकनिकी के अनुचित प्रयोगों से पर्यावरण संकट सम्पूर्ण विश्व पर मंडरा रहा है । औद्योगिकरण के कारण शहरों तथा नगरों की समस्या में लगातार वृद्धि हो रही है । जलवायु परिवर्तन जैसी समस्या से प्राकृतिक आपदाओं में लगातार वृद्धि हो रही है । इसका समाधान यदि शीघ्र नहीं किया गया तो सम्पूर्ण प्राणी जगत का अस्तित्व समाप्त होने का खतरा उत्पन्न हो गया है । सर्व प्रथम विश्व समुदाय ने स्टाकहॉम शहर में 1972 में इस पर चर्चा की, परन्तु इसके सामाधान की दिशा में प्रमुख प्रयास संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में ब्राजील के शहर रियो डी जेनीरो में 1992 में किया गया। सताइस सूत्री रियो घोषणा पत्र पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक प्रमुख प्रयास के रूप में उभरा। जैव विविधता के साथ-साथ विकासशील देशों की समस्याओं एवं संसाधनों के लिए विशेष ध्यान दिया गया । उसके एक दशक बाद 2002 में दक्षिणी अफ्रीका के जोहानँसवर्ग शहर में विश्व के सतत् विकास के लिए विभिन्न योजनाए शुरू की गई । इसमें खाद्य सुरक्षा, ऊर्जा तथा कार्बन, जल, जैव विविधता तथा मानव स्वास्थय पर विशेष ध्यान दिया गया । इसी क्रम में यह महसूस किया गया कि विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय स्तर के साथ-साथ प्रारम्भिक विद्यालय स्तर पर भी पर्यावरण शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाए । विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रयास से बी.ए., बी.सीसी. स्तर पर एक पर्यावरण पाठ्यक्रम की आवश्यकता महसूस की गई । भारत के सभी मुख्य विश्वविद्यालयों में इसकी पढ़ाई शुरू की गई है ।

प्रस्तुत पुस्तक इसी कड़ी में अठारह इकाई के साथ वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के एम. ए. / एम. एससी. जीई - 04 पाठ्यक्रम में सम्मिलित की गई है । आशा है यह पुस्तक पर्यावरण की संकल्पना, समस्यायें एवं इसके निदान की दिशा में छात्रों में जागरूकता लाने में प्रमुख भूमिका का निर्वहन करेगी ।

इकाई– 1 :पर्यावरण भूगोल की परिभाषा, विषय क्षेत्र एवं प्रकृति तथा इसका अन्य प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध (Definition Scope and Nature of Environment Geography and its relation with other Physical and Social Sciences)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 पर्यावरण भूगोल का आधार : पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी

1.2.1 पर्यावरण

1.2.2 पारिस्थितिकी

1.3 पर्यावरण भूगोल की परिभाषा

1.4 विषय क्षेत्र एवं प्रकृति पर्यावरण

1.5 भूगोल का प्राकृतिक विज्ञानों से सम्बन्ध

1.6 पर्यावरण भूगोल का सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के उद्देश्य हैं :

- पर्यावरण एंव पारिस्थितिकी का अर्थ एवं प्रकृति स्पष्ट करना,
- पर्यावरण भूगोल की परिभाषा, क्षेत्र एवं प्रकृति का विवेचन करना और
- पर्यावरण भूगोल का भौतिक एवं सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध स्पष्ट करना।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

पर्यावरण पृथ्वी पर जीव–जगत का आधार है, उपयुक्त पर्यावरण में ही जीवन विकसित होता है। यह क्रम विकास के प्रारम्भिक काल से वर्तमान तक जारी है और भविष्य में भी जीवन का आधार यही रहेगा। अत: पर्यावरण मात्र वर्तमान का ही आधार नहीं अपितु भविष्य में जीवन को

नियन्त्रित और निर्धारित करने का भी आधार है। वायु, जल, भूमि, वनस्पति तथा जीव–जन्तु पर्यावरण के मूल घटक हैं, जिनकी क्रिया–प्रतिक्रिया से सम्पूर्ण 'जीव मण्डल' परिचालित होता है। जीव मण्डल में जीवन का उद्भव, विकास एवं विलुप्त होना इस तथ्य पर निर्भर करता है कि प्रकृति अथवा प्राकृतिक वातावरण के साथ उसका कितना समन्वय एवं सामन्जस्य है। यदि प्राकृतिक वातावरण को हानि पहुँचती है और पारिस्थितिकी तन्त्र में व्यतिक्रम आता है तो उसका विपरीत प्रभाव न केवल जीव जगत पर पड़ता है अपितु उसकी नैसर्गिक क्रियाओं में भी अवरोध प्रारम्भ हो जाता है, जो विनाश का कारण बनता है। वर्तमान युग में जहां एक ओर वैज्ञानिक, तकनीकी, औद्योगिक प्रगति हो रही है, कृषि में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं, वहीं जनसंख्या का दबाव भी अत्यधिक होता जा रहा है, फलस्वरूप पर्यावरण अवकर्षण का संकट मंडरा रहा है। विकास प्रकृति का नियम है तथा यह निरन्तर होना चाहिये। किन्तु विकास का पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव न पड़े तथा विकास विनाश का कारण न बने यह और भी आवश्यक है। इसी कारण पर्यावरण के विविध पक्षों का अध्ययन आवश्यक है जो आज विभिन्न प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान कर रहे हैं, जिनमें भूगोल भी प्रमुख है।

ज्ञान–विज्ञान के विकास एवं विस्तार के साथ ही विभिन्न विषयों में शाखाओं, उपशाखाओं एवं विशिष्ट शाखाओं का विकास होना सभी विषयों की आधुनिक प्रवृत्ति है, इसी क्रम में भूगोल में भी विभिन्न विशिष्ट शाखाओं का विकास हुआ और होता जा रहा है। पर्यावरण, पारिस्थितिकी और भूगोल अथवा पर्यावरण–पारिस्थितिकी भूगोल, भूगोल के व्यावहारिक पक्ष के झुकाव को इंगित करता है क्योंकि इसमें मात्र पर्यावरण–मानव के सम्बन्धों का ही अध्ययन नहीं होता, अपितु वर्तमान में उपस्थित पर्यावरण की समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाता है और उनका सम्पूर्ण विश्लेषण किया जाता है तथा उनके समाधान का मार्ग भी प्रशस्त किया जाता है। पर्यावरण विभिन्न भौतिक घटकों का समूह हैं, पारिस्थितिकी पर्यावरण का विज्ञान है और भूगोल मानव की गतिविधियों पर पर्यावरण के प्रभाव का 'स्थान' (Space) और 'समय' (Time) के सन्दर्भ में अध्ययन करता है अर्थात् भौगोलिक अध्ययन के माध्यम से हम पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के स्वरूप को तो समझते ही हैं साथ में उनका विश्व के वृहत एवं सूक्ष्म प्रदेशों के जीवन एवं अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव का भी ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसी ज्ञान के आधार पर पर्यावरण का संरक्षण करने एवं पारिस्थितिकी सन्तुलन को बनाये रखने का प्रयास करते हैं। भौगोलिक अध्ययन द्वारा जहाँ स्थानीय एवं क्षेत्रीय पर्यावरण के स्वरूप को समझा जा सकता है, वहीं राष्ट्रीय तथा विश्व व्यापी पर्यावरण की समस्याओं का भी सही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

भूगोल के अन्तर्गत पर्यावरण के विभिन्न घटकों यथा–जलवायु, स्थलाकृति, मृदा, वनस्पति आदि का अध्ययन प्रारम्भ से ही होता आ रहा है, जिन्हें सामान्यत: प्राकृतिक तत्वों अथवा भौगोलिक तत्वों के नाम से सम्बोधित किया जाता है। साथ ही पर्यावरण व मानव का सम्बन्ध भी भौगोलिक पर्यावरण भूगोल की अध्ययन का मूलाधार है क्योंकि इसी सम्बन्ध से सांस्कृतिक एवं आर्थिक दृश्यावली का निर्माण होता है। मानव–पर्यावरण का भौगोलिक अध्ययन पर्यावरण के मानवीय क्रिय्राओं पर पड़ने वाले प्रभावों के साथ–साथ उनके स्थानिक (Spatial) स्वरूप को

स्पष्ट करता है। पर्यावरण का अध्ययन भूगोल की समस्त शाखाओं में सदैव से किया जाता रहा है, किन्तु विशिष्ट शाखा के रूप में 'पर्यावरण भूगोल' का अध्ययन बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में प्रारम्भ हुआ और वर्तमान में यह भौगोलिक अध्ययन और शोध का प्रमुख विषय है। पर्यावरण भूगोल पर चर्चा करने से पहले 'पर्यावरण' एवं 'पारिस्थितिक' का संक्षिप्त विवेचन आवश्यक है क्योंकि ये पर्यावरण भूगोल का आधार प्रस्तुत करते है।

1.2 पर्यावरण भूगोल का आधार : पर्यावरण एवं पारिस्थितिक (Bases of Environment Geography : Environment and Ecology)

1.2.1 पर्यावरण

पर्यावरण से तात्पर्य है वह वातावरण जिससे सम्पूर्ण जगत् या ब्रहमाण्ड या जीवन जगत् घिरा हुआ है। दूसरे शब्दों में, सम्पूर्ण पृथ्वी का जीवन एक आवरण से आवृत है जो इसे परिचालित भी करता है और स्वयं भी प्रभावित होता है। पर्यावरण अंग्रेजी के शब्द 'Environment' का अनुवाद है जो दो शब्दों अर्थात् 'Environ' और 'Ment' के मेल से बना है, जिसका अर्थ है क्रमश: 'encircle' या 'all round' अर्थात् जो चारों ओर से घेरे हुए है वह पर्यावरण है। शाब्दिक दृष्टि से इसका अर्थ 'Surroundings' है जिसका तात्पर्य है चारों ओर से घेरे हुए। यहाँ प्रश्न होता है कि किसे घेरे हुए तथा किस चीज द्वारा घेरे हुए? सम्पूर्ण पृथ्वी वायु मण्डल से आवृत है, इसी प्रकार धरातलीय जीव स्थल, जल वायु रख इनके विभिन्न घटकों द्वारा आवृत हैं। सम्पूर्ण जीव मण्डल जैविक एवं अजैविक घटकों द्वारा आवृत है। सम्पूर्ण जीव मण्डल वृहत् रूप में स्थल मण्डल, जल मण्डल और वायु मण्डल से सम्बन्धित है और यही भौगोलिक पर्यावरण का मूल है।

पर्यावरण किसी एक तत्व का नाम नहीं अपितु अनेक तत्वों का सामूहिक नाम है जो सम्पूर्ण जीव जगत् को नियंत्रित करते हैं, जो एक दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित हैं और जिनका प्रभाव एकाकी न होकर सम्मिलित रूप में होता है। इसी कारण कुछ विद्वानों ने इसे फ्रेंच भाषा के 'Milieu' (म्लूय) शब्द से सम्बोधित किया है जिससे तात्पर्य है' अनेक तत्वों का समूह जो आवृत किये हुए है (total set of surrounding)। इसी प्रकार कतिपय विद्वानों द्वारा भौगोलिक परिवेश में पर्यावरण हेतु अंग्रेजी में 'Habitat' शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका तात्पर्य 'आवास' है, यद्धपि पर्यावरण ही सर्वमान्य प्रचलित शब्द है।

पर्यावरण वह आवरण है जिसने सम्पूर्ण जीव मण्डल को आवृत कर रखा है। पारिभाषिक रूप में पर्यावरण उन सभी भौतिक (Physical) तथा जैविक (Biotic) परिस्थितियों का समूह है जो जीवों की अनुक्रियाओं को निरन्तर प्रभावित करता रहता हे। Universal Encyclopaedia में पर्यावरण की व्याख्या इस प्रकार की गई है – "पर्यावरण उन सभी दशाओं, प्रणालियो एवं प्रभावों का योग है जो जीवों, स्पेशीज़ या जातियों के विकास, जीवन एवं मृत्यु को प्रभावित करता है।"

“The sum total all conditions, agencies and influences which affect the development, growth, life and death of an organism species or race.”

(The Universal Encylopaedia,Vol.6.p.310)

इसी को दूसरे रूप में इस प्रकार वर्णित किया गया है –

"जीवों को प्रभावित करने वाले बाहय प्रभावों का योग पर्यावरण है जिसमें प्रकृति की भौतिक एवं जैविक शक्तियाँ सम्मिलित होती हैं जिनसे जीव सदैव आवृत होता है।"

“The entire range of external influences acting on an organism. Both, the physical and biological (in other organism) forces of nature surroundings an individual.”

(Encylopaedia of Britannniea, Vol, III, 1980, p.777)

स्माल और विदरिक के अनुसार "पर्यावरण मानव, जीव–जन्तु एवं वनस्पति जीवन को आवृत किये रहता है।”

“The Surroundings within which man, animals and plants live.”

(A Modern Dictionary of Geography, John Small and Michael Withrick, 1986, p.80)

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि पर्यावरण अनेक तत्वों का प्रमुखत: प्राकृतिक एवं भौतिक तत्वों का समूह है जो सदैव एक दूसरे के साथ क्रियाशील रहते हैं। जल, वायु, मृदा, वनस्पति के अतिरिक्त सम्पूर्ण जीव–जन्तु उसके अभिन्न अंग हैं। मानव स्वयं एक जीव है अत: पर्यावरण का अंग है। यही नहीं अपितु मानव सबसे सक्रिय जीव है जो एक ओर पर्यावरण के अनुरूप चलता है तो दूसरी ओर अपने ज्ञान–विज्ञान से पर्यावरण को अपने अनुरूप बनाने हेतु इस प्रकार की क्रिया– प्रतिक्रिया करता है कि सम्पूर्ण तन्त्र असन्तुलित होने लगता है। प्रदूषण, तापमान में वृद्धि, ओजोन परत का विरल होना, सूखा, बाढ़, भूस्खलन और न जाने कितनी वर्तमान समस्याओं का कारण मानव स्वयं है। वास्तविकता यह है कि मानव हो या अन्य जीव सभी पर्यावरण की उपज हैं। उनकी उत्पत्ति, विकास एवं वर्तमान स्वरूप ही नहीं अपितु भावी अस्तित्व भी पर्यावरण की परिस्थिति पर ही निर्भर है। पर्यावरण शब्द को प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञानों में विविध रूपों में प्रयुक्त किया गया है जैसे प्राकृतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक पर्यावरण आदि । इसी प्रकार जैविक एवं अजैविक पर्यावरण तथा भौगोलिक पर्यावरण का भी प्रयोग होता है। उपर्युक्त विविध स्वरूपों के विश्लेषण में न जाकर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मौलिक रूप से पर्यावरण का स्वरूप प्राकृतिक है अर्थात् प्राकृतिक तत्वों के प्रभाव एवं उपयोग से ही आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण का जन्म होता है और उसी से ही यह नियन्त्रित एवं परिचालित होते हैं। अत: वर्तमान अध्ययन में प्राकृतिक पर्यावरण को आधार माना गया है जिसमें अनेक तत्वों के साथ–साथ मानव स्वयं भी एक कारक के रूप में कार्य करता है, इसे दूसरे शब्दों में भौगोलिक पर्यावरण भी कह सकते हैं।

1.2.2 पारिस्थितिक (Ecology)

पारिस्थितिक पर्यावरण अध्ययन का विज्ञान है। प्रकृति के दो प्रमुख तत्व जीव एवं पर्यावरण हैं जो पृथक होते हुए भी एक–दूसरे पर निर्भर है तथा अनेक जटिल क्रिया–प्रतिक्रियाओं को सम्पन्न हैं । इनका अध्ययन प्राचीन काल से होता रहा है। ग्रीक विचारकों जैसे हिप्पोक्रेटीज, अरस्तु आदि ने इन पर विस्तार से विचार व्यक्त किये हैं, किन्तु पारिस्थितिक एक पृथक व्यवस्थित अध्ययन के रूप में एक नवीन विज्ञान है। जिसको प्रारम्भ में जीव–विज्ञानवेत्ताओं ने अपनाया और वर्तमान में एक विशद् बहुआयामी शाखा के रूप में प्रतिष्ठित है।

'Ecology' शब्द दो ग्रीक शब्दों से बना है। पहला 'Oikos' अर्थात् घर या रहने का स्थान और दूसरा 'Logos' अर्थात् अध्ययन करना (To study) । दूसरे शब्दों में आवास (Habitat) जहाँ जीवन बसता है उसकी परिस्थितियों या पर्यावरण का न केवल वर्णन अपितु उसके प्रभाव का समुचित विवेचन करना ही पारिस्थितिक का उद्देश्य है अर्थात् यह एक व्यवस्थित पर्यावरण विज्ञान (systematice environmental science) है।

पारिस्थितिक की प्रकृति एवं क्षेत्र को इसकी पीरभाषा स्पष्ट करती है। पारिस्थितिक की कतिपय परिभाषायें निम्नलिखित हैं –

1. "पारिस्थितिक जीव अथवा जीवों के समूह का पर्यावरण के साथ सम्बन्धों का अध्ययन है, या यह जीवों और पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्धों का विज्ञान है।"

   (ओडम)

   "Ecology is defined as the study of the relation of organism, or groups of organism to their environment, or the science of the interrelation between living organism and their environment."

   (Odum)

2. "पारिस्थितिक वह विज्ञान है जो जीवों के एक दूसरे के सम्बन्धों तथा उन तत्वों का अध्ययन करता है जो पर्यावरण के अंग हैं।"

   (एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका)

   "Ecology–the science dealing with the relationship of organism to one another and to other factors that comprise their environment."

   (Encyclopaedia of Britannica)

3. "पारिस्थितिक पादप एवं जीव जन्तुओं का पर्यावरण से सम्बन्धों का अध्ययन है।"

   (पीटर हेगेट)

   "Ecology the study of plants and animals in relation to their environment."

   (Peter Haggett)

4. "पारिस्थितिक जीवों और पर्यावरण के आपसी सम्बन्धों का विज्ञान है।"

   (मांकहॉउस एवं स्माल)

"Ecology is the science of the mutual relationship of organism to their environment."

(Monkhouse & Small)

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि पारिस्थितिक समस्त जीवों एवं पर्यावरण के आपसी अन्तर्सम्बन्धों को स्पष्ट करती है। पर्यावरण ही जीवों को प्रभावित नहीं करता अपितु जीव भी अपने विकास, विस्तार तथा क्रिया से पर्यावरण को प्रभावित करता है। पारिस्थितिक पूर्व में केवल पादप एवं जन्तुओं के अध्ययन तक सीमित था किन्तु अब इसकी अनेक शाखायें विकसित हो गई हैं तथा यह एक व्यावहारिक विज्ञान बन गया है। पर्यावरण भूगोल के लिये पारिस्थितिक के स्वरूप का ज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि इसी के आधार पर अनेक तथ्यों का विश्लेषण किया जाता है।

1.3 पर्यावरण भूगोल की परिभाषा (Definition of Environment Geography)

पर्यावरण भूगोल का मूल आधार पर्यावरण एवं पारिस्थितिक है जिसे भौगोलिक परिवेश में प्रस्तुत किया जाता है। भूगोल में सम्पूर्ण पृथ्वी के पर्यावरण का अध्ययन एवं उसका मानवीय क्रियाओं पर प्रभाव का 'स्थलगत विश्लेषण' (Spatial Analysis) है। पर्यावरण के विभिन्न तत्व अर्थात् उच्चावच, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, मृदा, जल–राशियाँ आदि पारिस्थितिक तत्व भी हैं और भौगोलिक तत्व भी तथा वास्तविकता यह है कि ये तत्व इन दोनों विज्ञानों का आधार हैं। पारिस्थितिक को पूर्व में केवल वनस्पति एवं प्राणी विज्ञान का ही क्षेत्र माना जाता था किन्तु वर्तमान समय में पारिस्थितिक का सम्बन्ध ज्ञान–विज्ञान की प्रत्येक शाखा से है और इसका सर्वाधिक उपयोग मानवीय क्रियाओं के अध्ययन में किया जा रहा है। इसी कारण आज 'मानव पारिस्थितिक' (Human Ecology) तथा 'सामाजिक पारिस्थितिक' (Social Ecology) की चर्चा की जाती है और अनेक समस्याओं का निराकरण 'पारिस्थितिक किरण' के माध्यम से करने का प्रयास किया जाता है। निस्सन्देह आज के ज्ञान–विज्ञान का केन्द्र 'मानव' है और वर्तमान भूगोल मानव के पर्यावरण के साथ सामन्जस्य का ही अध्ययन नहीं करता अपितु मानव द्वारा पर्यावरण के शोषण तथा उससे अद्भुत समस्याओं का भी अध्ययन करता है, यहाँ उसका पारिस्थितिक से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, जैसा कि मूरे (Moore) ने लिखा है - "Ecology lies on the frontiers of so many other subjects, including various branches of geography", अर्थात् पारिस्थितिक अनेक विषयों के सीमान्तों पर स्थित है उसमें भूगोल की अनेक शाखायें भी सम्मिलित हैं।

विश्व की प्राकृतिक परिस्थितियों का वर्णन भूगोल की प्रारम्भिक अवधारणा रही है, इसी प्रकार मानव–पर्यावरण के आपसी सम्बन्धों को लेकर भूगोल में अनेक विचारधाराओं का जन्म हुआ। समय के परिवर्तन, ज्ञान के विकास, तकनीकी एवं वैज्ञानिक विकास से पर्यावरण उपयोग में वृद्धि के साथ ही भूगोल में 'कार्य-कारण' (Cause and effect) विश्लेषण का प्रादुर्भाव हुआ। फलस्वरूप अन्य विज्ञानों के साथ–साथ भूगोल की विविध शाखाओं का विकास हुआ जिनमें

आर्थिक एवं पर्यावरण भूगोल की सामाजिक भूगोल की शाखाओं के अतिरिक्त प्राकृतिक अर्थात् भू–आकृति विज्ञान, जलवायु विज्ञान, जैव भूगोल, पादप भूगोल, पारिस्थितिक एवं पर्यावरण भूगोल आदि का विकास हुआ। इन सभी का मूल उद्देश्य भौगोलिक पर्यावरण का विविध प्राकृतिक एवं मानविय क्रियाओ पर केवल सैद्धांतिक विवेचन ही प्रस्तुत करना नहीं अपितु उनसे सम्बन्धित समस्याओं का निराकरण सुझाना है, दूसरे शब्दों में उसके व्यावहारिक स्वरूप का विकास है। भूगोल में अब तक जो विशाल ज्ञान एकत्र किया है उसको वर्तमान में उपयोग में लाया जा रहा है, जैसा कि रूसी भूगोलवेत्ताओं गेरासिमाव (Gerasimov) ने लिखा है कि भूगोल में प्राकृतिक दशाओं एवं संसाधनों की विशाल विश्वव्यापी सूचना का भण्डार है जिनका उपयोग भूगोल की विविध शाखायें सहज ही में कर सकती हैं –

"Geography has accumulated a huge volume of information on the natural conditions and resources of the entire world and on the degree and forms of their development and economic use. It is no less important that in handling these new formidable tasks geography can rely on the complex system of its branches."

(Grasimov, I.P. Geography and Ecology, 1983 p.15)

पर्यावरण एवं पारिस्थितिक भूगोल इसी क्रम में एक कदम है अर्थात् विशद् पर्यावरण सम्बन्धी सूचनाओं का विभिन्न समस्याओं के निराकरण अथवा पर्यावरण के उचित उपयोग में सहायता करना। वास्तव में पारिस्थितिक पर्यावरण का विज्ञान है और भूगोल इन्हें समय और स्थान के परिवेश में न केवल अध्ययन करता है अपितु समस्याओं का युक्तिसंगत समाधान का प्रारूप भी प्रस्तुत करता है।

भूगोल और पारिस्थितिक का आधार पर्यावरण होने के कारण ये एक दूसरे के पूरक हैं। भूगोल में पर्यावरण का अध्ययन प्राचीन काल से होता आया है, किन्तु नवीन पीरप्रेक्ष्य में अर्थात् पर्यावरण–मानव–तकनीकि ज्ञान अर्थात् पारिस्थितिक के सन्दर्भ में जहाँ अन्य विषय अग्रणी हो गये हैं भूगोल कुछ पिछड़ गया, किन्तु क्रमिक रूप से इसे पुन: स्थापित करने में भूगोलवेत्ता प्रयत्नशील हैं। भूगोल पर्यावरण के सम्बन्ध में स्ट्रेलर के ये विचार युक्तिसंगत हैं –

"भूगोल का मूल आधार 'मानव और क्षेत्र (स्थल)" का सूत्र है। इसी के साथ मानव का पृथ्वी के पर्यावरण के साथ सम्बन्ध भूगोल का आधार है, यह इसलिये और भी महत्त्वपूर्ण है कि यह सम्बन्ध क्षेत्रीय विवरण रखता है। भूगोल वेत्ताओं की मान्यता है कि जीवन की उत्तमता का स्तर स्थान–स्थान पर भिन्नता रखता है और प्रदेश में जीवन की सम्पन्नता एवं विपन्नता का कारण पर्यावरण की धारक क्षमता पर निर्भर करता है।"

"The phrase 'Man and the land' is often used to Conway the essence of geography While the relationship of humans to their earthly environment is a core concept in geography, and equally important idea is that the relationship has a certain distribution in space. Geographers recognize

that the quality of life layer varies from place to place in terms of richness or poverty of life forms capable of being supported."

(Strahler, A.N. & Strahler, A.H., Geography and Man's Enviroment, 1977.p.2)

भूगोल को परिभाषित करते हुए अनेक भूगोलवेत्ताओं ने पर्यावरण–मानव के आन्तरिक–सम्बन्धों परिभाषा, विषय क्षेत्र रख स्थानगत वितरण (spatial distribution) पर विचार व्यक्त किये हैं। अकरमेन (Ackerman) ने लिखा है-

"भूगोल का उद्देश्य सम्पूर्ण मानव जाती और पृथ्वीतल के प्राकृतिक पर्यावरण के क्रियात्मक स्वरूप को व्यकत करना एवं समझना है।"

"its Goal is nothing less than an understanding of the vast, interacting system comprising all humanity and its natural environment on the surface of the earth."

(Ackerman, E.A., Annals of the Association of American Geographers, 53 (1963), p.435)

निस्सन्देह भूगोल पृथ्वी तल के विशाल पर्यावरण तन्त्र को मानव के क्रिया–कलापों के साथ अन्त:सम्बन्धित कर उनकी व्याख्या करता है। सविन्द्र सिंह ने पर्यावरण भूगोल की व्याख्या करते हुए लिखा है–

"पर्यावरण भूगोल सामान्य रूप से जीवित जीवों तथा प्राकृतिक पर्यावरण के मध्य तथा मुख्य रूप से प्रौद्योगिक स्तर पर विकसित आर्थिक मानव एवं उसके प्राकृतिक पर्यावरण के मध्य अन्तर्सम्बन्धों के स्थानिक गुणों का अध्ययन है।"

"Environmental geography may be defined as the study of spatial attributes or interrelationships between living organism and natural environment in general and between technologically advance 'economic man' and his natural environment in particular."

Singh, Savinder–Environmental Geography: Conceptual Framework, Nat. Geography, Vol. 24(1), p.13–28

27 वें अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल सम्मेलन, 1992 की प्रारंभिक बुलेटिन में भूगोल को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "भूगोलस्थल और स्थान का विज्ञान है तथा इसकी विषय वस्तु प्राकृतिक एवं मानवीय प्रक्रम है जो विश्व एवं स्थानों के पर्यावरण को निर्मित करते हैं।"

"Geography is the science of space, Its subject matter is the natural and human phenomena that make up the world's environments and places."

(27th IGU, 1992, Geography is Discovery, Jan. 1991.P.1)

अत: पर्यावरण–पारिस्थितिक भूगोल वह विशिष्ट अध्ययन का क्षेत्र है जिसमें पर्यावरण और मानव के अन्तर्सम्बन्धों को स्थलगत रूप में प्रस्तुत किया जाता है क्योंकि विश्व में जो

विभिन्न व्यवसाय, अर्थ–व्यवस्था या विकास के विभिन्न रूप विकसित हुए हैं उनमें क्षेत्रगत भिन्नता अत्यधिक है।

गेरासिमोव (Gerasimov) ने अपनी पुस्तक 'Geography and Ecology' में भूगोल में पारिस्थितिक के निम्न विशेष तथ्यों के अध्ययन पर जोर दिया है–

1. मानवकृत नियन्त्रण (Anthropogenic monitoring) अर्थात् मानवीय क्रियाओं द्वारा पर्यावरण पर हुए प्रभाव एवं परिवर्तनों पर दृष्टि रखना एवं उनके नियन्त्रण व नियमन का अध्ययन करना।
2. वैज्ञानिक भौगोलिक भविष्यवाणी हेतु विभिन्न तकनीक का विकास (Geographic forecasts) अर्थात पर्यावरण मे हो रहे निरन्तर परिवर्तनों के प्रभाव से चेतावनी देना या उनके प्रभावों की जानकारी देना। अनेक विकास योजनाओं का प्रभाव विभिन्न प्रकार से पर्यावरण पर होता है, उनका पूर्वानुमान कर जानकारी देना आवश्यक है।
3. प्राकृतिक विपदाओं (Natural Catastrophes) से सचेष्ट करना और यह बताना कि किस प्रकार उन विपदाओं से निपटा जा सकता है।
4. प्राकृतिक–तकनीकी तन्त्र में पर्यावरण की भूमिका का अधिकतम उपयोग।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पर्यावरण–पारिस्थितिक भूगोल एक ऐसा अध्ययन का विषय है जिसकी महत्ता पर्यावरणविदों के लिये भी है और सामान्य जन के लिये भी। भूगोल ही एक ऐसा पक्ष प्रस्तुत करता है जिसमें पर्यावरण के विभिन्न प्रक्रमों का मानव के साथ सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। किसी भी विज्ञान की महत्ता उस समय तक नहीं हो सकती जब तक वह मानवोपयोगी न हो, इस दृष्टिकोण से पर्यावरण एवं पारिस्थितिक भूगोल अत्यधिक सार्थकता रखता है।

1.4 पर्यावरण भूगोल का विषय क्षेत्र एवं प्रकृति (Subject Matter and Nature of Environment Geography)

भौगोलिक अध्ययन में पर्यावरण का स्थान सदैव से ही प्रमुख रहा है। यद्यपि इसका प्रारम्भिक स्वरूप विभिन्न घटकों के वर्णन तक सीमित था जो कालान्तर में कार्य विश्लेषण के रूप में उभर कर आया और वर्तमान में विभिन्न मानवीय समस्याओं का पर्यावरण के सन्दर्भ में अध्ययन प्रमुखता पर है फिर पर्यावरण एवं पारिस्थितिक इससे कैसे अलग रह सकती थी क्योंकि वर्तमान विश्व की प्रमुख समस्या पर्यावरण अवकर्षण एवं पारिस्थितिक असन्तुलन है और भूगोल इन समस्याओं को अपनी विशिष्ट शैली से स्पष्ट करने की क्षमता रखता है, यद्यपि इस कार्य में विभिन्न विषयों से सामग्री प्राप्त करनी होती है। भूगोल की अन्तर–विषयक (Inter–disciplinary) प्रकृति के कारण भौगोलिक अध्ययन एक ओर पर्यावरण के तत्वों और जीवों में अन्तर्सम्बन्ध एवं सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करता है तो दूसरी ओर पर्यावरण की अवमानना से उत्पन्न पारिस्थितिक असन्तुलन की ओर न केवल ध्यान दिलाता है अपितु उनके उचित प्रबन्ध का सुझाव भी देता है।

सामान्य रूप से पर्यावरण पारिस्थितिक भूगोल का क्षेत्र एवं विषय–वस्तु निम्न शीर्षकों में वर्णित की जा सकती है–

(i) पर्यावरण एवं पारिस्थितिक के विभिन्न घटकों का विश्वव्यापी एवं क्षेत्रीय निरूपण,

(ii) (जलवायु, वनस्पति एवं मृदा की क्षेत्रीय भिन्नता एवं उनका पारिस्थितिक पर प्रभाव का अध्ययन,

(iii) प्राकृतिक पारिस्थितिक–तन्त्रों (Ecosystems) का अध्ययन,

(iv) मानव और पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन,

(v) प्रमुख पारिस्थितिक–तन्त्रों में जीवन के विकास के स्वरूप या आवास, अर्थव्यवस्था एवं समाज (Habitat, Economy and Society) का अध्ययन,

(vi) प्रमुख पारिस्थितिक समस्याओं का भौगोलिक दृष्टिकोण से प्रस्तुतीकरण,

(vii) पर्यावरण अवकर्षण (Degradation of environment) का विभिन्न क्षेत्रों में स्तर एवं प्रभाव,

(viii) जल, वायु, ध्वनि, भूमि, रेडियोधर्मी प्रदूषणों के कारणों तथा प्रभाव के साथ स्थलगत भिन्नता का विवरण,

(ix) जनसंख्या, नगरीकरण एवं औद्योगीकरण का पर्यावरण पर प्रभाव,

(x) विकास के पर्यावरण पर प्रभाव का क्षेत्रीय एवं प्रादेशिक निरूपण,

(xi) संसाधन उपयोग का पर्यावरण पर प्रभाव एवं संसाधन संरक्षण तथा पर्यावरण संरक्षण का अध्ययन,

(xii) पर्यावरण प्रबन्धन (Environmental Management) में भौगोलिक पक्ष को प्रस्तुत करना

(xiii) सतत विकास (Sustainable Development) की रूपरेखा प्रस्तुत करना, पर्यावरण शिक्षा हेतु उचित मार्गदर्शन तथा भौगोलिक ज्ञान के माध्यम से पर्यावरण शिक्षा को अधिक उपयोगी बनाना,

(xiv) पर्यावरण प्रभाव समीक्षा तथा पारिस्थितिक अंकेक्षण (Eco–auditing) की पद्वति का विकास करना,

(xv) पर्यावरण शिक्षा हेतु उचित मार्गदर्शन तथा भौगोलिक ज्ञान के माध्यम से पर्यावरण शिक्षा को अधिक उपयोगी बनाना,

(xvi) पर्यावरण नियोजन हेतु तात्कालिक एवं दूरगामी सुझाव प्रस्तुत कर, पर्यावरण के उचित उपयोग हेतु 'मास्टर प्लान' तैयार करना,

(xvii) एक देश की, प्रदेश की तथा स्थानीय पर्यावरण की समस्याओं की जानकारी प्रदान करना तथा उनके निराकरण के उपाय सुझाना,

(xviii) उचित पर्यावरण अवबोध (Perception of environment) का विकास करना आदि।

वर्तमान विश्व में पर्यावरण का संकट गहराता जा रहा है तथा पारिस्थितिक–तन्त्र में असन्तुलन होने के कारण अनेक समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। इन समस्याओं का निराकरण विश्व में

मानवता के भविष्य को सुनिश्चित करने हेतु आवश्यक है। इस दिशा में पर्यावरण भूगोल की भूमिका महत्वपूर्ण है। पर्यावरण भूगोल की प्रकृति, इसकी परिभाषाओं तथा उपर्युक्त वर्णित विषय क्षेत्र से स्पष्ट है। इसमें जहाँ एक ओर पर्यावरण एवं पारिस्थितिक के विभिन्न पहलुओं को मानवीय अन्तर सम्बन्धों के पीरपेक्ष में प्रस्तुत किया जाता है, वहीं इसका दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष पर्यावरण अवकर्षण (Environmental Degradation) का विश्लेषण है जिसमें प्रदूषण के कारक, प्रभाव एवं निदान पर्यावरण भूगोल को वर्णित किया जाता है, साथ ही अनेक अन्य समस्यायें जैसे वनोन्मूलन, मरूस्थलीकरण, मृदा अपरदन, भू–स्थूलन तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं का अध्ययन किया जाता है। तीसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य है जो वर्तमान में सर्वाधिक उपयोगी है वह है "पर्यावरण प्रबन्धन (Environmental Management) इसके अन्तर्गत संसाधनों का उचित प्रबन्धन के साथ ही सतत अथवा संधृत विकास (Sustainable Development) हेतु योजना प्रस्तुत करना तथा इसके विविध पक्षों का विवेचन करना है। पर्यावरण प्रभाव समीक्षा (Environmental Impact Assessment) पारिस्थितिक अंकेक्षण (Eco–auditing) हेतु रूपरेखा भी पर्यावरण भूगोल का प्रमुख पक्ष है। अनेक विश्वव्यापी समस्याओं का भी पर्यावरण भूगोल में अध्ययन किया जाता है जैसे जलवायु परिवर्तन तापमान वृद्धि, ओजोन परत की विरलता, हरित गृह प्रभाव, मरूस्थलीकरण, रेडियो धर्मिता का पर्यावरण पर प्रभाव आदि।

पर्यावरण भूगोल के क्षेत्र एवं प्रकृति का स्वरूप इसकी आधारभूत संकल्पनायें भी स्पष्ट करती हैं जो निम्नलिखित है :–

1. जीव मण्डल में प्राकृतिक प्रक्रम (भौतिक एवं जैविक), मनुष्य तथा पर्यावरणीय प्रक्रमों के मध्य अन्तर्सम्बन्ध होता है।
2. पर्यावरण के जैविक (biotic) एवं अजैविक, भौतिक (abiotic/physical) संघटक सदैव क्रियाशील रहते हैं तथा मानव अपने कार्यों से उनमें परिवर्तन करता है जिससे प्राकृतिक चक्र में व्यवधान होता है।
3. गतिक उद्भवशील (dynamic evolving) प्राकृतिक चक्र सामान्य रूप से संचालित एवं नियन्त्रित रहता है। भौमकीय प्रक्रम कई चक्र समूहों द्वारा कार्य करता है। जैसे भू चक्र (Geocycle) भौमकीय चक्र (Geological cycle) जैव भू रसायन चक्र (Bio–geochemical cycle), पारिस्थितिक चक्र (Ecological cycle), विश्व स्तरीय व्यायव्य चक्र (Global gaseous cycle) आदि। ये सभी पर्यावरणीय सन्तुलन एवं जीव विकास के आधार होते हैं।
4. पर्यावरण जो विभिन्न घटकों का समूह है वह अत्यधिक क्रियाशील है। इसकी क्रियाशीलता समय और स्थान के साथ परिवर्तित होती रहती है।
5. जीवों की प्रजातियाँ परिवर्तित पर्यावरण की दशाओं के साथ स्वत: सामंजस्य करने की स्थिति में होती है, किन्तु पर्यावरण का एकाएक अवकर्षण अनेक प्रजातियों के लुप्त होने का कारण बन जाता है।

6. केवल पर्यावरण ही जीवों को प्रभावित नहीं करता अपितु जीव भी अपने विकास, वृद्धि, विस्तार से तथा परिवर्तित वैज्ञानिक ज्ञान से पर्यावरण को प्रभावित करता है।
7. समान प्रकार के पर्यावरण में विभिन्न प्रकार की प्रजातियों विकसित हो जाती हैं जिसे 'बायोम' (Biome) अथवा 'जीवोम' की विचारधारा कहा जाता है।
8. पर्यावरण के जैविक एवं अजैविक संघटकों में पारस्परिक (reciprocal) सम्बन्ध होते हैं।
9. पारिस्थितिक तन्त्र एक कार्यशील (functional) सुसंगठित एवं संरचित इकाई होता है तथा इसमें क्षेत्रीयता के आधार पर अन्तर होता है।
10. विभिन्न जीवधारियों के प्रादेशिक तथा विश्वस्तर पर उनके स्थानिक, विवरण, कालिक विभिन्नताओं, उनके विसरण एवं विलोपन के सन्दर्भ में जीवन रूपों का अध्ययन महत्वपूर्ण होता है।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि पर्यावरण भूगोल का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है। इसका आधार भौतिक एवं जीव विज्ञान के विषय है तो यह मानव एवं समाज की विभिन्न पर्यावरणीय समस्याओं का न केवल अध्ययन एवं कारण विश्लेषण करता है अपितु सतत विकास हेतु योजना भी प्रस्तुत करता है।

1.5 पर्यावरण भूगोल का अन्य प्राकृतिक विज्ञानों से सम्बन्ध (Relations of Environmental Geography with other Natural Science)

पर्यावरण भूगोल एक अन्तरविषयी विषय है जिसका सम्बन्ध अनेक प्राकृतिक विज्ञानों से है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि पर्यावरण भूगोल का आधार ही प्राकृतिक विज्ञान हैं। पर्यावरण भूगोल का सम्बन्ध एक ओर जैव विज्ञान (Bio Science) से है तो दूसरी ओर भू–विज्ञान (Earth Science) से है। इन अन्तर सम्बन्धों का संक्षिप्त विवरण पर्यावरण भूगोल की प्रकृति को समझने हेतु आवश्यक है।

पर्यावरण भूगोल एवं पारिस्थितिक

जैसा कि इकाई के प्रारम्भ में वर्णित किया गया है, पारिस्थितिक वह विज्ञान है जो सभी जीवों का सम्पूर्ण पर्यावरण के साथ सम्बन्धों का अध्ययन करता है अर्थात् इसके अन्तर्गत जीव–जगत का उद्भव, पोषण, ऊर्जा, विकास तथा पर्यावरण के आपसी क्रिया–प्रतिक्रिया का अध्ययन किया जाता है। पारिस्थितिक तन्त्र में वनस्पति एवं जीव–जन्तुओं की जल–वायु–मृदा से अन्तर्क्रिया और उसके नियन्त्रक ऊर्जा प्रवाह का अध्ययन होता है, जब कि पर्यावरण भूगोल में जीवों (विशेषकर मानव एवं उसकी क्रियाशीलता) का पर्यावरण के साथ सम्बन्धों एवं उनके प्रभावों का स्थान (Space) और समय (Time) के परिपेक्ष में अध्ययन किया जाता है। विभिन्न पारिस्थितिक तन्त्रों में वनस्पति तथा जीव–जन्तुओं वितरण एवं प्रभावों का अध्ययन पर्यावरण भूगोल में किया जाता है।

पर्यावरण भूगोल एवं वनस्पति शास्त्र

वनस्पति शात्र मूलत: पादप अथवा वनस्पति का सम्पूर्ण अध्ययन–विश्लेषण करता है। जिसमें पादप के उद्भव, संरचना, विकास के साथ उसके पोषण, ऊर्जा प्रवाह, फैलाव, आदि विविध पक्षों का वैज्ञानिक निरूपण किया जाता है। पादपों का नियन्त्रक तत्व पर्यावरण होता है अर्थात् जल, वायु तथा मृदा द्वारा ही पादपीय विविधता का जन्म होता है और विभिन्न क्षेत्रों में इनका विस्तार होता है। भौगोलिक अध्ययन में मूलत: पादपीय विवरण जो स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय या विश्वव्यापी हो सकता है का विवेचन पर्यावरणीय तत्वों के सन्दर्भ में किया जाता है। इस प्रकार का विश्लेषण विश्व के पादपीय स्वरूप को न केवल समझने अपितु उसके परिवर्तित वितरण स्वरूप को भी स्पष्ट करता है। पर्यावरण भूगोल में जैव विविधता के पर्यावरण से सम्बन्धों का अध्ययन के साथ पादप संख्या, पादप समुदाय तथा वृहत जैविक इकाईयों (बायोम) का भी अध्ययन किया जाता है।

पर्यावरण भूगोल एवं प्राणी विज्ञान

प्राणी विज्ञान (Zoology) जीव–जन्तुओं के अध्ययन का विज्ञान है जिसमें सूक्ष्म जीवों से लेकर सम्पूर्ण थलचर, जलचर तथा पक्षियों का उद्भव, विकास, संरचना, विस्तार तथा विशिष्टताओं का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। सम्पूर्ण जीव–जन्तुओं के जीवन का आधार वहाँ की पारिस्थितिक होती है। उपयुक्त पर्यावरण में ही जीव विकास होता है और पर्यावरण में अन्तर आने पर जीवों में भी अन्तर आने लगता है। इसी कारण जैव विविधता (Biodiversity) का जन्म होता है। जबकि विपरीत पर्यावरणीय परिस्थितियों में प्रजातियाँ विलुप्त भी हो जाती है। जीवों के विवरण एवं पर्यावरण के अन्तर सम्बन्धों को पर्यावरण भूगोल में अध्ययन किया जाता है। इसके माध्यम से एक ओर वर्तमान जन्तु विवरण एवं जैव–विविधता को समझने में सहायता मिलती है तो दूसरी ओर इनके संरक्षण का भी मार्ग प्रशस्त होता है।

पर्यावरण भूगोल का रसायन और भौतिक शास्त्र से सम्बन्ध

रसायन शास्त्र में पर्यावरणीय अध्ययन के अन्तर्गत पदार्थो की रासायनिक बनावट का अध्ययन–विश्लेषण किया जाता है। पर्यावरण प्रदूषण के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की गैसों की संरचना एवं प्रकृति तथा पदार्थो की संरचना से प्रदूषण के कारकों की जानकारी के साथ उनके नियन्त्रण का रास्ता भी निकलता है। कार्बन डाई ऑक्साइड, सल्फर डाई ऑक्साइड, मिथेन, नाइट्रोजन, क्लोरो–फ्लोरो कार्बन, आदि गैसों के अतिरिक्त अम्लीय वर्षा, तापीय प्रदूषण, जल प्रदूषण, भूमि प्रदूषण,अपशिष्ट आदि की रासायनिक प्रकृति का अध्ययन किया जाता है। इससे उपलब्ध तथ्यों का उपयोग पर्यावरण भूगोल में किया जाता है। इसी प्रकार भौतिक शास्त्र में विभिन्न भौतिक क्रियाओं पराबैंगनी किरणों, ओजोन विरलता आदि का अध्ययन किया जाता है। विभिन्न पर्यावरण क्रियाओं के भौतिक शास्त्र द्वारा किये गये विश्लेषण से अनेक समस्याओं के निराकरण में सहायता मिलती है।

पर्यावरण भूगोल का भू–आकृति विज्ञान, जलवायु विज्ञान और समुद्र विज्ञान से सम्बन्ध

भूगर्भ विज्ञान (Geology) : भू–गर्भिक संरचना का प्रभाव किसी क्षेत्र के भू–आकृतिक स्वरूपों के साथ–साथ उस क्षेत्र के भौतिक पर्यावरण पर भी पड़ता है। मृदा में विभिन्न खनिज तत्वों की

उपलब्धता, जल की प्रवेश्यता, चट्टानी संस्तरों का प्रारुप आदि का अध्ययन किसी क्षेत्र के पर्यावरण एवं पारिस्थितिक स्वरुपों को समझने के लिए महत्वपूर्ण सूचना उपलब्ध कराते हैं।

भू– आकृति विज्ञान (Geomorphology) : स्थलाकृतियों के अध्ययन का विज्ञान है। इसी की एक शाखा पर्यावरण भू–आकृति विज्ञान (Environmental Geomorpology) के रूप में विकसित हो रही है, जो भू–पारिस्थितिक तन्त्र (Geo–ecosystem) का भी अध्ययन करती है। विभिन्न स्थलाकृतियाँ जहाँ पर्यावरण को नियन्त्रित करती हैं आकस्मिक भू–आकृति घटनाक्रम जैसे भुकम्प, ज्वालामुखी विस्फोट, भूस्खलन आदि का भी पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है। भौगोलिक अध्ययन का एक प्रमुख पक्ष इन्हीं प्रभावों का अध्ययन है।

जलवायु विज्ञान (Climatology) : में जलवायु के विविध स्वरूपों यथा तापमान, वर्षा, वायुदाब आर्द्रता, हवायें, जलवायु प्रकार, जलवायु कटिबन्ध, विशिष्ट जलवायु उपक्रम जैसे आँधी, तूफान, ईं टारनेडो, चक्रवात, अलनिनों तथा जलवायु परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। वास्तव में जलवायु दशाएं पर्यावरण को नियन्त्रित करती है। वर्तमान में जलवायु परिवर्तन जलवायु विज्ञान के साथ पर्यावरण अध्ययन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय है, जो पर्यावरण भूगोल में भी महत्वपूर्ण है। वैश्विक जलवायु परिवर्तनों का मानचित्र तैयार करना और उसका विश्लेषण करना भौगोलिक अध्ययन का प्रमुख पक्ष है। जलवायु के सभी पक्ष भौगोलिक अध्ययन में सम्मिलित किये जाते हैं।

सामुद्रिक विज्ञान (Oceanography) का सम्बन्ध महासागर एवं सागरों से है। महासागरों एवं सागरों का एक विशिष्ट पर्यावरणीय स्वरूप एवं पारिस्थितिक तन्त्र होता है जिसमें जल–जीवन विकसित होता है। इसके अतिरिक्त तटीय क्षेत्रों में विशिष्ट पर्यावरण होता है। इनका भौगोलिक अध्ययन पर्यावरण नियोजन एवं संरक्षण में सहायक होता है। समुद्री तूफान जैसे सुनामी आदि पर्यावरण को हानि पहुँचाते हैं। सागरीय प्रदूषण आज एक प्रमुख समस्या बना हुआ है। इन सभी तथ्यों का अध्ययन पर्यावरण भूगोल में भी किया जाता है।

1.6 पर्यावरण भूगोल का सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध (Relations of Environment Geography with Social Science)

पर्यावरण भूगोल का विभिन्न सामाजिक विज्ञानों से अन्तर्सम्बन्ध है क्योंकि पर्यावरण भूगोल मानव–पर्यावरण के सम्बन्धों की क्रियाशीलता और प्रभावोत्पादकता का अध्ययन करता है। अत: पर्यावरण भूगोल का समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र एव वाणिज्य, आदि से सम्बन्ध है।

समाजशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था, समुदाय, परिवार, प्रजाति आदि के विविध पक्षों के अध्ययन के साथ सामाजिक समस्याओं का अध्ययन कर उनका सामाजिक निराकरण प्रस्तुत किया जाता है। पर्यावरण सामाजिक विकास का आधार है और पर्यावरण समस्याओं का सीधा सम्बन्ध मानव एवं समाज से होता है। वर्तमान में पर्यावरणीय समस्याओं का अध्ययन सामाजिक परिपेक्ष में किया जाता है तथा प्रदूषण, पर्यावरणीय अवकर्षण, मरूस्थलीकरण, वनोमूलन, अपशिष्ट निस्तारण जैसी समस्याओं का निराकरण भी सामाजिक चेतना से ही

सम्भव हो सकता है। अत: पर्यावरण भूगोल एवं समाजशास्त्र इस दिशा में सक्रीय भूमिका अदा करते हैं।

राजनीति शास्त्र का पर्यावरण भूगोल से सीधा सम्बन्ध है। वर्तमान में विश्व राजनीति हो अथवा देश की राजनीति, पर्यावरण के प्रति सभी सरकारें सचेष्ट है। विश्व पर्यावरण संरक्षण में संयुक्त राष्ट्र संघ महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। वास्तव में पर्यावरण सम्बन्धी नीति निर्धारण, कानून बनाना, वित्तीय व्यवस्था करना तथा कानूनों को लागू करना सरकारों का दायित्व है। वर्तमान में 'पर्यावरण की भू–राजनीति' (Geo–politics and Environment) भी महत्वपूर्ण है, विकसित देश पर्यावरण अवकर्षण अधिक करते है किन्तु उसका नुकसान विकासशील देशों को उठाना पड़ता है। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय समस्याओं में विश्वव्यापी सहयोग आवश्यक होता है। ये सभी तथ्य राजनीति विज्ञान के साथ–साथ पर्यावरण भूगोल की भी विषय वस्तु है।

अर्थशास्त्र एवं वाणिज्य तथा पर्यावरण भूगोल के कुछ पक्ष समान है। प्रत्येक पर्यावरण परियोजना पर्यावरण भूगोल की परिभाषा, विषय क्षेत्र एवं हेतु वित्तीय व्यवस्था एवं प्रबन्धन के साथ लागत एवं लाभ (Cost and benefit) विश्लेषण किया जाता है। वर्तमान में अर्थशास्त्र का एक विषय 'पर्यावरणीय अर्थ –शास्त्र '(Environmental Economics) भी विकसित हो रहा है। इसी प्रकार वाणिज्य एवं व्यापार का वर्तमान पर्यावरण से गहरा सम्बन्ध है क्योंकि व्यापारिकरण एवं वैश्वीकरण का सीधा प्रभाव पर्यावरण पर हो रहा है। संसाधनों के शोषण से अनेक क्षेत्रों/प्रदेशों में पर्यावरण संकट पैदा हो गया है। सतत विकास की संकल्पना के लिये अर्थशास्त्र एवं वाणिज्य में प्रचलित संकल्पनाओं का उचित उपयोग पर्यावरण संरक्षण में उचित दिशा दे सकता है। यद्यपि प्रत्येक पर्यावरणीय परियोजना वित्तीय दृष्टि से लाभकारी ही हो यह आवश्यक नहीं, अपितु जनोपयोगी होना भी आवश्यक है, यह कार्य भौगोलिक दृष्टि से सम्भव है। पर्यावरण भूगोल इनके मध्य सेतु का कार्य करता है।

उपर्युक्त सामाजिक विज्ञानों के अतिरिक्त लोक प्रशासन, इतिहास, दर्शनशास्त्र, जनसांख्यिकी आदि से भी पर्यावरण भूगोल सम्बन्धित है। पर्यावरण भूगोल जहाँ अन्य समाजशास्त्रों से सम्बन्धित है वहीं भूगोल की अन्य शाखाओं से भी इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। पर्यावरण भूगोल का कृषि, उद्योग, परिवहन एवं संसाधन भूगोल से भी सम्बन्ध है। कृषि का विकास, प्रकार, उत्पादकता आदि पर्यावरण द्वारा नियन्त्रित हैं तो कृषि में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का अधिकाधिक प्रयोग आज पर्यावरण विशेषज्ञों के लिये चिन्ता का कारण बनता जा रहा है। औद्योगिक एवं परिवहन भूगोल के अध्ययन का एक पक्ष उद्योगों एवं परिवहन से फैलता वायु, जल एंव ध्वनि प्रदूषण है। पर्यावरण भूगोल सभी प्रकार के प्रदूषणों की प्रकृति एवं उनके मानव पर प्रभाव का अध्ययन करता है। संसाधन भूगोल (Resource Geography) में संसाधनों का वितरण एव संरक्षण प्रमुख तथ्य है। विश्व में वन, खनिज, जल, मृदा, ऊर्जा आदि संसाधनों के शोषण से जहाँ संसाधनों में कमी का संकट पैदा हो रहा है, वही अनियन्त्रित संसाधन शोषण पर्यावरण के संकट का कारण भी बनता जा रहा है। पर्यावरण भूगोल संसाधनों के उचित संरक्षण का प्रारूप प्रस्तुत करता है।

भूगोल की अन्य शाखाओं जैसे जनसंख्या भूगोल (Population Geography), नगरीय भूगोल

(Urban Geography), नियोजन भूगोल (Geography of Planning) में भी पर्यावरण के पक्षों की महत्ता है। जनसंख्या वृद्धि एवं नगरीकरण वर्तमान में पर्यावरण हेतु सबसे गम्भीर खतरा है। पर्यावरण भूगोल में जनसंख्या वृद्धि को दृष्टिगत रखते हुए तथा नगरों में अवकर्षित होते पर्यावरण को पर्याप्त महत्ता दी जाती है। नियोजन भूगोल में प्रमुखत: जब प्रादेशिक नियोजन की बात की जाती है, तो सर्वप्रथम क्षेत्रीय पर्यावरण पर दृष्टि जाती है। भावी विकास पर्यावरण संरक्षण के साथ हो तथा पारिस्थितिक–तन्त्र सन्तुलित रहे यही वर्तमान नियोजन का आधार है।

बोध प्रश्न – 1

1. जीव मण्डल में सम्मिलित हैं:
   (अ) स्थल मण्डल (ब) जल मण्डल
   (स) वायु मण्डल (द) उपर्युक्त सभी
2. स्थानिक (Spatial) शब्द का सम्बन्ध किससे है:–
   (अ) समय (ब) स्थान
   (स) तटीय (द) स्थान व समय दोनों से
3. पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ क्या है?
   .....
   .....
4. पर्यावरण भूगोल किस प्रकार का विषय है?
   .....
   .....
5. पारिस्थितिक तन्त्र का सम्बन्ध निम्न में से किस से है:
   (अ) पादप से (ब) पर्यावरण से
   (स) जीव–जन्तुओं से (द) सभी से
6. सतत विकास से क्या तात्पर्य है :–
   (अ) विनाश रहित विकास (ब) तीव्र विकास
   (स) मन्द विकास (द) क्षेत्रीय विकास
7. जैव विज्ञान में कौन से विज्ञान सम्मिलित हैं :–
   (अ) वनस्पति शास्त्र (ब) प्राणी विज्ञान
   (स) पारिस्थितिक विज्ञान (द) उपर्युक्त सभी
8. भू–आकृति विज्ञान का सम्बन्ध किस से है :–
   (अ) स्थलीय क्षेत्र से (ब) वायु मण्डल से
   (स) वनस्पति से (द) तटीय क्षेत्र सारांश

1.7 सारांश (Summary)

भूगोल में विशिष्टिकरण के फलस्वरूप विभिन्न शाखाओं का विकास हुआ जिसमें पर्यावरण भूगोल एक नवीन एवं तीव्र विकसित शाखा है। यद्यपि भूगोल में मानव –पर्यावरण सम्बन्धों का अध्ययन प्रारम्भिक काल से किया जा रहा है किन्तु पर्यावरण भूगोल का एक विशिष्ट शाखा के रूप में विकास बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों की देन हैं। पर्यावरण भूगोल में पर्यावरण एवं पारिस्थितिक का भौगोलिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाता है, जिसकी प्रमुख विशेषता स्थानिक (Spatial) स्वरूप का विश्लेषण करना है, इसके लिये अन्य विधियों के साथ मानचित्रीकरण की सहायता भी ली जाती है। पर्यावरण भूगोल में पर्यावरण के प्रमुख तत्वों अर्थात् उच्चावच, जलवायु, मृदा, वनस्पति, जलराशियों के प्रभावों का अध्ययन तो किया ही जाता है साथ में पारिस्थितिक तन्त्र में मानवीय भूमिका भी स्पष्ट की जाती है। पर्यावरण भूगोल जहाँ एक ओर पर्यावरण एवं पारिस्थितिक का मानवीय क्रियाओं पर प्रभाव का अध्ययन करता है वहीं दूसरी ओर इसके विविध पक्ष जैसे पर्यावरणीय प्रदूषण, पर्यावरणीय अवकर्षण, जनसंख्या एवं पर्यावरण, संसाधन संरक्षण, उर्जा संरक्षण, जैव विविधता, प्राकृतिक आपदा आदि का अध्ययन करता है। पर्यावरण प्रबन्धन, सतत विकास तथा वैश्विक एवं क्षेत्रीय पर्यावरणीय समस्याओं का अध्ययन भी इसके अन्तर्गत किया जाता है। पर्यावरण भूगोल का अन्य प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञानों में घनिष्ठ सम्बन्ध हैं क्योंकि पर्यावरण भूगोल एक अन्तर्विषयी विषय है।

1.8 शब्दावली (Glossery)

- **पर्यावरण :** उन सभी दशाओं, प्रणालियों एवं प्रभावों का योग है जो जीवों, पादपों या स्पेशीज (जातियों) के विकास, जीवन एवं मृत्यु को प्रभावित करता है।
- **पारिस्थितिक :** वह विज्ञान है जो जीवों के एक दूसरे के सम्बन्धों तथा उन तत्वों का अध्ययन करता है जो पर्यावरण के अंग हैं।
- **अन्तर–विषयी :** जिसका सम्बन्ध विभिन्न विषयों से हो।
- **सतत विकास :** विकास जिससे पर्यावरण को हानि न हो अर्थात विनाश रहित विकास।
- **पर्यावरण अवकर्षण :** पर्यावरण का क्रमिक रूप से नुकसान होना जो प्राकृतिक एवं मानवीय कृत्य दोनों से होता है।
- **वनोन्मूलन :** वनों का विनाश।
- **बायोम या जीवोम :** समान प्रकार के पर्यावरण में विकसित विभिन्न प्रजातियों का समूह
- **जैव विविधता :** जीव–जन्तुओं एवं पादपों की प्रजातिगत बहुलता।

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Odum, E.P. : **Fundamental of Ecology,** W.B.Saunders Co.London, 1971
2. Sharma, P.D. : **Elements of Ecology,** Rastogi Publications, Meerut

3. Saxena, H.M. : **Environmental Geography,** Rawat Publications, Jaipur, 2004
4. सिंह, सविन्द्र : **पर्यावरण भूगोल,** प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद, 2007
5. श्रीवास्तव, वी. के. : **पर्यावरण एवं पारिस्थितिक,** वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 1991

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (द)
2. (ब)
3. पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ 'Surroundings' अर्थात 'आवृत' करना' है।
4. अंतर–विषयक है।
5. (द)
6. (अ)
7. (द)
8. (अ)

1.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पर्यावरण एवं पारिस्थितिक पर्यावरण भूगोल का आधार है, स्पष्ट कीजिये।
2. पर्यावरण भूगोल को परिभाषित कीजिये तथा इसके क्षेत्र की विवेचना कीजिये।
3. पर्यावरण भूगोल के क्षेत्र रण प्रकृति का वर्णन कीजिये।
4. पर्यावरण भूगोल का अन्य प्राकृतिक विज्ञानों एवं सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध स्पष्ट कीजिये
5. टिप्पणियाँ लिखिये

   (अ)पर्यावरण भूगोल की परिभाषा

   (ब)पर्यावरण भूगोल की अन्तर–विषयक प्रकृति

   (स)पारिस्थितिक

   (द)पर्यावरण भूगोल का भू–आकृति विज्ञान, जलवायु विज्ञान एवं सह विज्ञान सेसम्बन्ध।

इकाई 2 : भूगोल में मानव–पर्यावरण नियतिवाद, सम्भववाद, नव–निश्चयवाद एवं अन्य विचार (Man–Environment Relationship in Geography : Determinism, Possibilism, Neo–determinism and other thoughts)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 नियतिवाद या पर्यावरणवाद

2.2.1 विभिन्न विचारकों के मत

2.2.2 नियतिवाद का मूल्यांकन

2.3 संभववाद

2.3.1 विभिन्न विचारकों के मत

2.3.2 संभववाद का मूल्यांकन

2.4 नव–निश्चयवाद

2.5 संभाव्यवाद

2.6 अन्य विचार

2.6.1 कृतिवाद

2.6.2 उपक्रमवादिता

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 सन्दर्भ ग्रंथ

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई का प्रमुख उद्देश्य भूगोल में मानव पर्यावरण सम्बन्धों का विवेचन करना तथा इससे सम्बन्धित निम्नलिखित तथ्यों का वर्णन करना है :

- भूगोल में मानव–पर्यावरण सम्बन्ध अध्ययन,
- नियतिवाद के सम्बन्ध में प्रस्तुत विभिन्न विचारकों के मतों से परिचित कराना,
- नियतिवाद विचारधारा का आलोचनात्मक विश्लेषण,
- संभववाद का उदय एवं उससे सम्बन्धित विभिन्न विचारकों के मतों को प्रस्तुत करना,

- मध्यम मार्गी विचारधारा के रूप में नवनिश्चयवाद का विवेचन,
- संभाव्यवाद एवं अन्य विचार प्रस्तुत करना।

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव–पर्यावरण संबंधों का अध्ययन भूगोल में प्रारंभ से ही होता आया है। क्योंकि प्राकृतिक पर्यावरण, मानवीय या सांस्कृतिक पर्यावरण की विविधता का कारण है तथा क्षेत्रीय भिन्नता भूगोल के अध्ययन का विषय क्षेत्र है। विल्सन–डी–वालेस का कथन है कि–

"Geographical environment is the cradle in which man's genius awaits the promptings of motives which give him mastery over his fate."

(Willson–di–wallis)

अर्थात् "भौगोलिक पर्यावरण वह हिंडोला है जिसमें मनुष्य अपनी बुद्धिमता से अपने उद्देश्यों को पूर्ण कर अपने भाग्य पर स्वामित्व स्थापित करता है।"

भूगोल में मानव–पर्यावरण संबंधों को लेकर प्रारंभ से ही द्वंद रहा है। इससे सम्बन्धित अनेक प्रश्न जैसे मानव–पर्यावरण में क्या संबंध हैं? इनमें कौन अधिक प्रभावशाली तथा नियन्त्रक है? क्या प्रकृति सर्वोपरी है अथवा मानव उसमें परिवर्तन की क्षमता रखता है? क्या वैज्ञानिक और तकनीकी विकास द्वारा मानव ने प्रकृति को नियन्त्रित किया है? जैसे अनेक प्रश्न भौगोलिक अध्ययन में उभरते है। भूगोल में सदैव से ही प्राकृतिक पर्यावरण का अध्ययन किया जाता रहा है और आज यह पर्यावरण भूगोल का प्रमुख विषय है। पर्यावरण का अध्ययन भूगोल में एकाकी न होकर, इसके मानव पर होने वाले प्रभावों का भी अध्ययन किया जाता है। वास्तव में पर्यावरण–मानव संबंधों का अध्ययन भौगोलिक विश्लेषण का प्रमुख आधार है। इसी अध्ययन के अन्तर्गत भूगोल में विभिन्न विचार धाराओं का उदय हुआ जैसे नियतिवाद, सम्भववाद, नव–निश्चयवाद आदि। प्रस्तुत इकाई में इन विचारधाराओं का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

2.2 नियतिवाद या पर्यावरणवाद या निश्चयवाद (Determinism)

नियतिवाद विचारधारा प्रकृति या पर्यावरण को सर्वोपरि मानते हुए मनुष्य को उसके हाथ की कठपुतली मानता है। इस विचारधारा का मूल भाव यह है कि किसी भी सामाजिक संगठन, राज्य या राष्ट्र का इतिहास, संस्कृति, जीवन शैली और विकास की अवस्था वहां के पर्यावरण के भौतिक कारकों (धरातल, जलवायु, अपवाह, वनस्पति एवं जीव–जगत) के द्वारा संचालित एवं नियंत्रित होती है। नियतिवादी विचारक सामान्यतया मनुष्य को एक निष्क्रिय कारक मानते हैं। जिस पर पर्यावरणीय कारक अपना प्रभाव डालते हुए उसका व्यवहार, निर्णय निर्धारण प्रक्रिया एवं जीवन–शैली को निश्चित करते हैं।

2.2.1 विभिन्न विचारकों के मत

सर्वप्रथम प्राचीन ग्रीक विचारकों (हिप्पोक्रेटस, अरस्तु, थिसायिडस व हैरोडोटस) ने प्राकृतिक तत्वों की प्रभुता को स्वीकार किया। हिप्पोक्रेटस (Hippocrates) ने ईसा से 520 वर्ष पूर्व वायु, जल, स्थान की विशेष की महत्ता को स्वीकार करते हुए एशिया के निवासियों को उपयुक्त वातावरण

के स्थलों में आराम पसन्द जीवन यापन करने वाला तथा यूरोप के निवासियों को अपेक्षाकृत प्रतिकूल वातावरण में परिश्रमी जीवन व्यतीत करने वाला बताया। अरस्तु (Aristotle) ने ईसा से चौथी शताब्दी पूर्व अपनी पुस्तक 'Politics' में लिखा था– "यूरोप के ठण्डे देशों के निवासी बहादुर होते हैं। किन्तु उनमें विचारों और तकनीकी कौशल की कमी पायी जाती है, इसके विपरीत एशिया के लोग विचारशील और कुशल होते हैं लेकिन उत्साही नहीं" इसी तरह स्ट्रेबो (Strabo) ने ढाल, धरातल एवं जलवायु को ईश्वर का कारक मानते हुए उनका मानवीय जीवन–शैली पर प्रभाव स्पष्ट किया। 16 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बोदिन (Bodin) ने लिखा है कि ठण्डे देशों के निवासी निर्दयी तथा साहसी होते हैं। जबकि गर्म प्रदेशों के निवासी प्रतिशोधी, कुटिल परन्तु सच और झूंठ में अन्तर करने वाले होते हैं। 17 वीं शताब्दी में राजनीति विज्ञान के विद्वान मोंटेस्क्यू (Montesqueiu) ने जलवायु और मृदा को मानव चरित्र का निर्माता बताया। उन्होंने जलवायु के प्रभाव को व्यक्त करते हुए लिखा कि ठण्डी जलवायु के लोग शारीरिक दृष्टि से पुष्ट, साहसी, कम कुटिल होते हैं। जबकि गर्म जलवायु के निवासी धर्मप्रिय तथा परम्परा और संस्कृति में अधिक विश्वास रखते हैं।

अरब भूगोलवेत्ताओं ने भी प्रकृति के प्रभुत्व को इंगित किया। उन्होंने निवास योग्य विश्व को 7 किश्वार (Kishwar) या कटिबन्धों (Zones) में बांटा। अल–बत्तनी, अल–मसूदी, इन–हॉकल, अल–इदरसी व इब्न खल्दून ने मानवीय गतिविधियों व पर्यावरण को परस्पर अन्तर्सम्बन्धित माना। उदाहरण के लिए अल–मसुदी में लिखा कि, वे क्षेत्र जहां जल बहुलता से उपलब्ध है वहां के निवासी विनोद प्रिय होते हैं। जबकि शुष्क क्षेत्र के निवासी शीघ्र क्रोधित होने वाले होते हैं।

जर्मन वैज्ञानिक एवं दार्शनिक कांट (1724) भी एक निश्चयवादी विचारक थे उन्होंने भौगोलिक एवं पर्यावरणीय परिघटनाओं के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक आधार की आवश्यकता पर बल दिया, उन्होंने जलवायु के प्रभाव को महत्वपूर्ण मानते हुए यह व्यक्त किया कि जो पशु एवं मनुष्य दूसरे देशों को प्रवसन करते हैं, उन पर क्रमिक रूप से वहां कि जलवायु का प्रभाव देखा जा सकता है। मानव एवं पर्यावरण अन्तर्सम्बन्ध पर काण्ट के दर्शन को हम्बोल्ट (Alexander Von humbolet) एवं रिटर (Carl Ritter) ने भी स्वीकार किया है। हम्बोल्ट ने अपनी पुस्तक 'Cosmos' में पर्यावरण की शक्ति को सर्वोपरी मानते हुए उसका मानवीय कार्यों पर प्रभाव व्यक्त किया। उन्होंने भूमध्यसागरीय एवं अन्य विचार सभ्यता के विकास पर वहाँ कि जलवायु के प्रभाव को व्यक्त किया। हम्बोल्ट के समकालीन कार्ल रिटर ने भी मानव एवं प्रकृति के संबंध को अपनी पुस्तक 'Europe in Gernarlde' में प्रस्तुत किया। रिटर ने शारीरिक संगठन एंव स्वास्थ्य पर विभिन्न पर्यावरणीय दशाओं का अध्ययन किया। रिटर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्डकुण्डे' (Erdkunde) में मानव पर्यावरण सम्बन्धों की विशद व्याख्या की। उन्होंने पृथ्वी तल के अध्ययन में मानव को केन्द्र स्वीकार किया तथा मानव एवं पर्यावरण के संबंधों की भौगोलिक विश्लेषण विधि में प्रादेशिक भूगोल की महत्ता को स्पष्ट किया। और इस विवेचन में प्राकृतिक तत्वों को सर्वोपरी माना। इसी समय डार्विन ने जीवों का विकास का सिद्धान्त Origin of Species के रूप में प्रतिपादित किया। जिसमें जीवों के विकास में पर्यावरण की महत्वपूर्ण भूमिका को स्पष्ट किया गया है।

हैकल (Haeckal, 1834–1919) ने पारिस्थितिकि (Ecology) सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किये हैं, जो मानव पर्यावरण सम्बन्धों की दिशा में आधारभूत है। उन्होंने मानव प्रजाति, उसके रंग रूप शारीरिक बनावट आदि को प्राकृतिक वातावरण से नियन्त्रित बताया। यही नहीं उन्होंने अपराध, हत्या, आत्महत्या जैसे कृत्यों को समुद्र, ज्वार भाटों और ऋतुओं की गति से होना व्यक्त किया। ब्रिटिश विद्वान बकल (Buckle) ने अपनी पुस्तक 'History of Civilisation in England' में इतिहास की घटनाक्रम को पर्यावरण से सम्बन्धित कर प्रस्तुत किया। उन्होंने जलवायु, मृदा और भोजन को ऐसे तत्वों के रूप में माना जो सभ्यताओं के विकास को सदियों से नियन्त्रित कर रहे हैं। नियतिवाद के एक प्रमुख प्रवर्तक डिमोलिन्स (Demolinins, 1852–1907) थे जिन्होंने पर्यावरण की सर्वोपरिता को स्वीकार करते हुए यह व्यक्त किया कि समाज पर्यावरण की उपज है । उनका विचार था कि यदि पृथ्वी तल का धरातल एवं प्राकृतिक अवस्था इसी प्रकार की रहे तो यहां जो भी सभ्यता विकसित होगी वह वर्तमान के समान ही होगी।

नियतिवादी विचारकों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान फ्रेडरिक रेट्रजेल (Frederic Ratzel, 1844–1904) का है। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ एन्थ्रोपोज्योग्राफी (Anthropogeography) में पृथ्वी पर मानव के वितरण को भौतिक तत्वों से नियंत्रित माना और सम्पूर्ण पृथ्वी को पार्थिव सत्यता मानते हुए उसकी एकरूपता को व्यक्त किया। उनके अनुसार "हमारी बुद्धि, संस्कृति एवं सभ्यता की उपलब्धियों की तुलना एक चिड़िया की स्वच्छंद उड़ान से नहीं की जा सकती, उसकी तुलना एक पौधे के तने से की जा सकती है, क्योंकि हम सदैव पृथ्वी से आबद्ध है। मानव अपना मस्तिष्क आकाश में चाहे जितना ऊंचा क्यों न उठा ले, उसके पैर सदा धरती पर ही टिके रहेंगे तथा उसकी धूल प्रकृति में विलीन हो जायेगी।" बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में निश्चियवाद संयुक्त राज्य अमेरिका में व्यापक रूप से फैला जिसके प्रमुख प्रणेता एलेन चर्चिल सेम्पल हैं। (E.C. Sample) एवं एत्सवर्थ हटिंगटन (Elseworth Huntington) थी। सेम्पल ने अपनी पुस्तक 'influences of Geographic Environment' (1911) में नियतिवाद विचारधारा को प्रभावशाली तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया। उनकी पुस्तक के प्रारंभिक अंश उनकी विचारधारा को स्पष्ट करते हैं।

सेम्पल के अनुसार

“Man is a product of the Earth surface. This means not nearly that he is a Child of the earth dust of her dust, but that the earth has mothered him, fed him, set tasks, directed his thoughts, confronted him with difficulties that have strengthen his body and sharpened his wits……..”

अर्थात् ‘मानव पृथ्वीतल की उपज है। पृथ्वी तल से उनका तात्पर्य पर्यावरण है। मानव जिस पर्यावरण में रहता है, उसी के अनुरूप ढल जाता है। उनके अनुसार पर्वतीय क्षेत्रों के निवासियों के पैर मजबूत होते हैं, जब कि समुद्र के निकट रहने वालों का सीना और हाथ। नदी घाटियों के निवासी भूमि की उर्वरा शक्ति से संयुक्त रहते हैं। अत: आलसी होते हैं। उन्होंने धर्म के स्वरूप एवं उसके उद्भव को भी स्थनिक पर्यावरण से प्रेरित बताया। सेम्पल ने मानव के प्रत्येक

क्रियाकलाप, उसके विकास, वितरण, सामाजिक एव राजनीतिक स्वरूप पर पर्यावरण के प्रभाव को व्यक्त किया। स्पष्टत: सेम्पल ने नियतिवाद विचारधारा को चरम तक पहुँचाया।

अमेरिकी भूगोलवेत्ता एल्सवर्थ हटिंगटन (1945) ने अपनी पुस्तक 'The Principles of Human Geography' में सभ्यताओं के विकास के लिए जलवायु को प्रधान कारक बताया। उनके अनुसार शीतोष्णकटिबंधीय जलवायु स्वास्थ्य, उर्जा एवं सभ्यता की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ होती है। हटिंगटन के अनुसार धार्मिक एवं प्रजातिगत विशेषताएं, जलवायु की उत्पादनस्वरूप होती है। हटिंगटन ने विश्व को मृदु एवं कठोर जलवायु कटिबंधों (Mild and harsh climatic zones) में बांटा। उनके अनुसार विश्व की सारी प्राचीन सभ्यताएं (मिस्त्र, मेसोपोटामिया, चीनी व सिन्धु घाटी सभ्यता) उपजाऊ नदी घाटियों व मृदु जलवायु में विकसित हुई।

उपर्युक्त विद्वानों के अतिरिक्त मैकेण्डर, चिसोल्म, डेविस, बोमैन, रॉबर्ट मिल, गेडीस, हर्बटसन आदि ने भी सभ्यताओं के विकास को निश्चयवादी उपागम से समझाया है। तात्पर्य यह है कि निश्चियवादी विचारकों ने प्रकृति या पर्यावरण को सर्वोपरि मानते हुए विभिन्न मानवीय क्रियाओं तथा मानव के विकास को पर्यावरण का प्रतिफल बताया।

2.2.2 नियतिवाद का मूल्यांकन

वैज्ञानिक, तकनीकी तथा औद्योगिक प्रगति एवं ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में हो रहे अनुसन्धानों ने नियतिवादी विचारधारा को एक पक्षीय अथवा एकांगी मानते हुए, मानव बुद्धि और कार्यों को महत्व देना प्रारम्भ किया। जिसके फलस्वरूप नियतिवाद अथवा पर्यावरणवाद से सम्बन्धित अनेक विचार उठने लगे, उनमें प्रमुख थे–

(i) मानव पर्यावरण का दास नहीं अपितु वह अपनी बौद्धिक क्षमता से उसका उपयोग करता है।

(ii) विभिन्न प्रकार की जलवायु में सभ्यताओं का विकास होना मानवीय क्षमता का द्योतक है। मिश्र, चीन, मैसोपोटामिया, हड़प्पा–मोहन जोदड़ो आदि का विकास भिन्न–भिन्न जलवायु वाल क्षेत्रों में हुआ।

(iii) मनुष्य की शारीरिक क्षमता केवल जलवायु या वातावरण द्वारा ही नियन्त्रित हो यह सत्य नहीं है, अपितु भोजन, व्यवसाय, स्वास्थ्य एवं सुविधाओं द्वारा भी उसका विकास होता है।

(iv) सभी प्राकृतिक प्रदेशों में समान अर्थव्यवस्था का विकास न होकर भिन्न–भिन्न हुआ है।

(v) वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के फलस्वरूप मानव पर्यावरण का अधिकतम उपयोग कर रहा है। जहाँ कृषि की कल्पना तक नहीं हो सकती थी, वहाँ आज अधिकाधिक कृषि उत्पादन किया जा रहा है। प्रतिकूल प्राकृतिक दशाओं में उद्योग एवं परिवहन का विकास हो रहा है।

(vi) कृत्रिम साधनों के द्वारा न केवल जलवायु नियन्त्रण किया जा रहा है, अपितु अनेकानेक यन्त्रों से वातावरण का आज अधिकतम उपयोग हो रहा है।

उपर्युक्त तथ्यों दृष्टिगत रखते हुए भूगोलवेत्ताओं ने एकनवीन विचारधारा प्रस्तुत की जिसे 'सम्भववाद' (Possibilism) का नाम दिया गया।

2.3 संभववाद (Possibilism)

संभववादी विचारधारा मानव–पर्यावरण संबंधों के अन्तर्गत मानव को एक सक्रिय कारक मानता है। मनुष्य अपनी ज्ञान, क्षमता व तकनीक के आधार पर पर्यावरण को अपनी इच्छानुसार प्रयोग में लेता है। अत: संभववादी विचारधारा में मनुष्य को उसका यथोचित स्थान प्रदान किया गया तथा प्रकृति को उसका सहायक स्वीकार किया गया न कि नियंत्रक। संभववाद को परिभाषित करते हुए है गेट ने लिखा है –

"Possibilism, in contrast to environmentalism the freedom of man to choose altemative patterns of behavior despite geographic location."

अर्थात् "संभववाद, पर्यावरणवाद से भिन्न मनुष्य की स्वतंत्रता में विश्वास रखता है जो भौगोलिक स्थिति के उपरांत भी भिन्न व्यवहार का चयन करता है, दूसरे शब्दों में वह पर्यावरण के अनुरूप ही क्रियाएं न करके उसमें परिवर्तन लाता है।"

2.3.1 विभिन्न विचारकों के मत

संभववादी विचारधारा के प्रथम प्रवर्तक फ्रांसिसी विद्वान फेब्बरे (febvre) थे। इन्होंने अपनी पुस्तक 'Geography, Introduction to History' में लिखा कि–

"There are no necessities but everywhere possibilities and man as master of these possibilities is the Judge of their use."

अर्थात् 'कहीं अनिवार्यता नहीं है बल्कि सर्वत्र संभावनाएं है और मानव इन संभावनाओं के स्वामी के रूप में इनका निर्णायक है।'

फ्रांसिसी विद्वान वाइडल–डी–ला ब्लॉश (Vidale de la blache) को संभववाद के जनक के रूप में देखा जाता है। उन्होंने 'School of possibilism' की स्थापना की। उन्होंने अपने अध्ययन में मानवीय गतिविधियों पर पर्यावरण के प्रभाव को सीमित माना। उनके अनुसार जीवन शैली (Genresde vie) किसी सभ्यता का प्रतिबिंब है जो संबंधित क्षेत्र के भौतिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक प्रभावों का प्रतिफल होती है। उनके अनुसार एक समान पर्यावरण में रहने वाले लोगों के मूल्यों व आचार–व्यवहार में अंतर क्यों पाया जाता है? स्पष्ट है कि भौतिक पर्यावरण उसे निर्धारित नहीं करता ब्लॉश ने अपनी पुस्तक 'Principles of Human Geography' में लिखा कि 'प्रकृति मात्र एक मार्गदर्शक या सलाहकार के रूप में है।' (Nature is never more than an advisor) मानव उस सलाह पर चलने के लिए भी बाध्य नहीं है। अपितु वह उसे अपने अनुकूल परिवर्तन करने की क्षमता रखती है। ब्लाश ने मानव की शक्ति, ज्ञान, कौशल, बौद्धिकता को पर्याप्त महत्व देते हुए व्यक्त किया कि पर्यावरण का वह अपनी सामर्थ्यानुसार उपयोग कर सकता है।

ब्रूंस (Brunhes) अपनी पुस्तक Human Geography में लिखते है–

"We must add to the group of material forces whose incessant interplay we have seen, this new force, 'human activity'; which is not only a material thing, but which also expresses itself through material effects."

अर्थात् "भौतिक शक्तियों के समूह, जिनकी निरन्तर अन्तर क्रिया हम देख चुके हैं, में एक नवीन शक्ति 'मानव क्रिया' जोड़नी होगी; जो न केवल एक भौतिक वस्तु है अपितु स्वयं को भौतिक प्रभावों के रूप में प्रदर्शित भी करती है।" ब्रूंस ने मानव के कार्य को प्रमुखता प्रदान की। उसके अनुसार मानव एक सक्रिय शक्ति है, जो अपने पर्यावरण के साथ प्रतिक्रिया करता है और उसे परिवर्तित कर देता है।

बोमेन (Bowman) ने अपनी पुस्तक Geography and the Social Sciences में सम्भववादी विचारधारा का पुरजोर समर्थन किया। उनके अनुसार–

"Earth fact do not determine the form and nature of human society in development. They condition it. New earth facts are continually being discovered and old facts given new significance as human knowledge thought and social action develop. The reactions are reciprocal."

अर्थात् 'पृथ्वी के तथ्य विकास में मानव समाज के स्वरूप एवं प्रकृति को निश्चित नहीं करते । वे परिस्थिति स्वरूप हैं। जैसे–जैसे मानव के ज्ञान, चिन्तन एंव सामाजिक क्रियाकलापों का विकास हो रहा है, वैसे–वैसे पृथ्वी के नवीन तथ्य खोजे जा रहे है तथा पुराने तथ्यों को नया महत्व दिया जा रहा है। यह प्रतिक्रियाएं पारस्परिक हैं।'

टेलर (Taylor) ने सम्भववादी विचारधारा की समालोचना करते हुए लिखा है कि प्रकृति मानव को किसी एक रास्ते पर नहीं ले जाती, अपितु वह उसे कईं अवसर प्रदान करती है जिनमें से किसी का भी चुनाव करने के लिए मानव स्वतंत्र हैं।

अमेरिकी भूगोलवेत्ता कार्ल सावर (Carl Sauer) भी सम्भवाद के समर्थक थे। उनके अनुसार मानव ने अपने कौशल एवं सामाजिक तकनीकी के द्वारा पृथ्वी के धरातल पर व्यापक रूपान्तरणों के द्वारा सांस्कृतिक भू–दृश्यों का निर्माण किया है। भूतल पर मानवीय क्रियाकलापों का क्षेत्र इतना व्यापक है कि सम्भवत: आज कोई भी क्षेत्र मानव द्वारा किये गये परिवर्तनों से अछूता नहीं है।

उपरोक्त विद्वानों के अतिरिक्त डिमोजिया, ब्लेचार्ड हेटनर व किरचॉफ ने भी मानव को सर्वोपरि स्वीकारते हुए संभवादी विचारधारा को पुष्ट किया।

2.2.2 संभववाद का मूल्यांकन सम्बन्ध:

नियतिवाद के समान संभववाद भी वस्तुतः एकतरफा विवेचन था। मानव की क्रियाएं एवं क्षमताएं महत्वपूर्ण है। लेकिन वो पूर्णरूपेण प्राकृतिक पर्यावरण के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकता। बोमैन के अनुसार –

"While the physical laws to which mankind responds are available in their application and degree of effect, yet this is also true that all man everywhere are affected to some degree by physical conditions."

सीमांतीय पर्यावरणीय क्षेत्र जैसे–विषवत् रेखीय वन क्षेत्र गर्म एवं ठंडे मरूस्थल, अतिशीत क्षेत्र आदि में मानवीय प्रयास बहुत सीमित एवं संकुचित हो जाते हैं।

ग्रिफिथ टेलर ने भूगोल में संभववादी अवधारणा पर टिप्पणी करते हुए लिखा कि भूगोल का उद्देश्य प्राकृतिक पर्यावरण और उसके मानव पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है, न कि प्रकृति की योजनाओं को स्पष्ट करना।

फेब्बरे ने भी स्वीकार किया कि मानव चाहें जिस रूप में प्रयास कर ले, वह प्राकृतिक परिवेश से स्वतंत्र नहीं हो पाता। वर्तमान युग में जबकि अत्यधिक प्रगति हो गई है और मनुष्य प्रकृति पर विजय का दावा करता है फिर भी विश्व के विशाल क्षेत्र मानव रहित इसलिए हैं क्योंकि वहां का पर्यावरण अनुकूल नहीं हैं।

2.4 नव–निश्चयवाद (Neo–determinism)

मानव– पर्यावरण अंर्न्तसम्बंधो को व्यक्त करने हेतु उपरोक्त वर्णित नियतिवाद एवं संभववादी विचारधाराएं अतिवादी एवं एकांगी होने के कारण उनके स्थान पर एक मध्यममार्गी विचारधारा नव–निश्चयवाद का विकास हुआ। नव–निश्चयवाद की संकल्पना ग्रिफिथ टेलर (1880–1963) द्वारा प्रस्तुत की गई। टेलर ने इसे "Stop–and–go determinism" (रूको और जाओ नियतिवाद) कहा । टेलर के अनुसार न तो प्रकृति का मानव पर पूर्ण नियंत्रण है और न ही मानव प्रकृति का विजेता है। दोनों का एक–दूसरे से क्रियात्मक संबंध है। प्रगति हेतु मानव के लिए यह आवश्यक है कि वह प्रकृति से सहयोग प्राप्त करे। टेलर के अनुसार –

“Man is able to accelerate, slow or stop the progress of a country’s development. But he should not, if he is wise, depart from the direction as indicated by nature environment.”

अर्थात् मनुष्य एक देश के विकास की गति को तेज कर सकता है, मद कर सकता है या रोक सकता है लेकिन उसे पर्यावरण के दिशा–निर्देश की अवलेहना नहीं करनी चाहिये। विश्व के साधन सम्पन्न क्षेत्रों में जीवन यापन के लिए अनेक सम्भावनाएं हो सकती है, परन्तु पृथ्वी के विशाल भू–भागों में प्रकृति स्पष्ट बोलती है। (अर्थात् कड़े प्राकृतिक नियंत्रण हैं) उनके अनुसार–

“Man is like the traffic–controller in a large city, who alters the rate but not the direction of progress, and perhaps the pharse “stop–and–go determinism” express succinctly the writers Geography Philosophy.”

अर्थात मनुष्य की स्थिति एक बड़े शहर के नियंत्रक की है जो गति को नियंत्रित कर सकता है लेकिन दिशा को नहीं।

लेव्थ्वेट (Lewthwaite) के अनुसार–

“Determinism and possibilism are the two ends of spectrum..... several other models can be set at stages along the spectrum to generalize about the working of environment determinism at different times in different places on different people.....The appropriate quary to be placed against a conclusion is not ‘;s this possibilism’ or ‘is this determinism’ but ‘is this true’.”

अर्थात् 'निश्चयवाद और सम्भववाद मानावली (Spectrum) के दो सिरे हैं और विभिन्न देश काल तथा विभिन्न लोगों पर पर्यावरण की क्रियाशीलता के सामान्यीकरण हेतु कई मॉडल तैयार किये जा सकते हैं, परन्तु निष्कर्षो के समक्ष सार्थक जिज्ञासा यह नहीं है कि यह सम्भववाद है या निश्चयवाद बल्कि यह सत्य है।'

मार्टिन (Martin) के अनुसार भौतिक परिवेश की क्रियाओं का प्रभाव मानव के मस्तिष्क और अन्ततः उसकी क्रियाओं पर पड़ता है। प्रत्येक कारण का प्रभाव तथा प्रत्येक प्रभाव के पीछे कारण होता है। मानव और प्रकृति के बीच अन्तर्क्रिया होने से परिवर्तन आता है। अतः मानव स्वेच्छाचारी नहीं हैं।

2.5 संभाव्यवाद (Probailism)

स्पेट (Spact,1957) ने सम्भाव्यवाद को पर्यावरण, नियतिवाद तथा अतिवादी सम्भववाद के बीच समझौते के रूप में प्रस्तुत किया। सम्भाव्यववाद के अनुसार यद्यपि भौतिक पर्यावरण मानवीय क्रियाकलापों पर सीधा नियन्त्रण नहीं रखता, परन्तु यह मानवीय क्रिया कलापों को किस रूप में प्रभावित करता है कि मानव की कुछ प्रतिक्रियाएं अन्य प्रतिक्रियाओं की अपेक्षा अधिक निश्चित हो जाती है और इस प्रकार मानवीय क्रियाकलाप प्राकृतिक पर्यावरण एवं समाज की प्रौद्योगिक क्षमता के सन्दर्भ में सामूहिक प्रतिक्रिया के रूप में होते हैं।

हैगेट (Haggett) के अनुसार –

"Probabilism is a compromise position between environment and possibilism that assings different probabilities to alternative patterns of geographic behavior in a particular location on environment."

अर्थात् संभाव्यवाद, नियतिवाद एवं संभववाद के मध्य की समन्वयन स्थिति है। एक विशेष पर्यावरण अथवा स्थिति में विभिन्न संभावनाओं के आधार पर विविध भौगोलिक प्रारूपों का विकास होता है। सम्भाव्यवद की संकल्पना ग्रिफिथ टेलर द्वारा प्रतिपादित नव–निश्चयवाद से काफी समानता रखती है।

2.6 अन्य विचार (Other Thoughts)

मानव–पर्यावरण सम्बन्धों के भौगोलिक विश्लेषण के अंतर्गत समय–समय पर कई अन्य विचार भी उभरते रहे जैसे–

2.6.1 कृतिवाद (Voluntarism)

यह विचार मानव की क्षमता एंव शक्ति को महत्व देते हुए यह स्वीकार करता है कि मनुष्य पर्यावरण को एक संभावित स्थिति तक परिवर्तित कर सकता है। प्राकृतिक पर्यावरण से समानुकूलन कर विभिन्न प्रकार से जीविकोपार्जन कर मनुष्य प्रगति करता है। साथ ही वह पर्यावरण का शोषक एवं विनाशक भी हे।

2.6.2 उपक्रमवादिता (Phenomenlogy)

यह एक दार्शनिक विचारधारा है जिसमें मनुष्य की आंतरिक इच्छा या कार्य करने की प्रवृत्ति निर्धारक भूमिका निभाती है। हैगेट के अनुसार–

"Phenomenology is an extenstential Philosophical school which admits that introspective or intuitive attempts to gain geographic knowledge are valid."

स्पष्ट है कि मानव की इच्छा एवं संकल्प व कार्य करने की प्रवृत्ति महत्वपूर्ण हैं किन्तु उसकी आवश्यक परिस्थितियाँ एक ओर पर्यावरण से तथा दूसरी ओर विज्ञान व तकनीक से प्राप्त होती है।

बोध प्रश्न–1

1. मनुष्य प्रकृति के हाथ की कठपुतली है' यह विचार किस विचारधारा से सम्बन्धित है ?

   .....

   .....

2. भूगोल में मानव–पर्यावरण सम्बन्धी विचारधारा है:

   (अ) सम्भववाद (स) नव–निश्चयवाद

   (ब) नियतिवाद (द) उपरोक्त सभी।

3. 'कोस्मोस' पुस्तक के लेखक कौन हैं?

   (अ) रिट्टर (स) अरस्तू

   (ब) हम्बोल्ट (द) बोदिन।

4. ई.सी. सेम्पल द्वारा लिखी पुस्तक का क्या नाम है ?

   .....

   .....

5. विश्व को मृदु और कठोर जलवायु कटिबन्धों में किसने विभक्त किया था ?

   (अ) हंटिंगटन (स) रेटजेल

   (ब) चार्ल्स डार्विन (द) हम्बोल्ट

6. सम्भववाद का जनक किसे कहा जाता है ?

   (अ) ब्रून्स (स) ब्लाश

   (ब) बोगेन (द) कार्ल सावर

7. नव–निश्चयवाद के प्रणेता कौन थे ?

   (अ) हेटनर (स) हैगेट

   (ब) ग्रिफिथ टेलर (द) बौमेन

8. भूगोल के मानव–पर्यावरण सम्बन्धों से सम्बन्धित मध्यममार्गी विचारधारा कौन सी हैं?

   .....

   .....

9. मानव पर्यावरण सम्बन्धों में ग्रिफिथ टेलर ने मनुष्य की तुलना किससे की है?

.....
.....

10. एन्थ्रोपोज्योग्राफी' पुस्तक का लेखक कौन हैं ?

.....
.....

2.7 सारांश (Summary)

उपर्युक्त विचारधाराएं यह परिलक्षित करती है कि पर्यावरण तथा मानव पृथक न होकर एक ही तंत्र के अंग हैं व एक–दूसरे के पूरक हैं, पर्यावरण मानवीय कृत्यों का प्रेरक है तथा मानव अनेक कृत्यों से पर्यावरण को प्रभावित करता है। अत: जब पर्यावरण में परिवर्तन होता है तो वह मानव को भी प्रभावित करता है। पर्यावरण का मानवीकरण हो तथा मानव उसके महत्व को समझे तभी सही अर्थों में विकास हो सकता है। मूनिस रजा ने लिखा है कि– "We can not think of a "non–humanised nature" and 'non–naturalised man". He (the man) alone among the known species of planet just does not adapt himself to nature but actually intersects with it, who is not only a passive element but is an active factor in the ecosystem."

2.8 शब्दावली (Glossary)

- **नियतिवाद :** प्रकृति की सार्वभौमिक सत्ता को स्वीकारने वाली विचारधारा
- **किश्वार :** कटिबंध (अरब भूगोललवेत्ताओं द्वारा प्रयुक्त शब्द)
- **अर्डकुण्डे :** रिटर द्वारा रचित ग्रन्थ
- **संभववाद :** प्रकृति पर मानवीय प्रभुत्ता को स्थापित करने वाली विचारधारा
- **"Genres de vie":** "Life Style" (जीवन शैली)
- **नव निश्चयवाद :** मानव और पर्यावरण के परस्पर क्रियात्मक अंर्तसम्बन्ध वाली मध्यमार्गी विचारधारा
- **सांस्कृतिक दृश्यभूमि :** प्राकृतिक पर्यावरण में मानव के क्रियाकलापों द्वारा परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न दृश्यावली

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Haggett, P. : **Geography–A Modern Synthesis,** Harper & Row, Lnodon, 1972.
2. Hussain, Majid : **Human Geography,** (2nd ed.) Rawat Publications, Jaipur, 1999.
3. सक्सेना, हरिमोहन : **पर्यावरण एवं परिस्थितिकी भूगोल,** राज. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,1999.

4. श्रीवास्तव, वी.के. : **पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी,** वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 1991
5. Taylor, Griffith : **Geography इन थे 20th Century,** Methuem London, 1967.

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. नियतिवाद से
2. (द)
3. (ब)
4. Influence of Geographic Environment
5. (अ)
6. (स)
7. (ब)
8. नव–निश्चयवाद
9. ट्रेफिक नियन्त्रक से
10. फ़्रेडरिक रेटजेल

2.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नियतिवाद से क्या तात्पर्य है? इसके सम्बन्ध में प्रमुख विद्वानों के विचार लिखिये।
2. नियतिवाद में मानव–पर्यावरण सम्बन्धों पर दिये गये विचारों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।
3. सम्भववादी विचारधारा का विस्तार से विवेचन कीजिये।
4. नियतिवाद एवं सम्भववाद में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
5. नव–निश्चयवाद पर टिप्पणी लिखिये तथा सम्भववाद से इसका अन्तर स्पष्ट कीजिये।
6. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिये–

(i) सम्भववाद

(ii) कृतिवाद

(iii) उपकृमवादिता

(iv) नव–निश्चयवाद

इकाई 3 : प्राकृतिक वातावरण पर मानवीय प्रभाव (Human Impact on Natural Environment)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 जलवायु पर मानवीय प्रभाव
3.3 वनस्पति पर मानवीय प्रभाव
3.4 पशुओं पर मानवीय प्रभाव
3.5 मृदा पर मानवीय प्रभाव
3.6 जल पर मानवीय प्रभाव
3.7 भू आकृतिक स्वरूप पर मानवीय प्रभाव
3.8 जैव–विविधता पर मानवीय प्रभाव
3.9 सारांश
3.10 शब्दावली
3.11 सन्दर्भ कन्द
3.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई अर्थात् प्राकृतिक वातावरण पर मानवीय प्रभाव के अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य हैं–

- जलवायु एवं वायुमंडल पर मानवीय प्रभाव का अध्ययन करना,
- वनस्पति पर मानवीय प्रभाव का अध्ययन करना,
- पशुओं पर मानवीय प्रभाव का अध्ययन करना,
- मृदा एवं जल पर मानवीय प्रभाव का अध्ययन करना,
- भूआकृतियों पर मानवीय प्रभाव का अध्ययन करना,
- जैव–विविधता पर मानवीय प्रभाव स्पष्ट करना।

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्राकृतिक वातावरण पर मानवीय गतिविधियों का अध्ययन वर्तमान में भौगोलिक अध्ययन का प्रमुख विषय है, क्योंकि मानवीय गतिविधियाँ पृथ्वीतल पर व्यापक रूप में परिवर्तन लाती है। कभी पर्यावरण अवकर्षण तो कभी पर्यावरण प्रदूषण के रूप में। पारिस्थितिक विज्ञान (Ecology) का भी आधारभूत नियम है कि " Everything is connected to everything else and that one can not change just one thing in nature. अर्थात् "सभी वस्तुएं दूसरी सभी वस्तुओं से जुड़ी हुई हैं और प्रकृति में कोई भी केवल किसी एक वस्तु को

परिवर्तित नहीं कर सकता।" उपर्युक्त अंर्तसम्बन्ध का 1864 में जार्ज पर्किस मार्श ने अपनी पुस्तक 'man and nature' में प्रस्तुत किया। ब्लाश, ब्रूंस, सेम्पल, रेटजेल, बॉरोज, सावर आदि भूगोलवेत्ताओं ने भी विस्तृत रूप में इस अंतर संबंध को प्रस्तुत किया। प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य भी जलवायु, वनस्पति, मृदा एवं भूआकृतियों पर मानवीय प्रभाव का अध्ययन करना है।

3.2 जलवायु पर मानवीय प्रभाव (Human Impact on Climate)

तेजी से बढ़ती जनसंख्या और तकनीक के लगातार विकसित होते रहने से संपूर्ण विश्व की जलवायु प्रभावित हुई है। सामान्यतः निम्न कारकों को विश्व की जलवायु को प्रभावित करने के लिए उत्तरदायी माना जाता है–

1. गैसों का उत्सर्जन
2. कार्बन–डाई–ऑक्साइड
3. मिथेन
4. क्लोरो–फूलोरो–कार्बन (CFC)
5. नाइट्रस ऑक्साइड
6. क्रिप्टॉन 85
7. सूक्ष्ममात्रिक गैसें
8. ऐरोसॉल
9. तापीय प्रभाव
10. अलबिडो अंतर
11. हिम टोपियों पर धूल का जमाव
12. वनोन्मूलन
13. चराई की अधिकता
14. अतिशय सिंचाई
15. जल योजकों (Straits) के निर्माण द्वारा महासागरीय धाराओं में परिवर्तन

औद्योगिक क्रांति के प्रारंभ से लेकर आज तक मनुष्य पृथ्वी में संग्रहित कोयले, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस का प्रयोग कर रहा है। जिनके दहन से कार्बन–डाइ–ऑक्साईड (CO_2), वाष्प, सल्फर–डाइ–ऑक्साइड (SO_2) और अन्य विभिन्न गैसें बाहर निकलती हैं। यह गैसीय उत्सर्जन वायु प्रदूषण, हरित गृह प्रभाव और भूतापीय वृद्धि का कारण बन रहा है। ऐसा अनुमान है कि 2050 ई. तक भूपटल के तापमान में 1.4 से 2.2 डिग्री सेल्सियस तक की वृद्धि हो जायेगी। विगत वर्षों में कैलोरी कार्बन (CFC) का उत्पादन तेजी से बढ़ा है। ये गैसेसमपात मंडल के ऊपर तक विसरित होती है। जहां सौर विकिरण के प्रभाव से विधटन के फलस्वरूप क्लोरीन, ओज़ोन से अभिक्रिया करके उसे नष्ट करता है। उपर्युक्त समस्त वायुमंडलीय दुष्प्रभाव के लिए मानवीय गतिविधियाँ ही उत्तरदायी है।

जलवायु पर मानवीय प्रभाव का एक प्रमुख उदाहरण 'हरित गृह प्रभाव' (Green House Effect) के रूप में देखा जा सकता है जो वर्तमान विश्व के पर्यावरणविदों के सम्मुख एक चुनौती बना हुआ है। हरित गृह प्रभाव एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कतिपय गैसों के वायु मण्डल में प्रवेश से तापमान में वृद्धि होने लगती है तथा इसी के फलस्वरूप विश्व के सामान्य तापमान में वृद्धि हो जाती है, जो एक चिन्ता का विषय है। जिन गैसों के कारण हरित गृह प्रभाव होता है उनका उत्सर्जन मानवीय क्रियाओं विशेष कर उद्योगों, वाहनों, एयर कंडीशनर, फ्रिज आदि से होता है। इन गैसों में कार्बन–डाइ–ऑक्साइड, मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, क्लोरो फ्लूरो कार्बन प्रमुख है। इन चारों गैसों के स्रोत

निम्न प्रकार से हैं : –

ग्रीन हाउस उत्पादक चार प्रमुख गैसों के स्रोत

गैस	प्राकृतिक स्रोत	मानव कृत स्त्रोत
कार्बन–डाइ–ऑक्साइड	स्थलीय जैव मण्डल	जैव ईंधन जलाने एवं महासागर (वाहनों द्वारा), सीमेंट उद्योग एवं भूमि उपयोग परिवर्तन।
मिथेन	प्राकृतिक नम भूमि	जैव ईंधन (प्राकृतिक गैस, महासागर एवं शुद्ध पेट्रोल, उद्योग, कोयला, खदान पानी की झीलें एवं कोयला जलाने से, चावल के खेत, जानवरों के अपशिष्ट, घरेलू अपशिष्ट।
नाइट्रस ऑक्साइड	महासागर	उष्णकटिबान्धीय नाइट्रोजन उर्वरक, उद्योग, मिट्टी, नम वन, सवाना, वन व घास के मैदानभूमि–शीतोशण वन व घास के उपयोग, परिवर्तन, जैव ईंधन मैदान जलाने तथा वनों की कटाई।
क्लोरो फ़्लोरो कार्बन	–	औद्योगिक घोलक सख्त एवं लचीला फोम, पॉलिमर्स, एयर कन्डीशनर आदि

उपर्युक्त गैसों के प्राकृतिक स्रोतों से हानि नहीं होती किन्तु मानवीय कृत्यों से उत्सर्जित गैसों से हरित गृह प्रभाव के कारण तापमान में वृद्धि हो रही है। अर्थात् यह जलवायु परिवर्तन का प्रमुख कारण है।

इसी प्रकार की एक अन्य विश्वव्यापी समस्या है 'ओजोन विरलता' (Depletion of Ozone Layer) अथवा ओजोन परत में छिद्र की समस्या। ओजोन समताप मण्डल (Stratosphere) में एक पतली परत के रूप में होती है जो सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों (Ultraviolet rays) से रक्षा करती है अर्थात् यह पृथ्वी के लिये एक सुरक्षा कवच का कार्य करती है, इस कारण इसका अत्यधिक महत्व है। यदि यह समाप्त हो जाय या अत्यधिक विरल हो जय तो पृथ्वीतल पर जीवन का अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है। ओज़ोन परत के विरल होने का प्रमुख कारण उद्योगो से निस्तरित होने वाली गैस एवं आँय रसायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप होने वाला प्रदूषण है। इसके लिए सर्वाधिक घातक क्लोरो–क्लोरो–कार्बन (CFC) है जो एयरकण्डीशनर, विलायकों एवं अग्निशामकों आदि से विस्तीर्ण होकर ओजोन परत को हानि पहुंचाता है। ओजोन का प्रमुख प्रभाव पृथ्वी की जलवायु पर भी पड़ता है तथा इससे हरित गृह प्रभाव प्रक्रिया तेजी से होने से तापमान में वृद्धि हो जाती है। ओजोन विरलता के लिये उत्तरदायी गैसों का उत्सर्जन विकसित देशों द्वारा अधिक किया जाता है, अत: इसे नियन्त्रित करने हेतु उचित कदम उठाने आवश्यक है।

जलवायु पर मानवीय प्रभाव का एक और उदाहरण अम्लीय वर्षा (Acid Rain) है। अम्लीय वर्षा से तात्पर्य है–जब प्राकृतिक वर्षा का जल हवा में उपस्थित कतिपय प्रदूषकों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अम्लीय हो जाता है तो उसे अम्लीय वर्षा कहते हैं। इस प्रकार के वायु प्रदूषकों में सर्वाधिक प्रभाव सल्फर और नाइट्रोजन का होता है। विशेषकर सल्फर डाइ ऑक्साइड (So_2)

तथा नाइट्रोजन के ऑक्साइड (No तथा No_2) वायु मण्डल में विभिन्न स्रोतों से प्रवेश करते हैं। सल्फर डाइ ऑक्साइड द्वारा वायु मण्डल में प्रतिक्रिया स्वरूप सल्फर डाइ ऑक्साइड तथा सल्फर ट्राइ ऑक्साइड जब वाष्प कणों से क्रिया करता है तो उससे सल्फ्यूरिक एसिड बनता है। इस प्रकार नाइट्रोजन के ऑक्साइड जब क्रिया करते हैं तो नाइट्रिक एसिड बनता है। इसका कारण पेट्रोलियम उत्पादों का प्रयोग, उद्योगों, वाहनों, तापीय विधुत गृहों आदि के द्वारा अम्लीय वर्षा का फैलाव अधिक होता जा रहा है, इससे जलवायु के साथ प्राकृतिक वनस्पति, मृदा तथा जीव–जन्तुओं पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

विश्व में वायु प्रदूषण में अत्यधिक वृद्धि हो रही है। इसका कारण मानवीय कार्यों द्वारा वायु मण्डल में अनेक प्रकार की गैसों, रसायनों तथा ऐरासॉल (वायु–विलय) का निस्तारण है। नगरीय क्षेत्रों का वायु मण्डल औद्योगिक क्रियाओं तथा वाहनों के कारण अत्यधिक प्रदूषित हो रहा है। नगरीकरण का जलवायु पर प्रभाव ताप उत्सर्जन (जिसके फलस्वरूप नगरीय क्षेत्र तापीय द्वीप' Heat Island' बन जाते हैं।) तथा स्माँग 'smog' (जिसमें धुएँ के साथ वाष्प एवं कुहरा मिश्रित होने से 'धूम कुहरा' छा जाता है।) के रूप में देखा जाता है। इसके अतिरिक्त सामान्य दृश्यता में कमी आ जाती है, तापमान, वायु की गति, सापेक्षित आर्द्रता, मेघाच्छन तथा वर्षा की मात्रा पर भी शहरीकरण का प्रभाव होता है। नगरीय वायु प्रदूषण के लिए पूर्ण रूप से मानवीय क्रियायें उत्तरदायी होती है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मानवीय क्रियाओं से पृथ्वी के वायुमण्डल की संरचना में परिवर्तन आ जाता है जो ग्लोबल वार्मिंग, ओजोन विरलता, अम्लीय वर्षा आदि के साथ सामान्य जलवायु परिवर्तन के लिये उत्तरदायी होता है।

3.3 वनस्पति पर मानवीय गतिविधियों का प्रभाव (Impact of Human Activities on Vegetation)

पर्यावरण के अन्य घटकों के अतिरिक्त मानवीय गतिविधियों का वनस्पति पर प्रभाव सर्वाधिक प्रभावी माना जाता है। निम्न आरेख वनस्पति पर मानवजनित प्रभावों को इंगित करता है–

वैस्टॉफ Westhoff (1983) ने निम्न 4 आधारों पर मानवीय गतिविधियों का वनस्पति पर प्रभाव व्यक्त किया–

(i) **प्राकृतिक (Natural):** एक दृश्यभूमि या एक पारिस्थितिक तंत्र जो मानवीय गतिविधियों से प्रभावित नहीं होता।

(ii) **उप–प्राकृतिक (Sub–Natural):** एक दृश्यभूमि या पारिस्थितिक तंत्र जो आशिक रूप से मानव द्वारा प्रभावित होता है, लेकिन फिर भी वह अपने प्राकृतिक प्रारूप से समरूपता रखता है।

(iii) **अर्द्ध–प्राकृतिक (Semi–Natural):** एक दृश्यभूमि या पारिस्थितिक तंत्र जिसमें पादप या जंतु समूह व्यापक रूप से प्राकृतिक है लेकिन उसका वानस्पतिक स्वरूप चरागाह (Moorland) के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है।

(iv) **सांस्कृतिक (Cultural):** एक दृश्यभूमि या पारिस्थितिकी तंत्र जिसमें पादप एवं जन्तु समूह अनिवार्यतः मानवीय घटकों से प्रभावित होता है।

मनुष्य कृषि या निवास हेतु भूमि प्राप्त करने के उद्देश्य से वनों को आग लगाकर साफ करता है। सभ्यता के प्रारंभिक चरण में व्यापक रूप से यह विधा अपनाई जाती थी। वर्तमान में भी आदिम जनजातियों में यह चलन में है। यद्यपि नियंत्रित दहन वन प्रबंधन का एक हिस्सा है। लेकिन अनियंत्रित दहन न केवल वनस्पति अपितु वन्य जीवों के लिए भी विनाशकारी है। इसी तरह अतिशय पशुचारण संबंधित क्षेत्र में वनस्पति का विनाश करके मरूस्थलीकरण एवं अन्य पर्यावरणीय समस्याओं का कारण बनता हैं।

प्राकृतिक वनस्पति पर मानवीय प्रभाव 'वनोन्यूलन' (Deforstation) के रूप में देखा जा सकता है। एक समय था जब पृथ्वी पर अत्यधिक बनों का विस्तार था। जैसे–जैसे मानव विकास यात्रा पर अग्रसर होता गया बनों का क्षेत्र भी सीमित होता गया। प्रारम्भ में कृषि, फिर उद्योग, अधिवासों का बसाव, परिवहन आदि के लिए वनों का विनाश करता रहा है। वनोन्मूल के प्रमुख कारण रहे–

1. कृषि हेतु
2. निर्माण कार्य हेतु
3. काष्ठ, ईंधन एवं अन्य उपयोग हेतु अर्थात् व्यापारिक कार्यों हेतु वनों की कटाई को
4. खनन द्वारा और
5. शहरीकरण के विस्तार से

विश्व में सर्वाधिक सघन वन उष्ण कटिबन्धीय वन हैं। किन्तु वर्तमान में उष्ण कटिबंधीय वनों पर संकट आया हुआ है। जिससे विश्व के पर्यावरणविद् चिंतित हैं। 1980 में उष्ण कटिबंधीय वनों के कटने का अनुमान 1.14 करोड़ हैक्टेयर प्रति वर्ष था जो वर्तमान में लगभग 2.4 करोड़ हैक्टेयर हो गया है। अनेक देश जैसे ब्राजील, कैमरून, कोस्टारिका, भारत, इण्डोनेशिया, म्यानमार, फिलिपीन्स, थाईलैण्ड, वियतनाम आदि में इसकी दर अत्यधिक है। विश्व में अब तक लगभग 32 से 35 प्रतिशत उष्ण कटिबंधीय वनों का विनाश हो चुका है। अन्य वन क्षेत्रों में भी वनोन्मूलन अत्यधिक हो रहा है। मानव की स्वार्थपरता और व्यापारीकरण के कारण जो वनों का विनाश हो रहा है उसका प्रतिकूल प्रभाव जलवायु, मृदा एवं वन्य जीवों पर प्रत्यक्ष पड़ रहा है और इससे पारिस्थितिकी असंतुलन उत्पन्न हो रहा है।

3.4 पशुओं पर मानवीय प्रभाव (Human impact on Animals)

पशुओं पर मानवीय प्रभाव को सुविधाजनक रूप से 5 वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है– पालतूकरण (Domestication), प्रसरण (Dispersal), विलुप्तिकरण (Extinction), विस्तरण (Extension) एवं संकुचन (Contraction)। उपरोक्त समस्त वर्गों में विलुप्तिकरण पशुओं के लिए सर्वाधिक घातक अवस्था है। कुछ महत्वपूर्ण वन्य प्रजातियों का विलुप्त हो जाना विश्व में गम्भीर पारिस्थितिकी समस्या का कारण बन सकता है। इस प्रकार के पतन के लिए एक ओर निर्वाह दृष्टि से या व्यापारिक दृष्टि से वन्य जीवों का शिकार करना है तो दूसरी ओर प्रदूषण पारिस्थितिकी तंत्र में और प्राकृतिक आवास में परिवर्तन भी उत्तरदायी है। उदाहरणार्थ डी.डी.टी. का प्रयोग कई महत्वपूर्ण कीड़ों, पक्षियों एवं अन्य छोटे जानवरों के विलुप्त होने का कारण बना है । प्रदूषित जल में मौजूद भारी धातुएं जैसे, मर्करी बहुत हानिकारक प्रभाव डालते हैं। इसी प्रकार तेल प्रदूषण सागरीय एवं तटीय जीव जगत के लिए घातक है। प्रवाल भित्तियाँ (coralreefs) भी प्रदूषण से प्रभावित होता है।

यद्यपि वन्य जीवों के संरक्षण के लिए अन्तर राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर कई स्वयं सेवी संस्थाएं प्रयास कर रही है। लेकिन निहित स्वार्थवश किये जा रहे शिकार समस्या को गंभीर बनाये हुए है । सबसे बड़ी समस्या विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक आवासों (Natural Habitat) के मानवीय हस्तक्षेप द्वारा समाप्त होने से उत्पन्न हुई है। जैसे–आर्द्र भूमि आवासों (Wetland Habitat) की संख्या कम होना विचारणीय तथ्य हैं। क्योंकि यह आवास विभिन्न जीवों के प्रजनन स्थल होते हैं। इसके अलावा अपवाह हेतु चैनल बनाना, खनन, भरण क्रिया जैसे कारक भी प्रभाव डालते हैं।

सारांश रूप में मानवीय प्रभाव के फलस्वरूप जीवों के विलुप्तिकरण को तीन प्रकार से समझाया जा सकता है।

1. **The blitzkrieg effect:** इसके अन्तर्गत तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या को सम्मिलित करते है। जो व्यापक रूप में शिकार करते हैं। परिणामतः: वन्य जीवों की जनसंख्या में तीव्र पतन दृष्टिगत होता है।
2. **The innovation effect:** इसके अन्तर्गत व्यवस्थित मानव जनसंख्या नई शिकार तकनीक का प्रयोग करके जन्तु समूह हो हानि पहुँचाते है।
3. **The attention effect:** इसके अन्तर्गत विलुप्तिकरण अपेक्षाकृत धीमा दिखाई देता है।

मानव द्वारा प्रयुक्त कीटनाशकों का प्रभाव

(Impact of pesticides used by Man)

3.5 मृदा पर मानवीय प्रभाव (Human Impact on Soil)

मृदा मानवीय जीवन का आधार है। नवीन तकनीकों के प्रयोग के द्वारा भूमि उपयोग प्रारूप में परिवर्तन का प्रभाव मृदा पर स्पष्टत: इंगित होता है। मुख्य रूप से मृदा में रासायनिक, संरचनात्मक एवं जल चक्रीय परिवर्तन मनुष्यकृत माने जाते हैं। इसका सर्वाधिक प्रचलित स्वरूप मृदा अपरदन है।

लवणता (salinity) यद्यपि मरूस्थलीय व अर्द्धमरूस्थलीय दोनों में एक प्राकृतिक प्रकम हैं लेकिन जब विभिन्न मानवीय कारणों से उसकी मात्रा बढ़ जाती है तो यह घातक हो जाता है जल निकालने एवं विस्तृत सिंचाई से मृदा में लवण स्तर बढ़ जाता है। बड़े–बड़े बांधों ओर अवरोधकों के निर्माण से निर्मित होने वाले जलाशयों में होने वाला वाष्पीकरण लवनणता को बढ़ाता है। तटीय क्षेत्रों में 'Over Pumping' के द्वारा लवणता की समस्या उत्पन्न होती है।

उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों (Tropics) में लेदराइट का बनना एक रासायनिक प्रक्रम है। वनों की अंधाधुंध कटाई से परोक्ष रूप से लेदराइट का स्तर बढ़ने लगता है। लेदराइट को कोढ़ की संज्ञा दी जाती है। (Laterite is a Paleological leprosy)

रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग ने भी मृदा की रासायनिक संरचना को प्रभावित किया है, मुख्य रूप से नाइट्रेट, फास्फेट एवं पोटाश का प्रयोग इसके लिए उत्तरदायी माना जाता है। कीटनाशकों का प्रयोग भी मौलिक मृदा प्रक्रियाओं को परिवर्तित करता है जैसे–

(i) कार्बनिक पदार्थों का अपघटन

(ii) नाइट्रोजन विरूपण

(iii) सल्फर विरूपण

(iv) फॉस्फेट उपलब्धता

(v) सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की उपलब्धता

(vi) मृदा एन्ताइम प्रक्रिया।

इन सबका प्रभाव मृदा की उर्वरता व उत्पादकता पर पड़ता है।

इसी तरह मृदा अपरदन (Scoial Erosion) यद्यपि एक प्राकृतिक प्रक्रिया है लेकिन ये मानवीय गतिविधियों द्वारा तीव्र हो जाती है। मेयर (Mayer,1988) ने मानवीय गतिविधियों के द्वारा तीव्र मृदा अपरदन को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार लगभग 12,000 वर्षों पूर्व जबकि कृषि का विकास अपने प्रारंभिक दौर में था से लेकर आज तक लगभग 43 लाख वर्ग किमी. कृषि भूमि मृदा अपरदन द्वारा नष्ट हो चुकी है। जो कि वर्तमान फसल भूमि का लगभग एक तिहाई है। वर्तमान में अवकर्षण के विभिन्न कारणों के फलस्वरूप प्रतिवर्ष न्यूनतम 2,00,000 वर्ग किमी. भूमि अपरदन द्वारा नष्ट हो रही है। विगत् वर्षो में निर्माण क्रियाएं, नगरीकरण, खनन, वनोन्मूलन एवं कृषि के द्वारा मृदा अपरदन बढ़ा है जिसे वनारोपण, फसल प्रबंधन, ढाल प्रवाह नियंत्रण, वायु अपरदन नियंत्रण एवं समोच्च रोपण के द्वारा संयंत्रित किया जा सकता है।

3.6 जल पर मानवीय प्रभाव (Human Impact on Water)

अपने उद्भव से लेकर आज तक मनुष्य जल का प्रयोग विभिन्न रूपों में करता आया है। प्राचीन सभ्यताएं नदी घाटियों में ही विकसित हुई हैं। मध्ययुगीन एवं वर्तमान विकास भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जल द्वारा ही है। नगरीकरण, प्रदूषण, प्रत्यक्ष प्रवाह परिवर्तन तथा जल संग्रह क्षेत्रों की विशेषताओं में रूपांतरण आदि के द्वारा मनुष्य ने जल की मात्रा एवं गुणवत्ता दोनों को ही प्रभावित किया है।

औद्योगिक प्रक्रियाओं एवं कार्बन–डाइ–ऑक्साइड (Co_2) के अधिकाधिक उत्सर्जन से पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि हो रही है, जिसका विपरीत प्रभाव पृथ्वी के ध्रुवीय एवं उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित हिमानियों (Glaciers) पर पड़ रहा है और वे तेजी से पिघलते जा रहे हैं। इसके कारण जहाँ एक ओर व्यापक रूप से औसत समुद्रतल (Mean Sea Level) में वृद्धि का अनुमान किया जा रहा है वहीं मध्य अक्षांसीय क्षेत्रों में स्थित नदियों के उद्गम स्रोत, जो हिमानियों में स्थित है, निरन्तर पीछे खिसकते जा रहे हैं और भविष्य में इन नदियों में जल उपगधता में भारी कमी हो जाने का अनुमान किया जा रहा है।

आज से संपूर्ण विश्व में सिंचाई हेतु जल उपलब्ध कराने के लिए बड़े बांधों का निर्माण किया जा रहा है। आज विश्व में 700 से भी अधिक बड़े बांध हैं जिनकी संख्या वर्ष दर वर्ष बढ़ती जा रही है। कई बड़े बांध जैसे हूवर (USA), कवि (रूस), असवान (मिस्त्र), भाखडा–नांगल, गाँधी सागर, दामोदर, रिहंद (भारत) ने स्थानीय पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय दशाओं को प्रभावित किया है। ये बाँध भू अवतलन, भूकंप, विभिन्न प्रजातियों के विलुप्तिकरण, मृदा लवणता में वृद्धि, भू जल स्तर में परिवर्तन, जलाधिक्य, वनोबूलन आदि का कारण बनते हैं।

बढ़ते नगरीकरण और औद्योगिकीकरण ने नदियों के जल में विषैले अपशिष्टों को पहुँचाकर उसकी संरचना एवं गुणवला को प्रभावित किया है। जिसका दुष्परिणाम समूचे जल चक्र में देखा जा सकता है। नगरीकरण के जल पर दुष्परिणाम विभिन्न प्रकार के रहते हैं जैसे –

1. घरों में से गंदे जल की निकासी हेतु चैनल,
2. सैप्टिक टैंक का निर्माण
3. निकटवर्ती जलधाराओं में बिना उपचारित कचरे का निस्तारण,
4. तीव्र भू अपरदन,
5. जल के उपयोग में वृद्धि।

जल सम्पूर्ण जीव जगत का आधार है अत: इसका शुद्ध होना आवश्यक है। शुद्ध जल जहाँ जीवन का स्रोत है वहीं अशुद्ध अथवा प्रदूषित जल अनेक प्रकार की बीमारियों का कारण होता है, साथ ही जल–जीवों, वनस्पति एवं जलीय पारिस्थितिकी को हानि पहुँचाता है। जल को प्रदूषित करने में मानवीय क्रियाओं की प्रमुख भूमिका है। जैसा कि गिलपिल ने लिखा है–

"The deterioration in chemical, physical and biological properties of water brought about mainly by human activates."

(Gilpil,A: Dictionary of Environment Terms, 1978, P:171)

नि:सन्देह मानवीय क्रियाएं जल प्रदूषण का प्रमुख कारण है जिससे पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। निम्नलिखित मानवीय क्रिया जल प्रदूषण के लिये उत्तरदायी हैं–

(i) घरेलू बहि: स्त्राव

(ii) वाहित मल

(iii) औद्योगिक बहि:स्त्राव

(iv) कृषि बहि स्त्राव

(v) रेडियोधर्मी अपशिष्ट द्वारा

(vi) तापीय प्रदूषण

(vii) तेलीय प्रदूषण

निरन्तर बढ़ते शहरीकरण एवं औद्योगिक विकास से जल स्रोत निरन्तर प्रदूषित हो रहे हैं। भारत ही नहीं अपितु विश्व की अधिकांश नदियों का जल प्रदूषित हो रहा है। भारत की पवित्र नदी गंगा आज मानवीय क्रियाओं से प्रदूषित हो चुकी है।

मानवीय क्रिया का प्रभाव भूमिगत जल पर हो रहा है। पेय जल हेतु एवं कृषि आदि कार्यों के लिये अत्यधिक दोहन के कारण भूमिगत जल स्तर में निरन्तर कमी आ रही है। इसके कारण क्षेत्रीय पर्यावरण प्रभावित हो रहा है। नदियों पर बनाये जा रहे बांधों का सीधा प्रभाव पर्यावरण रख पारिस्थितिकी तन्त्र पर हो रहा है। बांध बनाने से विस्तृत क्षेत्र जल मग्न हो जाता है इससे वहाँ की वनस्पति, जीव–जन्तु समाप्त हो जाते हैं। बांध से नीचे वाले भाग में नदी का पारिस्थितिकी तंत्र अपेक्षाकृत कम पानी प्राप्त होने से बदल जाता है। महासागरों में तेल टेंकरों से अनेक बार रिसाव होने या टेंकरों के टकरा जाने से सामुद्रिक जल पर तेल फैल जाता है, उससे न केवल वहाँ का पर्यावरण प्रदूषित होता है अपितु जल–जीवों एवं जलीय पादपों पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

3.7 भू–आकृतिक स्वरूप पर मानवीय प्रभाव (Human Impact on Geomorphic Forms)

मानवीय क्रियाओं का भू–आकारों तथा भू–आकारिक प्रक्रम पर भी प्रभाव पड़ता है। इसके अन्तर्गत अपक्षय, अपरदन एवं निक्षेप भी सम्मिलित हैं। अनेक मानवोद्भवी भूआकारों (Anthropogenic) का उद्भव मानवीय क्रियाओं का प्रतिफल है। इन्हें एण्ड्रू गुडी (Andrew Goudie landforms) ने निम्न प्रकार वर्णित किया है –

कुछ मानवोद्भवी भू–आकार

भू–आकार	:	**कारण**
गर्त एवं छोटे तालाब	:	खनन
ब्राँड (Bronds)	:	पीट खनन
अपशिष्टों का ढेर	:	खनन
सीढ़ियाँ (Terracing)	:	कृषि
कटक एवं नालियाँ	:	कृषि

कटाव	:	पीरवहन
कगार	:	पीरवहन, नदी एवं तट प्रबन्धन
डॉइक	:	नदी एवं तट प्रबन्धन
मोण्ड्स (Mound)	:	सुरक्षा
नहरें	:	परिवहन, सिंचाई
जलाशय	:	जल प्रबन्धन
धसके गर्त	:	खनन एवं जल निकासी

ये मानवोद्भवी भू–आकार अप्रत्यक्ष रूप से मानवीय क्रियाओं के कारण बनते हैं किन्तु धरातल पर विशिष्ट न होकर सामान्य होते हैं किन्तु ये प्राकृतिक प्रक्रम को अवश्य प्रभावित करते हैं। ये मानव द्वारा प्रौद्योगिकी के उपयोग का परिणाम होते हैं और क्षेत्रीय पर्यावरण को प्रभावित करते हैं।

मृदा जमाव (Sedimentation) में वृद्धि का कारण मानवीय क्रियाओं द्वारा अपरदन को तीव्र करना भी होता है । इसके लिये खनन की क्रिया अधिक उत्तरदायी होती है। गिलबर्ट (Gilbert) ने एक अध्ययन में स्पष्ट किया कि सियरा–निवेदा के पर्वतीय क्षेत्रों में खनन के कारण विशाल मात्रा में अपशिष्टों का जमाव नदी की घाटियों में हो गया था। इसी प्रकार अनेक नदियों के किनारों पर या उद्गम क्षेत्रों में खनन अथवा ब्लास्टिंग से नदियों के जमाव में वृद्धि हो जाती है तथा इसके प्रभाव से नदी तल का उंचा होना तथा उसके प्रवाह में भी परिवर्तन आ जाता है जो कभी –कभी बाढ़ का भी कारण बनता है।

भूमि धसाव (Ground Subsidence) अधिकांशत: प्राकृतिक कारणों से होता है किन्तु अनेक बार मानवीय क्रियायें इनमें वृद्धि कर देती है। भूमिगत क्षेत्र से तरल पदार्थ जैसे तेल, गैस तथा पानी निकालने से अथवा ठोस खनिज निकालने से भूमि धसाव हो जाता है। अनेक बार ये क्रियायें वृहत रूप में की जाती है जिससे भूमि घसान भी हो जाता है। कभी–कभी भूमि से घोलक के रूप में पदार्थ निकाले जाते हैं जैसे सल्फर, नमक आदि इनसे भी भूमि धसक जाती है। चूना प्रदेश में खनन क्रिया से घसाव की सम्भावना अधिक रहती है। पेट्रोलियम उत्खनन के क्षेत्रों में भी इस प्रकार की घटनायें होती रहती है।

हेग (Haigh,1978) ने मानवोद्भवी प्रक्रमों को दो श्रेणियों में विभक्त किया है –

(अ) प्रत्यक्ष मानवोद्भवी प्रक्रम (Direct Anthropogenic Processes)

(i) निर्माण सम्बन्धी

(ii) खुदाई एवं खनन सम्बन्धी

(iii) जलीय हस्तक्षेप जैसे बाढ़, बांध निर्माण, नहर निर्माण, तटीय संरक्षण दीवार, चैनल परिवर्तन आदि।

(ब) अप्रत्यक्ष मानवोद्भवी प्रक्रम (Indirect Anthropogenic Processes)

(i) अपरदन एवं निक्षेप में वृद्धि जो कृषि, वनोन्मूलन, सड़क निर्माण एवं नगरीकरण से होती है।

(ii) धसाव

(iii) ढाल परिवर्तन

(iv) भूकम्पीय क्रिया जो बांधों के जलाशयों के दबाव एवं भृंश में तरल पदार्थ पहुंचने पर हो सकती है।

3.8 जैव–विविधता पर मानवीय प्रभाव (Human Impact on Bio–diversity)

जैव विविधता से आशय किसी भी क्षेत्र, देश, महाद्वीप अथवा विश्व स्तर पर पाये जाने वाले जीव धारियों (जीवों तथा पौधों) की जैविकीय रचना में विविधता से हैं। प्रत्येक क्षेत्र के पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी स्वरूप में विशिष्ट प्रकार के जीव जन्तु, पादप आदि का विकास होता है और उसी के अनुसार उनकी वृद्धि एवं स्थानान्तरण होता रहता है। किन्तु यदि पारिस्थितिकी तन्त्र में बदलाव होता है अथवा पर्यावरण अवकर्षित होता है तो इनकी क्षति होने लगती है और जब अत्यधिक परिवर्तन आ जाता है तो इनकी प्रजातियाँ विलुप्त होने लग जाती है। वर्तमान विश्व में जैव विविधता पर संकट मंडरा रहा है। अनेक प्रजातियां विलुप्त हो गई है तथा अनेक संकटग्रस्त है। जैव विविधता के क्षरण के प्राकृतिक कारणों के अतिरिक्त मानवीय कारण अधिक उत्तरदायी है। जैव विविधता की घटती संख्या के लिये उत्तरदायी मानवीय कारण हैं –

1. **आवास विनाश (Habitat loss):** जो वनों के विनाश, कृषि के विस्तार, नगरीकरण, बांधों एवं नदी घाटी परियोजनाओं से बड़े–बड़े जलाशयों के निर्माण, औद्योगीकरण, सड़क एवं रेल मार्ग, खनन आदि से हो रहे हैं। प्राकृतिक आवासों के विनाश में मानव की भूमिका ही प्रमुख रही है।
2. **आवास विखण्डन :** प्राकृतिक आवास को नहरों, नदियों, रेल लाइनों, बस्तियों आदि द्वारा वन क्षेत्रों या जलीय क्षेत्रों के विखण्डन से जीव–जन्तुओं का विचरण प्रभावित होता है।
3. **प्रदूषण :** वायु, जल, भूमि एवं ध्वनि प्रदूषण जैव विविधता पर विपरीत प्रभाव डालता है। जल प्रदूषण से जलीय जीवों का विनाश सर्वाधिक हो रहा है। इसी प्रकार महासागरों में तेल फैलाव से जल जीवों का विनाश हो जाता है। कीट नाशकों के प्रयोग से अनेक सूक्ष्म जीव समाप्त हो जाते हैं। प्रदूषित जल तथा प्रदूषित वायु पशु–पक्षियों के विनाश का कारण बनती है।
4. **आखेट :** वन्य जीव–जन्तुओं, समुद्री जीवों एवं पक्षियों का आखेट वर्तमान में व्यापारिक कारणों से किया जा रहा है। यह अधिकांशतः: गैर कानूनी कार्य नियोजित ढंग से किया जाता है। आखेट जैव विविधता के लिये सबसे बड़ा खतरा है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनसे वन क्षेत्रों में शेर, चीते, हाथी आदि अनेक जीव जन्तुओं की संख्या में न केवल कमी हो रही है अपितु वे समाप्त होने के कगार पर हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण राजस्थान का अलवर जिले का सरिस्का अभ्यारण्य है जो कभी शेर (Lion) के लिये प्रसिद्व था वह टाइगर विहीन हो गया है।

अन्य कारणों में जनसंख्या वृद्धि, वनीय क्षेत्रों में अतिक्रमण, वनों की आग, जैविक संसाधनों का शोषण, जलवायु परिवर्तन एवं प्राकृतिक आपदायें हैं। तात्पर्य यह है कि मानव और उसकी

क्रियायें विश्व में जैव–विविधता के संकट के लिये उत्तरदायी है। जैव–विविधता पर्यावरण को सन्तुलित रखती है। अत: इसका संरक्षण आवश्यक है और स्वयं मानव ही इसको बचा सकता है।

बोध प्रश्न –1

1. हरित गृह प्रभाव से क्या होता है ?

   .....

   .....

2. हरित गृह प्रभाव के लिये कौन सी चार गैस उत्तरदायी हैं ?

   .....

   .....

3. ओजोन परत वायुमण्डल में कहां स्थित हे ?

   .....

   .....

4. *CFC* का पूरा नाम क्या है?

   .....

   .....

5. अम्लीय वर्षा किन क्षेत्रों में अधिक होती है ?

   (अ)तापीय विद्युत गृह क्षेत्र (ब)औद्योगिक क्षेत्र

   (स)अत्यधिक वाहनों से प्रदूषित क्षेत्र (द)उपरोक्त सभी क्षेत्रों में

6. स्मोग (Smong) में क्या मिश्रित होता है ?

7. वनोन्मूलन का कारण हैं?

   (अ)कृषि विस्तार (ब)नगरीकरण

   (स)खनन (द)उपर्युक्त सभी

8. तेलीय प्रदूषण किन क्षेत्रों में होता है ?

   (अ)हिमानी (ब)मरूस्थली

   (स)महासागरीय (द)पर्वतीय

9. जैव विविधता पर संकट का कारण हैं ?

   (अ)आवास विनाश (ब)प्रदूषण

   (स)आखेट (द)उपर्युक्त सभी

3.9 सारांश (Summary)

प्राकृतिक वातावरण सम्पूर्ण जीव–जगत का नियन्त्रक है और पृथ्वी पर जीवन को सुचारू रूप से चलाने में इसकी प्राथमिक भूमिका रहती है। दूसरी ओर मानव, प्राकृतिक वातावरण का उपयोग सभ्यता के प्रारम्भ से कर रहा है। यद्यपि प्राकृतिक वातावरण में स्वयं सन्तुलित रहने की

क्षमता होती है किन्तु यदि इसका अतिशय शोषण किया जाय अथवा प्रदूषित किया जाय तो यह असन्तुलित हो जाता है, जिससे इसको हानि पहुँचती है, जिसका प्रभाव सम्पूर्ण जीव जगत पर पड़ता है। उपर्युक्त विवरण में मानवीय क्रियाओं का प्राकृतिक पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का विवेचन किया गया है। इसके अन्तर्गत जलवायु, वनस्पति, मृदा, पशु, जल, भू–आकृति एवं जैव–विविधता पर मानवीय प्रभाव का वर्णन किया गया है। मानवीय क्रियाओं के कारण जहां वायु एवं जल प्रदूषण में निरन्तर वृद्धि हो रही है, वहीं अनेक विश्वव्यापी समस्याओं जैसे जलवायु परिवर्तन, हरित गृह प्रभाव, ओजोन विरलता, वनोन्मूलन, मृदा अपरदन आदि चिन्ता का कारण बनती जा रही है। जैव विविधता पर संकट से आज अनेक जीव–जन्तुओं एवं पादपों की प्रजातियां विलुप्त हो रही है। आवश्यकता है मानवीय क्रियाओं को सही दिशा देने की।

3.10 शब्दावली (Glossary)

- **हरित गृह प्रभाव (Green House effect)** : कतिपय गैसों (विशेषतः CO_2 के कारण पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि होना।
- **क्लोरो फूलोसे कार्बन** (CFC) : गैस जो ग्रीन हाउस प्रभाव एवं ओजोन विरलता में वृद्धि करती है ।
- **ओजोन विरलता** : ओजोन परत में ओजोन की कमी आना।
- **पराबैंगनी किरणें (Ultraviolet rays)** : सूर्य से आने वाली घातक किरणें, जिनके पृथ्वी के धरातल पर सीधे पहुँचने से जीवन खतरे में पड़ सकता है।
- **अम्लीय वर्षा (Acid Rain)** : प्राकृतिक वर्षा का जल जब हवा में उपस्थित प्रदूषकों से मिल कर अम्लीय हो जाता है।
- **अलबिडो (Albedo)** : किसी भी सतह से विकिरण उर्जा का परावर्तित भाग
- **एरोसॉल (Aerosol)** : वायु में निलम्बित (suspended) ठोस अथवा तरल सूक्ष्म कण
- **स्माँग (smog)** : धूम कोहरा
- **वनोन्मूलन (Deforestation)** : वनों का क्रमिक रूप से समाप्त होना
- **मृदा अपरदन (Soil Erosion)** : मिट्टी का कटाव
- **मनवोद्भवी भू–आकार (Anthropogenic Landforms)** : मानवीय क्रियाओं से उद्भूत भू आकार
- **जैव–विविधता (Bio–Diversity)** : जीव–जन्तुओं एवं वनस्पति की प्रजातिगत विविधता

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Goude, Andrew : **The Human Impact on the Natural Environment,** Blackwell, 2006
2. Husian, Majid : **Human Geography,** Rawat Publications, Jaipur, 1999
3. नेगी, पी.एस. : **पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण भूगोल,** रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2007

4. Saxena, H.M. : **Environmental Geography,** Rawat Publications, Jaipur, 2004

3.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. तापमान में वृद्धि
2. कार्बन डाइ ऑक्साइड, मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड और क्लोरो–फूलोरो कार्बन।
3. समताप मण्डल में
4. क्लोरो फूलोरो कार्बन
5. (द)
6. धुंआ और कुहरा
7. (द)
8. (स)
9. (द)

3.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्राकृतिक पर्यावरण पर मानवीय प्रभाव' विषय पर संक्षिप्त लेख लिखिये।
2. जलवायु एवं प्राकृतिक वनस्पति पर मानवीय प्रभावों का वर्णन कीजिये।
3. वनस्पति, मृदा एवं पशुओं पर मानवीय प्रभावों को स्पष्ट कीजिये।
4. वायु एवं जल पर मानवीय प्रभावों का वर्णन कीजिये।
5. टिप्पणी लिखिये–

   (i) जैव विविधता
   (ii) हरित गृह प्रभाव
   (iii) भू–आकृतिक स्वरूप पर मानवीय प्रभाव
   (iv) मृदा पर मानवीय प्रभाव
   (v) कीटनाशकों का पर्यावरण पर प्रभाव
   (vi) वनोन्मूलन एवं मृदा अपरदन

इकाई 4 : पर्यावरण अवकर्षण : प्रकृति और प्रकार (Environmental Degradation : Nature and Types)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 पर्यावरण अवकर्षण

4.3 पर्यावरण अवकर्षण की प्रकृति व प्रकार

4.3.1 भौतिक या प्राकृतिक

4.3.1.1 सूखा

4.3.1.2 बाढ़

4.3.1.3 मरूस्थलीकरण

4.3.1.4 मृदा अपरदन

4.3.1.5 भूकम्प

4.3.1.6 ज्वालामुखी

4.3.1.7 तूफान

4.3.1.8 दावाग्नि

4.3.2 मानवीय

4.3.2.1 उपभोगवादी संस्कृति

4.3.2.2 वन विनाश

4.3.2.3 प्राणी सम्पदा विनाश

4.3.2.4 कृषि

4.3.2.5 पशुपालन

4.3.2.6 सिंचाई

4.3.2.7 जनसंख्या वृद्धि

4.2.3.8 नगरीकरण

4.3.2.9 औद्यौगीकरण

4.3.2.10 खनन

4.3.2.11 बड़े बाँधो का निर्माण

4.3.2.12 तकनीकी विकास

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 संदर्भग्रंथ

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगें :–

- पर्यावरण अवकर्षण से अभिप्राय,
- पर्यावरण अवकर्षण की प्रक्रिया,
- उत्तरदायी कारक,
- पर्यावरण अवकर्षण के प्रकार,
- पर्यावरण अवकर्षण के प्राकृतिक कारक,
- पर्यावरण अवकर्षण के मानवजनित कारक।

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

पर्यावरण की रचना भौतिक एवं जैविक घटकों से होती है। पर्यावरण उन सभी दशाओं का योग है, जो कि समस्त जीवधारियों के जीवन और विकास को प्रभावित करता है। पर्यावरण के विभिन्न घटक परस्पर अन्योन्याश्रित रहकर समाकलित होते हैं। इन घटकों का पर्यावरणीय तंत्र में सदैव निश्चित संतुलन बना रहता है। प्रकृति के किसी भी एक घटक में होने वाला परिवर्तन अन्य घटकों को प्रभावित करता है। एक सीमा तक पर्यावरण तंत्र में होने वाले असंतुलन की क्षतिपूर्ति प्रकृति द्वारा स्वतः हो जाती है, किन्तु अधिक परिवर्तन होने की स्थिति में संपूर्ण पर्यावरण असंतुलिन होने लगता है।

मानव पर्यावरण का अभिन्न अंग है। अपने जन्म के साथ ही मानव प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करने लगा। मानव के विकास के साथ ही यह उपयोग बढ़ता गया। औद्योगिक तथा तकनीकि विकास के साथ होने वाले अत्यधिक दोहन से पर्यावरण असंतुलन की समस्या उत्पन्न हो गयी ।

4.2 पर्यावरण अवकर्षण

पर्यावरण अवकर्षण, पर्यावरण ह्रास, पर्यावरण अपकर्षण, पर्यावरण अवनयन, पर्यावरण निमीकरण आदि शब्दावलियों का प्रयोग समान अर्थों में किया जाता है। अवकर्षण या निम्नीकरण (Degradation) शब्द का प्रयोग भूगोल में प्रारम्भ से ही स्थलाकृतियों के संदर्भ में किया जाता रहा है। इससे अभिप्राय भौतिक प्रक्रमों द्वारा भूदृश्य का सामान्यतः: निम्नीकरण होना है। पर्यावरण के संदर्भ में इससे अभिप्राय किसी क्षेत्र में पर्यावरण विनाश की ऐसी प्रक्रिया से है, जिसमें भौतिक वातावरण के एक या अधिक तत्वों की भौतिक प्रकृति में ह्रास हो जाता है।

जब प्राकृतिक या मानवीय कारणों से पर्यावरण के किसी भी घटक के अनुपात या गुणवत्ता में परिवर्तन आता है, तो वह अपने भौतिक गुणों के विपरीत प्रभाव डालने लगता है। पर्यावरण की इसी परिवर्तित स्थिति को पर्यावरण अवकर्षण कहा जाता है। अन्य शब्दों में मानवीय क्रियाकलाप द्वारा पर्यावरण की आधारभूत संरचना में प्रतिकूल परिवर्तनों के कारण पर्यावरण की गुणवत्ता में इस सीमा तक ह्रास हो जाना कि जीव–जगत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है।

पर्यावरण अवकर्षण के कारण पारिस्थितिक असंतुलन या पारिस्थितिक संकट उत्पन्न हो जाता है।

4.3 पर्यावरण अवकर्षण की प्रकृति व प्रकार

प्रकृति में पर्यावरण अवकर्षण विभिन्न स्वरूपों में परिलक्षित होता है। कहीं पर यह प्राकृतिक एवं मानवीय कारकों के सामूहिक प्रभाव का परिणाम होता हैं, तो कही मानवकृत या प्रकृतिजन्य होता हैं तथा परस्पर प्रभावित करते हैं। अध्ययन की दृष्टि से पर्यावरण अवकर्षण के दो प्रकार किये जा सकते है– प्राकृतिक तथा मानवीय अवकर्षण।

4.3.1 भौतिक या प्राकृतिक

प्रकृति की अनेक क्रियायें या भौतिक प्रक्रम पर्यावरण अवकर्षण का कारण बनती है। यद्यपि प्राकृतिक कारकों, विशेषकर चरम घटनाओं द्वारा भी प्राकृतिक पर्यावरण की संरचना में परिवर्तन होते हैं, किन्तु सामान्यत: इनका प्रकृति द्वारा ही प्रतिसंतुलन हो जाता है। पर्यावरण अवकर्षण उत्पन्न करने वाली इन गतिविधियों से अनेक बार विश्वव्यापी परिवर्तन हो जाते हैं। प्रकृति की इन क्रियाओं को प्राकृतिक प्रकोप, आपदा या आघात कहा जाता है। यद्यपि पृथ्वी पर प्राकृतिक प्रकोपों का सिलसिला अनादिकाल से चला आया है, किन्तु वर्तमान में इनकी आवृति ,प्रभाव विस्तार व सघनता में वृद्धि हुयी है। इनके कारण जीव जगत संकट में पड़ जाता है तथा अपार हानि होती है। पर्यावरण अवकर्षण के लिए उत्तरदायी प्राकृतिक गतिविधियों में सूखा, बाढ़, भूकम्प ज्वालामुखी, अपरदन, चक्रवात, दावाग्नि, मरूस्थलीकरण आदि सम्मिलित है।

4.3.1.1 सूखा

पृथ्वी पर जल जीवन का आधार है। जल की प्राप्ति मुख्यत: वर्षा से होती है। वर्षा से वायुमण्डल तथा मृदा की नमी बनी रहती है, सतही व भू–गर्भिक जल स्रोतों को जल की आपूर्ति होती है। समस्त जीवधारियों की जैविक क्रियाएं जल की उपस्थिति में ही सम्पन्न होती है। अल्प वर्षा सूखे का कारण बनती है। सूखा (Drougth) एक प्राकृतिक आपदा है। मौसम विभाग के अनुसार जब किसी क्षेत्र में वर्षा सामान्य से 26 से 50 प्रतिशत कम होती है, तो सामान्य सूखा कहते हैं तथा इससे भी कम वर्षा होने पर भयकर सूखा या अकाल कहते हैं। किसी क्षेत्र में सूखे की पुनरावृति होने पर इसकी भयावहता बढ़ जाती है।

सूखा व अकाल के तात्कालिक व दूरगामी प्रभाव पड़ते हैं। अनावृष्टि के कारण सतही एवं भूगर्भिक जल का अभाव हो जाता है। वनस्पति व प्राणियों का अस्तित्व संकट में पड़ जाता है । कृषि कार्य सम्भव नहीं होता है। भूख व प्यास से प्राणी मरने लगते हैं। आर्थिक विकास की गति अवरूद्ध हो जाती है। इसमें लोखों लोग व पशु, भूख व प्यास से तड़प–तड़प कर मर जाते हैं। अनाज, जल व चारे की एक साथ कमी होने पर इसे 'त्रिकाल' की सज्ञा दी जाती है।

सम्पूर्ण विश्व के 25 प्रतिशत भाग प्राय: सूखे की चपेट में रहते हैं। 20वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में इथियोपिया सहित अफ्रीका के कुछ भागों में पड़े भीषण अकाल में लाखों लोगों की मृत्यु हो गई। भारत में वर्षा की अनिश्चितता के कारण प्रत्येक वर्ष देश के किसी न किसी भाग में अकाल व सूखे की आपदा आ जाती है। राजस्थान अकाल व सूखे से सर्वाधिक प्रभावित होने वाला राज्य है।

सूखे व अकाल के लिए प्राकृतिक कारकों के साथ ही कुछ सीमा तक मानवीय क्रिया कलाप भी उत्तरदायी हैं। इनमें वनों का विनाश, भूमिगत जल स्त्रोतों का अत्यधिक दोहन, सतही जल के प्रबन्धन का अभाव, अनियन्त्रित पशुचारण, खनन, प्रदूषण आदि सम्मिलित हैं।

4.3.1.2 बाढ़

बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदा का सम्बन्ध अतिवृष्टि से है। जब अत्यधिक वर्षा के कारण जल अपने प्रवाह मार्ग जैसे नदी, नाला आदि में नहीं बहकर तटबन्धों को तोड़ता हुआ विस्तृत भू–भाग को जल मग्न कर देता है, उसे बाढ़ कहते है। नदियों के मार्ग परिवर्तन के कारण बाढ़ों से अत्यधिक हानि होती है। अगस्त 2008 में कोसी नदी के मार्ग बदलने से बिहार में बाढ़ से भयंकर तबाही हुई है। विश्व का 3.51 प्रतिशत भू–भाग बाढ़ ग्रस्त क्षेत्र है, जहां 19.5 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती हैं या बाढ़ से प्रभावित होती है। बाढ़ से पर्यावरण को क्षति पहुंचती है। मृदा अपरदन अधिक होता है। जल प्लावित क्षेत्रों में वनस्पति व प्राणियों को भी हानि होती है। प्रतिवर्ष बाढ़ से अधिवासों, सड़कों, रेलमार्गों, पुलों व फसलों को हानि होती है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में महामारियां तेजी से फैलती है।

बाढ़ द्वारा प्रभावित क्षेत्र विश्वव्यापी है। मिसीसिपी–मिसौरी, यांग्टीसीक्यांग, इरावदी, नाइजर, सिन्धु, दजला, फरात, ब्रह्मपुत्र आदि नदियों में प्रतिवर्ष भयंकर बाढ़ आती है। सामान्यत: नदियों के निचले मैदानों व डेल्टा प्रदेश में बाढ़ का प्रकोप अधिक रहता है। अल्प समय में अधिक वर्षा के कारण मानसूनी जलवायु प्रदेशों में बाढ़ की समस्या अधिक रहती है। बांग्लादेश का अधिकांश धरातल निम्न होने के कारण प्रतिवर्ष ही बाढ़ग्रस्त रहता है। भारत भी विश्व के ऐसे देशों में सम्मिलित है, जहां प्रतिवर्ष किसी न किसी भाग में बाढ़ आती है। असम, पश्चिमी बंगाल, बिहार व उत्तर प्रदेश राज्यों में गंगा–यमुना व ब्रह्मपुत्र नदी तन्त्रों से प्रतिवर्ष बाढ़ आती है। घाघरा, गण्डक, कोसी, सोन व दामोदर नदियां अपनी भीषण बाढ़ों के लिए जानी जाती है।

बाढ़ एक प्राकृतिक प्रकोप है, जिसके लिए भारी व असमान वर्षा, हिमखण्डों का पिघलना, अपरदित मिट्टी का गाद के रूप में नदी तलहटी में जमाव, नदियों के घुमावदार मोड़, भूकम्प आदि कारक उत्तरदायी है। किन्तु यह एक मानवजन्य संकट भी है। इसके लिए मानव द्वारा नदियों के मार्ग में निर्माण कार्य, वनों की कटाई, तटबन्धों का निर्माण आदि कारक भी उत्तरदायी हैं।

4.3.1.3 मरूस्थलीकरण

मरूस्थलीकरण भूमि के अनुपजाऊ हो जाने की ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें जलवायु परिवर्तन तथा मानवीय क्रिया कलापों से उपजाऊ एवं अमरूस्थली भूमि मरूस्थल में परिवर्तित हो जाती है। मरूस्थलीकरण की प्रक्रिया से भूमि की उत्पादन क्षमता में ह्रास होता है। पर्याप्त नमी के अभाव में इन क्षेत्रों में वनस्पति लगभग अनुपस्थित रहती है। वायु द्वारा निरन्तर अपरदन होता रहता है । भूमि की लवणता बढ़ती जाती है। मृदा में लूमस की मात्रा नगण्य हो जाती है तथा मृदा की जलधारण क्षमता बहुत कम रह जाती है। अनेक ऐसे मरूस्थली क्षेत्र हैं जो किसी समय अनाच्छादित थे। उदाहरणार्थ, दजला व फरात नदी घाटियों का क्षेत्र। थार का मरूस्थल भी वैदिक काल में सरस्वती नदी का प्रभाव क्षेत्र था।

विश्व के लगभग एक तिहाई क्षेत्र पर मरूस्थलों का विस्तार है। सहारा, कालाहारी, अरब, थार, गोबी, ऑस्ट्रेलिया, अटाकामा, तकला–मकन, नामिब, सोमाली आदि प्रमुख मरूस्थल हैं जो प्राकृतिक एवं मानवीय कारणों से फैलते जा रहे हैं। भारत के 12.13 प्रतिशत भू भाग शुष्क मरूस्थल तथा 29.17 प्रतिशत भाग पर अर्द्धशुष्क मरूस्थल है। थार का मरूस्थल इनमें सबसे बड़ा है। उड़ते रेतीले टीले, धूल भरी आँधियाँ, बहुत कम वर्षा, झुलसाने वाली गर्मी तथा वनस्पति का अभाव थार मरूस्थल पर्यावरण की विशेषता है। मरूस्थलीकरण की प्रक्रिया के कारण इसके उत्तरी पूर्वी दिशा में बढ़ने के अनेक प्रमाण मिले हैं। वायु के द्वारा बालू के नवीन क्षेत्रों में जमाव, अत्यधिक पशुचारण, वन विनाश तथा जलवायु परिवर्तन के कारण इसका प्रसार हो रहा है।

मरूस्थलीकरण सम्पूर्ण विश्व में पर्यावरण की प्रमुख समस्या है। इसके लिए अनेक प्राकृतिक व मानवीय कारक उत्तरदायी हैं। कम वर्षा, भूमि एवं जल का खारापन, जलवायु परिवर्तन, वनों का विनाश, अनियन्त्रित पशुचारण, खनन गतिविधियां, मृदा अपरदन, औद्योगिक प्रदूषण, आणविक परीक्षण आदि इनमें प्रमुख है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की रिपोर्ट के अनुसार मानवीय कारणों से विश्व का 1 करोड़ 530 लाख वर्ग किमी. क्षेत्र मरूस्थल में परिवर्तित हो गया है।

4.3.1.4 मृदा अपरदन

भूपटल की ऊपरी सतह को मृदा कहते हैं। प्राकृतिक संसाधनों में मृदा अत्यधिक महत्वपूर्ण है। प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से समस्त जीवधारी मृदा पर निर्भर है। मानव सभ्यता का विकास सर्वप्रथम उपजाऊ मृदा वाले क्षेत्रों में हुआ था आज विश्व के सभी भागों में मृदा अपरदन की समस्या दिखाई देती है। प्राकृतिक कारकों (जैसे वर्षा, वायु अथवा हिम) द्वारा मृदा–कटाव, जो मृदा निर्माण प्रक्रमों की अपेक्षा तीव्र होता है, मृदा अपरदन कहलाता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें मिट्टी के कण विभिन्न कारणों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाए जाते हैं। एक सीमा तक मृदा अपरदन से पर्यावरण पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है, किन्तु अपरदन की तीव्रता से पर्यावरण हास होने लगता है। पारिस्थितिक तन्त्र के निर्माण में मृदा आधार तत्व के रूप में होती है। मृदा पर वनस्पति विकसित होती है तथा वनस्पति पर विभिन्न जीव जन्तु निर्भर है। मृदा की गुणवत्ता उसमें निहित जीवाश्म, खनिज लवण तथा जल की मात्रा पर निर्भर होती है।

मृदा अपरदन के लिए उत्तरदायी कारकों में प्राकृतिक एवं मानवीय दोनों ही कारक सम्मिलित हैं। इनमे मृदा की संरचना, नदी मार्ग परिवर्तन, ढाल की बनावट, वर्षा का वेग, वनस्पति विनाश, कृषि पद्धतियां, पशुचारण, सड़क तथा अन्य निर्माण कार्य, खनन इत्यादि प्रमुख हैं। मृदा अपरदन के लिए उत्तरदायी भौगोलिक कारकों में वायु, हिमानी तथा जल सम्मिलित हैं। वायु द्वारा मृदा अपरदन शुष्क तथा अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में अधिक होता है। हिमानी द्वारा अपरदन मात्र हिमाच्छादित क्षेत्रों तक ही सीमित रहता है। जल द्वारा मृदा का अपरदन सर्वाधिक हानिकारक तथा व्यापक होता है। मृदा अपरदन का प्रभाव उन क्षेत्रों में अधिक है, जहां ढाल की तीव्रता, वर्षा की अधिकता तथा वनस्पति की कमी पाई जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका का उत्तरी व पश्चिमी भाग, मेक्सिको, उत्तर पूर्वी ब्राजील, उत्तरी अफ्रीका, बोत्सवाना, नामीबिया, मध्य पूर्व,

मध्य एशिया, मंगोलिया, चीन में यांग्टीसी क्षेत्र, बलूचिस्तान, आस्ट्रेलिया आदि मृदा अपरदन से अत्यधिक प्रभावित क्षेत्र हैं। भारत में हिमालय क्षेत्र, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश व महाराष्ट्र राज्यों में मृदा अपरदन की गम्भीर समस्या है।

मृदा अपरदन पर्यावरण हास का प्रमुख कारण है। इसके अनेक दुष्परिणाम देखने को मिलते हैं। मृदा अपरदन से भूमि की उर्वरता घट जाती है। धरातल पर गर्त, नालियां तथा बीहड़ बन जाने से भूमि बंजर होने लगती है। रेतीले प्रदेशों का तेजी से विस्तार होता है। बाढ़ व सूखे के प्रकोप में वृद्धि होती है। झीलों व बांधों में गाद भरने से इनकी आयु घटती है। वनस्पति आवरण समाप्त होता जाता है तथा वन्य प्राणियों की संख्या घटती जाती है। इससे भूस्खलन भी बढ़ते है। उपजाऊ मृदा के अभाव में कृषि उत्पादन में कमी आती है व खाद्यान्न संकट उत्पन्न होता है। इन्ही दुष्परिणामों के कारण विद्वानों ने मृदा अपरदन को "रेंगती हुई मृत्यु" कहा है।

4.3.1.5 भूकम्प

भूकम्प ऐसी विनाशकारी एवं आकस्मिक प्राकृतिक घटना है, जिसके आगे आज भी मानव तथा विज्ञान असहाय है। यकायक घटने वाली इस प्राकृतिक आपदा से अत्यधिक विनाश होता है। जहां ज्वालामुखी का प्रभाव मात्र घटना स्थल के आस–पास ही रहता है, वहीं भूकम्पीय तरंगों का घातक प्रभाव हजारों वर्ग किमी. तक आंका गया है। भूकम्प के झटकों से कुछ ही क्षणों में लाखों प्राणी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। विश्व में प्राकृतिक प्रकोपों से मरने वालों में 13 प्रतिशत मौतें भूकम्प से होती हैं। यूनेस्को की एक रिपोर्ट के अनुसार प्रति वर्ष औसत 10,000 लोग भूकम्प से मरते हैं। भूकम्प के प्रभाव से समुद्र में उठने वाली सुनामी लहरों से तटवर्ती भागों में अपार जन धन की हानि होती है। सघन जनसंख्या वाले क्षेत्रों में भूकम्प से सर्वाधिक विनाश होता है। भूकम्पीय झटकों से भवन, रेलमार्ग, सड़क, पुल, बांध व कारखानों को हानि पहुंचती है। भूकम्पीय कम्पनों से धरातल के उत्थान, अवतलन, दरार पड़ना तथा भूस्खलन की घटनाएं होती हैं। घरों, कारखानों व खानों में कभी–कभी इनके कारण आग लगने से भीषण अग्निकाण्ड हो जाते हैं। इस प्रकार भूकम्प से पर्यावरण को अत्यधिक हानि होती है।

भूकम्प की उत्पत्ति भूगर्भ की विवर्तनिक घटनाओं के कारण होती है, जिनमें जल वाष्प एवं गैसों की क्रियाशीलता, ज्वालामुखी क्रिया, भ्रंश एवं संपीडन, विवर्तनिक प्लेटों का टकराना आदि प्रमुख है । विगत कुछ दशकों में दृढ़ भूखण्डों में आए भूकम्पों के अध्ययन के आधार पर कुछ विद्वान मानव निर्मित विशाल बांधों से उत्पन्न जल दबाव को भी इसके लिए उत्तरदायी ठहराते हैं। भारत में महाराष्ट्र के कोयना बांध तथा मिस्त्र में आसवान बांध के निकटवर्ती क्षेत्र में आये भूकम्प इसी ओर इंगित करते है। खनन क्षेत्रों में किए जाने वाले भारी विस्फोट तथा आणविक विस्फोट भी सीमित क्षेत्र में भूकम्प के कारण बनते हैं।

विश्व में भूकम्प का प्रकोप तीन क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है– प्रशान्त महासागर का अमेरिकी व एशियाई तट, आल्पस से लेकर हिमालय तक फैली मध्य महाद्वीपीय पेटी तथा पश्चिमी द्वीप समूह के निकट मध्य अटलाण्टिक पेटी। भारत में सर्वाधिक भूकम्प हिमालय क्षेत्र में आते हैं, किन्तु कोयना, लातूर व जबलपुर के भूकम्पों के कारण पठारी भाग भी भूकम्प की दृष्टि से

संवेदनशील हो गया है। उत्तरी मैदानी भाग भूकम्प के सामान्य प्रभाव क्षेत्र में आता है। भारत में विगत दशकों में भूकम्पों की संख्या व तीव्रता में वृद्धि हुई है।

4.3.1.6 ज्वालामुखी

ज्वालामुखी एक विनाशकारी प्राकृतिक आपदा है। भूकम्प के समान ही यह भी इतनी शीघ्र एवं आकस्मिक रूप से घटती है कि भू–पृष्ठ पर तत्काल इसका विनाशकारी प्रभाव दिखाई देता है। इसमें भूगर्भ से अत्यधिक ऊंचे तापमान पर लावा, गैस, राख इत्यादि पदार्थ तीव्रगति से विस्फोट के साथ निकलते हैं। ज्वालामुखी क्रिया से जीव जन्तु, वनस्पति तथा मानव संस्थापन (भवन, सड़क, खेत, आदि) को अत्यधिक क्षति पहुँचती है। सर्वाधिक प्रदूषण ज्वालामुखी से निकलने वाले गैसीय पदार्थों से होता है। कार्बन–डाई–ऑक्साइड, मोनो–ऑक्साइड, सल्फरडाई ऑक्साइड, हाइड्रोक्लोरिन, नाइट्रोजन, अमोनिया एवं अन्य अमोनिया प्रभाव वाली जहरीली गैसें निकलकर वायुमण्डल में फैल जाती है। धुंआ तथा राख के महीन कण वातावरण में फैल जाने से दृश्यता प्रभावित होती है तथा प्राणियों के लिए सांस लेना भी कठिन हो जाता है। गैसों के प्रभाव से निकटवर्ती क्षेत्रों की वनस्पति, पशु–पक्षी एवं मानव के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। विस्फोट के कुछ समय बाद गैस व राख मिश्रित अम्लीय वर्षा से भूमि पर दलदली प्रवाह होता है, जिससे बची हुई वनस्पति भी नष्ट हो जाती है। 1902 में पश्चिमी द्वीप समूह के मारटिनीक ज्वालामुखी से निकली विषैली गैस से पारी नगर के 30,000 व्यक्ति तुरन्त मर गए तथा समस्त खाद्य पदार्थ एवं वस्तुएं कार्बन युक्त हो गई। 1783 में आइसलैण्ड के स्केप्टर जोकल ज्वालामुखी उद्गार से लगभग 10 हजार व्यक्ति 2 लाख भेड़ें, 28 हजार घोड़े व कई अन्य जन्तु मारे गए। समुद्र में ज्वालामुखी उद्गार होने पर असंख्य समुद्री जीवों की मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार ज्वालामुखी उद्गार भी पर्यावरण ह्रास का एक कारण है। ज्वालामुखी क्रिया का सम्बन्ध भूगर्भीय हलचलों से होता है। पृथ्वी के आंतरिक तापमान में वृद्धि, रेडियोधर्मी विखण्डन, जलवाष्प की उत्पति, भूकम्प इत्यादि कारणों से ज्वालामुखी विस्फोट होते हैं। विश्व में लगभग 500 जागृत ज्वालामुखी हैं। ज्वालामुखी का वितरण तीन प्रमुख पेटियों में है– प्रशान्त महासागर का तटवर्ती क्षेत्र, यूरेशिया व अफ्रीका में नवीन मोड़दार पर्वतों का क्षेत्र तथा अटलाण्टिक महासागरीय क्षेत्र। भारत में आधुनिक काल में मात्र अण्डमान–निकोबार द्वीप समूह में ही ज्वालामुखी उद्गार हुए हैं। भूकम्प के समान ज्वालामुखी क्रिया पर भी मानव का नियन्त्रण नहीं है।

4.3.1.7 तूफान

तूफान व चक्रवात जैसी आपदाओं से भी पर्यावरण को अत्यधिक हानि पहुंचती है। वायुमण्डल की सामान्य दशाओं में यकायक परिवर्तन के कारण तूफान आते हैं। इनके कारण चलने वाली प्रचण्ड हवाओं तथा भारी वर्षा के कारण बड़े पैमाने पर विनाश होता है। इन्हें विश्व के विभिन्न भागों में टोरनेडो, हरीकेन, टाइफून, साइक्लोन आदि नामों से पुकारते है। शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों से कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप, रूस, जापान, चिली, अर्जेण्टाइना व चीन में अत्यधिक हानि होती हैं। उष्ण कटिबन्धीय तूफानों से एशिया में भारत, बांग्लादेश, बर्मा, इण्डोनेशिया, मलेशिया, फिलीपीन्स आदि देशों तथा मध्य अमेरिका व द्वीप समूहों में अत्यधिक

विनाश होता है । इनके कारण समुद्री तूफान भी जन्म लेते हैं, जिससे समुद्रतटीय भागों में 25–30 किमी. भीतर तक का क्षेत्र जलमग्न हो जाता है। इससे जन–धन की अपार क्षति होती है। लवणयुक्त समुद्री जल में डूबने के कारण तटवर्ती भूमि कृषि के उपयुक्त नहीं रहती है। 1970 में बांग्लादेश में आये विश्व इतिहास के सर्वाधिक विनाशकारी चक्रवर्ती तूफान से 3 लाख लोगों की मृत्यु हुई व करोड़ों की सम्मति नष्ट हो गई। 1990 में आन्ध्र प्रदेश के तटवर्ती भाग में आए तूफान से एक हजार व्यक्ति तथा 90 हजार मवेशी मारे गए, 3 लाख लोग बेघर हुए, हजारों हेक्टेअर भूमि बंजर हो गई तथा 100 करोड़ रूपये की सम्पत्ति नष्ट हुई।

4.3.1.8 दावाग्नि

वनों में लगने वाली आग भी पर्यावरण के लिए अत्यधिक हानिकारक होती है। इसके लिए प्राकृतिक तथा मानवीय दोनों ही कारक उत्तरदायी होते हैं। दावग्नि से न केवल पेड़–पौधे व वन्य प्राणी जलते है, अपितु मृदा के सूक्ष्म जीवों की भी हानि होती है। वनों में लगने वाली आग पर नियन्त्रण करना अत्यन्त कठिन कार्य होता है, अत: कभी–कभी हजारों वर्ग किमी. वन क्षेत्र इसकी चपेट में आ जाते हैं। सूखा या अकाल पड़ने पर दावाग्नि की तीव्रता और बढ़ जाती है। इससे बड़ी मात्रा में वायु–प्रदूषण होता है। विगत वर्षो में हिमालय क्षेत्र के वनों में लगी आग से वनों का बड़ा भाग नष्ट हुआ है। 1997 में मलेशिया व इण्डोनेशिया के क्यों में भयानक आग लगी थी। वनों में लगी आग से धुंआ छा जाने के कारण वायुयानों की उड़ानें कई दिनों तक स्थगित करनी पड़ी। इस प्रकार दावाग्नि भी पर्यावरण ह्रास का एक कारण है। भारत के कुमायू–गढवाल मण्डल में 1995 में दावाग्नि के कारण 8000 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तृत वन नष्ट हो गये।

बोध प्रश्न –1

1. पर्यावरण अवकर्षण के लिये प्रचलित अन्य शब्द कौन से है ?

   .....

   .....

2. पर्यावरण की रचना किन घटकों से हुयी हैं ?

   .....

   .....

3. प्राकृतिक प्रकोप का उदाहरण दीजिये।

   .....

   .....

4. त्रिकाल किसे कहते हैं ?

   .....

   .....

5. विश्व का कितना प्रतिशत भाग प्राय: सूखे से ग्रस्त रहता हैं?

.....

.....

6. विश्व में भूकम्प का प्रकोप किन क्षेत्रों में अधिक पाया जाता हैं?

.....

.....

4.3.2 मानवीय कारक

पर्यावरण ह्रास के प्राकृतिक कारकों का प्रभाव सीमित स्तर पर होता है तथा इन्हें नियन्त्रित करना मानव के बस की बात नहीं है। किन्तु मानवीय क्रिया कलापों का प्रभाव व्यापक स्तर पर होता है । मानव अपनी भौतिक सुविधाओं व प्रगति के लिए अनेक ऐसे कार्य कर रहा है, जो पर्यावरण ह्रास के मुख्य कारण है। मानवीय क्रिया कलापों से अनेक प्राकृतिक प्रकोपों की प्रभावशीलता भी बड़ी है। मानव की इन क्रियाओं में उपभोगवादी संस्कृति, वन विनाश, वन्य जीवों का विनाश, कृषि व पशुपालन, अधिक सिंचाई, जनसंख्या वृद्धि, औद्योगीकरण, नगरीकरण, बड़े बांधो का निर्माण, खनन, ऊर्जा का अधिक उपभोग आदि सम्मिलित हैं।

4.3.2.1 उपभोगवादी संस्कृति

वर्तमान काल में उपस्थित पर्यावरण संकट मानव की उपभोगवादी या भौतिकवादी संस्कृति की देन है। मानव ने इस तथ्य को विस्मृत कर दिया है कि वह भी वनस्पति एवं जन्तुओं के समान ही प्रकृति का एक अंग है, प्रकृति का स्वामी नहीं है। मानव पर्यावरण की उपज है। पर्यावरण पर मात्र मानव का ही नहीं अपितु अन्य प्राणियों, पेड़–पौधों तथा आने वाली पीढ़ियों का भी अधिकार है। पश्चिम की भोगवादी संस्कृति के प्रभाव में अधिकाधिक सुख सुविधाएं जुटाने के लिए मानव ने प्रकृति का अविवेकपूर्ण ढंग से दोहन प्रारम्भ कर दिया। मानव प्रकृति के साथ मित्रवत सम्बन्धों के स्थान पर शत्रुतापूर्ण व्यवहार करने लगा। वह विकास की दौड़ में तथा तात्कालिक लाभों के लिए पर्यावरण का अनियन्त्रित शोषण करने लगा।

पर्यावरण पर सम्पूर्ण जीव जगत का अधिकार है। मानव ने इस तथ्य की पूर्ण उपेक्षा की है। मानव ने प्रकृति को मात्र उपभोग की वस्तु समझ लिया है। यह सोच जुडो क्रिश्चियन धार्मिक परम्परा की देन है। इस दर्शन के अनुसार प्रकृति की समस्त वस्तुएं मानव के लाभ के लिए बनाई गई हैं, तथा उन पर मनुष्य का अधिकार है। मानव को अपनी इच्छानुसार प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग करना चाहिए। सृष्टि की कोई भी चीज ऐसी नहीं है जो मनुष्य की सेवा के उद्देश्य से नहीं बनी हो। इसी सोच के कारण पर्यावरण हास की समस्या उत्पन्न हुई है।

पर्यावरण संरक्षण की भावना सनातन काल से भारतीय जीवन दर्शन व चिन्तन का केन्द्र बिन्दु रही है। आज विश्व स्तर पर इसी दर्शन की पुनर्स्थापना की महती आवश्यकता है।

4.3.2.2 वन विनाश

वन हमारे पर्यावरण के महत्वपूर्ण घटक हैं। वृक्षों की कटाई तथा अन्य कारणों से वन क्षेत्र में कमी होने को वन विनाश कहा जाता है। वन विनाश पर्यावरण हास का प्रमुख कारण हैं। आदिमकाल में पृथ्वी पर वनों का अत्यधिक विस्तार था। मानव की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति वनों से ही होती थी। पशुचारण तथा स्थायी कृषि के साथ ही वनों की कटाई प्रारम्भ हुई। जनसंख्या तथा मानव की आवश्यकताओं में वृद्धि के कारण धरातल पर वन क्षेत्र घटने लगा।

वन मात्र प्राकृतिक संसाधन ही नहीं है, अपितु जीवमण्डल के आधारभूत तत्व हैं। ये पारिस्थितिक तन्त्र के संचालन के आधार हैं। सभी प्राणियों को इनसे ऑक्सीजन की प्राप्ति होती है, जलवायु व्यवस्थित रहती है, मृदा संरक्षण होता है, भूमिगत जल में वृद्धि होती है, अनेक जीव जन्तु निवास करते हैं तथा विविध वनोत्पाद प्राप्त होते हैं।

विभिन्न कारणों से वनों का विनाश तीव्र गति से हो रहा है। विश्व में कुल वन क्षेत्र 1900 से 2000 के मध्य 700 करोड़ हेक्टेअर से घटकर 237 करोड़ हेक्टेअर रह गया। अमेजन और मध्य अमेरिका में वन विनाश चरम पर है। विश्व वन्य जीव कोष की ताजा रिपोर्ट के अनुसार अन्य देशों की तुलना में भारत में शीतोष्ण वनों का तेजी से क्षरण हो रहा है तथा अन्य वनों पर भी आबादी का दबाव बढ़ रहा है। वन विनाश के प्रमुख कारणों में जनसंख्या वृद्धि, पशु पालन, औद्योगीकरण, खनन व बड़े बांधों का निर्माण सम्मिलित है। इनके अलावा सूखा, बाढ़, ज्वालामुखी, चक्रवात आदि प्राकृतिक आपदाओं के कारण भी वनों की हानि होती है। वनों में लगने वाली आग से भी छोटी बड़ी सभी प्रकार की वनस्पति नष्ट हो जाती है।

4.3.2.3 प्राणी सम्पदा का विनाश

वनस्पति के समान ही प्राणियों का भी पारिस्थितिक तन्त्र में अत्यधिक महत्व है। यदि प्राणियों की कोई भी जाति संकटग्रस्त होती है, तो इसका प्रभाव जैव जगत के सभी घटकों पर पड़ता है। वन्य जीवों का विनाश भी पर्यावरण हास का एक कारण है। खाद्य श्रृंखला तथा ऊर्जा प्रवाह के द्वारा वनस्पति, प्राणी व मानव में गहन सम्बन्ध होता है। अनेक कीड़े–मकोड़े फफूंदों को खाकर तथा पक्षी हानिकारक कीड़े–मकोड़े खाकर पौधों की रक्षा करते हैं। विभिन्न प्राणी पौधों के प्रकीर्णन में सहायक होते हैं। वन्य प्राणियों की विभिन्न गतिविधियाँ पारिस्थितिक तन्त्र को नियमित बनाए रखती है। अत: सभी प्रकार के जीव–जन्तुओं का प्राकृतिक सन्तुलन को बनाए रखने में अपना महत्व है।

प्राणी वैज्ञानिक सर्वेक्षणों के अनुसार विश्व में लगभग 50 लाख से अधिक प्रकार के जीव जन्तु पाए जाते हैं, जिनमें से मात्र 14 लाख को ही अब तक पहचाना गया है। पर्यावरण सन्तुलन के लिए पृथ्वी पर यह जैव विविधता बने रहना आवश्यक है। अनेक कारणों से विभिन्न प्राणियों की लगभग 25 प्रतिशत जातियां संकटग्रस्त अवस्था में है। प्रकृति संरक्षण के अन्तर्राष्ट्रीय संघ के अनुसार रेड डाटा बुक में ऐसी 1000 जातियां दी गई हैं, जिनके विलुप्त होने का डर है तथा 300 से अधिक जातियां व उपजातियां लुप्त हो चुकी हैं।

अनुकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों के कारण भारत के वन्य जीवों में भी अत्यधिक विविधता पाई जाती है। किन्तु यहां प्राणियों की अनेक जातियां निरन्तर घटती जा रही हैं। राष्ट्रीय प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय के अनुसार भारत में 137 वन्य जीव विलोपशील या संकटग्रस्त अवस्था में हैं । वे जातियां जिनके तुरन्त विलुप्त होने का डर है, उनमें गेण्डा, साइबेरियन टाइगर, एशियाई चीता, लाल भेड़िया, पर्वतीय गोरिल्ला, मोर, बारहसिंगा आदि प्रमुख हैं। वन्य जीवों के विनाश के मुख्य कारणों में प्राणियों के वास स्थलों अर्थात् वनों का विनाश, कृषि क्षेत्र में वृद्धि, औद्योगीकरण, प्रदूषण, नदी घाटी योजनाएं, खनन, अवैध शिकार, वन क्षेत्रों में बढ़ता मानवीय हस्तक्षेप, दावाग्नि, बीमारियाँ तथा बाढ़, सूखा, तूफान जैसी प्राकृतिक आपदायें सम्मिलित हैं।

4.3.2.4 कृषि

पर्यावरण हास में कृषि क्षेत्र के विस्तार तथा कृत्रिम साधनों से गहन कृषि उत्पादन दोनों की भूमिका रही है। बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए प्राकृतिक घास स्थलों व वनों को साफ करके कृषि भूमि का विस्तार किया गया। दुर्गम पहाड़ी ढालों से लेकर सखी दलदली भूमियों तक कृषि भूमि प्राप्त करने के प्रयास किए गए। आधुनिक काल में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि तथा उन्नत यन्त्रों के प्रयोग ने कृषि भूमि के विस्तार को कई गुना बढ़ा दिया है। औपनिवेशिक काल में यूरोपीय लोगों द्वारा विभिन्न महाद्वीपों में बड़े पैमाने पर वाणिज्यिक फसलों की कृषि हेतु वनों को साफ किया गया। मानव के तकनीकी विकास का कृषि पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्नत बीजों, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, आदि का प्रयोग करके कृषि उत्पादन को कई गुना बढ़ाया गया। 20वीं शताब्दी में नवीन कृषि विधियों द्वारा खाद्यान्न उत्पादन में की गई इस वृद्धि को 'हरित क्रान्ति' कहा गया।

सघन कृषि तथा कृषि क्षेत्र विस्तार से अनेक पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो गईं। हरित क्रान्ति के अभीष्ट लक्ष्य खाद्यान्न में वृद्धि को तो प्राप्त कर लिया गया, किन्तु इससे पर्यावरणह्यास हुआ। वन विनाश के कारण पर्यावरण असन्तुलन उत्पन्न हुआ। रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों के अधिकाधिक प्रयोग से मृदा प्रदूषित हो गई। फलों व सब्जियों का स्वाभाविक स्वाद नष्ट हो गया । मृदा में जैविक अंशों की कमी होने से उसकी गुणवत्ता नष्ट हुई। आदिम क्षेत्रों में स्थानान्तरणशील कृषि, पहाड़ी ढालों पर कृषि तथा मरूस्थल में स्थायी टिब्बों पर कृषि से अपरदन की प्रक्रिया तीव्र हुई है।

4.3.2.5 पशु पालन

पर्यावरण ह्रास के लिए अत्यधिक पशुचारण भी उत्तरदायी है। मानव प्रारम्भ से ही दूध, मांस, खाल, ऊन आदि पदार्थों तथा कृषि व परिवहन के लिए पशु पालन करता है। पशु पालन क्षेत्रों में निरन्तर विस्तार से अनेक वन क्षेत्र चारागाह में बदल दिए गए हैं। सघन वनों के सीमावर्ती भागों में चारागाहों का विस्तार हो रहा है। उत्तरी अमेरिका व दक्षिणी अमेरिका में बड़े पैमाने पर वनों को काटकर चारागाह विकसित किए गए हैं। टर्की, यूनान, पश्चिमी एशिया, अफ्रीकी तट, भारत के हिमालय क्षेत्र व दक्षिणी पठार पर अनियन्त्रित पशुचारण से वनस्पति नष्ट हुई है तथा मृदा अपरदन बढ़ा है। संयुक्त राज्य अमेरिका, अर्जेण्टाइना, रूस, नीदरलैण्ड, डेनमार्क, ग्रेट ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि देशों में पशु पालन व्यवसाय उन्नत अवस्था में है। उन्नत नस्लों के कारण इन क्षेत्रों में पशुओं की कम संख्या से भी अधिकतम पशु उत्पाद प्राप्त किए जाते हैं। इसके विपरीत विकासशील देशों में पशुओं की उन्नत नस्लें बहुत कम हैं तथा पशुओं की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। विकासशील देशों में निरन्तर बढ़ता पशु घनत्व भी पर्यावरण हास का एक कारण है। भारत में साधारण नस्ल के पशुओं की संख्या बहुत अधिक है। विश्व की लगभग 19 प्रतिशत पशु संख्या के साथ भारत में विश्व के सर्वाधिक पशु हैं।

जनसंख्या वृद्धि की समस्या से जूझते भारत जैसे विकासशील देशों में बढ़ती हुई पशुओं की संख्या एक अन्य प्रमुख समस्या है। पशुओं की बढ़ती हुई संख्या के लिए अधिक चारा व जल प्राप्त करने हेतु पर्यावरण पर दबाव बढ़ता जा रहा है।

4.3.2.6 सिंचाई व्यवस्था

कृषि कार्यों के लिए नियमित जलापूर्ति हेतु मानव ने सिंचाई के साधनों का विकास किया। बांध बनाकर तथा नदियों से नहरें निकालकर सिंचाई करने से कृषि क्षेत्र व कृषि उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हुई। किन्तु सिंचित क्षेत्रों में जल प्रबन्धन के अभाव से लवणीकरण, क्षारीयता व जलप्लावन जैसी अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गई। उदाहरणार्थ, इन्दिरा गाँधी नहर क्षेत्र में अत्यधिक सिंचाई के कारण जलप्लावन या जलाक्रान्तता प्रमुख समस्या बन गई है, जिसे स्थानीय रूप से "सेम" की समस्या कहा जाता है। सेमग्रस्त क्षेत्रों में निचले स्थानों पर पानी भर जाता है तथा आस–पास की भूमि दलदली व क्षारीय हो जाती है। भूमि ऊसर होने लगती है। इससे सभी आर्थिक व सामाजिक क्रियाएं प्रभावित होती हैं तथा स्थानीय प्राकृतिक वनस्पति नष्ट होने लगती है। पंजाब, हरियाणा व पश्चिमी उत्तर प्रदेश के नहरी क्षेत्रों में भी मृदा की नमी में वृद्धि से अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गई है।

सिंचाई के लिए सतही जल के अलावा भूमिगत जल का दोहन भी बड़े पैमाने पर किया जाने लगा है। परिणामस्वरूप कृषि क्षेत्रों में तो वृद्धि हुई है किन्तु भूमिगत जल स्तर तीव्र गति से घटने लगा है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में अधिक जल की आवश्यकता वाली कृषि पद्धतियों के कारण जल संकट और भी तीव्र हुआ है। राजस्थान में भूमिगत जल की अत्यधिक कमी वाले बहुत बड़े भाग को भूजल विभाग द्वारा 'डार्क जोन' घोषित किया गया है। अकालों की बढ़ती आवृति ने राज्य में जलाभाव को और बढ़ा दिया है । इस प्रकार दोषपूर्ण सिंचाई प्रणाली व अत्यधिक जल दोहन कुछ क्षेत्रों में पर्यावरण हास के कारण हैं।

4.3.2.7 जनसंख्या वृद्धि

पर्यावरण हास का मूल कारण जनसंख्या वृद्धि है। विश्व की जनसंख्या को प्रथम 100 करोड़ तक पहुंचने में 33 वर्ष लगे। इस प्रकार 1960 में विश्व की जनसंख्या 300 करोड़ हो गई। अगले सौ करोड़ तक पहुंचने में मात्र 14 वर्ष लगे तथा इसके बाद 13 वर्ष लगे। 2000 में विश्व की जनसंख्या 6 अरब से अधिक हो गयी, अर्थात् अन्तिम 100 करोड़ जनसंख्या मात्र 12 वर्ष में बड़ी । इतनी तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के भोजन, आवास तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ता जा रहा है।

जनसंख्या वृद्धि का एक ओर भयावह पक्ष यह है कि अधिकांश वृद्धि आर्थिक रूप से पिछड़े देशों में हो रही है। विश्व स्तर पर जनसंख्या वृद्धि की दर 1.57 प्रतिशत है जबकि विकासशील देशों में 1.88 प्रतिशत है। भारत में जनसंख्या वृद्धि दर 1.91 प्रतिशत है। अधिक जनसंख्या वृद्धि का प्रमुख कारण उच्च जन्म–दर है। विश्व का जन्म–दर औसत 25 प्रति हजार है जबकि भारत का 29, बांग्लादेश का 31 तथा पाकिस्तान का 40 प्रति हजार है। जनसंख्या वृद्धि के कारण भूमि, खनिज, जल आदि प्राकृतिक संसाधनों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता निरन्तर घटती जा रही है। कुपोषण, भूखमरी, बेकारी, गरीबी, आवास की कमी आदि समस्याएं जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न हुई है। प्राकृतिक संसाधनों के अन्धाधुन्ध दोहन से अकाल, बाढ़ इत्यादि प्राकृतिक आपदाओं की आवृति बढ़ी है।

4.3.2.8 नगरीकरण

नगरीकरण एक विश्वव्यापी प्रक्रिया है। नगरीकरण से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं ने पर्यावरण ह्रास को प्रभावित किया है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् विश्व में नगरीकरण की गति तीव्र हो गई। रोजगार तथा अन्य सुविधाएं प्राप्त करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर जनसंख्या का तीव्र प्रवाह होने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि में विकसित देशों का योगदान अधिक रहा जबकि बीसवीं शताब्दी में विकासशील देशों का योगदान सर्वाधिक रहा है। 1960 से 1990 के मध्य नगरीय जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई। इस अवधि में यूरोप में नगरीकरण का स्तर 40 प्रतिशत से बढ़कर 73, आस्ट्रेलिया में 65 से 85, संयुक्त राज्य अमेरिका 70 से 75, पूर्व सोवियत संघ में 36 से 66, अफ्रीका में 13 से 32 तथा एशिया में 18 से बढ़कर 31 प्रतिशत हो गया। भारत में नगरीकरण का स्तर 12 प्रतिशत से बढ़कर 26 प्रतिशत हुआ। बीसवीं शताब्दी में महानगरों की जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई। 1950 में न्यूयार्क एक करोड़ से अधिक जनसंख्या वाला एक मात्र नगर था। 1990 में ऐसे नगरों की संख्या 12 तथा 2000 तक 20 हो गयी।

बढ़त नगरीकरण के कारण कृषि भूमि पर अतिक्रमण, प्रदूषण, गन्दी बस्तियां, अवशिष्ट कूड़ा. करकट का एकत्रीकरण, जल संकट, जन सुविधाओं पर दबाव आदि अनेक समस्याएं उत्पन्न हुई हैं ।

4.3.2.9 औद्योगीकरण

बढ़ते औद्योगीकरण के दुष्प्रभावों के कारण विकसित एवं विकासशील सभी देशों में पर्यावरण ह्रास हो रहा है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् पहले यूरोप में बाद में विश्व के अन्य भागों में उद्योगों की स्थापना बड़े पैमाने पर हुई। उद्योगों में कच्चे माल की आपूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का तीव्र गति से दोहन होने लगा। बढ़ते औद्योगीकरण से लोगों का जीवन स्तर तो बढ़ा किन्तु पर्यावरण को अत्यधिक हानि हुई। औद्योगीकरण से वनों का विनाश, उद्योगों से निकलने वाले हानिकारक पदार्थों से प्रदूषण, जल संकट, अति नगरीकरण आदि समस्याएं उत्पन्न हुईं। कागज, रेयन, प्लाईवुड आदि उद्योगों में कच्चे माल की आपूर्ति के लिए बड़ी मात्रा में पेड़ों की कटाई से वन क्षेत्र निरन्तर सिमटते जा रहे हैं।

औद्योगिक देश आज अनेक पर्यावरणीय कठिनाइयों से घिर गए है। इन देशों में अब विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों के कमी अनुभव की जाने लगी है, अत: अन्य देशों के संसाधनों का उपभोग करने लगे हैं। अति नगरीकरण के लिए भी औद्योगिक विकास उत्तरदायी है। औद्योगिक राष्ट्रों की अधिकांश जनसंख्या नगरों में संकेन्द्रित है। इसी कारण गन्दी बस्तियों का सर्वाधिक विस्तार औद्योगिक नगरों में हो रहा है।

विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को उन्नत तकनीक उपलब्ध नहीं कराने से दोयम दर्जे की मशीनों के कारण पर्यावरणीय समस्याएं और बढ़ी हैं। उदारीकरण के दौर में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा विकासशील देशों में पर्यावरण की उपेक्षा करते हुए अनेक उद्योगों की स्थापना की गई। औद्योगिक राष्ट्रों द्वारा प्रयुक्त ऊर्जा साधनों की बढ़ती दर के कारण एक ओर ऊर्जा संकट उत्पन्न हो रहा है, तो दूसरी ओर वायुमण्डल में कार्बनडाई ऑक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। इससे

वायुमण्डलीय तापमान की वृद्धि हो रही है तथा अनेक जीवों के लिए संकट उत्पन्न हो गया है। उद्योगों का अनियन्त्रित विकास आज पर्यावरण ह्रास का प्रमुख कारण बन गया है।

4.3.2.10 खनन

उत्खनन के कारण भी अनेक पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हुई है। औद्योगिक क्रान्ति के बाद उद्योगों में कच्चे माल तथा शक्ति संसाधनों की पूर्ति के लिए बड़े पैमाने पर खनिजों का दोहन होने लगा। आधुनिक काल में उन्नत स्वचालित मशीनों से किए जाने वाले उत्खनन से खनिज निकालने की गति तीव्र हुई है। परिणामस्वरूप खनिज भण्डार तेजी से घटते जा रहे हैं। इसी गति से खनन होता रहा तो 21वीं शताब्दी में ही अनेक खनिजों के भण्डार समाप्त हो जायेंगे।

वन क्षेत्रों में खनन से वनों का विनाश हो रहा है। खनन स्थलों पर बने विशाल गर्तों तथा मलवे के ढेर से वह भूमि सदा के लिए बंजर हो जाती है। खनन के लिए भूमि की ऊपरी परत हटाने से मृदा अपरदन बढ़ता है। खानों में किए जाने वाले विस्फोटों से भूस्खलन में वृद्धि होती है। उत्खनन से निकलने वाले धूल कणों से पर्यावरण प्रदूषित होता है। खनन की विभिन्न विधियों में 'खुला खनन' से पर्यावरण को सर्वाधिक हानि होती है। खनन क्षेत्रों में भूमिगत जल स्तर बहुत नीचे चले जाने से निकटवर्ती क्षेत्रों में जल संकट उत्पन्न हो जाता है। अधिक गहरी खदानों में काम करने वाले खनिकों का जीवन असुरक्षित होता है। भूमि धंसकने से होने वाली दुर्घटनाओं तथा खानों से निकलने वाली विषैली गैसों से जनहानि की अनेक दुर्घटनाएं होती रहती है। कोयला क्षेत्रों में लगने वाली भूमिगत आग पर नियन्त्रण करना कठिन होता है, अत: इससे निकलने वाले धुएं व तापमान में वृद्धि से पर्यावरण को अत्यधिक हानि होती है। खनन गतिविधियों के कारण निकटवर्ती वनों में निवास करने वाले प्राणियों के प्राकृतिक क्रिया कलाप भी प्रभावित होते है। इस प्रकार अनियोजित एवं अनियन्त्रित खनन भी पर्यावरण ह्रास के लिए उत्तरदायी है।

4.3.2.11 बड़े बांधों का निर्माण

सिंचाई, विद्युत इत्यादि विभिन्न उद्देश्यों के लिए नदियों पर बड़े बांधों का निर्माण किया जाता है । निसन्देह बड़े बांधों के निर्माण से आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गति प्राप्त हुई है, किन्तु इनसे अनेक पर्यावरणीय समस्याएं भी उत्पन्न हो गई हैं। पर्यावरण पर इनके दुष्प्रभावों को देखते हुए पर्यावरणविदों तथा सामाजिक संगठनों ने इनका तीव्र विरोध प्रारंभ कर दिया है। बड़े बाँधों के निर्माण से उत्पन्न समस्याओं में डूब क्षेत्र में आने वाली जनसंख्या का विस्थापन व पुनर्वास, उपजाऊ कृषि भूमि, वन तथा चारागाहों का जलमग्न होना, वन्य प्राणियों के जीवन पर संकट, जल दाब से भूकम्प की आशंका, गाद भराव से उपजाऊ मिट्टी मैदानों में नहीं पहुंचना, जल प्लावन, नहरी सिंचाई से मृदा में क्षारीयता व अम्लीयता बढ़ना, बाँध में भरे स्थिर जल से अनेक बीमारियों का फैलना, प्राकृतिक वनस्पति में परिवर्तन इत्यादि प्रमुख हैं। बांध बन जाने पर निकटवर्ती क्षेत्रों की जलवायु दशाओं में परिवर्तन से समूचे पारिस्थितिक तन्त्र में ही विसंगति आ जाती है।

बड़े बांधों से होने वाले पर्यावरण ह्रास को टिहरी व नर्मदा सागर बांधों के उदाहरणों से समझा जा सकता है। टिहरी बांध परियोजना से कुल 37,600 हेक्टेअर क्षेत्र जल प्लावित होगा, जिसमें 36,000 हेक्टेअर वन क्षेत्र तथा 1,600 हेक्टेअर कृषि भूमि है। कुल 122 गांव तथा टिहरी

कस्बा डूब क्षेत्र में आने से लगभग 1 लाख लोगों का विस्थापन हुआ है। परियोजना से 2,200 मेगावाट जल विद्युत उत्पादन के साथ ही 2.7 लाख हेक्टेअर क्षेत्र में सिंचाई होगी। इसी प्रकार नर्मदा घाटी के दो बडे बांधों नर्मदा सागर के कुल डूब क्षेत्र 13 लाख 482 हेक्टेअर में 54,066 हेक्टेअर वन क्षेत्र तथा 55,681 हेक्टेअर कृषि भूमि सम्मिलित है। दोनों बाँधों के कारण कुल 459 गांवों का विस्थापन होगा। अत: बड़े बांधो के निर्माण से पूर्व इनसे होने वाले पर्यावरण हास का भी विस्तृत मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

4.3.2.12 तकनीकी विकास

बीसवीं शताब्दी में मानव ने प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जो प्रगति की है, उसका लाभ उद्योग, कृषि, परिवहन, चिकित्सा आदि विभिन्न क्षेत्रों को प्राप्त हुआ है। किन्तु नयी तकनीक से निर्मित विभिन्न उपभोक्ता सामग्री मानव स्वास्थ्य तथा पर्यावरण पर दुष्प्रभाव डाल रही है। प्रौद्योगिकी विकास के परिणामस्वरूप प्लास्टिक, कृत्रिम रेशा, कृत्रिम रबर, कृत्रिम उर्वरक, कृत्रिम घास इत्यादि संश्लिष्ट पदार्थ दैनिक जीवन में प्रयुक्त किए जा रहें हैं। इनके प्रयोग से जहां प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव कम हुआ है, वहीं अनेक पर्यावरणीय समस्याएं भी उत्पन्न हो गई हैं। प्रकृति में अपघटन न होने के कारण प्लास्टिक के कचरे का निपटान मानव के समक्ष एक चुनौती बन गया है। एवरेस्ट से लेकर समुद्र तटों तक फैला प्लास्टिक का कचरा पर्यावरण को हानि पहुंचा रहा है। इससे प्राणियों के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। प्रशीतन उद्योग तथा वायुयानों द्वारा छोड़े जाने वाले धुएं से वायुमण्डल की ऊपरी परत को हानि पहुंच रही है। आणविक विस्फोटों व घातक हथियारों से विश्व पर्यावरण को सर्वाधिक खतरा है।

बोध प्रश्न – 2

1. वन विनाश के तीन प्रमुख कारण कौन से हैं ?

   .....

   .....

2. विलुप्त होते जा रहे प्राणियों की सूची किस बुक में मिलती है ?

   .....

   .....

3. पशुपालन की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक पशु किस देश में हैं ?

   .....

   .....

4. प्रकृति में अपघटन न होने के कारण कौन से पदार्थ का कचरा समस्या बन गया हैं ?

   .....

   .....

4.4 सारांश (Summary)

समस्त जीवमण्डल का आधार पर्यावरणीय तत्वों की गुणवत्ता है। किसी भी कारण से जब पर्यावरणीय तत्वों की गुणवत्ता में हास होता हैं तो इसके हानिकारक परिणाम सामने आते हैं।

पर्यावरण की गुणवत्ता में ह्रास को पर्यावरण अवकर्षण या अवनयन कहते हैं। इसके लिये प्राकृतिक प्रक्रम एवम् मानवीय क्रियाकलाप उत्तरदायी हैं। आज पर्यावरण अवकर्षण व पर्यावरण प्रदूषण विश्व चिन्ता का विषय है। प्राकृतिक कारणों द्वारा उत्पन्न प्रकोपों में ज्वालामुखी, भूकम्प, तूफान, दावाग्नि, बाढ़, सूखा आदि सम्मिलित हैं। प्राय: प्राकृतिक प्रकोपों का प्रभाव सीमित स्तर पर होता है तथा प्रकृति स्वयं ही समायोजित कर लेती है। इन्हें रोकना संभव भी नहीं है। दूसरी ओर मानवीय क्रियाकलापों का प्रभाव संचयी एवम् व्यापक स्तर पर होता है। आधुनिक मानव ने पर्यावरण को अत्यधिक हानि पहुँचायी है। पर्यावरण अवकर्षण के लिये उत्तरदायी मानवीय कारकों में उपभोगवादी संस्कृति, वन विनाश, वन्य जीवों का विनाश, कृषि व पशुपालन, सिंचाई प्रणाली, जनसंख्या वृद्धि, तीव्र औद्योगीकरण, नगरीकरण, ऊर्जा का अधिक उपभोग आदि सम्मिलित है।

4.5 शब्दावली (Glossary)

- **पर्यावरण अवकर्षण:** पर्यावरण के भौतिक संघटकों में प्राकृतिक एवम् मुख्यत: मानवीय क्रियाकलापों से होने वाला गुणवत्ता ह्रास।
- **जीवमण्डल :** पृथ्वी तथा वायुमण्डल का वह भाग, जहाँ सजीवों का अस्तित्व पाया जाता है।
- **सूखा :** जब किसी क्षेत्र में वर्षा सामान्य से 26 से 50 प्रतिशत कम होती है, तो उत्पन्न दशा को सूखा कहते है।
- **बाढ़ :** अतिवृष्टि के कारण उत्पन्न जलप्लावन की स्थिति।
- **मृदा अपरदन :** प्राकृतिक अथवा कृत्रिम कारकों द्वारा मृदा का विघटन एवम् परिवहन।
- **दावाग्नि :** प्राकृतिक या मानवीय कारकों से वनों में लगने वाली आग।
- **पारिस्थितिक तंत्र :** वातावरण के सभी जैविक एवम् अजैविक कारकों के एकीकरण के फलस्वरूप निर्मित तन्त्र।
- **जैव विविधता :** जीवधारियों में उपस्थित विभिन्न विषमता तथा पारिस्थितिकी जटिलता।
- **हरित क्रान्ति :** नवीन कृषि विधियों द्वारा खाद्यान्न उत्पादन में की गयी अत्यधिक वृद्धि।
- **डार्क जोन :** अतिदोहन के कारण उत्पन्न भूमिगत जल की अत्यधिक कमी वाले भाग।
- **नगरीकरण :** किसी प्रदेश की कुल जनसंख्या में नगरों में संकेन्द्रित जनसंख्या के अनुपात में वृद्धि की प्रक्रिया।

4.5 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. सिंह, सविन्द्र : **पर्यावरण भूगोल,** प्रयोग पुस्तक भवन, 1991
2. जोशी, रतन : **मानव एवं पर्यावरण,** साहित्य भवन पब्लिकेशंस, 2001
3. मामोरिया एवं जोशी: **भौतिक भूगोल,** साहित्य भवन पब्लिकेशंस, 2002
4. श्रीवास्तव, वी.के. : **पर्यावरण और पारिस्थितिकी,** वसुन्धरा प्रकाशन, 1990
5. जोशी, रतन : **नगरीय भूगोल,** राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1995
6. Haggett, P. : **Geography : A Modern Synthesis,** 1975
7. Sharma, P.D : **Ecology and Environment,** Rastogi Pub.1975

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न –1

1. पर्यावरण ह्रास, पर्यावरण अवकर्षण, पर्यावरण अवनयन, पर्यावरण निमीकरण
2. भौतिक एवम् जैविक घटक
3. भूकम्प
4. अकाल की ऐसी स्थिति जब अन्न, जल एवं चारे का अभाव हो जाये
5. 25 प्रतिशत
6. प्रशान्त तटीय क्षेत्र, आल्पस से हिमालय तक तथा पश्चिमी द्वीप समूह

बोध प्रश्न–2

1. कृषि का प्रसार, पशुपालन, खनन
2. रेड डाटा बुक
3. भारत
4. प्लास्टिक

4.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पर्यावरण अवकर्षण के लिये उत्तरदायी प्राकृतिक कारकों का वर्णन कीजिये।
2. पर्यावरण अवकर्षण को परिभाषित करते हुए मानवीय कारकों की भूमिका पर प्रकाश डालिये।

इकाई – 5 : वायु प्रदूषण : स्रोत, प्रभाव एवं नियंत्रण के उपाय (Air Pollution : Sources, Effects and Measures of Control)

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 वायु प्रदूषण अर्थ एवं परिभाषा

5.3 वायु मंडलीय संघटक

5.4 प्रमुख वायु प्रदूषक

5.5 वायु प्रदूषकों प्रकार एवं स्रोत

- 5.5.1 उत्पत्ति के स्रोत के आधार पर
- 5.5.2 रासायनिक संगठन के आधार पर
- 5.5.3 आकार एवं घनत्व के आधार पर
- 5.5.4 स्रोत के प्रकार के आधार पर

5.6 वायु प्रदूषण के प्रभाव

- 5.6.1 मानव पर प्रभाव
- 5.6.2 बच्चों पर विशेष प्रभाव
- 5.6.3 वनस्पति पर प्रभाव
- 5.6.4 जीव–जन्तुओं पर प्रभाव
- 5.6.5 पदार्थों पर प्रभाव
- 5.6.6 दृश्यता पर प्रभाव
- 5.6.7 वायुमण्डल एवं जलवायु पर प्रभाव
  - 5.6.7.1 मौसम पर प्रभाव
  - 5.6.7.2 अम्ल वर्षा
  - 5.6.7.3 हरित ग्रह प्रभाव
  - 5.6.7.4 ओजोन परत पर प्रभाव

5.7 वायु प्रदूषण के नियंत्रण के उपाय

- 5.7.1 औद्यौगिक प्रदूषण नियंत्रण
- 5.7.2 वाहनों द्वारा होने वाले वायु प्रदूषण पर नियंत्रण
- 5.7.3. अन्य प्राकृतिक एवं मानवीय कारणों से उत्पन्न होने वाले वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपाय

5.8. सारांश

5.9. शब्दावली
5.10. संदर्भ
5.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप वायु प्रदूषण के बारे में निम्न जानकारी प्राप्त कर सकेंगे :

- वायु प्रदूषकों के विभिन्न स्रोतों एवं उनकी प्रकृति के बारे में,
- वायु प्रदूषण करने वाले विभिन्न प्राकृतिक एवं मानव द्वारा उत्पन्न किए हुए कारकों को,
- ओज़ोन क्षीणता, अम्ल वर्षा, प्रकाश रासायनिक कुहरा एवं ग्रीन हाउस प्रभाव के बारे में,
- वनस्पति, जीव जन्तुओं तथा मानव पर वायु प्रदूषकों के हानिकारक प्रभाव के बारे में,
- पर्यावरण चेतना, स्वास्थ्य पर्यावरण के प्रति अभिवृति तथा समस्या के समाधानों के बारे में,

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

पृथ्वी पर समस्त प्राणियों एवं पादप समुदाय के लिए वायु एक जीवनदायी तत्व है। शुद्ध वायु स्वस्थ जीवन का आधार है। पृथ्वी पर जीवन इस वायुमण्डल के कारण ही सम्भव हो सका है। वायु के बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता है। एक व्यक्ति प्रतिदिन 22000 बार सांस लेता है, जिसके द्वारा लगभग 12–16 किलोग्राम वायु का सेवन करता है। जिसमें निहित ऑक्सीजन रूधिर संचार को बनाए रखता है।

पृथ्वी के चारों तरफ विविध गैसों, जलवाष्प और धूल कण एक आवरण के रूप में उपस्थित है, जिसे वायु मण्डल कहते हैं। इसी वायुमण्डल से हमें जीवनदायिनी गैसें प्राप्त होती है। वायुमण्डल में विद्यमान विभिन्न गैसें एक निश्चित मात्रा व अनुपात में उपलब्ध हैं। इनमें नाइट्रोजन 78 प्रतिशत ऑक्सीजन 21 प्रतिशत तथा शेष 1 प्रतिशत में आर्गन, कार्बनडाइ–ऑक्साइड, निओन, क्रिप्टान, हीलीयम, हाइड्रोजन आदि गैसें हैं। इस अनुपात को बनाऐ रखने के लिए प्रकृति स्व:नियंत्रण और स्व:शुद्धिकरण का प्रयास करती है। लेकिन जब वायुमण्डल में बाहरी स्रोतों से अवांछनीय तत्वों का सीमा से अधिक बढ़ जाने से गैसों के अनुपात में थोड़ा सा भी परिवर्तन सम्पूर्ण व्यवस्था को प्रभावित करता है। जिससे वनस्पति, जीव–जन्तुओं और मानव समुदाय पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। इन प्रभावों का अध्ययन वायु प्रदूषण के अन्तर्गत किया जाता है।

वायु प्रदूषण की प्रकृति, विस्तार तथा परिमाण कई कारकों पर निर्भर करता हैं जैसे वायुमण्डल में प्रदूषकों के बने रहने की अवधि, स्रोत, सामान्य विशेषताएं, मात्रा आदि।

वायु प्रदूषण को सहने के अतिरिक्त इसका कोई तात्कालिक विकल्प नहीं है तथा यदि आप भूखे या प्यासे हैं तो घर जाकर आप स्वच्छ भोजन एवं जल ले सकते हैं किन्तु यदि वायु प्रदूषित है तो उसी स्थान पर उसे लेने के लिए बाध्य हो जाते है। यह एक ऐसा प्रदूषण है जो अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं से बाध्य नहीं है इसीलिए ऋग्वेद में लिखा गया है कि–

ओउम वात् आ वात् भेषजं शुभों मयो

भुनो हृदे प्राण आयूंषि तारिपत्

अर्थात वायु हमें ऐसी औषधि प्रदान करे जो हमारे हृदय के लिए शान्ति कारक और आरोग्य कारक हो तथा हमारी आयु को बढ़ाये हमें प्रदूषण युक्त वायु प्राप्त नहीं हो।

5.2 वायु प्रदूषण का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Air Pollution)

वायु प्रदूषण से आशय वायु की प्राकृतिक गुणवत्ता में प्रतिकूल परिवर्तन है। वायु के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में ऐसा कोई भी ऋणात्मक परिवर्तन तथा ह्लास जिसके द्वारा स्वयं मनुष्य तथा अन्य जीव जन्तुओं के जीवन, परिस्थितियों तथा सांस्कृतिक सम्पत्ति को नुकसान पहुंचाए, वायु प्रदूषण कहलाता है।

- **पार्किन्स हेनरी के अनुसार :** जब वायुमण्डल में बाह्य स्रोतों से विविध प्रदूषक यथा धूल, गैस, दुर्गन्ध, धुन्ध, धुँआ आदि इतनी अधिक मात्रा में उपस्थित हो जाए कि उससे वायु के नैसर्गिक गुण में अन्तर आ जाए तथा उससे मानव स्वास्थ्य, सुखी जीवन और सम्पत्ति का नुकसान होने लगे और जीवन की गुणवत्ता में गिरावट आ जाए तो उसे वायु प्रदूषण कहते हैं।
- **विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार :** "वायु प्रदूषण एक ऐसी स्थिति है जिसमें बाह्य वातावरण में मनुष्य और उसके पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाले तत्व सघन रूप से एकत्रित हो जाते हैं। वायु प्रदूषण उन परिस्थितियों तक सीमित रहता है जहां बाहरी परिवेशी वायुमण्डल में दूषित पदार्थो अथवा प्रदूषकों की सान्द्रता जीवों को हानि पहुंचाने की सीमा तक बढ़ जाते है।"
- **के. कानन के अनुसार :** वायुमंडलीय संघटकों में मात्रात्मक परिवर्तन अथवा एक या अधिक प्रदूषकों का बाह्य वायुमण्डल में इतनी अवधि व मात्रा में प्रवेश कि मानव पादप तथा प्राणी जगत को हानि पहुंचाये, उसे वायु प्रदूषण कहते हैं।

सारांश रूप में कह सकते हैं कि जीवन जगत तथा उसके पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाले पदार्थों के वायुमण्डल में प्रवेश को वायु प्रदूषण कहते हैं।

5.3 वायुमण्डलीय संघटक (Atmospheric Components)

वायुमण्डल विभिन्न मात्रा में गैसों के मिश्रण का पृथ्वी पर एक आवरण है जिसमें विभिन्न प्रकार की वायु संरचना पाई जाती है। वायु प्रदूषण को समझने के लिए वायुमण्डल में उपस्थित वायु संरचना को जानना अत्यन्त आवश्यक है। स्वच्छ वायु की संरचना निम्न तालिका में दर्शायी गयी है।

तालिका –5.1 : स्वच्छ वायु की संरचना (समुद्र के निकट)

क्र.स.	गैस	प्रतिशत मात्रा
1.	नाइट्रोजन	78.084
2.	ऑक्सीजन	20.9476
3.	आर्गन	0.934

4.	कार्बन डाई–ऑक्साइड	0.0314
5.	निओन	0.001818
6.	हीलियम	0.000524
7.	मिथेन	0.0002
8.	क्रिपटोन	0.000114
9.	सल्फर ऑक्साइड	0 से 0.0001
10.	हाइड्रोजन	0.00005
11.	नाइट्रायस ऑक्साइड	0.00005
12.	जीनोन	0.0000087
13.	ओजोन (गर्मी में)	0 से 0.000007
	ओजोन (सर्दी में)	0 से 0.000002
14.	नाइट्रोजन ऑक्साइड	0 से 0.000002
15.	आयोडीन	0.0.000001
16.	अमोनिया	0 से तनिक
17.	कार्बन मोनो ऑक्साइड	0.1 ppm –0.2 ppm

स्त्रोत - H.J. Sanders (ed.) Chemistry and the atmosphere, Washington.

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि वायुमण्डल में नाइट्रोजन और ऑक्सीजन से ही वायु की संरचना सबसे अधिक होती है। लगभग 1 प्रतिशत आर्गन और अन्य निष्क्रिय गैसें होती हैं तथा जलवाष्प भी इसका एक महत्वपूर्ण संघटक है। जो एक स्थान से दूसरे स्थान में भिन्न–भिन्न मात्रा में होती हैं।

जीवन प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं को देखें तो उससे जुड़े वायुमण्डल के रासायनिक संघटकों में नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और कार्बनडाई–ऑक्साइड मुख्य संघटक है।

नाइट्रोजन गैस प्राणी और वनस्पति में एमिनो–एसिडों तथा प्रोटीनों के रूप में विद्यमान रहती है। मिट्टी में नाइट्रोजन, नाइट्रेट और अमोनियम यौगिक के रूप में पाई जाती है। विद्युत क्रिया होने पर वायुमंडलीय नाइट्रोजन ऑक्सीजन से अभिक्रिया करता है जिससे नाइट्रोजन के ऑक्साइड बनते है जो वर्षा या हिमपात के जरिए पृथ्वी पर नाइट्रस या नाइट्रिक अम्ल के रूप में पहुंचते हैं।

ऑक्सीजन एक बहुत ही अभिक्रिया शील गैस है। जो सभी पेड़–पौधौं और जीव जन्तुओं को जीवित रहने के लिए अनिवार्य है। श्वसन क्रिया के दौरान जीव जन्तु ऑक्सीजन को अंदर खींचते है तथा कार्बन डाई–ऑक्साइड बाहर निकालते हैं। पेड़–पौधे सूर्य के प्रकाश में प्रकाश संश्लेषी क्रिया के परिणाम स्वरूप कार्बन–डाइ–ऑक्साइड अंदर खींचते हैं। और आक्सीजन बाहर निकालते है।

कार्बन डाई–ऑक्साइड बहुत कम मात्रा में होती है परन्तु यह भी जीवन के लिए महत्वपूर्ण है। प्रकाश संश्लेषण क्रिया में पौधे सूर्य के प्रकाश में कार्बन डाई–ऑक्साइड और जल का उपयोग

करते है जिससे स्टार्च और शर्करा बनती है। पृथ्वी के तापमान को निर्धारित करने में भी कार्बन डाई–ऑक्साइड की प्रमुख भूमिका है।

वायुमण्डल में जलवाष्प भी होती है। जलवाष्प का अनुपात तापमान पर निर्भर करता है, इसलिए उसकी मात्रा प्रत्येक जगह भिन्न–भिन्न पाई जाती है। वायु मण्डलीय आद्रता का लगभग आधा हिस्सा पृथ्वी के तल से लेकर 1.5 किलोमीटर की ऊँचाई में विद्यमान रहता है।

वायु मण्डल में सूक्ष्मगैस कण भी पाए जाते है, जो धूल कण के रूप में दिखाई देते हैं। इनकी उत्पत्ति स्थल पर ही होती है इसलिए ये भू–पृष्ठ से 1.8 किलोमीटर की ऊँचाई तक ही रहते हैं।

वायुमण्डल उष्मारोधी परत का कार्य लगातार 24 घंटे करता है। ध्वनि कम्पन तथा ध्वनि संचरण भी वायुमण्डल में विद्यमान होने के कारण संभव होता है। वायुमण्डल के बिना मौसम, वर्षा भी नहीं होंगे, न ही मौसम में कोई परिवर्तन होगा। इसकी अनुपस्थिति में सूर्य से पृथ्वी पर बहुत से घातक विकिरण आयातित होने लगेंगे, जिससे पृथ्वी पर सबके लिए प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी।

बोध प्रश्न – 1

निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1. वायुमण्डल की प्रमुख दो गैसें कौन सी है?

   .....

   .....

2. पेड़ पौधों की प्रकाश–संश्लेषी क्रिया में कौन सी गैस बाहर निकलती है?

   .....

   .....

3. वायुमण्डल में सूक्ष्म ठोस कण पृथ्वी की सतह से कितनी ऊँचाई तक पाए जाते है?

   .....

   .....

4. यदि वायुमण्डल नहीं होता तो ध्वनि के ऊपर क्या असर होता?

   .....

   .....

5.4 प्रमुख वायु प्रदूषक (Main Air Pollutants)

वायु प्रदूषण फैलाने वाले कुछ प्रमुख वायु प्रदूषकों का विवरण दिया जा रहा है जो वायुमण्डल में फैलकर खतरनाक प्रभाव डालते हैं।

गैसीय	**सूक्ष्म कण**	**जैविक**
धुआँ	सीसा	जीव
कोहरा	एस्बेस्टोस	वनस्पति

कार्बन डाइ–ऑक्साइड (CO_2)
कार्बन मोनो–ऑक्साइड (CO)
सल्फर डाइ–ऑक्साइड (SO_2)
क्लोरा फ्लोरो कार्बन (CFC)
नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO_2)
हाइड्रोजन (H_2)
क्लोरीन (Cl_2)
ओजोन
सल्फाइड
हाइड्रोकार्बन
एन्डीहाइडस (Al)
अमोनिया (NH_2)
आरसाइंस (As)
हाइड्रोजन साइनाइड (HCN)
हाइड्रोजन फ्लोराइड (HF)
हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S)
पारे की भाप (Hg)
केडमियम (Cd)
बोरोन (B)
बेन्जपायरीन
मिथेन (CH_4)
सल्फूरिक एसिड (H_2SO_4)
फास्फोरस (P)
सल्फरट्राइ ऑक्साइड (SO_3)
नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O)
नाइट्रोजन ट्राइ ऑक्साइड (NO_3)
नाइट्रिक ऑक्साइड (NO)

कांच
सिरेमिक
लोहा
तांबा
जिंक
सोपस्टोन
क्रोमियम
कोयला

5.5 वायु प्रदूषकों के प्रकार और स्रोत (Type and Source of Air Pollution)

वायु प्रदूषण विविध प्रकार के स्रोतों का परिणाम होता है वायु प्रदूषण के इन स्रोतों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है :–

1. उत्पत्ति के स्रोत के आधार पर
2. रासायनिक संगठन के आधार पर
3. आकार एवं घनत्व के आधार पर

4. स्रोत के प्रकार के आधार पर

5.5.1 उत्पत्ति के स्रोत के आ धार पर (On the Basis of Origin Source)

वायु प्रदूषण को उत्पत्ति के स्रोतों के आधार पर मुख्य दो भागों में विभक्त किया जा सकता है:–

(अ) प्राकृतिक स्रोत

(ब) मानवीय स्रोत

(अ) प्राकृतिक स्रोत (Natural Sources)

1. ज्वालामुखी विस्फोट
2. वनाग्नि
3. तूफान
4. कोहरा
5. बिजली गिरना
6. पराग कणों का हवा में बिखरना
7. मृदा अपरदन
8. पेड़ और पत्तियों से वाष्पशील कार्बनिक यौगिकों का निकलना
9. भूस्खलन
10. धूल भरी आंधी
11. बाढ़

(ब) मानवीय स्रोत (Human Sources)

मानवीय स्रोतों को प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों में विभक्त किया जा सकता है, उदाहरण के लिए दहन क्रिया, खनन क्रिया तथा औद्योगिक क्रिया द्वारा छोड़े गए कणों को प्राथमिक मानवीय स्रोतों तथा रासायनिक क्रियाओं को द्वितीयक मानवीय स्रोतों में सम्मिलित करते हैं। मानवीय स्रोतों को विस्तार से जानने के लिए निम्न भागों में विभक्त किया गया है।

1. गैस
2. सूक्ष्मकण (1) धात्विक सूक्ष्म कण तथा (2) अधात्विक सूक्ष्मकण
3. वायु विलय
4. जैवीय

उपरोक्त स्रोतों में भिन्न–भिन्न प्रकार की गैसें सूक्ष्म कण तथा अन्य स्रोतों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

1. गैसें

(i) सल्फर–डाई–ऑक्साइड

(ii) कार्बन–डाई–ऑक्साइड

(iii) कार्बन–मोनो ऑक्साइड

(iv) हाइड्रोकार्बन

(v) नाइट्रोजन ऑक्साइड

(vi) घरेलू व औद्योगिक इकाइयों से निकला धुँआ

2. सूक्ष्मकण : सूक्ष्मकणों को दो भागों में बांटा जा सकता है –

(अ) धात्विक सूक्ष्मकण

(i) धातु उद्योग

(ii) उत्खनन

(iii) लोहा, इस्पात, सीसा, तांबा, जस्ता, एल्यूमीनियम आदि के खराद करने वाले उद्योग

(ब) अधात्विक सूक्ष्मकण

(i) सीमेन्ट

(ii) सिरेमिक्स

(iii) कांच

(iv) एबेस्टास आदि

3. वायु विलय

(i) धुँआ

(ii) कुहासा

4. जैवीय

(i) जीवाणु

(ii) बैक्टीरिया

(iii) फफूंद

5.5.2 रासायनिक संगठन के आधार पर (On the Basis of Chemical Composition)

वायु प्रदूषकों को रासायनिक संगठन के आधार पर निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है:

(अ) कार्बनिक प्रदूषक : कार्बन, हाइड्रोजन, परागकण आदि

(ब) अकार्बनिक प्रदूषक : नाइट्रोजन, सल्फर, धातुकण आदि

इन प्रदूषकों को ठोस (Solid) तरल (liquid) एवं गैसीय (gaseous) श्रेणी में भी विभक्त किया जा सकता है।

5.5.3 आकार एवं घनत्व के आधार पर (On the Basis of Size and Density)

आकार एवं घनत्व के आधार पर इनके स्रोतों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :–

(i) **विशिष्ट स्रोत (Specific Sources) :** जो वृहत उद्योगों एवं अन्य कारखानों से सम्बन्धित होते हैं, जैसे प्रमुख औद्योगिक इकाइयाँ, थर्मल पावर प्लान, आदि

(ii) **विविध स्रोत (Multiple Sources) :** इसमें ऑटोमोबाइल, सार्वजनिक एवं निजीउपयोग से निसृत धुँआ, पेट्रोल एवं अन्य रसायनों के वाष्पीकरण तथा अनेक प्रकार के स्प्रे, विभिन्न

वाहनों में जलने वाले पेट्रोल–डीजल आदि। नगरों में गन्दगी, मृत जानवरों के गलने–सड़ने आदि से।

इन प्रदूषकों को स्वरूप के आधार पर निम्न वर्गों में भी विभक्त किया जा सकता है :–

(अ) सूक्ष्म लम्बित कण

(ब) वाष्पीय

(स) गैसीय

5.5.4 स्रोत प्रकार के आधार पर (Classification by Source Type)

स्रोत प्रकार के आधार पर प्रदूषकों को निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है।

1. वाहनों में दहन क्रिया द्वारा
2. स्थिर दहन द्वारा
3. औद्योगिक प्रक्रिया द्वारा
4. ठोस अपशिष्ट पदार्थों द्वारा
5. अन्य स्रोतों से

बोध प्रश्न - 2

1. प्रमुख वायु प्रदूषकों को कितने भागों में बांट सकते हैं?

   .....

   .....

2. उत्पत्ति के आधार पर वायु प्रदूषकों को कितने ओर कौन से भागों में विभक्त कर सकते है?

   .....

   .....

3. ज्वालामुखी विस्फोट प्रदूषक कौन सा स्रोत है?

   .....

   .....

4. सूक्ष्म कणों को कितने भागों में बांटा जा सकता है? उनके नाम लिखो।

   .....

   .....

5. रासायनिक संगठन के आधार पर वायु प्रदूषकों को कितने ओर कौन से भागों में विभक्त कर सकते हैं?

   .....

   .....

5.6 वायु प्रदूषण के प्रभाव (Effect of Air Pollution)

वायु प्रदूषण के दुष्प्रभाव विभिन्न प्रकार से होते हैं, तथा इसके प्रभाव का क्षेत्र स्थानीय, क्षेत्रीय एवं विश्वव्यापी होता है। यह मानव जीव–जन्तुओं, वनस्पतियों, जलवायु आदि सभी को किसी न किसी रूप में प्रभावित करता है।

वायु प्रदूषण वर्तमान युग की औद्योगिक एवं तकनीकी सभ्यता की एक ऐसी देन है जो न केवल पारिस्थितिक तंत्र को असंतुलित कर विभिन्न हानिकारक प्रभाव उत्पन्न कर रहा है अपितु मानव, जीव तथा वनस्पति समुदाय के लिए संकट का कारण बनता जा रहा है। महानगरों की दम घोटू हवा मानव स्वास्थ्य और सम्पत्ति के लिए एक संकट बनती जा रही है। अम्लवर्षा का प्रभाव मृदा की गुणवत्ता, वनस्पति और पशुओं पर पड़ रहा है जिसके उपयोग से मानव का स्वास्थ्य दिनोदिन गिरता जा रहा है।

5.6.1 मानव पर प्रभाव (Effects on Man)

मानव स्वास्थ्य को वायुमण्डलीय प्रदूषण विविध मात्रा में विपरीत रूप से प्रभावित करता है। इससे मृत्यु में बढ़ोतरी होती है। रोगों की सम्भावना अधिक होती है तथा अत्यधिक श्वास सम्बन्धी बीमारियाँ होने लगती हैं।

वायु प्रदूषण का सर्वाधिक प्रभाव मनुष्य के श्वसन तन्त्र पर पड़ता है। मनुष्य के जन्म से मृत्यु तक श्वसन क्रिया के लिए शुद्ध ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है, यदि वायु में अशुद्धि है तो दुष्प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर पड़ना निश्चित है क्योंकि श्वास के साथ ग्रहण की गई वायु में उपस्थित हानिकारक कणिकाएं श्वास लेने के साथ ही फेफड़ों में तथा रक्त के साथ मिलकर विभिन्न रोग फैलाती है। प्रदूषित वायु से ब्रोकांइटिस, विलिनोसिस, घुटन, मानसिक थकावट, अनिद्रा बैचेनी, धीमी हृदय क्रिया, सिर दर्द, टॉन्सिल, त्वचा रोग, गले का दर्द, निमोनिया, अस्थमा, टी.बी., नजला आदि रोग हो जाते हैं।

वायु प्रदूषण के संदर्भ में "धूम और कुहरा" (Smoke and fog) मुख्यतया: उद्योगों एवं परिवहन की अधिकता वाले नगरों पर छा जाता है। इससे सल्फर डाई–ऑक्साइड एवं नाइट्रोजन ऑक्साइड का अंश मिश्रित रहता है जो न केवल स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है बल्कि मौत का कारण बन जाता है।

वायु में सल्फर डाइ–ऑक्साइड और नाइट्रोजन ऑक्साइड की अधिकता से कैंसर, हृदय रोग, मधुमेह आदि रोग भी हो जाते हैं। सल्फर डाइ ऑक्साइड से एम्फॉयसीमा (Emphysema) नामक प्राण लेवा बीमारी हो जती है, जिस वायु में 0.001 प्रतिशत कार्बन मोनो ऑक्साइड की मात्रा हो उसमें अधिक देर तक रहने से बेहोशी, कोमा के अलावा श्वांस भी थम सकता है। कार्बन मोनो ऑक्साइड रक्त के हीमोग्लोबिन से लम्बे समय तक चिपका रहे तो उसके जम जाने से रक्त की ऑक्सीजन ले जाने की क्षमता कम हो जाती है। अनेक वाष्पशील कार्बनिक यौगिक जैसे (बैंजीन और फार्मोल्डिहाइड) और विषैले कण जैसे (सीसा और केडमियम) विकारों, प्रजनन सम्बन्धी समस्याओं तथा कैंसर को जन्म देते हैं।

वाहनों से निकलने वाले धुएँ में उपस्थित सीसे के कण शरीर में पहुंच कर यकृत व आहार नाल को क्षति पहुंचाते हैं तथा हड्डियों को गलाना शुरू कर देते है।

विज्ञान एवं पर्यावरण केन्द्र के अनुसार प्रदूषित हवा में सास लेने के कारण केवल दिल्ली में लगभग 10 हजार व्यक्ति प्रति वर्ष मौत के ग्रास बन जाते हैं।

5.6.2 बच्चों पर विशेष प्रभाव (Special Effects on Children)

शुरूआती वर्षों में बच्चों का सर्वांगीण विकास तेज गति से होता है पहले दो वर्षों में फेफड़ों बढ़ते हैं जिससे उनकी अवशोषण क्षमता भी बढ़ती जाती है। ऐसे में अधिक मात्रा में वायु प्रदूषक तत्व फेफड़ों के अन्दर जाते हैं और वही रूक जाते हैं। वर्ल्ड रिसर्च इन्स्टीटयूट की 1993–95 की रिपोर्ट के अनुसार विकासशील देशों के बच्चे भारी प्रदूषण के खतरे से घिर हुए हैं। भारत में नई दिल्ली स्थित कलावती सरन शिशु अस्पताल के आकड़ों के अनुसार पिछले वर्षों से श्वसन रोगों से शिकार बच्चों की संख्या तेजी से बढ़ी है। ब्रांकियल अस्थमा के बच्चों की संख्या तेजी से बढ़कर लगभग दुगुनी हो गई है। लगभग 80 प्रतिशत बच्चों की मृत्यु का कारण प्रदूषण से फेफड़ों में होने वाला संक्रमण ही है। भारत जैसे देशों में 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों का भविष्य अंधकारमय है। विशेषकर 10 माइक्रांस (पी.एम. 10) कणों वाली हवा में सांस ले रहे बच्चों में 45 प्रतिशत खतरे की संभावना ज्यादा बढ़ जाती है। मासूम बचपन जीवनदायिनी सास के साथ लगातार अपने अंदर जहर इकट्ठा कर रहा है। वायु प्रदूषण द्वारा वर्तमान समाज बच्चों को वायु प्रदूषकों के तोहफों के अलावा कुछ नहीं दे रहा है।

वर्तमान में विश्व में जैसे–जैसे वायु प्रदूषण में वृद्धि होती जा रही है उससे फैलने वाली बीमारियों एवं मृत्यु की संख्या में बढ़ोतरी होती जा रही है। वायु प्रदूषण का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव प्रदूषण की मात्रा एवं सघनता पर निर्भर करता है प्रारम्भ में इसका प्रभाव महसूस नहीं होता है परन्तु धीरे धीरे यह रोगों का रूप धारण कर मृत्यु का कारण बन जाता है।

5.6.3 वनस्पति पर प्रभाव (Effects on Vegetation)

वायु प्रदूषण से वनस्पति पर भी दुष्प्रभाव होता है हवा में खुली विषैली गैसें, कार्बन मोनो ऑक्साइड, सल्फर डाइ ऑक्साइड, अम्लीय वर्षा, धूम, कोहरा आदि पौधों की विभिन्न क्रियाओं पर घातक प्रभाव डालती है।

कुछ पौधे प्रदूषण के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। वायु मण्डल में अत्यधिक प्रदूषण होने पर पौधों को सूर्य का प्रकाश बहुत कम मिल पाता है जिससे उनकी प्रकाश संश्लेषण क्रिया पर विपरीत प्रभाव पड़ता है परिणाम स्वरूप पौधों को पर्याप्त भोजन नहीं मिलने से उनकी वृद्धि रूक जाती है तथा कालान्तर में उनकी मृत्यु हो जाती है।

धूम कोहरे के क्षेत्र में पौधों का विकास बहुत कम हो पाता है। मोटर वाहनों से निकलते धुएँ से पौधों की पत्तियों का गिरना, पत्तियों का आकार छोटा होना फलों का अपरिपक्व अवस्था में गिर जाना आदि प्रभाव पड़ते हैं। भारत के कई क्षेत्रों विशेषकर उत्तरप्रदेश में ईंट भट्टों के आसपास चिमनियों से उत्सर्जित सल्फर डाई ऑक्साइड से आम की फसल को काफी नुकसान होता है।

चिप्स पाउडर तथा रोड़ी बनाने वाले जैसे उद्योगों से सूक्ष्म कण हवा के साथ प्रवाहित होकर पौधों की पत्तियों पर जम जाते हैं जिनसे उनकी चिकनी सतह नष्ट हो जाती है तथा वे पत्तियों के पर्णरन्ध्रों (Stomata) को अवरूद्ध कर देते हैं जिससे वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रिया धीमी हो जाती है जिसके कारण अनेक रोगों, कीड़ों, सूखे और पाले से पत्तों को नुकसान होता है।

प्रदूषित वायु द्वारा प्रदूषित पदार्थ वर्षा के जल में घुलकर धरती पर आ जाते हैं जिसे पौधे जड़ द्वारा ग्रहण कर लेते हैं ये विषाक्त पदार्थ पौधों की वृद्धि व विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। वायु में हाइड्रोजन फ्लोराइड के अधिक सान्द्रण के कारण पौधों में अतिगलन (Necrosis) तथा (Tissues) का सड़ना–गलना तथा पत्तियों का रंग उड़ना शुरू हो जाता है।

लोहा पिघलाने, कोयला जलाकर बिजली बनाने वाले संयंत्रों से औद्योगिक इकाइयों तथा वाहनों से निकलने वाले वायु प्रदूषक भी पौधों को बहुत हानि पहुंचाते हैं। ओजोन की अल्पता तथा वायुमण्डल के हरित गृह प्रभाव में वृद्धि के कारण तापमान में वृद्धि होने से वनस्पतियों के प्रकार, घनत्व तथा स्थिरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

कुछ पौधे इस प्रकार के भी होते हैं जिन्हें प्रदूषक सूचक पौधे कहा जा सकता है। इन पौधों पर प्रदूषण के चिन्ह स्पष्ट दिखाई देते हैं जिनसे प्रदूषण का पता चलता हैं। इस प्रकार के पौधों में दहलिया, चीड़, बरगद, सालविया, जीनिया, ग्लेड्यलस आदि हैं।

5.6.4 जीव–जन्तुओं पर प्रभाव (Effects on Animals and Insects)

वायु प्रदूषण का हानिकारक प्रभाव मानव तथा वनस्पति पर ही नहीं बल्कि जीव–जन्तुओं पर भी पड़ता है। जीवों के द्वारा श्वसन क्रिया में वायु के साथ प्रदूषक इनके शरीर में पहुंच जाते हैं, जो विभिन्न रूपों में उन्हें हानि पहुंचाते है। पशुओं द्वारा खाये जाने वाले चारे पर क्लोराइड यौगिक के गिरने से खाने के साथ उनके शरीर में पहुँच जाते हैं जो उनकी हड्डियों तथा दांतों में फ्लुओरोसिस कर देते हैं। मधुमक्खी, शलभ, कटि भक्षी, स्तनपोषी, आदि विशेष प्रकार के जीव औद्योगिक विषैली वायु प्रदूषण के कारण मर जाते है।

5.6.5 पदार्थों पर प्रभाव (Effects On Materials)

वायु प्रदूषकों में स्थित अद्वितीय स्मारक ऐतिहासिक इमारतें, संगमरमर की मूर्तियों तथा अन्य धरोहरों और प्राकृतिक सौन्दर्य के स्थलों के रंग को बदरंग किया जा रहा है। दुनिया के सात अजूबों में एक आगरा स्थित ताजमहल की इमारत पर संगमरमर का सफेद रंग का बदरंग होना ज्वलंत उदाहरण है। 1972 में आगरा के पास मथुरा में लगे तेल शोधक कारखाने से निकलने वाले धुंए में मिश्रित कार्बनडाइ ऑक्साइड वर्षा के जल से मिलकर सल्फ्यूरिक एसिड के रूप में ताजमहल पर गिरने से इसके संगमरमर का क्षरण हो रहा है। वायु प्रदूषकों द्वारा भवनों पर किए हुए रंगों तथा वाहनों के रंगो को उड़ाने से प्रत्येक वर्ष अरबों रूपये का नुकसान होता है।

5.6.6 दृश्यता पर प्रभाव (Effect on Visibility)

वायु प्रदूषण के कारण वायुमण्डल में दृश्यता प्रभावित होती है कार्बन के कण, धूल, धुंआ, नाइट्रोजन ऑक्साइड आदि वायु प्रदूषकों की मात्रा अधिक होने पर ये वातावरण में प्रकाश को कम करके दृश्यता को घटा देते हैं। ऐसी स्थिति में वाहन दुर्घटनाओं में वृद्धि हो जाती है। सर्दियों में वायुमण्डलीय व्युत्क्रम के कारण वाहनों से निकलने वाला धुंआ ऊपर उठने के बजाय नीचे ही रह जाता है अत: महानगरों में प्राय: धूम कोहरा छाया रहता है। अधिक वायु प्रदूषण के कारण कोलकाता को स्मोग सिटी कहा गया है।

5.6.7 वायुमण्डल एवं जलवायु पर प्रभाव (Effects on Atmosphere and Climate)

वायु प्रदूषकों का वायुमण्डल तथा जलवायु के घटकों बादल, ताप, वर्षा, ओजोन परत आदि पर दुष्प्रभाव होता है जिसके कारण मौसम, हरित गृह प्रभाव, अम्लीय वर्षा, ओजोन परत विघटन तथा एशिया ब्राउनहेज प्रभावित होते है। वायु प्रदूषण के कारण विश्व जलवायु दशाओं में परिवर्तन हो रहा है। कार्बन डाइ–ऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रोजन ऑक्साइड, क्लोरो फ्लोरो कार्बन आदि हरित गृह प्रभाव पैदा करने वाली गैसों से वृद्धि के कारण भू–मण्डल का तापमान निरन्तर बढ़ रहा है। इससे हिम खण्डों के पिघलने की दर में वृद्धि होगी तथा समुद्री जल स्तर बढ़ने से तटवर्ती क्षेत्र जलमग्न हो जायेंगे।

5.6.7.1 मौसम पर प्रभाव (Effect on Weather)

वायु प्रदूषण से स्थानीय मौसम सर्वाधिक प्रभावित होता है जिसके कारण बादल, तापमान एवं वर्षा प्रभावित होती है औद्योगिक नगरों में अत्यधिक वायु प्रदूषण के कारण तापमान, आर्द्रता, बादलों की स्थिति, विकिरण, वायु की गति, वर्षा इत्यादि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सघन महानगरीय क्षेत्रों तथा सघन आवासीय क्षेत्रों का तापमान वहां के वायु प्रदूषण के कारण उत्पन्न क्षेत्रों की तुलना में 2–3 डिग्री सेल्सियस अधिक रहता है इससे मौसम प्रभावित होता है।

5.6.7.2 अक्ल वर्षा (Acid Rain)

वायु प्रदूषण का यह विनाशकारी प्रभाव है कल कारखानों और तेल शोधकों से निकला सल्फर डाई ऑक्साइड (SO_2) हवा में घुल जाता है और रासायनिक अभिक्रिया से सल्फ्यूरिक अम्ल वायु (Sulphuric Acid) में बदल जाता है। यह तब पानी की बूंदों में घुल मिलकर वर्षा के जल के साथ धरातल पर आता है जो अम्लीय प्रभाव डालकर जैविक तथा अजैविक तत्वों का क्षरण करता है। यह प्रक्रिया अम्ल वर्षा के नाम से जानी जाती है।

5.6.7.3 हरित गृह प्रभाव (Green House Effect)

वायुमण्डल में कार्बन डाइ–ऑक्साइड की मात्रा में निरन्तर वृद्धि होने से यह सूर्य की किरणों को अवशोषित करती है इससे वायुमण्डल गर्म हो जाता है इसे ग्रीन हाउस प्रभाव कहते है। ग्रीन हाउस पैदा करने वाली गैसें कार्बन डाइ–ऑक्साइड, मिथेन, क्लोरोफ्लोरो कार्बन, नाइट्रोजन, ऑक्साइड व ओजोन हैं। जून 1988 में टोरन्टो में हुए सम्मेलन में ग्रीन हाउस प्रभाव तथा उससे सम्बन्धित खतरों के बारे में वैज्ञानिकों ने चिन्ता व्यक्त की थी। इस प्रकार के प्रदूषण से तापमान वृद्धि होती है तथा अनेक स्थानों पर सूखा व अकाल की स्थिति बन जाती है।

5.6.7.4 ओजोन परत पर प्रभाव (Effect on Ozone Layer)

वायुमण्डल में स्थित ओजोन परत का कवच मानव जीवन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों को रोक कर जीवन की रक्षा करती है। वायु मण्डल में ओजोन की मात्रा बहुत कम होती है।

समतापमण्डल में 15 कि.मी. से लेकर 60 कि.मी. तक हैं, परन्तु यह 20 से 25 कि.मी. तक के क्षेत्र में सबसे घनी होती है। ऑक्सीजन के तीन अणुओं से बनी गैस को ओजोन (O_3) कहते है यह हल्के नीले रंग की होती है तथा इसकी गंध तीखी होती है। ओजोन गैस स्थिर न होकर अस्थिर गैस होती है क्योंकि एक तरफ इसका निर्माण होता रहता है तो दूसरी तरफ

इसका विघटन भी होता रहता है। वायुमण्डल में पाये जाने वाले प्रदूषक तत्व जैसे क्लोरो फ्लोरो कार्बन जिसका उपयोग फ्रिज में किया जाता है ओजोन परत को सर्वाधिक हानि पहुंचाते हैं।

विगत चार–पाँच दशकों से ओजोन परत के क्षरण तथा विनाश को लेकर दुनिया के वैज्ञानिक काफी चिन्तित है। 1985 में वैज्ञानिकों ने बताया कि अन्टार्कटिका महाद्वीप के ऊपर ओजोन छिद्र बढ़ता जा रहा है। जिससे हानिकारक पराबैंगनी किरणें भूमण्डल पर आकर हमारे शरीर में त्वचा कैंसर, आँखों में मोतियाबिन्द उत्पन्न कर अन्धापन बढ़ाती है तथा इससे जल–जीव एवं फसलों पर भी दुष्प्रभाव पड़ता है। 10 सितम्बर 2008 को धरती से 300 फीट नीचे 'द लार्ज हैड्रान कोलाइडर' (एल.एच.सी.) नामक 17 मील लम्बी एक मशीन के जरिए बिग बेंग को या ब्रह्माण्ड के पैदा होने की स्थिति को फ्रांस–स्विटजरलेण्ड सीमा के पास परीक्षण किया गया है। जिसका प्राथमिक प्रयोग सफल हो गया है परन्तु कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि इसके करोड़ों सूक्ष्म ब्लैक होल पैदा होंगे जिससे ओजोन परत प्रभावी होगी।

स्पष्ट है कि वायु प्रदूषण धीमे–धीमे घुलता हुआ जहर है जो न केवल मनुष्य अपितु समस्त जीव, जगत को प्रभावित कर रहा है। इसका प्रभाव अभी सीमित हो सकता है किन्तु इस दिशा में पर्याप्त प्रयत्न नहीं किए गए तो यह ऐसी अवस्था में पहुंच जायेगा कि वहां विनाश ही विनाश होगा उससे बचाने वाला कोई नहीं होगा।

बोध प्रश्न - 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो।

1. वायु प्रदूषण का सर्वाधिक प्रभाव..... पर पड़ता है।
2. वायु में सल्फर डाइ ऑक्साइड और नाइट्रोजन ऑक्साइड की अधिकता से ..... आदि रोग हो जाते है।
3. वाहनों से निकलने वाले धुएँ में उपस्थित सीसे के कण शरीर में पहुंचकर..... व.....को क्षति पहुंचाते हैं।
4. कुछ पौधे प्रदूषण के प्रति अत्यधिक..... होते हैं।
5. वायु प्रदूषण के कारण कोलकाता को..... कहा गया है।

5.7 वायु प्रदूषण के नियंत्रण के उपाय (Measures of Controlling Air Pollution)

वायु प्रदूषण के सम्बन्ध में उपरोक्त वर्णित विवरणों से यह ज्ञात होता है कि वर्तमान में वायु प्रदूषण आर्थिक विकास, तकनीकी ओर वैज्ञानिक प्रगति, औद्योगिक वृद्धि तथा नगरीयकरण की देन है। किसी भी देश के विकास के लिए इनका होना जरूरी भी है तभी वह विकसित होकर आगे बढ़ सकते है। इन सबके परिणाम स्वरूप वायु प्रदूषण का होना स्वाभाविक है। वायु प्रदूषकों के व्यापक दुष्प्रभावों को देखते हुए इन पर नियन्त्रण के लिए उपाय करना आवश्यक है। वायु प्रदूषण को नियंत्रित करना आज की प्राथमिक आवश्यकता बन गई है। विश्व के अनेक मंचों से इसको नियन्त्रित करने की बात उठाई जा रही है।

वायु प्रदूषण को रोकने के लिए हम दो प्रकार से प्रयत्न कर सकते हैं –

1. हो चुके वायु प्रदूषण को कम करके
2. वायु प्रदूषण पर रोक लगाकर

वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण उद्योग धन्धे तथा यातायात में काम आने वाले वाहन हैं इसके अलावा प्राकृतिक और मानवीय कारण भी हैं।

5.7.1 औद्योगिक प्रदूषण नियत्रंण (Industrial Pollution Control)

आज औद्योगिक प्रदूषण एवं पर्यावरणीय असंतुलन एक विकट एवं व्यापक समस्या है औद्योगिक प्रदूषण जो प्रमुखत: जल, धुंआ, धूल एवं शोर के रूप में विद्यमान कुल प्रदूषण का लगभग 60 प्रतिशत महसूस किया गया है। औद्योगिक विकास ने न केवल इस चुनौती को भयानक बना दिया है वरन् इससे मानव जाति के अस्तित्व की समस्या भी पैदा होती जा रही है। अत: औद्योगिकरण से उत्पन्न वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए निम्न उपाय करने चाहिए।

1. उद्योगों की स्थापना वायु प्रवाह की दिशा को ध्यान में रखकर घने बसे हुए भागों एवं नगरों से दूर की जानी चाहिए। जिस तरफ से वर्ष में अधिकतर दिनों तक वायु प्रवाह हो उस तरफ उद्योग स्थापित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। आबादी के मध्य स्थापित औद्योगिक इकाइयों को अन्यत्र स्थानान्तरित करना चाहिए।
2. उद्योगों की स्थापना से पूर्व प्रदूषणकारी क्रिया विधियों का पर्यावरण पर उनके प्रभाव का आंकलन करना चाहिए तथा उन सभी तकनीकी ओर गैर तकनीकी विधियों की जानकारी कर लेनी चाहिए। जिनसे प्रदूषण को नियंत्रित कर सकें। इसके पश्चात निर्धारित मानदण्डों के अनुरूप उद्योगों को चालू करने की अनुमति दी जानी चाहिए।
3. उद्योगों का उत्पादन क्या है और उनसे कौन सा प्रदूषण कितनी मात्रा में होता है, इसके पीरवहन, कच्चा माल, तैयार माल एवं प्रक्रिया में कहाँ पर कौन सा प्रदूषक तत्व निकलेगा इस आधार पर उद्योगों का स्थान नियत करना आवश्यक है। यह क्षेत्रीय पर्यावरण से समुचित सन्तुलन स्थापित कर प्रदूषकों को जनसंख्या के बसे क्षेत्रों से दूर रख सकेगी। यदि किसी उद्योग का कच्चा माल ही प्रदूषण कारक है तो कच्चे माल का विकल्प प्रयोग किया जाना चाहिए यदि उसका विकल्प नहीं हो तो उससे सम्बन्धित उद्योग को खुले और दूरवर्ती स्थानों पर लगाना चाहिए।
4. उद्योगों की चिमनियों की ऊँचाई निर्धारित मानदण्ड के अनुसार होनी चाहिए। विशेषज्ञों की राय में यह ऊँचाई आबादी क्षेत्रों में निर्मित औद्योगिक इमारतों से ढाई गुना अधिक होनी चाहिए। जिससे प्रदूषकों को अधिक ऊँचाई पर छोड़ा जा सके। इनसे निकलने वाली गैसों और धुंआ की गति 20 मीटर प्रति सैकण्ड से अधिक नहीं हो। अधिक ऊँचाई पर जाकर हानिकारक गैसें वायुमण्डल में विरल हो जाती है और उनका प्रभाव कम हो जाता है जिससे चिमनियों से निकलने वाली विषैली गैसें, धुंआ और अन्य पदार्थों का सीधा असर श्रमिकों एवं आसपास में रहने वालों पर नहीं पड़ता हैं।

   चिमनियों से निकलने वाले गैसीय एवं कणिकीय पदार्थों द्वारा होने वाले वायु प्रदूषण को रोकने के लिए निम्न यंत्रीय उपायों को प्रयोग में लाया जा सकता है।

(i) बेग फिल्टर नामक उपकरण के माध्यम से उद्योगों की चिमनियों से निकलने वाले कणिकीय पदार्थों को फिल्टर करके अलग कर लिया जाता है। इस कार्य के लिए कई प्रकार के फिल्टरों का प्रयोग किया जाता है। कारखानों की चिमनियों से निस्सृत धुंए तथा कालिख के साथ मिश्रित कणिकीय पदार्थों (Particularate Matter) को अलग करने के लिए प्रयोग किए जाने वाले विशिष्ट प्रकार के औद्योगिक फिल्टर को बेग फिल्टर कहते है। कारखानों की चिमनियों के साथ इसे लगा दिया जाता है। कणिकीय पदार्थों से युक्त धुंआ फिल्टर के सिलिंडर से होकर गुजरता है तब ये गैसें बेलनाकार बेग से होकर बाहर निकल जाती है तथा कणिकीय पदार्थ नीचे जम जाते है।

(ii) 50 माइक्रोमीटर से बड़े आकार वाले कणिकीय पदार्थों को फिल्टर करने तथा अलग करने के लिए साइक्लोन सेपेरेटर या साइक्लोन कलेक्टर तथा वेट स्क्रबर नामक उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। इस विधि के अन्तर्गत कारखानों से निस्सृत कणिकीय पदार्थों से युक्त धुंए को एक शंक्वाकार ससिलिंडर से होकर गुजारा जाता है इस सिलिंडर में ठोस कणों से युक्त धुंए का तेज गति से मंथन होता है परिणाम स्वरूप कणिकीय पदार्थ सिलिंडर के निचले भाग के निकाससे बाहर निकलता रहता है तथा गैस सिलेंडर के ऊपरी भाग में लगे निकास से बाहर निकल जाती है। वेट स्ट्रबर के अन्तर्गत गैसों को जल के प्रयोग द्वारा साफ किया जाता है।

(iii) एक माइक्रोमीटर से छोटे आकार वाले कणिकीय पदार्थों को एलेक्टोस्टैटिक प्रेसीपिटेटर (ESP) हाई एनर्जी स्क्रबर तथा फैब्रिक फिल्टर नामक उपकरणों की सहायता से धुंए से अलग किये जाते है।

5. उद्योगों पर बराबर निगरानी रखी जाये कि वायुमण्डल में त्याज्य पदार्थों को पहले उपचारित किया जा रहा है या नही, इसके लिए नवीन प्रौद्योगिकी की सहायता ली जानी चाहिए। जो न्यूनतम प्रदूषण कारी हो।
6. औद्योगिक क्षेत्रों के वायुमण्डल की नियमित जांच करके प्रदूषण को निर्धारित मानदण्डों तक सीमित रखने के उपाय किए जायें, क्योंकि प्रदूषण नियंत्रण नियमों के प्रावधानों के तहत उद्योगपति प्रदूषण नियंत्रण उपकरण की व्यवस्था तो कर लेते हैं, परन्तु अधिक व्यय भार के कारण नियमित उपयोग में नही लेते है।
7. उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों को प्रदूषण से तत्काल बचाव व दीर्धावधि सुरक्षा की शिक्षा देनी चाहिए तथा उन्हें यह भी बताना चाहिए कि अप्रत्याशित विषम परिस्थितियों में वह क्या करें? यदि भोपाल गैस कांड के मृतक श्रमिकों को इसका ज्ञान होता तो वे अपना बचाव कुछ सीमा तक कर सकते थे।
8. नाइट्रोजन ऑक्साइड के उत्सर्जन को रोकने के लिए दहन प्रणाली (combustion system) में परिवर्तन किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए 5500 सेन्टीग्रेड तापमान पर कोयले को जलाने से नाइट्रोजन ऑक्साइड का कम मात्रा में उत्सर्जन होता है, जबकि 16500 सेन्टीग्रेड या उससे अधिक तापमान पर कोयले के दहन से अधिक मात्रा में उत्सर्जन होता है।
9. औद्योगिक दुर्घटनाओं से निबटने के लिए उद्योगों के सुरक्षा प्रबन्धकों की नियमित जांच की जानी चाहिए।

5.7.2 वाहनों द्वारा होने वाले वायु प्रदूषण पर नियन्त्रण के उपाय (Measure of Controlling Vehicular Air Pollution)

स्वचालित वाहनों विशेषकर रेल, मोटरकार, बस, ट्रक, टेम्पो, स्कूटर आदि से उत्सर्जित प्रदूषकों को कम करने के लिए निम्न उपाय कर सकते है।

1. वाहनों में पुराना इंजन होने से वायु प्रदूषण अधिक होता है इसलिए पुराने वाहनों पर रोक लगानी चाहिए तथा वाहनों की भली–भांति ट्यूनिंग होनी चाहिए।
2. वाहनों से उत्पन्न धुंए पर छलनी तथा पश्च ज्वलक (After Burner) लगाया जाना चाहिए।
3. कम हानिकारक वाहन उत्पादों की खोज की जानी चाहिए जैसे सौर ऊर्जा चालित मोटर कार क्योंकि सौर ऊर्जा से संचालित वाहनों से वायु प्रदूषण बिल्कुल नहीं होता है अत: इन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए।
4. स्वचालित वाहनों से ठोस एवं तरल कणिकीय पदार्थों एवं प्रदूषक गैसों के उत्सर्जन कम करने के लिए समुचित यंत्रीय विधियों (Mechanical Devices) का प्रयोग किया जाना चाहिए।
5. वाहनों के प्रदूषणों के बारे में राज्य सरकारों के सम्बन्धित विभागों द्वारा वाहनों की नियमित जांच होनी चाहिए।
6. व्यस्ततम सड़कों के किनारे ऐसे वृक्ष लगाए जाने चाहिए जो परिवहन से हुए प्रदूषण को अधिकतम मात्रा में अवशोषित कर ऑक्सीजन को निस्सृत कर सकें।
7. वाहनों में जीवाश्म ईंधन का प्रयोग कम से कम किया जाना चाहिए। इसके स्थान पर वैकल्पिक ईंधन जैसे सी एन जी., विद्युत, सौर ऊर्जा, मीथेन का उपयोग बढ़ाना चाहिए तथा इनका उपयोग करने वाले को अनुदान प्रदान करके प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। दिल्ली में सी.एन.जी. आधारित वाहनों के प्रयोग से वायु प्रदूषण की कमी में उत्साहजनक परिणाम मिले हैं। रेलों में कोयले की जगह विद्युत चालित इंजन का प्रयोग बढ़ाना चाहिए।
8. वाहनों में उपयोग होने वाले डीजल में संयोजी पदार्थ मिलाकर तथा पेट्रोल से सीसा और सल्फर निकालकर प्रदूषण कम किया जा सकता है क्योंकि वाहनिक पदार्थों में सबसे खतरनाक सीसा होता है।
9. नगर नियोजकों को मार्गों का डिजायन इस प्रकार तैयार करना चाहिए कि नगर में यातायात अवरूद्ध होने की समस्या नहीं आये। एक ही दिशा में यातायात प्रवाह व्यवस्था लागू करके यातायात अवरोध को कम किया जा सकता है जिससे वायु प्रदूषण में कमी आ सकती है।

5.7.3 अन्य प्राकृतिक एवं मानवीय कारणों से उत्पन्न होने वाले वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपाय (Measures of Controlling Air Pollution Caused by Nature and Man)

1. वायु मण्डल में सकल प्रदूषण भार (Total Pollution Load) को घटाने के लिए सक्रिय प्रयास किए जाने चाहिए।

2. मानव समाज को असाध्य क्षति पहुंचाने वाले घातक तथा आपदापन्न वायु प्रदूषण को पूर्णतया समाप्त किया जाना चाहिए।
3. घरों में परम्परागत् ईंधन (लकड़ी, कोयला, गोबर और मिट्टी का तेल) के स्थान पर सौर ऊर्जा, बायोगैस, एल.पी.ज़ी. कुकिंग गैस तथा कुकिंग रेन्ज आदि का प्रयोग करके कार्बन मोनो ऑक्साइड के उत्सर्जन को कम किया जा सकता है।
4. अंतरिक्ष अभियान कार्यक्रम को भी नियंत्रित करना आवश्यक है।
5. वायु प्रदूषण को रोकने के लिए वनों का काटना रोककर अधिक से अधिक वृक्षारोपण करना चाहिए इसके लिए भूमि के 33 प्रतिशत भाग पर वनों का होना जरूरी है। क्योंकि वायुमण्डल में उत्सर्जित गैसें जब वृक्षों के सम्पर्क में आती हैं तो उनकी पत्तियों में मौजूद असंख्य छिद्रों के माध्यम से प्रवेश करती हैं तथा पत्तियों में विद्यमान नमी द्वारा अवशोषित होकर अनेक रासायनिक क्रियाओं द्वारा योगिकों में परिवर्तित हो जाती हैं। पेड़ों की अवशोषण शक्ति उनकी प्रजाति, संरचना, आयु, स्थानीय मौसम, प्रकाश आदि पर निर्भर करती है, सदैव हरे भरे रहने वाले पेड़ प्रदूषण को अवशोषित करने की ज्यादा क्षमता रखते है।
6. वायु प्रदूषकों को ऊपरी वायुमंडल में विसरित एवं प्रकीर्ण करने के लिए ठोस कदम उठाने चाहिए ताकि धरातलीय सतह पर इन प्रदूषकों का सान्द्रण कम हो जाए।
7. प्राण घातक प्रदूषण करने वाली सामग्रियों के उत्पादन एवं उपभोग में तुरन्त रोक लगानी चाहिए जैसे ओजोन को कम करने वाले (क्लोरो फ्लोरो कार्बन CFC . फियान 11 एवं 12) के उत्पादन एवं उपभोग में भारी कटौती करनी चाहिए।
8. समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों, सरकारी संस्थानों तथा सरकारी कर्मचारियों एवं अधिकारियों, राजनीतिज्ञो एवं उद्योगपतियों को वायु प्रदूषण से मानव शरीरों पर पड़ने वाले घातक प्रभावों तथा उनके घातक परिणामों के प्रति जागृत करना चाहिए तथा वायु नियत्रंण कार्यक्रमों में उनका सहयोग लेना चाहिए।
9. वायु प्रदूषणों के खतरों से बचने एवं इसको कम करने के लिए पर्यावरणीय शिक्षा एवं जनजागृति आवश्यक है। इस दिशा में पश्चिमी देशों के नागरिक पर्यावरण प्रदूषण के प्रति विशेष जागरूक हैं। उदाहरण के लिए एमस्टरडम नगर के नागरिक मोटर गाड़ियों को छोड़कर साइकल पर चलना पसन्द करते हैं। पर्यावरणीय शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम में आवश्यक विषय वस्तु एवं क्रियाओं का समावेश किया जाना चाहिए। रेडियो, टी.वी., समाचार पत्र– पत्रिकाओं, संगोष्ठी और परिचर्चा, शोध और उनका प्रकाशन जागरूकता के लिए विशेष महत्वपूर्ण है।
10. वर्तमान वायु प्रदूषण के स्तरों की जांच के लिए व्यापक सर्वेक्षण तथा अध्ययन किया जाना चाहिए, इसके साथ ही प्रदूषण की नियमित मानीटरिंग की जानी चाहिए। इस तरह से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर वायु प्रदूषण के भावी स्तर एवं उससे उत्पन्न होने वाले कुप्रभावों की समय से पूर्व घोषणा की जानी चाहिए।

11. वायु प्रदूषण के नियंत्रण के वर्तमान तरीकों में सुधार किया जाना चाहिए तथा प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए नए प्रभावी तरीकों की खोज के लिए कारगर प्रयास किये जाने चाहिए।
12. रूपान्तर द्वारा प्रदूषकों पर नियंत्रण किया जा सकता हैं। अनेक रासायनिक क्रियाओं द्वारा हानिकारक रसायनों की प्रकृति को बदला जा सकता है, इस दिशा में पर्याप्त शोध के साथ–साथ सस्ते साधन खोजना भी आवश्यक है। इस सम्बन्ध में जैव प्रौद्योगिकी काफी उपयोगी हो सकती है।
13. रसोईघरों में दमघोटू वातावरण से मुक्ति के लिए स्वतंत्र वायु प्रवाह हेतु पर्याप्त संख्या में खिड़कियाँ, रोशनदान तथा चिमनियाँ होनी चाहिए।
14. बस्तियों में कूड़ा करकट, सड़ी गली वस्तुओं, मृत जानवरों आदि को इधर उधर न डालकर बस्ती से बाहर नियत स्थान पर डाला जाए तथा गन्दे नालों की नियमित सफाई की व्यवस्था की जावें।
15. आबादी क्षेत्रों में घातक व ज्वलनशील रसायनों के भंडारण पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाना चाहिए।
16. विद्युतग्रहों में उत्तम किस्म के कम प्रदूषक छोड़ने वाले कोयले का प्रयोग किया जाना चाहिए। सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा आदि गैर परम्परागत स्रोतों का विकास किया जाना चाहिए।
17. परमाणु घरों में रेडियोधर्मी विकिरण के रिसाव को रोकने के पर्याप्त प्रबन्ध होने चाहिए तथा परमाणु परीक्षणों पर रोक लगनी चाहिए।
18. वनों में लगने वाली आग पर तुरंत नियंत्रण की व्यवस्था होनी चाहिए।
19. वायु की दुर्गन्धता को कम करने के लिए सुगन्ध देने वाले पेड़ पौधे लगाने चाहिए।
20. वायु प्रदूषण नियत्रंण सम्बन्धी कानूनो को सख्ती से लागू करना चाहिए।

बोध प्रश्न – 4

1. वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण क्या है?

   .....

   .....

2. कणिकीय पदार्थों को किससे फिल्टर किया जाता है?

   .....

   .....

3. वाहनों में उपयोग आने वाले पेट्रोल से कौन से पदार्थ निकाल कर वायु प्रदूषण कम किया जा सकता है?

   .....

   .....

4. ओजोन परत को सबसे ज्यादा प्रभावित करने वाला वायु प्रदूषण कौन सा है?

   .....

   .....

5. किस नगर के लोग वायु प्रदूषण को कम करने के लिए कार की जगह साइकल पर चलते है?

.....

.....

5.8 सारांश (Summary)

वायुमण्डल में 78 प्रतिशत नाइट्रोजन, 21 प्रतिशत ऑक्सीजन तथा 1 प्रतिशत आर्गन तथा अन्य गैसें होती हैं। जिनमें ऑक्सीजन गैस जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक गैस है। वायुमण्डल में वायु प्रदूषक तत्वों की वजह से वायु की गुणवत्ता में परिवर्तन हो रहा है।

मनुष्य के क्रिया कलापों द्वारा बहुत अधिक हानिकारक प्रदूषक जैसे सल्फर डाई ऑक्साइड, नाइट्रोजन, ऑक्साइड, कार्बन मोनो ऑक्साइड, क्लोरो फ्लोरो कार्बन तथा निलंबित कण है।

वायु के प्रभावित करने वाले प्रदूषकों के स्रोतों में प्रमुख प्राकृतिक स्रोत एवं मानवीय स्रोत हैं। इनके द्वारा उत्पन्न प्रदूषकों से भूमण्डल का तापमान प्रभावित होता है। बढ़ी हुई मात्रा में कार्बन–डाइ– ऑक्साइड, मीथेन और अन्य गैसें पृथ्वी से निकलने वाले अवरक्त विकिरण को सोख लेती है तथा इसे ऊपर नहीं जाने देती है इससे तापमान बढ़ जाता है जिसे ग्रीन हाउस प्रभाव के रूप में जाना जाता है।

अन्य प्रदूषकों में सबसे ज्यादा प्रभावित करने वाला प्रदूषक क्लोरो फ्तोरो कार्बन जो ओजोन की परत में पहुंचकर ओजोन को क्षीण करते है जिनका सीधा, प्रभाव मानव तथा वनस्पति पर पड़ता है।

मोटर गाड़ियों से निकलने वाला धुँआ इत्यादि सूर्य के प्रकाश में प्रकाश रासायनिक धूम कुहरा बनाता है जो जैव मण्डल पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

वायु प्रदूषण की प्रक्रिया स्थानीय न होकर विश्व स्तरीय है। अत: इनके नियंत्रण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास होने चाहिए।

5.9 शब्दावली (Glossary)

- **प्रदूषण :** अवांछित या हानिकारक पदार्थों से पर्यावरण के किसी घटक को अशुद्ध करना।
- **ब्रोकाइटिस :** शोध के परिणाम स्वरूप फेफड़ों की श्वास नलिकाओं में सूजन, इसके साथ लगातार खांसी आती है।
- **हरित गृह प्रभाव :** वायुमण्डल में कुछ गैसों के प्रभाव से धरती की उष्मा बाहर नहीं जा पाती है इससे उत्पन्न प्रभाव को हरित गृह प्रभाव कहते है।
- **अक्ल वर्षा :** वायु में सल्फर डाई ऑक्साइड (SO_2) घुलकर रासायनिक अभिक्रिया से सल्फ्यूरिक एसिड में बदलकर वर्षा के साथ जमीन पर गिरना।
- **ओजोन क्षीणता :** वायुमण्डल में पायी जाने वाली क्लोरो फ्लोरो कार्बन (CFC) से ओजोन परत में क्षीणता आना।
- **कार्बनिक प्रदूषक :** जैसे कार्बन हाइड्रोजन, परागकण आदि।
- **अकार्बनिक प्रदूषक :** जैसे नाइट्रोजन, सल्फर, धातुकण आदि।

- **अन्तर्दृश्यता :** वायुमण्डल में स्पष्ट दिखाई देना।

5.10 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. सिंह, सविन्द्र : **पर्यावरण भूगोल,** प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1991
2. Stamp, Dudly : **A Glossary of Geographical Terms,** Longman, London, 1928
3. Singh, R.N. and Morya, S.D. : **A Definitional Dictionary of Geography,** Sharda Pustak Bhawan, Allahbad, 1998
4. रघुवंशी, अरूण एवं चन्द्रलेखा : **पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी भूगोल,** हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, म.प्र., 1995
5. Mathur, H.S. : **Essentials of Biogeography,** Pointer Publication, Jaipur, 1988
6. Arora, M.P. : **Ecology,** Himalaya Publishing House New Delhi, 1992
7. Hagget, Peter : **Progress in Geography Vol.4,** Edward Publishing, London, 1978
8. उमर कुट्टी ए.एन.पी. : **समुद्र विज्ञान,** नेशल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1995
9. Gurjar, R.K. and Shukla, Laxmi : **Water Resources and the People,** Pointer Publication, Jaipur, 1998
10. मामोरिया, सी.बी : **मानव भूगोल,** साहित्य भवन, आगरा, 1998
11. शर्मा, दामोदर एवं हीर, महर्षि : **जल एवं प्रदूषण,** साहित्यागार, जयपुर, 1996
12. शर्मा, दामोदर एवं हीर, महर्षि. **हमारा पर्यावरण,** साहित्यागार, जयपुर, 2002
13. Maxwell, K.E. : **Environment of Life,** Dkkenson Pub. Co. California, 1973
14. Awasthi, N.M. : **पर्यावरणीय अध्ययन,** लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, जयपुर, 2004
15. श्रीवास्तव, वी.के. एवं राव बी.पी. **पर्यावरण और पारिस्थैतिकी वसुन्धरा प्रकाश,** 236 दाउदपुर, गोरखपुर, 2002
16. सक्सेना, हरिमोहन : **पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी भूगोल,** राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1994
17. जोशी, रतन : **पर्यावरण अध्ययन,** साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2007
18. गुर्जर, रामकुमार तथा जाट,बी.सी. : **पर्यावरण अध्ययन,** पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2004
19. मित्तल, संतोष तथा अग्रवाल, मीनू : **21वीं सदी में पर्यावरण एवं पर्यावरण शिक्षा,** नवचेतना पब्लिकेशन, जयपुर, 2004
20. अमित कुमार : **पर्यावरण अध्ययन,** विश्व भारतीय पब्लिकेशनस्, नई दिल्ली, 2006

21. Carg, M.R. Bansal, V.K. and Tiwarna, N.S. : **Environmental Pollution and Protection,** Deep and Deep Publication Pvt. Ltd, New Delhi, 2001
22. गुर्जर, राम कुमार : **पर्यावरणीय समस्याएं,** पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2000
23. इराक भरूचा : **पर्यावरण अध्ययन,** विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के लिए निर्मित, आरियेन्ट लोंगमेन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2006
24. कपूर, नीरा एवं परवीज, मसूद **मानव पर्यावरण इकाई,** 1 से 6 इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 1999
25. Manivasakam, N. : **Environmental Pollution,** National Book Trust, India, 2002
26. दुबे, वेद प्रकाश : **पर्यावरण की पुकार,** मगध प्रकाशन, दिल्ली–32, 1991
27. हरिमोहन : **पर्यावरण और लोक अनुभव,** तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, 1991
28. Kalwar, S.C. : **Environmental Issue and Sustainable Development,** Pointer Publishers, Jaipur, 2003
29. कलवार, सुगन चन्द : **पर्यावरण संरक्षण,** पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2000

5.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. नाइट्रोजन, ऑक्सीजन
2. ऑक्सीजन
3. कि.मी. तक
4. ध्वनि संचरण नहीं होता

बोध प्रश्न – 2

1. गैसीय, सूक्ष्म कण, जैविक
2. 2, प्राकृतिक और मानवीय
3. प्राकृतिक
4. 2, धात्विक और अधात्विक
5. 2, कार्बनिक और अकार्बनिक

बोध प्रश्न – 3

1. श्वसन तंत्र
2. कैंसर, हृदयरोग, मधुमेह
3. यकृत, आहार नाल
4. संवेदनशील
5. स्मोग सिटी

बोध प्रश्न – 4

1. उद्योग धन्धे तथा यातायात में काम आने वाले वाहन
2. बैग फिल्टर
3. सीसा और सल्फर
4. क्लोरो फ्लोरो कार्बन CFC
5. एमस्टरडम

5.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर चार पंक्तियों में दीजिए।
    1. हरित गृह प्रभाव क्या है?
    2. अम्ल वर्षा क्या है? समझाइये।
    3. वायु प्रदूषण से ताजमहल किस प्रकार प्रभावित हो रहा है?
    4. ओजोन परत में छिद्र कैसे हो रहे हैं।
    5. वायु को प्रदूषित करने वाली गैसें कौन–कौन सी हैं।
2. निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए।
    1. वायु प्रदूषण क्या है? वायु प्रदूषण के स्रोत क्या हैं?
    2. वायु प्रदूषण के कारणों एवं दुष्प्रभावों का वर्णन कीजिए।
    3. वायु प्रदूषण के कारण एवं उसको नियंत्रित करने के उपाय बताइये।
    4. वायु प्रदूषण वर्तमान में सबसे बड़ा अभिशाप है। अन्य प्रदूषणों के संदर्भ में इस कथन की विवेचना कीजिए।
    5. सामान्य वायु प्रदूषक क्या हैं? उनके मुख्य स्रोतों की विवेचना करते हुए मानव स्वास्थय पर उनके प्रभावों की व्याख्या कीजिए।
    6. औद्योगिकरण से होने वाले वायु प्रदूषण को नियन्त्रित करने के उपायों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
    7. यातायात में काम आने वाले वाहनों से होने वाले वायु प्रदूषणों का प्रभाव तथा उसे कम करने के उपाय लिखिए।

इकाई - 6 :जल प्रदूषण : स्रोत, प्रभाव एवं नियंत्रण के उपाय (Water Pollution : Sources, Effects and Measures of its control)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 जल का महत्व

6.3 जल के बारे में कुछ तथ्य

6.4 जल प्रदूषण का अर्थ एवं परिभाषाएं

6.5 जल की गुणवत्ता

6.6 जल प्रदूषण के कारण

6.7 जल स्रोत

6.8 जल संसाधनों का उपयोग

6.9 प्रमुख जल प्रदूषक

6.9.1 स्रोतों के आधार पर

6.9.2 विगलन शीलता के आधार पर

6.10 जल प्रदूषण के स्रोत

6.10.1 प्राकृतिक स्रोत

6.10.2 मानवीय स्रोत

6.10.2.1 घरेलू बहिस्त्राव

6.10.2.2 वाहित मल

6.10.2.3 औद्योगिक बहिस्त्राव

6.10.2.4 कृषि बहिस्त्राव

6.10.2.5 तेलीय प्रदूषण

6.10.2.6 रेडियो धर्मी अपशिष्ट

6.10.2.7 धात्विक एवं अधात्विक खनन

6.10.2.8 तापीय प्रदूषण

6.10.2.9 सामाजिक स्रोत

6.11 जल प्रदूषण के प्रभाव

6.11.1 मानव पर प्रभाव

6.11.2 जन्तुओं पर प्रभाव

6.11.3 वनस्पति पर प्रभाव

6.11.4 कृषि पर प्रभाव
6.11.5 अन्य प्रभाव
6.12. जल प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय
6.13. सारांश
6.14. शब्दावली
6.15. संदर्भ ग्रन्थ
6.16. बोध प्रश्नों के उत्तर
6.17. अभ्यासार्थ प्रश्न

6.0 उद्देश्य (Objectives)

- जल की उपयोगिता एवं महत्व को जानेंगे,
- जल प्रदूषण के विभिन्न स्रोतों की जानकारी प्राप्त होगी,
- जल प्रदूषण के विभिन्न प्रकारों की जानकारी होगी,
- वाहित मल का अपजल के प्राथमिक एवं द्वितीयक उपचारणों की तुलना कर सकेंगे,
- भूमिगत जल प्रदूषण के बारे में जान पायेंगे,
- समुद्री जल प्रदूषण के बारे में अवगत होंगे,
- जल प्रदूषण से मानव, जीव–जन्तुओं तथा कृषि पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में जान पायेंगे,
- जल प्रदूषण के नियन्त्रणों के उपाय जान सकेंगे

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

जब जल में प्राकृतिक या मानवीय कारणों से अपशिष्ट पदार्थ आकर मिल जाते हैं जो उसके प्राकृतिक गुण में परिवर्तन ला देते हैं तथा उसके उपयोग से मानव, जन्तु, जलीय जीव, वनस्पति आदि प्रभावित होते हैं तो वह जल प्रदूषित कहलाता है।

जल जीवमण्डल के लिए एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। क्योंकि जीवमण्डल के पोषक तत्वों के संचरण तथा चक्रण में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक तरफ तो औद्योगिकरण, नगरीय करण तथा मानव जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण जल की मांग में गुणोत्तर वृद्धि हुई है, तो दूसरी तरफ इसकी गुणवत्ता में भारी कमी आई है। यद्यपि जल में स्वयं शुद्धि करण की क्षमता होती है। परन्तु जल मानव जनित स्रोतों से उत्पन्न प्रदूषकों का जल में इतनी अधिक मात्रा में मिश्रण हो जाये कि वह शुद्धि करण की क्षमता से अधिक हो जाये तो जल प्रदूषित हो जाता है। जल के प्रदूषित होने पर इसके उपयोग से मानव, वनस्पति, जलीय जीव–जन्तुओं पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यदि हम जल प्रदूषण को नियंत्रित नहीं कर पायेंगे तो उसके बहुत दुष्परिणाम होंगे। इस अध्याय में आगे जल प्रदूषण उसके प्रभाव तथा प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपायों के बारे में विचार किया जायेगा।

6.2 जल का महत्व (Importance of Water)

जल जीवन का आधार है। जल वह अनिवार्य पदार्थ है जिसके कारण पृथ्वी पर जीवन संभव हुआ तथा जल से ही प्रतिपालित हो रहा है। जल के बिना जीवन संभव नहीं होता अर्थात **"जल ही जीवन है"।**

मेक्सवेल के अनुसार' "जल आर्थिक, सांस्कृतिक और जैविक दृष्टि से पृथ्वी का अत्यधिक उपयोगी संसाधन है। हम इसे पीते हैं, पुन: बाहर निकालते हैं, सान करते हैं, मछली पकड़ते हैं, खाना बनाते है, इससे ठंडा करते हैं, पौधों को सींचते हैं तथा इसको ऊर्जा, शक्ति, परिवहन तथा मनोरंजन के लिए उपयोग करते हैं"।

गोथे के अनुसार "प्रत्येक वस्तु जल से ही उद्भावित हुई है और जल द्वारा ही प्रतिपालित होती है।" भारतीय कवि रहीम ने जल के महत्व के लिए लिखा है कि –

"रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।

पानी गये न ऊबरे, मोती, मानष, चून। ।

रहीम की उक्त पंक्तियां पानी के लिए कितनी सटीक है इसका अन्दाजा आम आदमी आज लगा सकता है। 'जल ही जीवन है या बिना पानी सब सून' आज सार्थक होती उक्ति है। 500 ई.पू. **पिण्डारोज नामक ग्रीक कवि** ने लिखा है कि 'जल सभी वस्तुओं में सर्वोत्तम है।"

मानव शरीर का 2/3 भाग जल है तथा रक्त का 80 प्रतिशत अंश जल होता है अत: बिना जल के मानव का अस्तित्व ही नहीं है। विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताएं नील, टिगीरस, सिंधु आदि नदी घाटी क्षेत्रों में जल स्त्रोतों के सहारे ही पनपी थी तथा वर्तमान में भी दुनिया के अधिकतम बड़े नगर पानी के स्त्रोतों के पास ही आबाद है।

पृथ्वी के 71 प्रतिशत भाग पर पृथ्वी पर प्राप्त जल का 97 प्रतिशत समुद्रों में है जो इतना खारा है कि जो ना तो पीने के काम आता है ना ही सिंचाई के काम आ सकता है, शेष 3 प्रतिशत ताजा जल में से 2.997 प्रतिशत ध्रुवों पर बर्फ या हिमानियों (glaciers) के रूप में है। इस तरह पृथ्वी के कुल जल का केवल 0.003 प्रतिशत ही हमें मिट्टी की नमी, भूजल, वाष्प, झीलों एवं नदी नालों के रूप में उपलब्ध है। सामान्य शब्दों में यह कह सकते हैं कि 100 लीटर जल में से सिर्फ 0.003 लीटर यानि आधा चम्मच पानी ही ताजा जल के रूप में प्राप्त होता है, इसलिए हमारे लिए जल एक कीमती संसाधन है और इसका महत्व हमारे लिए सर्वाधिक है।

6.3 जल के बारे में कुछ तथ्य (Some Facts About the Water)

विश्व में जीवनदायी जल के प्रदूषित होने से स्थिति किस प्रकार भयावह है जिसके बारे में वॉटर

---

1. Maxwell, K.E. Water is the most useful natural resource on the earth economically, culturally, and biologically. We drink it, eliminate with it, bath in it, fish in it, cook in it, cool with it, irrigate plants with it and use it for energy, power transformation and recreation.

सप्लाई एण्ड सेनिटेशन कोलेबोरेटिव काउन्सिल के द्वारा निम्न जानकारियां दी गई है।

1. विश्व की कुल जनसंख्या के छठे भाग अर्थात 1 अरब 10 करोड़ लोगों की शुद्ध जल तक पहुंच नहीं है।
2. विकासशील देशों में प्रतिवर्ष 22 लाख से अधिक (जिनमें अधिकाशंत बच्चे होते हैं) लोग शुद्ध जल एवं स्वच्छता की सुविधा के अभाव में उत्पन्न बीमारियों के चलते काल का ग्रास बन जाते हैं।
3. प्रतिदिन 6 हजार बच्चे शुद्ध जल और साफ–सफाई के अभाव के कारण हुई बीमारियों से मर जाते है।
4. विश्वभर के समस्त चिकित्सालयों में हर समय कम से कम 50 प्रतिशत बिस्तर जल जनित बीमारियों से ग्रसित रोगियों से भरे होते है।
5. अफ्रीका एवं एशिया में महिलाओं द्वारा प्रतिदिन जल लाने के लिए तय की जाने वाली औसत दूरी 6 किलोमीटर है तथा सिर पर ढोए जाने वाले जल का औसत भार 20 किलोग्राम तक होता है।
6. पिछले दस वर्षो में डायरियां से मरने वाले बच्चों की संख्या द्वितीय विश्वयुद्ध से लेकर अब तक हुए युद्धों में से मारे गए लोगों से कहीं अधिक है।
7. 1998 में अफ्रीका में 3 लाख 8 हजार लोग युद्ध के चलते मारे गए लेकिन उससे छः गुना से भी अधिक लगभग 20 लाख लोग अतिसार (जल प्रदूषण के कारण) सम्बन्धी बीमारियों से मर गये।

6.4 जल प्रदूषण का अर्थ एवं परिभाषाएं (Meaning and Definition of Water Pollution)

प्राकृतिक जल में किसी प्रकार के अंवाछित पदार्थ मिल जाने पर यदि उसकी रासायनिक एवं भौतिक गुणवत्ता में कमी आ जाती है तो वह जल प्रदूषण कहलाता है। विद्वानों ने जल प्रदूषण को इस प्रकार परिभाषित किया है–

पी. वीवियर के अनुसार "प्राकृतिक तथा अन्य कारण से पानी की गुणवत्ता बदल जाए जिसके फलस्वरूप, भोजन, मानव–जीवन, पशुओं के स्वास्थ्य, कृषि, मछली पालन तथा अन्य प्रयासों पर दुष्प्रभाव पड़े उसे जल प्रदूषण कहते हैं।"[2]

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार "प्राकृतिक या अन्य स्रोतों से जब बाहय पदार्थ जल में मिल जाते हैं तब वे जीवधारियों तथा वनस्पतियों के लिए हानिकारक होते हैं क्योंकि जल की सामान्य ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है, जिसके दुष्प्रभाव होते हैं और महामारियां फैलती हैं" ।[3]

गिलपिन के अनुसार "जल की रासायनिक, भौतिक व जैविक विशेषताओं में मुख्यतः मानवीय क्रिया–कलापों से गिरावट आना ही जल प्रदूषण है।"

सी.एस. साउथविक के अनुसार "मानव तथा प्राकृतिक क्रिया–कलापों द्वारा प्राकृतिक जल के रासायनिक, भौतिक तथा जैविक गुणों में परिवर्तन को जल प्रदूषण कहते है।"

अमेरिकी जल स्वास्थ्य सेवा के अनुसार "जल में किसी प्रकार के अवांछित पदार्थ (कार्बनिक, अकार्बनिक विकिरण, जैविक आदि) की उपस्थिति जिसके कारण जल की विशेषताओं में कमी होकर घातक प्रभाव हो या जल की उपयोगिता में कमी आती हो, जल प्रदूषण कहलाता है"।
जल में अनावश्यक पदार्थों का अत्यधिक मात्रा में मिलना जिससे वह उस कार्य के लिए अनुपयुक्त हो जाए तथा वह मनुष्य, जन्तु तथा जलीय जीवों को क्षति पहुचाए।

6.5 जल की गुणवत्ता (Quality of Water)

शुद्ध जल रासायनिक दृष्टि से (H_2O) दो भाग हाइड्रोजन तथा एक भाग ऑक्सीजन का होता है । यह संयोजन पूर्ण रूप से शुद्ध जल में ही पाया जाता है। जल का हिमांक बिन्दु 0° सेन्टीग्रेड तथा कथनांक बिन्दु 100 सेन्टीग्रेड होता है। जल एक रंगहीन पदार्थ होता है जिसका अपना कोई रंग नहीं होता है बल्कि जल का एक गुण है कि जल को जिस पदार्थ में मिला दें वह उसमें मिलकर वैसा ही हो जाता है इसलिए एक भारतीय गीतकार ने अपने शब्दों में कहा है कि "पानी रे पानी तेरा रंग कैसा, जिसमें मिलादो लगे वैसा"। प्रकृति में पूर्ण शुद्ध जल नहीं मिल पाता है। क्योंकि जल की संघनन क्रिया में जलवाष्प जैसे ही वर्षा या हिमपात के रूप में वायुमण्डल में प्रवेश करती है तो उसमें अनेक गैस, धूल के कण एवं अशुद्धियाँ मिल जाती है जिससे जल शुद्ध नहीं रह पाता है। इसके पश्चात वर्षा के पानी का पृथ्वी पर प्रवाहित होने पर अनेक खनिज पदार्थ, रासायनिक पदार्थ तथा अन्य अशुद्धियाँ घुल जाती है। इस प्रकार शुद्ध जल उस जल को कह सकते हैं जिसमें मानव के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली अशुद्धता नहीं हो। स्वास्थ्यकर जल की निम्न विशेषताएं होती हैं –

1. जिसमें पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन का विलयन हो तथा कार्बोलिक अम्ल से युक्त हो।
2. जल गंधहीन, वर्णहीन तथा स्वादमुक्त हो।
3. जिस जल में रोग उत्पन्न करने वाला कोई जीवाणु नहीं हो।

जल की गुणवत्ता इस पर भी निर्भर करती है कि उसमें हानिकारक तत्वों की मात्रा कितनी कम है । 1971 में विश्व स्वास्थ्य संगठन W.H.O ने पेय योग्य जल के निम्नांकित मानक निर्धारित किए है

(अ) भौतिक मानक–पेयजल स्वच्छ, शीतल, निर्मल, गन्धरहित तथा स्वादमुक्त होना चाहिए।

(ब) रासायनिक मानक – इसका pH 7 से 8.5 के बीच हो तथा इसमें मिश्रित अशुद्धियों की

---

1. Water pollution is degined as a natural or induced change in the quality of water which renders it unsuitable or dangerous as regards food, human and animal health, agriculture, fishing or lisure pursuits" Vivier, P. 1958
2. Foreign material either from natural and other sources and contaiminated with water supplies and may be harmful to life because of their toxicity, reduction of normal oxygen level of water, asthetically unsuitable effects and spread of epidemics" WHO 1996

सीमा निर्धारित सीमा से अधिक नहीं हो। जो निम्न तालिका में दी गई है।

	अपद्रव्य पदार्थ	**उच्चतम निर्धारित सीमा मि.ग्राम/लीटर**
1	कुल ठोस पदार्थ	500.00
2	सम्पूर्ण कठोरता	2 मि. इका ग्राम /लीटर ((m.Eg/Litre)
3	कैल्सियम (ca)	75.00
4	मैग्रीशियम (Mg)	30.00
5	सल्फेट (SO_4)	200.00
6	क्लोराइड्स (Cl)	0.10
7	लोहा (Fe)	0.05
8	मैंगनीज (Mn)	0.05
9	ताम्बा (Cu)	5.00
10	जिंक (n)	0.05
11	आर्सेनिक (A)	0.005 अतिरिक्त, विषैले पदार्थ
12	कैडमियम (Cd)	0.05
13	साइनाइड (Cn)	0.05
14	सीसा (Pb)	0.001
15	पाटा (Hg)	0.001
16	फीनोलिक पदार्थ	0.001
17	फ्लोराइड	1.5

(स) जैविक मानक

	अपद्रव्य	**सर्वाधिक स्वीकार्य संख्या (M.P.M)**
1	बेसिलस कोलाई (B.Coli)	प्रति 100 मि.लि. में एक भी नहीं
2	अन्य कोलीफार्म बेक्टीरिया	10 से अधिक नहीं

प्राकृतिक जल में उपस्थित अपद्रव्यताओं को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

(1) निलम्बित अपद्रव्यताएँ (Suspended Impurities)

(2) कोलाइड अपद्रव्यताएँ (Colloidal Impurities)

(3) घुलित अपद्रव्यताएँ (Dissolved Impurities)

निलम्बित अपद्रव्यताएँ : ये अपद्रव्यताएं जैसे धूल के कण, मृदा, अनेक खनिज, शैवाल तथा अन्य जैव तथा अजैव पदार्थ बड़े कणों के रूप में जल में तैरते रहते हैं इनका आकार बड़ा होने की वजह से इन्हें जल से छान कर अलग किया जा सकता है। इन अपद्रव्यताओं का व्यास 1mm (माइक्रोमीटर) से अधिक होता है।

कोलाइडी अपद्रव्य : इन कणों का आकार 1 मिली माइक्रोमीटर से 1 माइक्रो मीटर तक होता है। जिन्हे छान कर जल से अलग नहीं किया जा सकता है। इनमें सिलिका ग्लास, विभिन्न धातुओं के ऑक्साइड, जैव पदार्थो के कण, बैक्टीरिया आदि है। इन अपद्रव्यताओं के कारण जल का रंग धुधंला हो जाता है। समुद्री जल का रंग नीला एवं लाल इन्ही कोलाइडी अपद्रव्यता के कारण दिखाई देता है।

धुलित अपद्रव्य : इनमें ठोस, द्रव्य एवं गैस होती है जो प्रवाह के समय जल में घुल जाती है इनका निस्तारण कठिन होता है। इनमें कार्बन डाई–ऑक्साइड (CO_2), सल्फर डाइ–ऑक्साइड (SO_2) मिथेन (CH_4) सोडियम (N) पोटेशियम (K), कैल्शियम (Ca) मैग्रीशीयम (MG), लौह (Fe) (मैगंनीज), अमोनियम (NH_4) आदि होते हैं।

6.6 जल प्रदूषण के कारण (Causes of Water Pollution)

जल प्रदूषण के कारणों को हम दो भागो में बांट सकते है।

1. प्राकृतिक
2. मानवीय

1. प्राकृतिक कारणों में सड़ी गली वस्तुएँ, जीव जन्तु, वनस्पति पदार्थ आदि जल स्रोतों में मिल जाने से होते हैं।
2. मानवीय कारणों को हम निम्न भागों में विभक्त कर सकते है–

(1) अपमार्जन

(2) वाहित मल

(3) कृषि उपयोगी पदार्थ

(4) ईंधनों का जल में मिलना

(5) रेडियोधर्मी पदार्थ

(6) जल का शोधन

6.7 जल के स्रोत (Source of Water)

पृथ्वी के कुल जल का 0.003 प्रतिशत पानी ही हमें उपयोग के लिए उपलब्ध हो पाता है। जिसकी उपलब्धता पृथ्वी के धरातल पर एवं भूमिगत जल के रूप में निम्नलिखित प्रकार से होती है।

जल के प्रमुख स्रोत दो प्रकार के हैं –

1. **पृष्ठ स्रोत (Surface Sources):** वर्षा, झीलें, तालाब, नदियाँ, बाँध, टाँके, आन्तरिक सागर, कुँए, झरने, नदी–नालों, दलदलों और कृत्रिम जलाशयों में मौजूद जल को पृष्ठ स्रोत जल (Surface Source water) कहते हैं।
2. **भौम स्रोत (Ground Source) :** जो जल रिसकर नीचे चला जाता है तथा मिट्टी और चट्टानों की सुराखों में भर जाता है वह (Ground Source Water) भीम स्रोत जल कहलाता है।

उपरोक्त स्रोतों से हमें जल की प्राप्ति निम्न प्रकार से होती है –

	पृष्ठ स्रोत	प्रतिशत	भौम स्रोत	प्रतिशत
1.	नदियाँ एवं झीलें	00.014	1 किमी की गहराई तक	48.3
2.	शुद्ध जल की झीलें	01.4	1 किमी से अधिक की गहराई तक	48.3
3.	लवणीय झीलें एवं आन्तरिक सागर	01.2	गहराई तक	
4.	मृदा जल	00.7		

स्पष्ट है कि मानवोपयोगी जल के प्रमुख स्रोत नदियाँ, झीलें, तालाब, झरने एवं कुँए हैं।

6.8 जल संसाधनों का उपयोग (Use of Water Resources)

जल को मानवीय उपभोग के लिए विभिन्न माध्यमों से भिन्न–भिन्न उपयोगों में लेते है जो निम्न है –

(1) घरेलू उपयोग (2) वाणिज्यीक उपयोग (3) औद्योगिक उपयोग (4) सार्वजनिक उपयोग (5) अग्निशामक उपयोग (6) निर्माण कार्य के लिए (7) कृषि के लिए (8) अन्य उपयोग

6.9 प्रमुख जल प्रदूषक (Main Water Pollutents)

जल का प्रदूषण विविध स्रोतों से उत्पन्न प्राकृतिक और मानवीय तत्वों से होता है। इन प्रदूषकों की भौतिक व रासायनिक विशेषता भिन्न–भिन्न होती है। इनमें से कुछ पूर्णत: घुल जाते हैं जबकि कुछ घुलनशील नहीं हैं। कुछ प्रदूषक जल का रंग बदलते हैं तो कुछ स्वाद बदलते हैं। ये सभी प्रदूषक जल की प्राकृतिक गुणवत्ता को हानि पहुंचाते हैं।

जल प्रदूषकों को इनके भौतिक और रासायनिक गुणों के आधार पर दो भागों में बांटा जा सकता है।

(क) **भौतिक प्रदूषक :** कीचड़, तेल, गन्ध, सूक्ष्म कण, जीवांश, कीटाणु, रंग आदि।

(ख) **रासायनिक प्रदूषक :** क्लोराइड, सल्फाइड, कार्बोनेट, अमोनिया, नाइट्रोजन, कीटनाशी दवा, रोगनाशी, शाकनाशी कृत्रिम रसायन, पारा, नमक, रेडियोधर्मी तत्व आदि

6.9.1 स्रोतों के आधार पर

स्रोतों के आधार पर प्रदूषकों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. **औद्योगिक प्रदूषक :** औद्योगिक अपशिष्ट, रासायनिक तत्व, (क्लोराइड, सल्फाइड, कार्बोनेट, अमोनिया, नाइट्रेटस आदि) गन्दा जल, भारी धात्विक पदार्थ (पारा, सीसा, जस्ता, तांबा, आणविक कचरा)
2. **कृषि जल प्रदूषक :** कीटनाशी दवा, रासायनिक उर्वरक, शाकनाशी रसायन
3. **नगरीय प्रदूषक :** वाहनों से उत्सर्जित पदार्थ, गन्दा जल, मल–मूत्र, कचरा, मृत शरीर (शव), कपड़े धाने वाले अपमार्जक आदि

4. **प्राकृतिक प्रदूषक :** ज्वालामुखी से निकला पदार्थ, अपरदन अवसाद, विघटित जैविक सामग्री।

6.9.2 विगलनशीलता के आधार पर

1. विगलित होने वाले प्रदूषक
2. विगलित नहीं होने वाले प्रदूषक

6.10 जल प्रदूषण के स्रोत (Sources of Water pollution)

जल प्रदूषकों के जनन का कोई एक विशिष्ट स्रोत नहीं होता है। अधिकांशत जल–प्रदूषकों के उत्पन्न होने के प्रमुख कारण मानव द्वारा विभिन्न पदार्थों का निस्तारण है परन्तु प्रकृति भी इसमें प्रमुख सहयोगी है। निम्न सूची में जल प्रदूषण के स्रोतों को दर्शाया गया है –

जल प्रदूषण के स्रोत

	प्राकृतिक	**मानवीय**
1.	मृदा अपरदन	1. घरेलूबहिस्रोत
2.	जीवाशं पदार्थ	2. वाहित मल
3.	पौधों की पत्तियां	3. औद्योगिक बहिस्रोव
4.	गैसें	4. कृषि बहि: स्राव
5.	खनिज पदार्थ	5. तापीय :
6.	ज्वालामुखी राख	(अ) समुद्रों में किए जाने वाले परमाणु विस्फोट
		(ब) अन्तरिक्ष यानों को महासागर में उतारने से
		(स) विभिन्न उपयोगों में लिए गए गर्म जल को छोड़ने से
		6. तेलीय पदार्थ
		7. रेडियोधर्मी पदार्थ
		8. सामाजिक स्रोत

6.10.1 प्राकृतिक स्रोत (Natural Sources)

प्रकृति द्वारा प्रदत्त जल को कुछ प्राकृतिक पदार्थ ही प्रदूषित करते है। प्राकृतिक रूप से जल को प्रदूषित करने में विभिन्न गैसें, खनिज, वनस्पति, मृदा अपरदन, जीवांश पदार्थ, पौधों की पत्तियाँ, ज्वालामुखी राख, जीव–जन्तुओं का मल–मूत्र है। यद्यपि इन तत्वों से जल प्रदूषण धीमी गति से होता है। परन्तु इनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। अनेक प्राकृतिक क्रियाओं द्वारा जल में विभिन्न पदार्थो का समावेश अघुलनशील रूप में या घुलित अवस्था में होता है। ये पदार्थ जैव तथा अजैव, कार्बनिक अथवा अकार्बनिक, रेडियो सक्रिय अथवा निष्क्रिय, विषैले अथवा हानिरहित हो सकते है इनमें प्रमुखत: मृदा के कण, मृत्रिका, सोडियम, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, लौह, मैंगनीज आदि की मात्रा अधिक होने पर जल को प्रदूषित करती है। कुछ विषैली धातुएं जैसे निकल, बेरियम, बेरीलियम, कोबाल्ट, सीसा, कैडमियम, पारा, वैनोडियम, आर्सेनिक आदि हैं। आर्सेनिक एक प्रकार का विष होता है जो भूमिगत जल में मिल जाता है। हमारे देश में बिहार व प.बंगाल में इसकी समस्या मिलती है। इन तत्वों में अनुकूलतम अनुपात

के अनुसार पारा 0.1 Mg/Litre, सीसा 0.01–0.05 Mg/Litre व केडमियम 1.00–10.00 Mg/Litre तक सान्द्रव सामान्य रहता है। जल में इन तत्वों की मात्रा में वृद्धि होने पर जल को प्रदूषित कर हानिकारक बना देता है। जल प्रदूषण प्राकृतिक स्रोतों के द्वारा कभी धीमी प्रक्रिया के रूप में तो कभी आकस्मिक कारणों से होता है। ज्वालामुखी द्वारा प्रदूषण होना एक आकस्मिक प्रक्रिया है। ज्वालामुखी उदगार से निकली राख, धूल आदि वर्षा के साथ प्रवाहित होकर जल में मिल जाती है एवं वायुमण्डल में उड़कर जाने वाली राख, धूल एवं गैसें वर्षा के समय पानी के साथ मिलकर जमीन पर आ जाती है जो वनस्पति के लिए हानिकारक होती है। वर्षा का पानी जिन स्थानों पर संग्रहित होता है वहां भूमि में स्थित खनिज पदार्थ तथा अन्य धातुएं जल में मिल जाती है।

वर्षा काल में नदियों, तालाबों, आदि के जल में मृदा अपरदन के द्वारा मृदा के कणों के मिलने से जल अत्यधिक मटमैला हो जाता है परन्तु कुछ समय पश्चात मृदा कणों के तली में जमने से स्वत: ही ठीक हो जाता है। मृदा के जल में मिलने में जल का रंग, स्वाद व गुणवत्ता में परिवर्तन आ जाता है तथा मृदा कणों के तली में जमते रहने से तालाबों रख झीलों की भराव क्षमता कम हो जाती है।

पौधों एवं जन्तुओं के विघटन एवं वियोजन के कारण जीव–जन्तुओं के मल–मूत्र के कारण, मृत पादप तथा जन्तुओं के कारण भी जल प्रदूषित होता है। जल में उत्पन्न होने वाली वनस्पति की मात्रा के अधिक होने के कारण भी जलीय पारिस्थितिकी प्रभावित होती है।

6.10.2 मानवीय स्रोत (Human Sources)

यद्यपि कभी कभी जल प्रदूषण के मानवीय स्रोत, प्राकृतिक कारणों में इस प्रकार मिले हुए होते है कि स्पष्टत: दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं कर सकते है। उदाहरण के लिए फ्लोराइड एक प्राकृतिक जल प्रदूषक है परन्तु सीरेमिक उद्योग, फास्फेट उर्वरक संयत्र और एलूमिनियम के कारखाने जैसी औद्योगिक इकाइयों द्वारा भी निकलता है तो यह मानवीय स्रोत में आ जाता है। इस प्रकार मानवीय स्रोतों में कुछ ऐसे प्रदूषक भी हो सकते हैं जो किसी न किसी रूप में प्राकृतिक स्रोत से भी जुड़े हों।

वर्तमान में पूरे विश्व में आर्थिक विकास तथा औद्योगिकरण की बढ़ती स्पर्धा से जल प्रदूषण एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बन गई है। प्रकृति से प्राप्त जल को मानव अपने निजी स्वार्थों के कारण प्रदूषित कर रहा है इसीलिए यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वर्तमान में जल प्रदूषण मुख्यतया: मानव की देन है। एक–ओर जनसंख्या में तीव्र वृद्धि, तीव्र नगरीयकरण, औद्योगिक स्पर्धा, विभिन्न साधनों से विद्युत उत्पादन, रासायनिक एवं तैलीय पदार्थो के उपयोग में बेतहाशा वृद्धि तो दूसरी ओर शुद्ध पेय जल में कमी आ रही है। मानव अविवेकपूर्ण तरीकों द्वारा जल स्रोतों को प्रदूषित करके अपने भविष्य को एवं भावी पीढ़ी के जीवन का अन्धकारमय बना रहा है।

जल प्रदूषक से कुछ मानव स्रोतों पर यहाँ कुछ विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं। जिनमें घरेलू वाहित मल, औद्योगिक अवशेष, कृषि अवशेष, रेडियोधर्मी पदार्थ, तापीय पदार्थ, तेलीय प्रदूषण आदि है, जो मनुष्य की अविवेकपूर्ण गतिविधियों की देन है। इन पर आगे विस्तार से चर्चा की जा रही है।

6.10.2.1 घरेलू बहिस्त्राव

इसमें घरेलू कामकाज से निसृत दूषित जल शामिल है जो मानव की विभिन्न दैनिक क्रिया–कलापों जैसे – नहाना, कपड़ों की धुलाई, खाना बनाना, वातानुकूलित यंत्रों से, घर की धुलाई करना, बर्तनों को साफ करने से निकलता है। सामान्यत: भारतीय नगरों में प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 135 लीटर जल को उपयोग में लेता है। घरेलू बहिस्राव के रूप में नालियों द्वारा प्रवाहित होता हुआ किसी नदी, झील, तालाब में चला जाता है या भूमि द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। यही जल अपने साथ बहाकर लाए हुए प्रदूषकों को जल स्रोतों में पहुंचा देता है। घरों में उपयोग किया हुआ जल अनेक प्रकार की अशुद्धियों से युक्त होता है। इस जल में नहाने एवं कपड़े धोने वाले साबुन एवं अपमार्जक, सड़ी गली सब्जियां व फल, बर्तन साफ करने में प्रयुक्त पाउडर, कीटाणुनाशक रसायन – फिनायल, डिटोल, डी.डी.टी., घर का कूड़ा–करकट, कागज, प्लास्टिक की थैलियाँ, बचा भोजन, प्रयोग किया कॉस्मेटिक, अनुपयोगी कपड़े, राख, रोगी के उपचार में ली गई रूई एवं कपड़े की पट्टी, बची हुई दवाइयाँ, मरे हुए कीड़े–मकोड़े, जैसे चींटा, कोकरोज आदि पदार्थ जल स्रोतों में पहुंचकर जल को प्रदूषित करने के प्रमुख मानवीय स्रोत बनते है। वर्तमान समय में घरों तथा होटलों में सफाई तथा कपड़े धोने के लिए डिटरजेन्ट (Detergent) के प्रयोग में वृद्धि हो रही है जिसका निर्माण (Surfactants) पृष्ठ सक्रिय तथा (Phosphate Builders) फास्फेटवर्धक रसायन से होता है इसमें प्रयोग लिया हुआ फास्फेट, जल को सर्वाधिक प्रदूषित करता है। डिटरजेन्ट का अत्यधिक उपयोग जल प्रदूषण का प्रमुख कारण है। अमेरिका में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार इरी एवं ओन्टोरियो झील के जल को प्रदूषित करने में सबसे बड़ा योगदान डिटरजेन्ट द्वारा उत्पन्न फास्फोरस का है। जल में इसके घुलने से (एलगी) शैवाल की अधिक वृद्धि होती है जो अपघटित होकर स्ट्रिकनीन (Strychnine) जैसे विषैले पदार्थ बनाते है, इसके अलावा फास्फोरस के कारण जल में झाग उत्पन्न होने से जल शोधन में भी कठिनाई आती है।

तीव्र गति से जनसंख्या में वृद्धि तथा नगरीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति बढ़ने के कारण घरेलू बहिस्राव की मात्रा तथा उसके निष्पादन की समस्या बढ़ी है। भारत जैसे विकासशील देश में तो यह समस्या और भी ज्यादा है। हिन्दु समुदाय की सबसे पवित्र गंगा नदी जो प्राचीनकाल से अमृतरूपी समझी रही है जो जल के स्वत: शुद्धीकरण की क्षमता (Self purification Capacity) रखने वाली जानी जाती है। जिसका विस्तार गंगोत्री से गंगासागर तक 2555 किलोमीटर जल प्रवाह मार्ग में से लगभग एक चौथाई भाग अत्यधिक प्रदूषित हो गया है। इसका प्रमुख कारण इस पर स्थित लगभग 50 प्रमुख नगर तथा 65 छोटे नगरों के कारखानों, खेतों से निकले अपशिष्ट, अशोधित मल जल, व्यक्तियों तथा मवेशियों के मृत शरीर, घरेलू अपशिष्ट आदि का इसमें प्रवाहित किया जाना है। इसी प्रकार भारत की राजधानी दिल्ली से प्रतिदिन लगभग एक अरब लीटर गन्दा पानी घरेलू अपशिष्ट के साथ यमुना में छोड़ा जाता है। सिर्फ गंगा और यमुना नदी ही ऐसी नदी नहीं है बल्कि सभी नदियाँ इन अपशिष्टों को प्रवाहित करने का बोझ ढोने के साथ जल प्रदूषण की शिकार है।

अपशिष्ट पदार्थों को नदियों में बहाने के अलावा अन्य स्थानों पर भी डाल दिया जाता है, जो किसी न किसी रूप में जल से सम्पर्क में आकर जल प्रदूषित करता है वर्तमान में प्लास्टिक के अत्यधिक उपयोग के बढ़ने से भी समस्या बढ़ी है, जो न तो पानी में गलती है न सड़ती है तथा इनका निस्तारण कठिन हो जाता है। इसको उपयोग में लेने के बाद इनको पानी के साथ बहा दिया जाता है। इनके पानी में डालने से ये हानिकारक बैक्टीरिया तो उत्पन्न करते ही हैं साथ ही नालियों में एक जगह इकट्ठा होकर पानी के बहाव को भी अवरूद्ध कर देती है।

अमेरिका सहित अन्य विकसित देशों ने तो प्लास्टिक के पुन : प्रयोग तथा निस्तारण के हल की तकनीकी विकसित कर ली है, परन्तु भारत जैसे विकासशील देश एवं अन्य अविकसित देशों में अभी इस समस्या का हल नहीं हो पाया है। अत: इन देशों में इसके निस्तारण की व्यवस्था शीघ्र करने की आवश्यकता है।

6.10.2.2 वाहित मल (Sewage)

यह अपद्रव जिसे वाहित मल कहते है जल प्रदूषण का सबसे बड़ा प्राथमिक स्रोत है इसके द्वारा दूषित जल से कई प्रकार के रोग हो जाते है जिन्हें जल वाहित रोग कहते है।

मानव के मल–मूत्र में एश्चेरीचिया कोली (Escherichia Coli) तथा स्ट्रेप्टोकोकस फीसलीज (Streptococcus Faecolis) जैसे कोली फोर्म जीवाणुओं की भरमार है। ये जीवाणु आमतौर पर मानव शरीर की बड़ी आत में बढ़ते है जिससे पेट और आत के रोग होते है।

वाहित मल के अन्तर्गत सार्वजनिक एवं घरेलू शौचालयों एवं मूत्रालयों से निस्तारित मानव मल–मूत्र है जिससे कार्बनिक एवं अकार्बनिक दोनों तरह के पदार्थ सम्मिलित होते है। मानव की यह स्वाभाविक प्रकृति होती है, कि वह मल–मूत्र को घर के बाहर निस्तारित करता है जो किसी ने किसी माध्यम के द्वारा जल स्रोतों में पहुंच जाता है। जल स्रोतों में वाहित मल धरातलयी जल स्रोतों को प्रदूषित करता है तथा भूमिगत किया गया मल–मूत्र, भू–जल को दूषित करता है। कभी कभी तो वाहित मल जलापूर्ति पाइपों में प्रवेश कर सीधे रूप से ही जल प्रदूषण का कारण बन जाता है जैसा कि वर्ष 2007–2008 में राजस्थान की राजधानी जयपुर की कई बस्तियों में जलापूर्ति पाइपों के गल कर क्षतिग्रस्त होने से उनमें हुए छिद्रों के द्वारा वाहित मल प्रवेश कर घरों के नलों द्वारा पीने के लिए पहुंच गया और उसके पीने से जल–जनित रोगों के कारण कई मासूम बच्चों की जिन्दगी छिन गई। इसी प्रकार दिल्ली की एक पुरानी आबादी में भूमिगत निस्तारित मल–मूत्र के द्वारा प्रदूषित जल हैण्डपम्पों के द्वारा पीने के लिए काम में लेने से महामारी का रूप धारण कर लिया।

ठोस प्रवृति का वाहित मल मुख्यतया: कार्बनिक होता है जो मृतोपजीवी एवं रोगजनक सूक्ष्म जीवाणु का पोषक होता है जिसमें बैक्टीरिया, वाइरस, प्रोटोजोआ, शैवाल, कवक आदि उत्पन्न होकर वृद्धि करते हैं।

भारत की 70 प्रतिशत जनसंख्या गांवो में निवास करती है जहां की ग्रामीण जनता खुले स्थान में शौच तथा छोटे कस्बों में खुले शौचालयों में शौच के लिए जाते हैं तथा पशु भी खुले स्थानों पर मल–मूत्र त्याग करते हैं जो वर्षा जल के साथ बहकर जल स्रोतों में मिल जाता है।

यह जल पीने के अयोग्य तो हो ही जाता है बल्कि सिंचाई के लिए भी उपयुक्त नहीं रहता है। यह जल सिंचाई के उपयोग के दौरान अन्तस्पन्दन द्वारा भूमिगत जल को प्रदूषित करता है जिसमें रोग जनित जीवाणु उत्पन्न होने के अतिरिक्त कुछ बड़े परजीवी भी उत्पन्न हो जाते हैं जिनमें सिस्टोसोमस कृमि प्रमुख है। यह कृमि दूषित जल के साथ मानव शरीर में पहुंचकर बड़ी आंत में अण्डे देते है। यह अण्डे मल–मूत्र के साथ निकल कर संक्रामक रोगों को बढ़ावा देते है उष्ण प्रदेशों में इस प्रकार के रोग अधिक विकसित होते है।

मल के जल में मिलने से जैविक प्रदूषण या संक्रमण अधिक होता है क्योंकि इस जल से अनेक हानिकारक बीमारियों के जीवाणुओं का जन्म होता है। इस जैविक प्रदूषण से अनेक रोग जैसे टाइफाइड, हैजा, पेचिस, यकृत शोथ, आन्त्र शोथ, पीलिया, नारू रोग, हेपेटाइटिस आदि फैलते हैं।

6.10.2.3 औद्योगिक बहिस्राव

वर्तमान समय में औद्योगिक विकास की बढ़ती तीव्रता के कारण इससे उत्पन्न जल एवं वायु प्रदूषण मानव जाति अस्तित्व के लिए एक भयानक समस्या हो गई है। औद्योगिक इकाइयों द्वारा व्यर्थ पदार्थों के बहिस्राव की अनियोजित व्यवस्था से जल प्रदूषण में अधिकतम वृद्धि होती जा रही है। औद्योगिक परिसरों में मशीनों को ठण्डा करने, साफ करने, विभिन्न रसायनों के उपयोग में, परिसर में नमी बनाये रखने उत्पादन के तैयार करने कि प्रक्रिया में जल की अत्याधिक आवश्यकता पड़ती है तथा यह जल अन्ततः औद्योगिक बहिस्राव के रूप में निकलता है। यह जल नदियों, झीलों, सागरों तथा अन्य जल स्रोतों को प्रदूषित करते है। बहिस्त्राव करने वाले प्रमुख उद्योगों में वस्त्र रंगाई, शराब उद्योग, प्रसंस्करण उद्योग, प्रसाधन सामग्री उद्योग, चीनी उद्योग, कागज व लुग्दी उद्योग, पेट्रो रसायन उद्योग, लोहा–इस्पात उद्योग, उर्वरक उद्योग, आदि हैं। तालिका 6.1 में प्रमुख भारतीय नदियों तथा उनको प्रदूषित करने वाले प्रमुख उद्योगों की सूची दी गई है।

तालिका– 6.1 : भारत की मुख्य प्रदूषित नदियाँ और उनके प्रदूषक स्रोत उद्योग

नदी का नाम	क्षेत्र	प्रदूषक स्त्रोत उद्योग
यमुना	दिल्ली/उत्तरप्रदेश	डी.डी.टी., इंद्रप्रस्थ ताप बिजली घर, मथुरा रिफाइनरी, चीनी उद्योग
गंगा	कानपुर	रसायन, चर्मशोधन, वस्त्र उद्योग
भद्रा	कर्नाटक	कागज एवं स्टील उद्योग
कावेरी	तमिलनाडु	चर्म शोधन, शराब कारखाना, कागज एवं रेशम उद्योग
दामोदर	बोकारो	उर्वरक, स्टील, कोयला प्रक्षालन घर और पावर स्टेशन
गोदावरी	आन्ध्रप्रदेश	कागज का कारखाना
गोमती	लखनऊ	कागज और लुग्दी मिल
हुगली	कलकत्ता	जूट मिल, रसायन की फैक्ट्रिया, रंग–वार्निश, पालीथिन धातु, वस्त्र उद्योग
नर्मदा	मध्य प्रदेश	कागज की मिलें
सोन	उत्तर प्रदेश	कागज की मिलें

सिवान	बिहार	कागज; सीमेन्ट, गन्धक एवं चीनी मिल

उपरोक्त तालिका में वर्णित मुख्य नदियों के किनारे बसे औद्योगिक नगरों में बसे उद्योगों से छोड़े गए बहिस्त्रावों में पेन्ट ओर वार्निश उद्योगो से दिर्घ श्रृंखला वाले एरोमेटिक हाइड्रोकार्बन बनते है। कपड़ा उद्योगों से बहुत से रंजत पदार्थ तथा रंगने के काम में लाए गए धातु लवण निकलते है अन्य कई तरह के प्रदूषकों में तेल, ग्रीस प्लास्टिक, धातु अपद्रव्य जैसे (तांबा, जस्ता, केडमियम, सीसा, पारा) एसिड, एल्केली, सायनाइड ओर क्लोरीन जैसे पदार्थ होते हैं। औद्योगिक अपजल में घरेलू अपजल की अपेक्षा विभिन्नता पाई जाती है जो औद्योगिक क्रियाविधि की जटिलता के साथ बढ़ती जाती है।

तालिका 6.2 : औद्योगिक बहिस्राव में पाये जाने वाले अपद्रव्यों की सामान्य प्रकृति को दर्शाया गया है।

तालिका 6.2 : औद्योगिक बहिस्राव में पाये जाने वाले अपद्रव्यों की सामान्य प्रकृति

उद्योग	**क्रियाविधि**	**उपक्रम**
धातु	अयस्क का खनन,	सिल्ट, अम्लीय
चमड़ा	प्रगालन चमड़े की सफाई तथा कमाना	कार्बनिक, अम्लीय, क्षारीय
कागज	लुगदी तथा कागज बनाना	अम्लीय, धातु के लवण, लकड़ी के रेशों के अवशेष
कपड़ा उत्पादन और रंगाई	कलफ लगाना, रंगाई, ऊन की मंजाई	कार्बनिक एवं अकार्बनिक, रंजक पदार्थ, धातुओं के लवण, अम्लीय, क्षारीय
रसायनिक उद्योग	विविध रसायन	अम्लीय और क्षारीय
खाघ संसाधन	डिब्बों में भरना, ठंडा करना,	अम्लीय और क्षारीय कार्बनिक
शराब	शराब बनाना	कार्बनिक
लांड्री	कपड़े धोना, ड्राईक्लीनिंग	फास्फेट, कार्बनिक

उपरोक्त तालिका में कुछ प्रमुख उद्योगों द्वारा निस्तारित अपद्रव्यों को दर्शाया गया है जो किसी न किसी रूप में जल को प्रदूषित करते हैं। इसमें कार्बनिक पदार्थ भी होते हैं। जिनका बैक्टीरिया द्वारा निम्नीकरण मन्द गति से होता है इनसे जल में दुर्गन्ध उत्पन्न होती है तथा उसका स्वाद भी बदल जाता है। इसी प्रकार अकार्बनिक पदार्थो में सोडियम, पोटेशियम, अमोनिया क्लोराइड, नाइट्रेट, सल्फेट आदि के आयन जल को प्रदूषित करके न केवल मानव अपितु जल–जीवों, वनस्पति एवं पशुओं पर दुष्प्रभाव डालते है।

6.10.2.4 कृषि बहिस्त्राव (Agricultural Effluents)

प्रत्येक वर्ष जनसंख्या वृद्धि के कारण उदर पोषण दबाव बढ़ने से कृषि उत्पादनों में वृद्धि के लिए रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों का प्रयोग बेतहाशा बढ़ रहा है। जिसके कारण कृषि उत्पादों की वृद्धि के लिए उपयोग में लिए पदार्थो का कृषि बहिस्त्राव के रूप में बह कर जलस्रोतों में पहुंचकर उसको गंदा या प्रदूषित करना प्रमुख प्रमुख बात है।

रासायनिक उर्वरकों के नाइट्रेट व फास्फेट रिसाव के साथ जमीन के अन्दर पहुंचकर भूमिगत जल को जल प्रदूषित करने के साथ नदियों, तालाबों, झीलों के पानी में शैवाल (एलगी), जलकुंभी में वृद्धि करते हैं। कीटनाशकों (Pesticides) के उपयोग में निरन्तर वृद्धि से जल प्रदूषण प्रभावित हो रहा है। इनसे हानिकारक कीट तो मरते ही है परन्तु इनके छिड़काव करने पर कुछ कण तो जल में बहकर तथा वायुमण्डल में तैरते हुए जल स्रोतों में पहुंच कर जलीय कीटों में विकृतियाँ पैदा करते है। किसान उत्पादन बढ़ाने के लिए ही नहीं बल्कि फसल तुंरत तैयार करने के लालच में कीटनाशकों का अंधाधुंध इस्तेमाल कर रहा है उसका प्रभाव कृषि भूमि के साथ साथ उनके शरीर पर भी अप्रत्यक्ष रूप से पड़ रहा है। कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग से उनमें मौजूद घातक रसायन पौधों और धरती में जमा रह जाते हैं धरती में जमे रसायन मृदा क्षरण के द्वारा पानी में बहकर जल स्रोतों में पहुंच जाते हैं तथा अनाज, फल और सब्जियों के जरिए मानव शरीर में पहुंचकर व्यक्ति की प्रतिरोधक क्षमता को घटा देते हैं जिससे व्यक्ति कई तरह की बीमारियों से अपनी रक्षा नहीं कर पाता है यही नहीं ये रसायन खेती एवं अन्य वनस्पतियों के लिए जरूरी कीटों को भी मार देते है।

कीटनाशी पदार्थो में निम्न पांच प्रकार के रसायनों का उपयोग किया जाता है।

1. सूक्ष्म कीटनाशी
2. कृमि नाशी
3. तीक्षण दन्त नाशी
4. खरपतवार नाशी
5. फफूंदी नाशी

उपरोक्त कीटनाशियों में प्रयोग में लाए गए रसायन पानी के द्वारा भूमि में अवशोषित हो जाते है जिनके कुछ विषैले तत्व जैसे पारा, संखिया, क्लोरिन, फास्फोरस, निकिल, सीसा, मैग्नीज, बोरोन आदि हैं जो मानव तथा जन्तुओं के लिए हानिकारक हैं। देश में डी.डी.टी. का इस्तेमाल 1947 में मलेरिया की रोकथाम के लिए किया गया था किन्तु जब इसके विनाशकारी स्वरूप का पता चला तो इस पर रोक लगानी पड़ी, परन्तु अभी भी विकासशील देशों में डी.डी.टी. तथा इसी से उत्पन्न एल्ड्रिन, ड्राइएल्ड्रिन, लिंडेन आदि भी अत्यन्त हानिकारक हैं। भारत में कीटनाशकों के उपयोग में प्रति हैक्टेयर कृषि भूमि पर पंजाब का पहला स्थान है। पंजाब के किसान खेतों में जब कीटनाशकों का छिड़काव करते है तो उन दिनों खेतों से लेकर उनके घर की रसोई तक चारों ओर कीटनाशकों की गंध महसूस की जा सकती हैं। सी.एस.ई ने जब पंजाब के किसानों का प्रयोगशाला में रक्त परीक्षण किया तो उनके रक्त में 6 से 15 कीटनाशकों तक के अवशेष मिले। इन किसानों के खून में डी.डी.टी. और लिंडेन जैसे कीटनाशकों के अवशेष भी मिले हैं। जिसके बारे में सरकार का कहना है कि 30 सितम्बर 1992 से ही इनको प्रतिबंधित कर दिया गया है तथा भारतीय किसानों को इनके छिड़काव की अनुमति नहीं है। परन्तु अभी भी देश में इनका उत्पादन हो रहा है।

नगरीय वाहित मल से सीवरेज फार्मों पर सब्जियों का उत्पादन किया जा रहा है। जिससे फफूंदी, बैक्टीरिया, हानिकारक जीव तथा अकार्बनिक तत्व सब्जियों को प्रदूषित करते है जिनके उपभोग से मानव शरीर में विषैले पदार्थ पहुंचते है।

6.10.2.5. तेलीय प्रदूषण (Oil Pollution)

जल में विभिन्न स्रोतों से पेट्रोल, डीजल या अन्य तेलीय पदार्थ फैलने से जल प्रदूषित होता है, उसे तेलीय स्रोत से जल प्रदूषण कहते हैं। तेलीय प्रदूषण अधिकतर सागरों तथा महासागरों में अधिक होता है। इसका प्रमुख कारण महासागरों में होकर तेल ले जाने वाले जहाजों के दुर्घटना ग्रस्त होने से रिसाव, समुद्रों के किनारे स्थित तेल शोधक कारखानों से रिसाव, सागरीय तल से तेल की खुदाई के समय बाहर निकलकर पानी की सतह पर आना, जलयानों के द्वारा अपशिष्ट तेल को उत्सर्जित करने से, तेलवाही जहाजों में तेल भरते समय व खाली करते समय, युद्ध के समय तेल उत्पादक देशों द्वारा तेल भण्डारों को समुद्र में प्रवाहित करना हैं। तेल पानी से हल्का होने के कारण पानी पर तैरता हुआ जल स्रोतों में (प्रमुखत : समुद्रो में) दूरवर्ती क्षेत्रों तक फैल जाता है जिसके कारण जल प्रदूषण होता है तथा इसके प्रभाव से मछलियाँ अन्य समुद्री जीव एवं पक्षी तथा वनस्पति को हानि पहुंचती है तथा पर्यावरण भी प्रदूषित होता है। 1991 में खाड़ी युद्ध के दौरान ईराक द्वारा हजारों टन कच्चे तेल को समुद्र में बहाने से समुद्र के पानी की ऊपरी सतह पर तेलीय परत जमा होने से समुद्री पक्षियों के पैर तेलीय पदार्थ से चिपकने के कारण उड़ नहीं पाये तथा फड़फड़ाकर वहीं मर गये। साथ ही पड़ौसी देशों को अपने जल अलवणीकरण कारखाने संदूषित हो जाने के भय से बन्द कर देने पड़े। समुद्रों के अलावा नदियों में रण अन्य आन्तरिक जल स्रोतों में भी तेलीय फैलाव होता रहता है। उत्तर प्रदेश में मथुरा तेल शोधन रिफायनरी से यमुना का जल प्रदूषित हो रहा है।

पूरे विश्व में सबसे अधिक तेलीय रिसाव से महासागरों में सर्वाधिक जल प्रदूषण होता है। विभिन्न तेलीय रिसाव स्रोतों से प्रतिवर्ष लगभग 1000 लाख लीटर तेलीय पदार्थ समुद्रों में मिलते है। जिसका प्रमुख कारण समुद्री रास्तों से प्रतिवर्ष 13 करोड़ टन से अधिक क्रूड ऑयल का पीरवहन होना है। परिवहन के समय ही 1976 में टोरी केनयन नामक तेलवाही जहाज जिसमें 118000 टन कच्चा तेल था, के दुर्घटनाग्रस्त होने के कारण समुद्री जल की ऊपरी सतह पर तेल की परत जमा हो गई। तब इस समस्या की तरफ सभी ने सोचना शुरू किया तथा इस परत को हटाने के लिए उस पर रसायनों का छिड़काव किया गया वह भी जल प्रदूषण का कारण बना। इस परत को हटाने के लिए 10,000 टन अपमार्जकों का छिड़काव किया गया जिससे जल पर झागदार परत बनने से असंख्य समुद्री जीवों की जीवन लीला समाप्त हो गई। 24 मार्च 1989 को अलास्का के पास प्रिंस विलियम साउन्ड्स रीफ पर पांच करोड़ गैलन तेल वाले टैंकर एक्सान में तेल छलककर बहने लग गया। जिससे मूंगे की चट्टान, समुद्रीय और स्थलीय जीव धारियों की बहुत बड़ी संख्या को जिनमें बहुत सी विलोपशील प्रजातियों को बहुत हानि उठानी पड़ी और इससे मुक्ति में अभी बहुत समय लगेगा।

तेल उत्खनन के समय भी तेल उत्खनन क्षेत्रों के भण्डारण से रिसाव होने से भी समुद्रों में तेल का फैलाव हो जाने से जल प्रदूषण होता है। 1969 में संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिणी

कैलीफोर्निया स्थित सान्ता बराबरा तट पर तेल कुंए से उत्खनन के दौरान रिसाव होने से समुद्रीय जल गम्भीर रूप से प्रदूषित हुआ था जिसके दुष्परिणाम कई वर्षों तक प्रभाव डालते रहे।

6.10.2.6. रेडियोधर्मी अपशिष्टों द्वारा जल प्रदूषण (Water Pollution by Radio Active Waste)

रेडियोधर्मी पदार्थ ऊर्जा के स्रोत के रूप में तथा हथियारों के निर्माण में उपयोग में लिया जाता है । इस प्रक्रिया में जल की सर्वाधिक आवश्यकता होती है इस प्रक्रिया में से गुजर कर निकलने वाले विकिरण जल में घुल कर जल को प्रदूषित करते हैं। रेडियो एक्टिव पदार्थ सदैव विखण्डन की प्रक्रिया से गुजरते हैं तथा इनके अवशिष्ट पदार्थ भी कम या अधिक रेडियो एक्टिव होते हैं। जिनका सम्पूर्ण रूप से निस्तारण नहीं होने की वजह से अधिकांश को जलीय स्रोतों में बहा दिया जाता है, जिससे जल प्रदूषण होता है तथा कुछ भाग को भूमि में दबा दिया जाता है। कभी कभी परमाणु तत्वों से भरे जहाज समुद्र में दुर्घटना ग्रस्त हो जाते हैं या फिर डूब जाते हैं। समुद्रों में परमाणु परीक्षण से विखण्डित हुए ये पदार्थ जल्दी समाप्त नहीं होकर हजारों वर्षों के लम्बे समय तक बने रहते हैं यदि ये किसी प्रकार से मानव शरीर में प्रवेश कर जाते है तो भयंकर हानि पहुंचाते हैं।

भूमिगत परमाणु परीक्षणों से निकली रेडियोधर्मिता भी धीरे धीरे भूजल तक पहुंचने से भूगार्भिक जल को प्रदूषित करते हैं। यद्यपि प्लूटोनियम जल में अघुलनशील है, किन्तु ट्रीटियम जल में हाइड्रोजन को कम करके जीवों को अत्यधिक हानि पहुंचा सकते है।

रेडियोधर्मी पदार्थों के कण जब जीव एवं मानव के शरीर में प्रवेश कर जाते है तो भोजन चक्र का हिस्सा बनकर नुकसान पहुंचाते है इनमें एक अवशिष्ट स्ट्रॉन्सियम –90 (Sr^{90}) है जो नाभिकीय प्रक्रियाओं से वायुमण्डल में छोड़े गए रेडियोधर्मी पदार्थों के साथ मिलकर भूमि या जल सतह पर आ जाते है कुछ अन्य रेडियोधर्मी है जैसे रेडियो आयोडीन, सीसियम–137, कार्बन 14, सीरियम 144, जिंक 65 आयरन–59, कोबाल्ट–60 आदि भी भोजन चक्र से शरीर में पहुंच कर हानि पहुंचाते हैं।

6.10.2.7 धात्विक एवं अधात्विक खनन (Metalic and Non–Metalic Mining)

समुद्री सतहों से विभिन्न खनिजों के उत्खनन से निकलने वाले पदार्थ जल में मिलकर प्रदूषण का कारण बनते हैं। खनिजों के बारीक कण व अपशिष्ट पदार्थ जल के साथ बहकर जल स्रोतों में पहुंच जाते हैं और जल को प्रदूषित करने के साथ उसमें अवसाद (Silt) जमा करते हैं।

सागरों एवं महासागरों से कुछ देश धात्विक पदार्थों के खनन की योजना बना रहे हैं ये धात्विक पदार्थ आलू के आकार के पिंड है जो समुद्र तलों में 5000 मीटर की गहराई पर है इनमें 30 से 40 प्रतिशत मैग्नीज और थोड़ी मात्रा में निकिल और कोबाल्ट जैसे महत्वपूर्ण व्यावसायिक धातु हैं, इनको निकालने के एक प्रमुख सुझाव के अन्तर्गत बड़े–बड़े वैक्यूम क्लीनरों के द्वारा समुद्र तल से खींच कर पाइपों के द्वारा खनन स्थान के नजदीक जहाज तक पहुंचा दिया जाए। लेकिन इस प्रक्रिया में समुद्र की गहरी परतों को खोदने से इसमें उपस्थित अवसादों के महीन कण जल में मिलने से समुद्री जीवों के गिल और फिल्टर करने के अंगो को घोट देंगे। इस

खनन प्रक्रिया में काम आने वाले खनन जहाजों, तैरते प्लेटफार्मों और द्वीपों पर स्थित इकाईयों द्वारा विसर्जित अवसाद से भी समुद्र का सतही जल प्रदूषित होगा।

6.10.2.8 तापीय प्रदूषण (Thermal Pollution)

बाहरी तत्वों के समावेश से जल स्रोतों में जल का तापमान इतना बढ़ जाए कि वह मानव, जल– जीवों तथा वनस्पति के लिए नुकसान देह हो जाए उसे तापीय प्रदूषण कहते हैं। जल स्रोतों में जल के तापमान बढ़ाने वाले स्रोतों में समुद्रों में किए जाने वाले परमाणु विस्फोट, विभिन्न उद्योगों से निसृत गर्म जल, विभिन्न रिएक्टरों के अतितापन निवारण, परमाणु शक्ति चलित विद्युत उत्पादन संयत्रों से तथा कभी कभी आकस्मिक रूप से अन्तरिक्ष यानों के समुद्रों में उतरना है।

समुद्रों में किए जाने वाले परमाणु परीक्षण के दौरान इनके विस्फोट से समुद्रीय जल का तापमान बढ़ जाता है। जो समुद्री जीवों के लिए खतरा बन जाता है। प्रशान्त महासागर में सर्वाधिक परमाणु परीक्षण किए जाते हैं। जिसके कारण यह महासागर तापीय प्रदूषण से सर्वाधिक प्रभावित हुआ है। ताप बिजली घरों (थर्मल पावर प्लांट) में कोयला जलाकर पानी को गरम किया जाता है जो भाप बनता है, यह भाप अधिक दाब पर पाइप लाइनों के द्वारा टर्बाइनों को चलाने के लिए छोड़ी जाती है जिससे विद्युत उत्पन्न होती है। इस प्रक्रिया में जो गर्म पानी बचता है उसको थर्मल पावर प्लांट के पास के जल स्रोतों, नदी, समुद्र आदि में छोड़ दिया जाता हैं। राजस्थान में कोटा थर्मल पावर प्लांट का गर्म पानी चम्बल नदी में छोड़ा जाता है जिससे चम्बल नदी के जीव प्रभावित हुए हैं।

जीवाश्म ईंधन व नाभिकीय ऊर्जा को उपयोग लेने वाले रासायनिक उद्योग तथा बिजली घरों में संयत्रों को ठण्डा करने हेतु अत्यधिक मात्रा में पानी का प्रयोग किया जाता है। जिसका प्रयोग उच्चतर ताप पर होता है। इसे भी जल स्रोतों में छोड़ा जाता है। गर्म पानी के इस तरह से निस्तारण से तापीय प्रदूषण के द्वारा समुद्री पेड़ पौधों एवं जन्तुओं का पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ रहा है। क्योंकि समुद्रों में तापीय प्रदूषण के कारण जल में घुली ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है। जो जलीय जीवन को क्षति पहुंचाती है। तापीय जल का विसर्जन वायु के साथ मिलकर तटों के दूरवर्ती भाग की ओर से आने वाली धाराओं को परिवर्तित कर उनके मिलने के ढंग को बदल देता है। उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में ज्वार भाटा की रेंज स्वत: ही ऊंची होती है परन्तु तापीय प्रदूषण इसे और चिन्ताजनक बना देता है।

जल में बढ़ते हुए तापीय प्रदूषण से सागरीय जल की जैव विवधिता धीरे धीरे असन्तुलित हो रही है साथ ही स्थलीय जल स्रोतों में मछलियां, जल–जीव, तथा जलीय वनस्पति के विनाश के साथ ही जल की गुणवत्ता भी प्रभावित हो रही है।

6.10.2.9 सामाजिक स्रोत (Social Sources)

विश्व के सभी समुदायों में अलग–अलग सामाजिक रीति रिवाजों को माना जाता है, मानव समुदायों द्वारा यदि इन रीति रिवाजों द्वारा जल प्रदूषित होता है तो इन्हें प्रदूषण के सामाजिक स्रोत कहते हैं। उदाहरण के लिए कलकत्ता के पास गंगासागर स्थान पर प्रतिवर्ष संक्रान्ति पर्व, इलाहबाद में प्रति 12 वर्ष के अन्तराल पर महाकुम्भ, हरिद्वार में गंगा में अस्थियों का विसर्जन

के लिए करोड़ों लोग एकत्रित होते हैं, जो किसी न किसी प्रकार जल को प्रदूषित करने में सहायक होते हैं। गंगा नदी के किनारे स्थित बस्तियों के कुछ लोग मृत मानव शरीर को गंगा में प्रवाहित करते है जो जल को प्रदूषित करता है।

बोध प्रश्न – 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. पृथ्वी के..... प्रतिशत भाग पर जल का ..... प्रतिशत समुद्रों में है।
2. जल ..... का आधार है।
3. जल रासायनिक दृष्टि से H_2O दो भाग..... तथा एक भाग..... का होता है।
4. जल.....पदार्थ होता है, जिसका अपना कोई रंग नहीं होता है।
5. पानी का हिमांक बिन्दु 0° सेन्टीग्रेड है तथा क्रथनांक बिन्दु ..... सेन्टीग्रेड है
6. जल की गुणवत्ता के लिए पानी का pH..... से..... के बीच होना चाहिए।
7. वाहित मल जल प्रदूषण का..... स्रोत है।
8. अमोनिया..... प्रदूषक है।
9. मृदा अपरदन जल प्रदूषण का ..... स्रोतहै।
10. कानपुर के पास..... शोधन से गंगा का जल प्रदूषित होता है।

6.11 जल प्रदूषण के प्रभाव

प्रकृति के समस्त प्राणियों एवं वनस्पति को अपने जीवन चक्र को चलाने के लिए भोजन चक्र आवश्यक है। इस चक्र को जल नियन्त्रित करता है, अत: जल से सम्बन्ध होने के कारण जल के प्रदूषण से सबसे अधिक प्रभावित होते है। जल में उपस्थित प्रदूषकों की मात्रा इसके प्रभाव में स्थानीय, प्रादेशिक या विश्वव्यापी भिन्नता ला सकती है, परन्तु प्रभावित सभी देश है। जल प्रदूषण के प्रभावों को सरल रूप से समझने के लिए निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. मानव पर प्रभाव
2. जन्तुओं पर प्रभाव
3. वनस्पति पर प्रभाव
4. कृषि पर प्रभाव
5. अन्य प्रभाव

6.11.1 मानव पर प्रभाव

ब्रह्माण्ड में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का जीवन वायु तथा जल पर निर्भर है। बिना जल के मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। मानव को अपने दैनिक कार्यों के लिए शुद्ध

जल की आवश्यकता होती है लेकिन शुद्ध जल की जगह उसे प्रदूषित जल प्राप्त हो तो वह उसके स्वास्थय के लिए हानिकारक तो होता ही है अपितु जल से मनुष्य में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रदूषित जल के उपयोग से होने वाले रोगों से हैजा, पेचिश, पीलिया, टायफाइड, पक्षाघात, पोलियों आदि है। विषैले धातु युक्त जल के सेवन से हृदय रोग, गुर्दा रोग, फेफड़े एवं मस्तिष्क में अनेक विकार आ जाते हैं।

फ्लोराइड युक्त जल का शरीर के अंगो पर प्रभाव

फ्लोराइड की मात्रा (मी.ग्रा/प्रति ली.)	**माध्यम**	**प्रभाव**
1.0	जल	दातों का खोखलापन होना
2 से अधिक	जल	दातों का रंग बदलना
8.0	जल	अस्थिर रोग
20–80	जल व वायु	लंगडापग
50	भोजन व जल	थाय राइड पर प्रभाव
100	भोजन व जल	वृद्धि का रुकना
125	भोजन व जल	गुर्दे पर प्रभाव
2.5 से 50 ग्राम	अधिक भोजन	मृत्यु सम्भव

स्रोत - शर्मा, महर्षि, जल एवं जल प्रदूषण, पृ. 125

रेडियोधर्मी पदार्थों से कैंसर, अपंगता उत्पन्न होती है। जल में लोहा मैंगनीज, नाइट्रेट, आर्सेनिक, क्रोमियम, पारा, सीसा, फ्लोराइड, डी.डी.टी., एल्ड्रिन, ड्राइएल्ड्रिन, हेप्टाक्तीन, बी.एफ.सी और इडोसल्फान आदि हानिकारक तत्वों से चर्म रोग, आंत्रशोथ, अस्थिरोग स्नायुतंत्रीय रोग हो जाते हैं।

जल में निम्न हानिकारक तत्वों से मानव पर अति दुष्प्रभाव –

फ्लोराइड

जल में बढ़ती हुई फ्लोराइड की मात्रा के कारण, विश्व में फ्लोरोसिस पीड़ित लोगों की संख्या में तीव्रतर वृद्धि हो रही है, सन 2000 में थाइलैण्ड में सम्पन्न हुए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में बताया गया था कि विश्व के फ़्लोरोसिस पीड़ितों की 20 प्रतिशत जनसंख्या भारत में रहती है तथा इसमें से आधी से अधिक 51.4 प्रतिशत केवल राजस्थान में है।

भूगर्भीय जल विशेषज्ञों के अनुसार जल में फ्लोराइड की मात्रा 0.5 पी.पी.एम. होनी चाहिए किन्तु राजस्थान के चुरू जिले के सरदार शहर में इसकी मात्रा 5 गुना होने से अनेक प्रकार की हड्डी सम्बन्धी बीमारियाँ लोगों में हो रही हैं। इसी तरह जयपुर जिले के दक्षिणी भाग में भी फ्लोराइड युक्त पानी से दांतो पर पीले धब्बे पड़ना, हड्डियों व जोड़ो में दर्द होना, हड्डियों में मुड़ाव आने से मनुष्य का बैडोल होना, आदि रोग हो जाते हैं।

आर्सेनिक

भारत के घने बसे राज्यों प. बंगाल, बिहार के साथ असम में भूजल में आर्सेनिक की मात्रा सर्वाधिक है। राजस्थान में भी इसकी मात्रा पाई गई है। जलदाय विभाग ने केन्द्र सरकार के निर्देश पर राजस्थान के पानी के नमूने लिए जिसमें भीलवाड़ा व चित्तौड़गढ़ क्षेत्र में आर्सेनिक होने की जानकारी मिली है।

आर्सेनिक की मात्रा अधिक होने के लिए व्यापक पैमाने पर खनन व औद्योगिक प्रदूषण उत्तरदायी है। आर्सेनिक के प्रभाव से गुर्दे खराब होने के साथ ही मृत्यु भी हो सकती है। इसकी अधिकता के कारण आर्सेनोकोसिस व केरेटोसिस रोग की आंशका रहती है। लम्बे समय तक आर्सेनिक युक्त पानी पीने से शरीर में फफोले होने के साथ त्वचा गलने लगती है। शरीर में यदि 130 मिलीग्राम आर्सेनिक पहुंच जाए तो जान खतरे में पड़ जाती है।

पारा

पारा एक गम्भीर प्रदूषक एवं संचयी जहर है। यह शरीर से उत्सर्जित नहीं होता है तथा तन्त्रिका तन्त्र को प्रभावित करता है। पारे से संक्रमित खाद्य पदार्थ एंव जल को पीने से व्यक्ति गुर्दा रोग, मस्तिष्क रोग, उदासीनता, धुंधला दिखाई देना, बहरापन, होठों व जीभ का सुन्न होना आदि रोगों से ग्रसित हो जाता है।

सीसा

पानी में इसकी मात्रा औद्योगिक अपशिष्टों से बढ़ती है यह एक संचयी विष है। इसके मिश्रण वाले जल के सेवन से मांस पेशियों, पाचन संस्थान, केन्द्रीय नाड़ी से सम्बन्धित रोग हो जाते है।

नाइट्रेटस

पेयजल के साथ शरीर में पहुंचकर विषैले नाइट्राइटस में बदल जाते है। इससे रक्त में ऑक्सीजन ले जाने की क्षमता में कमी आ जाती है, जिससे मेटहेमेग्लोबिनेमिया गंभीर रोग हो जाता है। इसकी अधिकता से "ब्लू बेबीज" (Blue Babies) रोग हो जाता है।

जस्ता

जल में मिश्रित जस्ते के यौगिकों में जिंक ऑक्साइड व जिंक क्लोराइड प्रमुख है। जल में इसकी मात्रा अधिक होने से फेफड़े खराब हो जाते हैं।

केडमियम

इसके प्रभाव से अतिसार, वृद्धि रूक जाना, हड्डी का विकास रूकना, गुर्दा का क्षतिग्रस्त होना, ट्यूमर का उदभव होना, तन्त्रिका तन्त्र की क्षति होना, मिचली व दस्त होना है।

फिनोल

यह अत्यन्त जहरीला पदार्थ है जिसका सर्वाधिक दुष्प्रभाव त्वचा पर पड़ता है फिनोल युक्त जल के त्वचा पर स्पर्श से 10–15 मिनट में ही मांस पेशियों, दृष्टि, सुनने की शक्ति आदि पर तुरन्त प्रभाव दिखने लग जाता है। ये मानव शरीर में गुर्दों, यकृत व फेफड़ों को भी प्रभावित करता है।

सिलिकान

चट्टानों से पानी के सम्पर्क में आकर पीने के पानी में मिलकर मनुष्य को बुखार, उल्टी, दांतों में केप्टीज होना, रक्त दाब घटना, अंधापन, यकृत, वृक्क एवं तिल्ली की कार्यक्षमता प्रभावित होती

है। उपरोक्त प्रदूषक तत्व विभिन्न स्रोतों से जल में मिश्रित होकर मानव जीवन पर दुष्प्रभाव छोडते हैं। दूषित पानी पीने से मनुष्य की आंतों में परजीवी शरीर में प्रवेश करके अनेक कृमियों को जन्म देते हैं। जिनमें रांउडवर्म, छिपवर्म, थ्रेडवर्म, टेपवर्म व एस्केरिस आदि हैं। जल में 'नारू' (Guinea Worm) के कीटाणु होते हैं जो अधिकाशंत छिछले एवं दूषित पानी में पाये जाते हैं। भारत में लगभग 20 लाख लोग 'नारू' के संक्रमण से ग्रसित है।

6.11.2 जन्तुओं पर प्रभाव (Effects on Animals)

जल प्रदूषण से सर्वाधिक जलीय जन्तु प्रभावित होते हैं। क्योंकि इनका अस्तित्व जल में ही होता है और जब जल ही प्रदूषित होकर उनके अस्तित्व को खतरा पैदा कर देगा तो जलीय जन्तु ही सबसे ज्यादा प्रभावित होंगे। इन जन्तुओं में मुख्यतया: मछलियाँ, कच्छप, जलीय पक्षी आदि हैं। उद्योगों के बहिस्त्राव से, समुद्र की सतह पर तेल फैलने से, समुद्रों में किए गए परमाणु परीक्षणों से जलीय जन्तु मर जाते हैं। जल में शैवालों की वृद्धि होने से जल में ऑक्सीजन की कमी के कारण जलीय जीव मर जाते है। जलकुंभी भी जीवों को प्रभावित करती है बंगाल में जलकुंभी को ' 'बंगाल के आतक'' के नाम से जाना जाता है। जल प्रदूषण के कारण पिछले 60 वर्षों में समुद्रों में आधे ही जीव रह गये हैं। फ्लोराइड प्रदूषित क्षेत्र के आस पास चरने वाले पशुओं में फ्लोरोसिस हो जाती है। मई 1999 में राजस्थान के जोधपुर में प्रदूषित पानी पीने से 500 गायों की मृत्यु हो गई थी। घरेलू बहिस्त्राव में बहकर आए अपमार्जक एवं रसायन सूक्ष्म जीवों को नष्ट कर देते हैं।

6.11.3 वनस्पति पर प्रभाव (Effects on Vegetation)

जल प्रदूषण वनस्पति को भी प्रभावित करता है जिसके अन्तर्गत जलीय पादप सबसे अधिक प्रभावित होते हैं कृषि बहिस्त्राव से जल में मिश्रित नाइट्रेटस तथा फास्फेट के कारण प्रदूषित जल में नीले हरित शैवाल (Blue Green algae) तथा डायएटस (Diatous) की वृद्धि होती है जिसके कारण सूर्य का प्रकाश अन्दर तक नहीं पहुंच पाता है, जिससे जलीय पादप तो नष्ट होते ही है साथ में व्यर्थ की वनस्पति पैदा हो जाती है। वर्षा के जल के साथ अम्लीय वर्षा से भी वनस्पति को हानि पहुंचती है। वाहित मल निस्तारण से हुए जल प्रदूषण से विभिन्न प्रकार के जीवाणु, शैवाल, एवं कवको में तीव्रता से वृद्धि होती है। इनमें मुख्यतया: बैक्टीरिया, स्फेराटिलस कार्किसियम पालीपिनम, लेप्टोमिटस आदि पाये जाते हैं। प्रदूषित जल में काई (Lichens) की अधिकता से सूर्य के प्रकाश की पारदर्शिता न होने से जलीय पौधों में प्रकाश संश्लेषण क्रिया नहीं होने से वृद्धि रूक जाती है। नगरों के नजदीक सीवरेज फार्मो पर उगाई गई सब्जियाँ भी प्रदूषित जल से प्रभावित होकर मानव को भोजन चक्र के द्वारा हानी पंहुचती है।

इन सीवरेज फार्मों की सब्जियाँ खाकर लोग लीवर की खराबी, मिरगी ओर गंभीर पेट रोगों के शिकार हो रहे हैं। जयपुर शहर के आसपास गूलर का बांध, सोडाला, मानसरोवर, अमीनाशाह नाला, सागानेर व जगतपुरा में धड़ल्ले से सीवरेज के पानी से सब्जियां उगाई जा रही है। ये सब्जियाँ शरीर के लिए हानिकारक ही नहीं जानलेवा भी हो सकती है। नाले में उगी सब्जियां पेट के रोग बढ़ाती है और लीवर को हमेशा के लिए खराब कर सकती है। इसके सेवन से हेलिमो वेक्टर पाइलोरी नामक बैक्टीरिया आमाशय में घर बनाकर पेट का अल्सर कर देता है तथा

एसिडीटी की शिकयत के साथ उल्टी दस्त होते है। स्वस्थ व्यक्ति हेपेटाइटिस 'ए' व 'ई' जैसे गंभीर रोग के शिकार हो जाते हैं। इसके अलावा इन सब्जियों के खाने से पेट में दर्द करने वाले कीड़े "राउंड वार्म" तथा खून की कमी करने वाले कीड़े 'हुक वर्म' पनप कर पेट रोगों को बढ़ावा देते है। खूनी दस्त तथा लीवर में मवाद पड़ने वाला गंभीर रोग 'एम्बी वाइसिस' की शिकायत भी हो जाती है, पीलिया होने का एक कारण यह भी होता है

6.11.4 कृषि पर प्रभाव (Effects on Agriculture)

प्रदूषित जल से उपजाऊ मृदा को क्षति पहुंचती है। औद्योगिक बहिस्त्राव से निकले हानिकारक रसायन मृदा की उर्वरता को नष्ट करके उसे कृषि के अयोग्य बना देते हैं। राजस्थान में सांगानेर (जयपुर), पाली, जोधपुर व अन्य कई स्थानों पर रंगाई एवं छपाई के उद्योगों के दूषित पानी से उस क्षेत्र के आस पास की उपजाऊ भूमि की उर्वरा शक्ति खत्म हो रही है। प्रदूषित जल से सिंचाई करने पर मृदा में रहने वाले सूक्ष्म जीव व बेक्टीरिया मर जाते हैं। जिनकी वजह से भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहती है। खदानों से निकले खनिज पदार्थ के अवशेष पानी के साथ बहकर उपजाऊ मिट्टी के ऊपर जाकर फैल जाते हैं जिससे उसका उपजाऊपन नष्ट हो जाता है। वर्तमान में राजस्थान के अजमेर जिले में किशनगढ़, संगमरमर पत्थर की एक बहुत बड़ी मण्डी बन गया है जहां पत्थर की कटाई एवं घिसाई से निकला अवसाद सड़कों के किनारे डाल दिया जाता है जो पानी के साथ बहकर उजपाऊ खेतों में पहुंच रहा है।

अन्य प्रभाव (Other Effects)

वाहित मल के विघटन से उत्पन्न होने वाली गैसों (जैसे मिथेन) के कारण भूमिगत नालियों में विस्फोट होने से आकस्मिक दुर्घटनाएं हो जाती हैं। प्रदूषित जल में दुर्गन्ध आने से आस पास के निवासियों को रहने तथा श्वास लेने में असुविधा होती है, जैसे बीकानेर के सूर सागर में गन्दा पानी एकत्रित होने से वह क्षेत्र हमेशा दुर्गन्धित रहता है। डिटरजेन्ट मिश्रित जल में अत्यधिक झाग बनने से उसके शोधन में मुश्किलें आती है। झील एवं तालाब में शैवालों की अधिकता के कारण उनकी नैसर्गिक सुन्दरता तो नष्ट होती ही है साथ ही उसमें नौका विहार का आन्नद भी नहीं लिया जा सकता है। अम्लीय तत्वों के पानी में मिलने से जल विकृत होकर भारी हो जाता है । जिससे भोजन पकाने व कपड़े धोने में असुविधा होती है। लवणीय व क्षारीय जल का निर्माण कार्यों में प्रयोग लेने से भवनों में क्षरण क्रिया शीघ्र चालू हो जाती है।

जल प्रदूषण मनुष्य, जल जीव–जन्तु, पशु, वनस्पति एवं कृषि को विभिन्न प्रकार से हानि पहुंचाते हैं। जिससे जलीय पारिस्थितिकी में असन्तुलन के साथ ही पर्यावरण भी प्रभावित होता है।

बोध प्रश्न –2

निम्न प्रश्नों के उत्तर संक्षिप्त में दीजिए।

1. प्रदूषित जल से होने वाली बीमारियाँ बताइये।

   .....

   .....

2. अस्थिरोग किस पदार्थ की वजह से होता है?

.....

.....

3. भारत के किन दो राज्यों में आर्सेनिक की मात्रा सर्वाधिक है?

.....

.....

4. "ब्लू बेबीज'' रोग किस तत्व की वजह से होता है?

.....

.....

6. 1999 में राजस्थान में किस जगह प्रदूषित जल से 500 गायों की मृत्यु हो गई थी?

.....

.....

6.12 जल प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय

जल प्रदूषण आज एक विश्व व्यापी समस्या बन चुकी है। इसके नियत्रंण हेतु अनेक तकनीकें विकसित की जा रही हैं। कुछ कानून भी इसे रोकने के लिए बनाए गये हैं। भारत सरकार ने जल प्रदूषण नियत्रंण एवं संरक्षण कानून 23 मार्च 1974 को बनाया है, परन्तु अशिक्षा, स्वार्थपरता, आर्थिक विकास, औद्योगीकरण में वृद्धि, जनसंख्या में तीव्र वृद्धि तथा बढ़ते नगरीकरण के कारण जल प्रदूषण पर नियत्रंण नही हो पा रहा हैं। इसके लिए आवश्यकता जन चेतना पैदा करने की हैं । जीवन के लिए अमूल्य पदार्थ प्रकृति के अनुपम उपहार को प्रदूषित होने से बचाने तथा इसकी गुणवत्ता के लिए निम्न उपाय किए जाने चाहिए।

1. **प्रदूषण स्रोतों पर नियन्त्रण :** उद्योगों द्वारा प्रदूषित जल को जल स्रोतों में डालने पर नियत्रंण कर रोक लगानी चाहिए। उद्योगों द्वारा छोड़े गये अपशिष्ट जल के उपचार के लिए जल उपचार संयत्र लगाया जाना आवश्यक होना चाहिए। नवीन उद्योगों की स्थापना के समय ही "वाटर ट्रीटमेन्ट प्लान्ट" लगाना कानूनन अनिवार्य होना चाहिए। समय समय पर औद्योगिक अपजल की जांच होनी चाहिए। संदूषित जल के मेथागोनिक बैक्टिरिया से पेयजल स्रोतो को दूर रखने के लिए उपचारित जल में क्लोरीन मिला देनी चाहिए।
2. घरेलू बहि :स्त्राव एवं वाहित मल को उपचारित करने के पश्चात ही जल स्रोत में डाला जावे। वाहित मल की समस्या से ग्रस्त नगरों में मल जल शोधन केन्द्रों की स्थापना अनिवार्य होनी चाहिए। इन केन्द्रों पर उपचारित पानी को सिंचाई के लिए काम में लिया जा सकता है क्योंकि इसमें उर्वरकता रहती है। फाइनेंशियल टाइप्स लंदन में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार आस्ट्रेलिया की एक कम्पनी मेमटेक ने एक पर्यटक नगर में प्रदूषित पानी को स्वच्छ करने का दावा किया है, उसने जो माइक्रो फिल्ट्रेशन तकनीक विकसित की है उससे प्राप्त स्वच्छ पानी को न केवल उद्योगों में पुन: काम में लिया जा सकेगा बल्कि बाग–बगीचे भी सींचे जा सकेंगे तथा पेयजल में भी उपयोग हो सकेगा।

3. पेयजल स्रोतों के निकट गन्दगी एकत्र नहीं होनी चाहिए। इन स्रोतों में नहाने, कपड़े धोने, तथा व्यर्थ पदार्थ फेंकने पर रोक लगनी चाहिए।
4. नगरों में पर्याप्त संख्या में सार्वजनिक शौचालय बनाकर उनकी रख–रखाव की उचित व्यवस्था हो तथा ग्रामीण क्षेत्रों में खुले स्थानों पर शौच जाने की प्रवृति को बन्द करने के लिए घरों में या उसके पास बन्द शौचालयों की स्थापना की जावे।
5. जलाशयों में मछली पालन को बढ़ावा दिया जावे तथा जल के शुद्धिकरण में सहायक जलीय जीवों जैसे कछुआ, मगर, घोंघा आदि को संरक्षित करना चाहिए।
6. समुद्रों के अन्दर तेलवाहक जहाजों के दुर्घटना ग्रस्त होने तथा उनसे तेल के रिसाव से काला लिसलिसा पदार्थ 'स्लज' पानी की सतह पर फैल जाता है। इस स्लज को साफ करने के लिए रसायनों का प्रयोग किया जाता है। जो समुद्री जीवों को नुकसान पहुंचाता है। इस समस्या को कम करने के लिए डॉ. स्टीफन मज जो ब्रिट्रेन के समुद्र वैज्ञानिक है, ने एक नया पदार्थ बायोडीजल तैयार किया है जो वनस्पति तेलों से तैयार किया जाता है जो सस्ता तथा प्रदूषण मुक्त है। पीले रंग का टार गुणों से युक्त बायोडीजल स्कज में तरलता के गुण उत्पन्न कर देता है। स्लज में मौजूद बेक्टिरिया बायोडीजल का भक्षण कर लेते है है जिससे कार्बन डाइ ऑक्साइड का स्तर समान बना रहता है अत: प्रदूषण की समस्या नहीं रहती है।
7. सीवरेज फार्मों पर उगायी सब्जियाँ जल प्रदूषित जल से विषैली हो जाती हैं, इन सब्जियों को उपयोग में लेने से पहले गर्म पानी में अच्छी तरह धोकर काम में लेना चाहिए।
8. जल स्रोतों में मृत पशु–पक्षी तथा मानव शवों को बहाने पर पूर्ण रोक लगानी चाहिए।
9. कृषि में कीटनाशक दवाओं का प्रयोग सीमित किया जाना चाहिए, विशेषकर डी.डी.टी. जैसे कीटनाशकों पर सख्ती से रोक लगनी चाहिए। कृषि में रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर जैविक खाद का अधिकाधिक उपयोग होना चाहिए।
10. जल में शैवाल व अन्य पौधें जो जल को प्रदूषित होने में सहयोग करते हैं उनकी नियमित रूप से सफाई की जानी चाहिए।
11. जल प्रदूषण को कम करने के लिए परम्परागत विधि से जल को छानकार तथा उबालकर पीने के काम में लेना चाहिए।
12. पानी की टंकियों, कुओं आदि में पोटेशियम, परमैंगनेट एवं फिटकरी आदि का प्रयोग किया जावे। जल शुद्ध करने वाले यंत्रों जैसे एकागार्ड अथवा वाटर प्यूरीफायर का प्रयोग किया जावे। भारतीय मानक ब्यूरो (B.I.S.), विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) एवं यूरोपीयन संघ (E.U.) द्वारा ISO 9001 द्वारा प्रमाणित प्रयोगशाला वी.आई.एम.टी.ए. लेबोरेटीरज द्वारा एकाफिना जैसा शुद्ध जल जनसाधारण तक सस्ती दर पर उपलब्ध करवाने का प्रबन्ध किया जावे।
13. यद्यपि जलकुंभी बहुत तीव्र गति से बढ़ती है तथा जल की सतह पर चटाई की तरह बिखर कर सूर्य के प्रकाश को रोकती है परन्तु जलकुंभी पानी से बहुत अधिक मात्रा में प्रदूषक तत्व अवशोषित करके उसे अपने भार में सम्मलित कर लेती है इसमें नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्रीशियम, आयरन, तांबा, जस्ता तथा अन्य भारी धातुएं

अत्यधिक मात्रा में पाई जाती है। एक हैक्टेयर क्षेत्र में उग रही जलकुंभी एक वर्ष में 1591 किलोग्राम नाइट्रोजन, 304 किलोग्राम फास्फोरस अवशोषित करने की क्षमता रखती है। अत: इस वनस्पति का उपयोग प्रदूषित जल उद्योगों से आता दूषित बहि: स्त्राव, वाहित मल व विभिन्न कृषि रसायनों एवं कीटनाशक तथा विषैले तत्वों को दूर करने में सक्षम है। किसी भी उद्योग जैसे क्लोरोक्षारीय प्लांट, डायबैटरीज, पेपर पल्प, प्लास्टिक तथा फासिल बर्निंग यूनिट आदि के स्त्राव को जिनमें पारे की अधिकता हो प्रदूषण रहित करने के लिए जलकुंभी का प्रयोग किया जाता है।

14. जन मानस में जल प्रदूषण के प्रति जागृति पैदा करने के लिए रेडियो टेलीविजन, समाचार पत्र–पत्रिकाओं, विज्ञापनों के माध्यम से जल प्रदूषण होने के कारण और उनसे होने वाले दुष्प्रभावों को प्रचारित करना चाहिए। सभी प्रकार के शिक्षण संस्थानों में शोध परिचर्चा, संगोष्ठी, कार्यशालाओं एवं प्रदर्शनी के माध्यम से जल प्रदूषण को कम करने एवं नियंत्रित करने के लिए उपाय के तरीकों पर जागरूकता उत्पन्न करनी चाहिए।
15. मृदा अपरदन को रोकने के लिए जल ग्रहण क्षेत्रों में वृक्षारोपण तथा मेड़बन्दी जैसे उपाय किये जाने चाहिए।
16. समुद्रों में परमाणु परीक्षणों पर रोक के साथ परमाणु कचरे की निस्तारित करने पर भी रोक लगनी चाहिए।
17. आर्सेनिक एवं फ्लोराइड की अधिकता वाले क्षेत्रों में व्यापक स्तर पर शुद्धिकरण की व्यवस्था की जानी चाहिए। आर्सेनिक विष की समस्या के समाधान के लिए न्यूजर्सी पर्यावरण अध्ययन केन्द्र द्वारा विकसित मेंग व कोर्टियाफिस कीं जल शुद्धिकरण विधि उपयोगी सिद्ध हुई है।
18. जल प्रदूषण नियंत्रण हेतु बनाए गए कानून "दि इण्डिया फिशरीज एक्ट–1897, इण्डियन पोर्टसू एक्ट 1908, हजार्डियस वेस्ट्रस दि पर्सन्स एक्ट 1919, करपोरेशन एक्ट 1948, दि इन्सेक्टिसाइडस एक्ट 1969 एवं जल प्रदूषण नियन्त्रण एवं निवारण अधिनियम 1974 को सख्ती से लागू किया जाए।

    1974 में केन्द्रीय जल प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड के गठन होने पर उसमें निम्न बिन्दुओं को प्राथमिकता दी है।

1. औद्योगिक बहि स्त्रावों के विसर्जन पर निगरानी रखी जावे।
2. जल स्रोतों में हो रहे प्रदूषणों का सर्वेक्षण किया जाना चाहिए।
3. प्रदूषित जल के उपचार के लिए सस्ती विधियों का विकास किया जावें।
4. पर्यावरण प्रदूषण के सम्बध में अनुसंधान हो।
5. प्रदूषण के बारे में जन चेतना जागृत की जावे।

बोध प्रश्न – 3

निम्म प्रश्नों के उत्तर संक्षिप्त में दीजिए –

1. अपशिष्ट जल को अपचारित करने के लिए कौनसा सयंत्र लगाना चाहिए ?

.....

.....

2. माइक्रो फिल्ट्रेशन तकनीक किस देश की कम्पनी ने विकसित की है ?

.....

.....

3. ब्रिटेन के उस समुद्र वैज्ञानिक का नाम लिखो जिसने स्लज को साफ करने के लिए बायोडीजल बनाया है।

.....

.....

4. जलकुंभी एक हैक्टेयर में एक वर्ष में कितना नाइट्रोजन अवशोषित कर सकती है ?

.....

.....

5. जल प्रदूषण नियत्रंण एवं निवारण, अधिनियम कब लागू किया गया था ?

.....

.....

6.13 सारांश (Summary)

इस इकाई में जल प्रदूषण उनके स्रोत एवं प्रकार, जलीय जीवन पर उसके प्रभाव तथा जल प्रदूषण को नियत्रंण करने के उत्पादों के बारे में विचार किया है।

जल जीवन का आधार है बिना जल के जीवन संभव नहीं है अर्थात जल ही जीवन है। पृथ्वी पर उपस्थित पानी में से हम मात्र 0.003 प्रतिशत पानी ही कम में ले पाते है। इसलिये हमारे लिए एक कीमती संसाधन है इसका महत्व हमारे लिए सर्वाधिक है।

प्राकृतिक जल में किसी भी प्रकार के अवांछित पदार्थ मिल जाने पर यदि–उसकी गुणवत्ता में कमी आ जाती है तो वह जल प्रदूषण कहलाता है। जल को प्रदूषित करने वाले अनेक प्रदूषक हैं, जिन्हें हम भौतिक, रासायनिक एवं जैविक पदार्थो के रूप में जान सकते हैं। ये सभी पदार्थ घुलनशील एवं अघुलनशील दोनों ही तरह के होते हैं। प्रदूषकों को स्रोतों के आधार पर कृषि जल प्रदूषक, नगरीय प्रदूषक एवं प्राकृतिक प्रष्ठको में विभक्त कर सकते है। इन प्रदूषणों के मुख्य दो प्राकृतिक एवं मानवीय स्रोत है जिनमें प्राकृतिक स्रोतों को अपेशा मानवीय स्रोत जिनमें घरेलू बहिस्त्राव, वाहित मल, औद्योगिक बहिस्त्राव, कृषि बहिस्त्राव, तेलीय प्रदूषण, रेडियाधर्मी पदार्थ, खनन क्रिया, तापीय प्रदूषण एवं अन्य सामाजिक स्रोत है। इन सभी स्रोतों से उत्पन्न प्रदूषक व जल को प्रदूषित करके मानव, जीव–जन्तु तथा वनस्पति पर दुष्प्रभाव छोड़ते है। यदि जल प्रदूषण को नियंत्रित नहीं किया गया तो हमारे लिए जल संकट के साथ जल प्रदूषक का भी विकट सामना करना पड़ेगा जो विश्व की सबसे बड़ी समस्या बन जायेगी।

6.14 शब्दावली (Glossary)

- **प्लवक (Plankton) :** सागरीय जल के पाये जाने वाले सूक्ष्म तैरते हुए जीव प्लवक कहलाते है।
- **शैवाल (Algae) :** यह एक पादप समूह है ये सामान्यत: भूरे, हरे, लाल तथा नीले रंग में मिलते हैं।
- **स्लज (Sluz) :** पानी पर तेलीय परत फैलने के बाद बचा हुआ लिसलिसा पदार्थ होता है।
- **टार (Tar) :** कोयला, लिग्राइट तथा लकड़ी के भंजक अवसन से प्राप्त एक द्रव उत्पाद
- **कोलाइड (Colide) :** एक सूक्ष्म जीवाणु जिससे जल जनित रोग होते हैं।
- **अवसादन (Silting) :** पानी को कम रफ्तार से शांतिपूवक बहने देना और मिट्टी तथा महीन कणों को नीचे जमने देना।

6.15 संदर्भ ग्रन्थ (Reference **Books**)

1. Gilpin, Alam : **Dictionary of Environmental Terms,** London, 1978
2. Maxwell, K.E. : **Environment of life,** P. 61 Dickensan Pub. Co., California, 1973.
3. Rao. K.L : **India water wealth, orient Longman,** N.Delhi, 1975
4. कलवार, सुगन चन्द : **पर्यावरण संरक्षण,** पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2000
5. Sharma, H.S. (eds.) : **Environmental Design and Development,** Scientific Pub. Jodhpur, 1988
6. Stamp Dudley : **A Glossary of Geographical terms longman,** London,1928
7. रघुवंशी, अरूण और रघुवंशी चन्द्रलेखा : **पर्यावरण तथा प्रदूषण,** म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1987
8. कलवार, सुगन चन्द एवं अन्य : **पर्यावरण एवं परती भूमि,** पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 1996
9. श्रीवास्तव, वी.के. एवं राव.बीपी : **पर्यावरण और पारिस्थितिकी,** वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 1991.
10. Gurjar, R.K. and Shukla laxmi : Water **Resources Environment and the people,** Pointer Publisher, Jaipur, 1998.
11. दुबे, सुशील कुमार : **औद्योगिक प्रदूषण एवं मानव जीवन,** कानपुर नगर का भौगोलिक अध्ययन, शोध पत्र, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका वाल्यूम 38, 2005.
12. सिंह, सविन्दर : **पर्यावरण भूगोल,** प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद (यू.पी.), 1991.
13. शर्मा, दामोदर एवं हीर महर्षि : **जल एवं जल प्रदूषण,** साहित्यागार, जयपुर, 1996
14. गुर्जर, रामकुमार : **पर्यावरणीय समस्याएं,** पोइन्टर, पब्लिशर्स, जयपुर, 2000.

15. अवस्थी, एन.एम. : **पर्यावरणीय अध्ययन,** लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, 2004
16. जोशी, रतन : **पर्यावरण अध्ययन,** साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2007
17. सक्सेना, हीर मोहन : **पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी भूगोल,** राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1994.
18. Kalwar, S.C. : **Environmental issues and Development,** Concept Publishers, Jaipur, 2003.
19. Kalwar, S.C. : **Wastelands and Planning for Development,** Concept Publishing Company, New Delhi, 2008
20. भरूचा, ईराक. **पर्यावरण अध्ययन,** विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के लिए निर्मित – ओरियंट लांग्मेन, प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2006
21. गुर्जर रामकुमार एवं जाट बी.सी. : **पर्यावरण अध्ययन,** पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2004
22. शर्मा, एम.एल. एवं नाटानी पी.एन. : **पर्यावरण अध्ययन,** माया प्रकाशन मंदिर, जयपुर, 2005
23. मित्तल, संतोष एवं अग्रवाल मीनू : **21वीं सदी में पर्यावरण एवं पर्यावरण शिक्षा,** नव चेतना पब्लिकेशन, जयपुर, 2004
24. Kalwar, S.C. et al., : **Geomorphology and Environmental Sustainability,** Concept Publishing Company, New Delhi, 2005

6.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. 71, 97
2. जीवन
3. हाइड्रोजन, ऑक्सीजन
4. रंगहीन
5. 0^0, 100^0
6. 7 से 8.5
7. मानवीय
8. रासायनिक
9. प्राकृतिक
10. चर्म

बोध प्रश्न–2

1. हैजा, पेचिश, पीलिया, टायफाइड आदि
2. फ्लोराइड
3. प. बंगाल, बिहार

4. नाइट्रेटस
5. जोधपुर

बोध प्रश्न–3

1. वाटर ट्रीटमेन्ट प्लान्ट
2. आस्ट्रेलिया
3. डॉ. स्टीफन मज
4. किलोग्राम
5. सर 1974

6.17 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. निम्न लिखित पर टिप्पणी लिखिए –
   (अ) जल के स्रोत
   (ब) जल जनित बीमारियाँ
   (स) जल प्रदूषण के प्राकृतिक स्रोत
   (द) सर्वाधिक जल प्रदूषण करने वाले उद्योगों के नाम
   (य) वाहित मल
   (र) कृषि बहिस्त्राव
   (ल) तेलीय प्रदूषण
   (व) जलीय प्रदूषण के प्रभाव
2. जल के महत्व को समझाते हुए जल प्रदूषण की परिभाषा लिखिए।
3. जल प्रदूषण के विभिन्न स्रोत कौन–कौन से हैं? सविस्तार वर्णन कीजिए।
4. जल प्रदूषण से होने वाले दुष्प्रभावों की व्याख्या कीजिए।
5. जल प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय लिखिए।

इकाई 7 : शोर, मृदा/भूमि एवं रेडियो धर्मिता प्रदूषण–स्रोत, प्रभाव एवं नियंत्रण के उपाय (Noise, Soil/ Land and Radio Active Pollution - Sources, Effects and Measures of Control)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 शोर प्रदूषण का अर्थ एवं परिभाषा

7.3 शोर का मापन एवं प्रबलता

7.4 शोर प्रदूषण के स्रोत

7.4.1. प्राकृतिक स्रोत

7.4.2. मानवीय स्रोत

7.4.2.1. गतिशील परिवहन

7.4.2.2. उद्योग

7.4.2.3. मनोरंजन के साधन

7.4.2.4. खनन क्रियाएं

7.4.2.5. घरेलू उपकरण

7.4.2.6. हथियार

7.4.2.7. आतिशबाजी

7.4.2.8. धार्मिक अनुष्ठान

7.4.2.9. सामाजिक कार्य

7.4.2.10. निर्माण कार्य

7.4.2.11. आकस्मिक हादसे

7.4.2.12. वाणिज्यिक क्रिया कलाप

7.4.2.13 अन्य स्रोत

7.5 शोर प्रदूषण के दुष्प्रभाव

7.5.1. मानव पर प्रभाव

7.5.2. जीव–जन्तुओं तथा वनस्पति पर प्रभाव

7.5.3. प्राकृतिक भू–दृश्यों पर प्रभाव

7.5.4. भवनों पर प्रभाव

7.6 शोर प्रदूषण पर नियन्त्रण के उपाय

7.7 शोर प्रदूषण से बचाव

7.8 मृदा प्रदूषण का अर्थ एवं पीरभाषा

7.9 मृदा प्रदूषण के स्रोत

7.9.1 प्राकृतिक स्रोत

7.9.1.1. अपरदन

7.9.1.2. सेम की समस्या

7.9.1.3. जलाक्रान्त

7.9.1.4 जंगली घास

7.9.1.5 तापमान

7.9.2 मानवीय स्रोत

7.9.2.1. औद्योगिक अपशिष्ट

7.9.2.2. कृषि अपशिष्ट

7.9.2.3. घरेलू अपशिष्ट

7.9.2.4. खनन अपशिष्ट

7.9.2.5. अपरदन

7.9.2.6. वन विनाश

7.9.2.7. सिंचाई पद्धति

7.9.2.8. गहन कृषि

7.9.2.9. रेडियोधर्मी पदार्थ

7.9.2.10. जीव–जन्तु

7.9.2.11. सार्वजनिक स्वायत्तशासी संस्थाओं का अपशिष्ट

7.10. मृदा प्रदूषण के प्रभाव

7.10.1. मानव पर प्रभाव

7.10.2. जीव–जन्तुओं पर प्रभाव

7.10.3. वनस्पति पर प्रभाव

7.10.4. कृषि पर प्रभाव

7.10.5. प्राकृतिक भू–दृश्यों पर प्रभाव

7.10.6. भवन निर्माण पर प्रभाव

7.11 मृदा प्रदूषण पर नियन्त्रण के उपाय

7.11.1. अपशिष्टों का निस्तारण

7.11.1.1. महासागरों में निस्तारण

7.11.1.2. भस्मीकरण

7.11.1.3. रासायनिक प्रक्रिया द्वारा

7.11.1.5. दारण
7.11.1.6. कम्पोस्ट बनाना
7.11.1.7. ऊर्जा उत्पादन
7.11.1.8. अन्य उपाय
7.11.2 मृदा संरक्षण
7.11.3 रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों का नियंत्रित उपयोग
7.11.4 अन्य उपाय
7.12 रेडियोधर्मी प्रदूषण
7.13 रेडियोधर्मी प्रदूषण का अर्थ और परिभाषा
7.14 रेडियोधर्मी प्रदूषण के तत्व
7.15 रेडियोधर्मी प्रदूषण के स्त्रोत
7.15.1 प्राकृतिक स्त्रोत
7.15.2 मानवीय स्त्रोत
7.16 रेडियोधर्मी प्रदूषण के प्रभाव
7.16.1 मानव पर प्रभाव
7.16.2 पर्यावरण पर प्रभाव
7.16.3 जीवों पर प्रभाव
7.16.4 संसाधनों पर प्रभाव
7.17 रेडियोधर्मी प्रदूषण को रोकने के उपाय
7.18 सारांश
7.19 शब्दावली
7.20 सन्दर्भ ग्रन्थ
7.21 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.22 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.0 उद्देश्य (Objectives)

- शोर क्या है? इसको स्पष्ट कर पायेंगे।
- अधिक शोर से होने वाले प्रदूषण को परिभाषित कर पायेंगे।
- शोर प्रदूषण के स्त्रोतों को जानेंगे।
- शोर प्रदूषण के प्रभावों से होने वाली हानि को समझ सकेंगे।
- शोर प्रदूषण पर नियन्त्रण एवं इससे बचने के उपाय जानेंगे।
- मृदा प्रदूषण को परिभाषित कर सकेंगे।
- मृदा प्रदूषण के कारणों का वर्णन कर सकेंगे।
- मृदा प्रदूषण के प्रभावों को जान सकेंगे।
- मृदा प्रदूषण को रोकने के उपायों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

- रेडियोधर्मी प्रदूषण के स्त्रोत बता पायेंगे।
- रेडियोधर्मी प्रदूषण के प्रभावों का पता चल पायेगा।
- रेडियोधर्मी प्रदूषण से होने वाले प्रभावों से बचने के उपायों से वाकिफ हो जायेंगे।
- रेडियोधर्मी प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपाय जान पायेंगे।

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

शोर प्रदूषण एक ऐसी पर्यावरणीय समस्या है जो मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करके पर्यावरण की गुणवत्ता में हास लाती है। शोर से तात्पर्य एक अवांछित ध्वनि से होता है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रत्येक ध्वनि अवांछित नहीं होती है जैसे कोई ध्वनि मधुर संगीत के रूप में अच्छी लगती है लेकिन तेज आवाज का संगीत कानों को अच्छा नहीं लगता है। शोर प्रदूषण के प्रदूषक पदार्थ के रूप में नहीं होती है। ध्वनि को डेसिबल (Decibel–dB) की इकाई में मापते हैं।

आज हम उस दुनिया का हिस्सा हैं जहां चारों तरफ शोर का बोलबाला है। लगातार होने वाला शोर हम पर किस प्रकार दुष्प्रभाव डाल रहा है, हमें अदांजा तक नहीं है। श्रवण शक्ति में कमी इस समय आम समस्याओं में से एक है और पूरे विश्व को अपने चपेट में लिए हुए है। भारत के संदर्भ में तो स्थिति ओर विकट है क्योंकि गाना–बजाना, सभा–समारोह हमारी सामाजिक एवं राजनैतिक परम्पराओं का भाग' रहा है। कोई विवाह, उत्सव या आयोजन बिना पटाखों, ढोल–नगाड़ों और लाउडस्पीकर के पूरा नहीं होता है। इसके अलावा टीवी., म्यूजिक सिस्टम, वाहनों की बढ़ती संख्या, उद्योगों का शोर आदि भी शोर के स्त्रोत हैं।

मृदा भूपर्पटी की ऊपरी सतह पर एक पतली पर्त है। भूतल के 29.2 भाग पर भूमि है जिसका निर्माण विभिन्न प्रकार की चट्टानों से हुआ है। स्थैतिक व गतिशील शक्तियों द्वारा शैलो के शरण से मृदा का जन्म होता है। मृदा एक ऐसा संसाधन है जिसका कोई विकल्प नहीं है। मृदा में खनिज, कार्बनिक पदार्थ, जीवित कायाएँ, वायु और जल होता है जो इसकी गुणवत्ता में सहायक होते हैं। मृदा की प्रक्रियाओं में सहायक बनकर हम उसकी गुणवत्ता तो बढ़ा सकते हैं पर उसे नष्ट करके दुबारा नहीं बना सकते हैं। भौतिक या मानवीय कारणों से मृदा की गुणवत्ता कम होने लगती है तो इसे मृदा का हलास कहा जाता है। मृदा अपरदन, पोषक तत्वों में कमी, तापमान में अधिक अन्तर, जीवांशो का असंतुलित अनुपात, कीटनाशी पदार्थ, रासायनिक पदार्थ, प्रदूषित जल, उवर्रक, कचरा, प्लास्टिक आदि मृदा की गुणवत्ता को घटा देते है। मृदा की गुणवत्ता घटना ही मृदा प्रदूषण कहलाता है।

परमाणु ऊर्जा का अविष्कार एवं इससे शक्ति उत्पादन करना वैज्ञानिकों की महान उपलब्धि है परन्तु इस प्रक्रिया में निकलने वाले रेडियोधर्मी अपशिष्ट पदार्थों से जो प्रदूषण हो रहा है वह जीव जगत के लिए घातक है। इस प्रदूषण के प्रभाव का सर्वप्रथम अनुभव अगस्त 1945 में द्वितीय विश्व युद्ध के समय जापान में हिरोशीमा व नागासाकी पर गिराए गए परमाणु बमों के रेडियोधर्मी प्रभाव से हुआ। इससे जापान में लाखों लोगों की मृत्यु हो गई तथा जीवित बचे व्यक्ति भी आज तक प्रभावित है। वायुमण्डल में परमाणु बम रेडियोधर्मी एक्टिव पदार्थ गिरते

है। इस क्रिया को 'रेडियो एक्टिव पदार्थ' कहते हैं। इन्हीं पदार्थों की क्रियाशीलता के फलस्वरूप हुआ प्रदूषण ही रेडियाधर्मी प्रदूषण होता है।

7.2 शोर प्रदूषण का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Noise Pollution)

शोर प्रदूषण के बारे में नोबेल पुरस्कार विजेता राबर्ट कांच ने एक शताब्दी पूर्व बताया था कि ' 'एक दिन ऐसा आयेगा जब मनुष्य को स्वास्थ्य के सबसे बुरे शत्रु के रूप में शोर से संघर्ष करना पड़ेगा । और आज यह समय आ गया है।

केलीफोर्निया विश्वविद्यालय के चांसलर डॉ. वर्न नुडसन ने धुंए के समान शोर को भी एक धीमी गति वाला मृत्यु दूत बताया है।

प्राकृतिक हलचल व प्राणियों के क्रिया कलापों से वायुमण्डल पर दबाव पड़ने के कारण वायु तले उत्पन्न होती हैं जिससे ध्वनि उत्पन्न होती है। ध्वनि हमेशा किसी न किसी प्रकार की गति के साथ संयुक्त रहती है जैसे की चलने, दौड़ने, तथा कम्पन इत्यादि के समय गतियाँ होती है, ध्वनि गति से सम्बन्धित है तथा गति ऊर्जा से सम्बन्धित है। अत: स्पष्ट है कि ध्वनि ऊर्जा का ही एक रूप है।

अवांछित ध्वनि जो सुनने वाले को अच्छी नहीं लगे तथा वह मनुष्य की श्रवण शक्ति, स्वास्थ्य कार्य करने की क्षमता एवं आराम को कष्टदायी बनाये वह शोर प्रदूषण कहलाता है।

शोर प्रदूषण को भौतिक वैज्ञानिकों तथा मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि से निम्न तरह से प्रकट किया गया है।

भौतिक वैज्ञानिकों की दृष्टि से – शोर एक ऐसी ध्वनि है जिसमें कोई क्रम नहीं होता है तथा जिसकी अवधि लम्बी अथवा छोटी तथा आवृति अपरिवर्तनीय होती है। यह ध्वनि लगातार भी हो सकती है और रूक–रूक कर भी हो सकती है।

मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि से – कोई भी ऐसी ध्वनि जो श्रोता को अप्रिय लगे चाहे वह कितना ही बढ़िया संगीत अथवा गायन ही क्यों न हो शोर माना जाता है।

शोर प्रदूषण को अनेक विद्वानों के द्वारा परिभाषित किया गया है : –

मेक्सवैल के अनुसार – शोर वह ध्वनि है जो अवांछनीय है जो वायुमण्डलीय प्रदूषण का एक प्रकार है।[1]

साइमन्स के अनुसार – बिना मूल्य की निरर्थक अथवा अनुपयोगी ध्वनि ही शोर प्रदूषण है।

विल्सन के अनुसार – कोई भी ध्वनि, जो उसे ग्रहण करने वाले के लिए अवांछित हो, शोर कहलाती है।

डेटवायलर के अनुसार – पर्यावरण में शोर इस सीमा तक फैल जाए कि जन सामान्य को क्षुब्ध या चिड़चिड़ा करने लगे तो उसे शोर प्रदूषण कहेंगे।

---

1. Maxwell, K.E. : “Noise is any sound that is not wanted. It is one of the more common forms of atmospheric pollution”.

शोर को हम संक्षेप में इस तरह से जान सकते है :

1. अनावश्यक, अप्रिय तथा असुविधाजनक ध्वनि हो।
2. ऐसी ध्वनि जो ग्रहण करने वाले की इच्छा के विपरीत हो।
3. गलत स्थान एवं गलत समय पर उत्पन्न ध्वनि, शोर है।
4. बिना महत्व एवं कार्य की ध्वनि शोर है।
5. डी.बी. से अधिक ध्वनि शोर है।

7.3 शोर का मापन एवं प्रबलता (measurement of noise and its intensity)

शोर प्रदूषण एक प्रबल खतरा है। इसलिए इसके खतरे के ध्वनिस्तर को मापने के लिए डेसिबल इकाई का प्रयोग किया जाता है। डेसिबल रिकार्ड करने के लिए (Sound Meter) ध्वनि यंत्र का प्रयोग करते हैं। इस ध्वनि मापक में ध्वनि तरंगों को विधुत तरंगो में बदला जाता है इन विधुत तरंगों को डेसिबल में मापा जाता है निम्न तालिका में विभिन्न शोर के डेसिबल स्तर को दिखाया गया है–

तालिका–7.1: शोर के स्रोत और उसकी मात्रा (अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुसार)

क्र.स.	स्त्रोत	शोर प्रबलता डेसीबल में	मनुष्य द्वारा अनुभव किय जाने वाला स्तर (मानवीय अनुक्रिय)
1	हृदय की धड़कन, गर्भस्थ शिशु की क्रियाओं, श्रवण शक्ति की शुरूआत	0 से 5	छाती एवं पेट पर कान लगने पर ही सुनी जा सकती है।
2	श्वसन, पत्तों की खड़खड़ाहट (पतझड़ में)	10 - 15	शान्त, सुनने की क्षमता में वृद्धि
3	प्रसारण का स्टुडियो, फुसफुसाहट वृक्षों से गुजरती हवा (शांत वातावरण में)	15 - 30	शान्त
4	घड़ी की टिकटिक, शयन कक्ष (रात्रि में) अति धीमा रेडीयो, धीमी बातचीत	30 - 35	मधुर मनुष्य के लिए आदर्श ध्वनि
5	पुस्तकालय, सामान्य बातचीत, एयर कंडीशनर	40 - 45	मधुर
6	शांत कार्यालय	50 - 55	शांत सुविधाजनक
7	टेलीफोन, हल्का यातायात, व्यस्त घनी बस्तियाँ, वार्तालाप (एक मीटर की दूरी से)	60 - 65	शोर प्रदूषण का प्रारंभ
8	स्वचालित वाहन, टी.वी.	65 - 70	असुविधा, वार्तालाप तथा टेलीफोन बातचीत में बाधक
9	राष्ट्रीय मार्गो का यातायात, प्रिंटिंग प्रेस, नगर के व्यस्त चौराहे	70 - 80	असुविधाजनक, वार्तालाप तथा टेलीफोने बातचीत में बाधक
10	भारी ट्रक वाहन, ज़ोर से चिल्लाना बस स्टेण्ड	80 - 90	प्रबल शोर से झुंझलाहट
11	मोटर साईकल, हवाई अड्डा, आरा मशीन, रेलवे स्टेशन, आर्केस्टा, भूमिगत रेल, हेड	90 - 100	चिल्लाने पर भी स्पष्ट सुनाई नहीं देना

	फोन से संगीत सुनना, शोर की गर्जना, फैक्ट्री का बायलर		
12	शेर की गर्जना, फैक्ट्री का बायलर, रेल का स्टीम इंजन	100 - 110	घबराहट, प्रबल शोर
13	हवाई जहाज की उड़ान, गाड़ियों के हॉर्न, लाउडस्पीकर, बिजली की कडक, राक संगीत का बैण्ड, डी.जे., प्रेशर हार्न	110 - 120	अति असुविधाजनक
14	उड़ान भरता जेट	130-140	कानों में दर्द का प्रभाव
15	जेट इजन, अंतरिक्ष यान की उड़ान	140-150	घातक, शरीर में थकान कष्ट प्रद असहीन शोर
16	जेट प्लेन का उतरना	150-160	कानों में पर्दे के लिय घातक
17	बन्दूक का दागना	160-170	उरोक्त
18	बंम्बार्डिंग	170-180	अति पीड़ादायक
19	राकेट इंजन	180-190	असहनीय
20	ज्वालामुखी विस्फोट	190 से अधिक	मृत्यु भी हो सकती है।

उपरोक्त तालिका में वर्णित शोर प्रबलता के स्तर को मोटे रूप में हम निम्न 5 भागों में व्यक्त कर सकते हैं।

तालिका–7.2: शोर की तीव्रता तथा मनुष्य द्वारा अनुभव की जाने की श्रेणी

	शोर की तीव्रता (डेसीबल में)	**शोर स्तर की श्रेणी**
1.	0 - 30	शान्त
2.	30 - 60	मधुर
3.	60 - 90	तीव्र
4.	90 से 120	अति तीव्र (हानिकारक)
5.	120 से अधिक	असुविधाजनक (खतरनाक)

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने दिन में 435 डेसीबल तथा रात में 35 की ध्वनि को कर्णप्रिय एवं मानवीय स्वास्थ्य के लिए सर्वाधिक सुरक्षित बताया है। मनुष्य के लिए ध्वनि की अधिकतम स्वीकृत सीमा निम्न तालिका में प्रदर्शित की गई है।

तालिका 7.3: ध्वनि प्ररुण की अधिकतम स्वीकृत सीमा

	कार्य स्थल	अधिकतम स्वीकृत सीमा (dB)
1.	अस्पताल का वार्ड	20 – 30
2.	शयन कक्ष	25 - 30
3.	संगीत कक्ष	20 - 35
4.	अध्ययन कक्ष	25 – 30
5.	सभा कक्ष	30 - 35
6.	वाणिज्यिक कक्ष	30 - 45

7.	वाणिज्यिक क्षेत्र	55 - 65
8.	कार्यालय	30 - 45
9.	टाइपिंग सेन्टर	50 - 60
10.	रहने का कमरा	40 - 45
11.	आवासीय क्षेत्र	50 - 55
12.	औद्यौगिक क्षेत्र	75 - 80
13.	सांस्कृति क्षेत्र	35 - 40

7.4 शोर प्रदूषण के स्रोत (Source of Noise Pollution)

शोर प्रदूषण के स्रोत को निम्न दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है -

शोर के स्रोत

प्राकृतिक

- मेघ गर्जन
- बिजली का कड़कना
- तूफानी हवाएँ
- ज्वालामुखी विस्फोट
- भूकम्प
- समुद्री तट पर लहरों का टकराना
- भूस्खलन
- मूसलाधार वर्षा
- सूखी पत्तियों की सरसराहट
- पक्षियों की चहचहाट
- नदियों की कलकल
- पशुओं की आवाज

मानवीय

- परिवहन के साधन (स्थल तथा वायु)
- उद्योग
- मनोरंजन के साधन
- खनन
- घरेलू उपकरण
- हथियार
- आतिशबाजी
- धार्मिक अनुष्ठान
- सामाजिक कार्य
- निर्माण कार्य
- आकस्मिक हादसे
- अन्य

7.4.1 प्राकृतिक स्रोत (Natural Sources)

उपरोक्त सूची में वर्णित प्राकृतिक स्रोत, ध्वनि के प्रमुख स्रोत है। ये सभी कारक क्षेत्रीय होने के साथ साथ अल्प समय के होते हैं तथा प्रभाव भी अस्थायी होता है। इन स्रोतों में कुछ तो जैसे मेघगर्जन, बिजली की कड़क, तूफानी हवाएं, ज्वालामुखी विस्फोट, भूस्खलन, मूसलाधार वर्षा, लहरों का टकराना, शेर की दहाड़, हाथियों की चिघांड, सियारो का शोर कुत्तों का भौंकना आदि की ध्वनि की तीव्रता तो अधिक होती है परन्तु ये हानिकारक नहीं होती है जबकि कुछ ध्वनियों जैसे रिमझिम वर्षा की छमछम, सूखी पत्तियों की सरसराहट, चिड़ियों की चहचहाट, नदियों की कलकल मानव को अवांछित नहीं लगकर कर्णप्रिय लगती है तथा उसे आनंदित करती है।

7.4.2.1 मानवीय स्त्रोत

जनसंख्या की वृद्धि के साथ साथ बढ़ता नगरीकरण, औद्योगी विकास, परिवहन के साधनों में बेतहाशा बढ़ोतरी, खनन क्रियायें, सामाजिक एवं धार्मिक कार्य, युद्ध, मनोरंजन के साधन के

इलेक्ट्रोनिक, उपकरण, आकस्मिक हादसे आदि ऐसे मानवीय स्रोत हैं जिनसे शोर प्रदूषण बढ़ रहा है। इन स्रोतों पर आगे विस्तृत में विचार किया जा रहा है।

7.4.2.1 गतिशील परिवहन के साधन

गतिशील परिवहन के साधनों को तीन भागों में विभक्त कर अध्ययन कर सकते हैं।

(अ) **स्थलीय परिवहन :**

स्थलीय परिवहन में मोटर कार, मोटर साइकल, स्कूटर, बस, ट्रक, रेल, अग्रिशमन वाहन, पुलिस वाहन, एम्बूलेन्स, प्रमुख राजनेताओं की रैली में प्रयुक्त वाहनों की आवाज शोर प्रदूषण का कारण बनती है। इन वाहनों के इंजन की आवाज ही सिर्फ शोर का कारण नहीं है। बल्कि इनमें प्रयुक्त हार्न, सायरन तथा रेल इंजन की सिटी भी शोर प्रदूषण उत्पन्न करती है। नगरों में अग्रिशमन गाड़ियाँ, एमबुलेन्स, प्रमुख राजनेताओं की आवाजाही की रैली से भी अत्यधिक शोर होता है।

सभी प्रकार की मोटर गाड़ियों में एक समान ध्वनि नहीं निकलती है, इन मोटर गाड़ियों की ध्वनि सघनता को तालिका 7.4 में दर्शाया गया है। सामान्यत: सबसे तेज आवाज बसो से ओर सबसे कम मोटर कार से निकलती है।

तालिका– 7.4 : मोटर गाड़ियों द्वारा उत्पन्न ध्वनि

(120 मोटर गाड़ी प्रति घंटा न्यूनतम गतिशीलता के आधार पर)

वाहन का प्रकार	औसत ध्वनि (डेसीबल में)
बस	83
ट्रक	81
मोटर साइकिल	77
मोटर कर	70-72

औसतन 50 डेसीबल की आवाज सहन सीमा के अन्दर मानी जाती है तथा 60 डेसीबल तक ध्वनि को सहन किया जा सकता है उपरोक्त तालिका में उत्पन्न ध्वनि (औसत ध्वनि) के रूप में है, जबकि बड़े नगरों में इनकी ध्वनि का स्तर भिन्न –भिन्न पाया जाता है। मुम्बई में 71 से 104 डेसीबल, दिल्ली में 64 से 104 डेसीबल, कानपुर में 42 से 89 डेसीबल तथा वाराणसी में 58 से 86 डेसीबल तक पाया जाता है।

प्रमुख सड़क मार्गों तथा रेल्वे स्टेशन के पास शोर प्रदूषण का स्तर अधिक पाया जाता है। वाहनों से उत्पन्न शोर की तीव्रता वाहनों की दशा, हार्न, ब्रेक के इस्तेमाल, यातायात व्यवस्था तथा सड़कों की दशा पर भी निर्भर करती है।

(ब) वायु परिवहन

वायु परिवहन आज से 20 वर्ष पहले बहुत सीमित मात्रा में था, लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के साथ रोजगार के लिए प्रवसन के कारण वायु परिवहन का प्रचलन बहुत बढ़ गया है। इस क्षेत्र में निजी कम्पनियों की सहभागिता ने वायु परिवहन को और अधिक बढ़ा दिया है। इन हवाई जहाजों का शोर सर्वाधिक हवाई अड्डों के निकट होता है जब हवाई जहाज नीचे उड़ान भरता है तो इसकी आवाज से दिल कांप जाता है तथा कभी कभी छोटे बच्चे घबराकर गिर जाते है तथा

बेहोश भी हो जाते है। कानों को आवाज सुनाई देना भी बन्द हो जाता है। जेट विमान उड़ान भरते समय 140 डेसीबल तथा इससे भी अधिक ध्वनि उत्पन्न करते हैं। सर्वाधिक ध्वनि उत्पन्न करने वाले उपग्रह प्रक्षेपण यान शोर का स्तर बहुत अधिक बढ़ा देते है।

(स) जलयानों द्वारा

जलयानों द्वारा सिर्फ जलमार्गो तथा समुद्र तट पर स्थित बन्दरगाहों पर ही शोर प्रदूषण होता है। इससे अधिकतर तटवासी ही प्रभावित होते है जब इन जलयानों को स्टार्ट करते है तब इनसे शोर उत्पन्न होता है तथा इनके शोर से जल मार्गों में आने वाले जीव–जन्तु प्रभावित होते है।

7.4.2.2 उद्योगों द्वारा

शोर प्रदूषण के स्रोतों में उद्योग धन्धे अग्रणी है। इनकी मशीने इतना शोर उत्पन्न करती है कि वहां कार्यरत श्रमिक बहुत जल्दी बहरे हो जाते है। इन उद्योगों में ध्वनि का स्तर 100 डेसीबल से अधिक पाया जाता है। नगरों में उद्योगों का संकेन्द्रण होने से यह समस्या और अधिक बढ़ रही है। इन उद्योगों के शोर का प्रभाव सिर्फ उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों पर ही नहीं पड़ता है बल्कि समीपवर्ती क्षेत्रों के निवासियों पर भी पड़ता है। उद्योगों में कार्य करने वाले श्रमिकों पर उम्र के अनुसार अपना प्रभाव दिखाते हैं। 30 वर्ष के श्रमिक के लिए 95 डेसीबल, 40 से 50 के लिए 84 डेसीबल तथा 50 से 60 वर्ष के लिए 80 डेसीबल ज्यादा हानिकारक नहीं है।

7.4.2.3 मनोरंजन के साधन

प्राचीन समय में मनोरंजन के साधन स्थानीय स्तर पर होते थे, जिनकी शोर का स्तर हानिकारक नहीं होता था। पहले मनोरंजन के साधनों में नाटक, नाच गाने, खेल–कूद तक ही सीमित थे परन्तु वर्तमान में घरेलू मनोरंजन के साधन इलेक्ट्रोनिक उपकरण जैसे रेडियो, टी.वी., टेप रिकार्डर, वीडियो गेम आदि शोर प्रदूषण के स्रोत बन गए है, यद्यपि मधुर संगीत, धीमी आवाज सदैव मानव को मनोरंजन प्रदान करता है परन्तु इन्हीं उपकरणों से उत्पन्न उच्च डेसीबल की आवाज असहनीय हो जाती है। ये मनोरंजन तो कम करते हैं शोर प्रदूषण अधिक करते है। वर्तमान में उच्च आवृति वाले पॉप संगीत शोर, डी जे. पर नृत्य के साथ तेज आवाज के संगीत के प्रचलन से मानव की श्रवण शक्ति प्रभावित हो रही है

7.4.2.4 खनन क्रिया

खनन क्षेत्रों में चट्टानों को तोड़ने के लिए विस्फोटकों का प्रयोग किया जाता हैं जब इन विस्फोटकों को विस्फोटित किया जाता है तो इनकी आवाज के साथ खनन पदार्थ के टूटने की आवाज भी सम्मिलित होकर शोर प्रदूषण उत्पन्न करती है। विस्फोटकों के अलावा खनन क्रिया में प्रयुक्त होने वाले उपकरण एक्सकेवेटर, ट्रेक्टर, ड्रिलिंग मशीन, कम्प्रेशर, पम्पसेट, क्रेन, स्टोन कटर से भी शोर प्रदूषण होता है। कभी–कभी खदानों के धसकने से भी धमाके होते हैं। उदयपुर के पास जावर माइन्स में एक खदान के धसकने से काफी तेज शोर हुआ था।

7.4.2.5 घरेलू उपकरण

घरेलू कार्यों में उपयोग में लिए जाने वाले उपकरण जैसे घरेलू आटा चक्की, वाशिंग मशीन, मिक्सर ग्राइन्डर, सिलाई मशीन, कूलर, वाटर पम्प, वेक्यूम क्लीनर, मिट्टी के तेल का चूल्हा भी घरों में असहनीय शोर उत्पन्न करते है, जो शांत वातावरण को प्रदूषित करते है।

7.4.2.6 हथियार

युद्ध, युद्धाभ्यास, डकैती के लिए, युद्ध आधारित फिल्मों की सूटिंग तथा आंतकियों द्वारा उपयोग में लिए गए विभिन्न हथियार जैसे राइफल, मशीनगन, मोर्टाटर, राकेट लान्वर, तोप, टेंक, प्रक्षेपास्त्र, बारूदी सुरंग फटने से बड़े पैमाने पर शोर होता है। परमाणु विस्फोट से होने वाले धमाकों की आवाज कम्पन्न उत्पन्न कर देते है।

7.4.2.7 आतिशबाजी

विभिन्न अवसरों जैसे त्यौहारों पर, वैवाहिक उत्सव, मैच या, चुनाव जीतने पर आतिशबाजी करना सामान्य प्रचलन है इनसे शोर के साथ ही वायु प्रदूषण भी होता है।

7.4.2.8 धार्मिक अनुष्ठान

पूजा स्थलों (मंदिर तथा मस्जिदों) पर लगे उच्च क्षमता वाले ध्वनि विस्तारक यंत्रों के उपयोग से शोर प्रदूषण होता है। भोर में ही लाउडस्पीकरों द्वारा मंदिरों में पूजा तथा मस्जिदों में अजान मानव निद्रा में खलल डाल कर उसमें खिजलाहट उत्पन्न करता हैं। धार्मिक कार्यों में कथा, कीर्तन, जूलुस, गरबा, मुशायरा आदि में एकत्रित विशाल जनसमूह तथा ध्वनि विस्तारक यंत्र दोनों ही शोर उत्पन्न के स्रोत हैं।

7.4.2.9 सामाजिक कार्य

विभिन्न सामाजिक अवसरों जैसे विवाह, उत्सव, सम्मेलनों में बैण्डबाजे एवं ध्वनि विस्तारक यन्त्रों के द्वारा भी शोर प्रदूषण होता है। सामाजिक कार्यों के अलावा समाज के लोग, राजनीतिज्ञों तथा कर्मचारियों द्वारा बंद, धरना, हड़ताल, चुनाव प्रचार, विजय जुलूस आदि में ध्वनि विस्तारक यंत्र हानिकारक है।

7.4.2.10. निर्माण कार्य

विभिन्न प्रकार के व्यक्तिगत, सामाजिक, धार्मिक एवं सरकारी निर्माण कार्यों जैसे भवन, सड़क, पुल तथा बांधो के निर्माण में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न मशीनों से निकटवर्ती क्षेत्रों तथा वहां कार्यरत श्रमिकों पर मशीनों के शोर का प्रभाव पड़ता है। इन कार्यों में आजकल नींव खुदाई से लेकर अन्तिम निर्माण कार्य तक मशीनों का प्रयोग होने लगा है।

7.4.2.11 आकस्मिक हादसे

आकस्मिक हादसों में उद्योगों में बायलर का फटना, गैस सिलेंडरों का फटना, ज्वलनशील, रसायनों को ले जाने वाले वाहनों तथा गोदामों में आग लगना, आतिशबाजी तथा बारूद के गग़ेदामों में शॉट सर्किट से आग लगकर विस्फोट होना, चलते – चलते वाहनों के टायर फटजाना, रेलों की भिड़न्त होना, क्षतिग्रस्त मकानों या निर्माणाधीन मकानों का टूट कर गिरना आदि से उत्पन्न ध्वनि भी शोर प्रदूषण करती है।

7.4.2.12 वाणिज्यिक किया कलाप

वाणिज्यिक क्रियाओं के लिए गली–गली में हॉकरों द्वारा जोर–जोर से चिल्लाकर आवाज लगाना, अपने उत्पादन के प्रचार के लिए वाहनों में लाउडस्पीकर लगाकर घूमना, प्रदर्शनी में प्रचार – प्रसार के लिए ध्वनि विस्तारक यंत्र काम में लेने से शोर प्रदूषण होता है।

7.4.2.13 अन्य स्रोत

ऑटोमोबाइल्स सर्विस सेन्टर, इलेक्ट्रोनिक उपकरण सर्विस सेन्टर, विद्युत अवरोध के समय जेनरेटरों के चलने की आवाज, आदि बहुत से अन्य कारक है जो शोर प्रदूषण को जन्म देते है।

7.5 शोर प्रदूषण के दुष्प्रभाव (Effects of Noise Pollution)

शोर प्रदूषण एक धीमे जहर की तरह काम करता है। इसके प्रभाव से श्रवण शक्ति का हास तो स्पष्ट रूप से होता ही है। 115 डेसीबल या इससे अधिक तेज ध्वनि कानों को तुरन्त गहरा नुकसान पहुंचाती है, जो लोग कम सुनने लगते है उनको धीरे धीरे तेज आवाज में बोलने की आदत पड़ जाती है, तथा वह आवाज सम्पर्क में आने वाले दूसरे व्यक्ति को परेशान करती है। शोर प्रदूषण के कई अन्य दुष्प्रभाव भी है जो अधिकांशत: सीधे नजर नहीं आते हैं पर उसके घातक परिणाम होते हैं। शोर प्रदूषण का प्रभाव मानव के स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। लम्बे समय तक तेज आवाजों के बीच रहने वाले लोगों में तनाव, चिड़चिड़ापन, गुस्सा आना आम बात है। इसके अलावा अनिद्रा हृदयगति का बढ़ना, रक्तचाप का बढ़ना, हार्मोन्स असंतुलन, पाचन एसिडिटी, थकान आदि होते हैं।

एक ताजा शोध के अनुसार गर्भवती महिला यदि शोर के हानिकारक स्तर को लगातार सुनती है तो शिशु की जन्म से ही श्रवण क्षमता में कमी हो सकती है, प्रसव समय पूर्व हो सकता है, गर्भ भी गिर सकता है, भारत के प्राचीन साहित्य में इसके उदाहरण हैं। रामचरित मानस में बताया है कि हनुमान जी की गर्जना से लंका 'में स्त्रियों के गर्भ गिर गये थे।

चलत महाधुवि गर्जेसि भारी।
गर्भ स्त्रवहि सुनि निसिचर नारी।।

शिशु को विकास सम्बन्धी समस्यायें आ सकती है, नवजात शिशु को शोर की वजह से कान के अंदरूनी भाग पर चोट पहुंच सकती है। स्कूल जाने वाले बच्चों में इस वजह से एकाग्रता, पढ़ने और समझने की क्षमता और स्मरण शक्ति में कमी पाई जाती है।

शोर प्रदूषण का प्रभाव सजीव तथा निर्जीव दोनों पर ही पड़ता है इसके प्रमुख दुष्प्रभावों को निम्नलिखित वर्गो में विभक्त कर सकते है।

(1) मानव पर

(2) जीव–जन्तुओं पर

(3) प्राकृतिक भू–दृश्यों पर

(4) भवनों पर

7.5.1. मानव पर प्रभाव

शोर प्रदूषण के मानव पर प्रभाव को निम्न वर्गों में विभक्त कर अध्ययन किया जा सकता है।

1. श्रवण शक्ति का हास

2. शारीरिक विकास व व्यवहार में बदलाव – पाचन शक्ति में खराबी, मोटापे में वृद्धि, गंजापन, स्मरण शक्ति में कमी, कार्यक्षमता में कमी, चिड़चिड़ापन, रक्तचाप में बढ़ोतरी, शारीरिक विकास में असमानता।
3. मानसिक स्तर में बदलाव – सिरदर्द, अनिद्रा, पागलपन

श्रवण शक्ति का ह्रास

अवांछित शोर का सबसे प्रत्यक्ष हानिकारक प्रभाव कानों पर पड़ता है। यह श्रवण शक्ति अस्थायी और स्थायी तौर पर प्रभावित होती है। अस्थायी प्रभावित श्रवण शक्ति को (TTS–Temporary threshold shift) अस्थायी दहलीज परिवर्तन कहते है। महाराष्ट्र में जब गणपति पूजा के दौरान दस दिनों तक कर्णभेदी संगीत बजता है तो गणेश मंडपो के पास रहने वाले व्यक्ति इससे प्रभावित होते हैं, परन्तु इन व्यक्तियों की श्रवण शक्ति कुछ समय पश्चात वापिस आ जाती है। स्थायी बहरापन जैसे शोरजन्य स्थायी दहलीज परिवर्तन (Noise Induced Permanent Threshold Shift – NIPTS) कहते हैं। इन व्यक्तियों में श्रवण शक्ति वापिस नहीं आती है। ये स्थायी रूप से बहरे हो जाते है।

शोर प्रदूषण से मनुष्य की संवेदनशील इन्द्रीय कान प्रभावित होती है। अधिक ध्वनि वाले क्षेत्रों में बहरेपन का विकार उत्पन्न हो जाता है। चिकित्सकों के अनुसार 88 डेसीबल से अधिक शोर व्यक्ति को बहरा बना सकता है। नगरों तथा औद्योगिक क्षेत्रों में अधिक शोर शराबे से मनुष्यों में बहरापन 45 वर्ष से तथा ग्रामीण क्षेत्रो में 60 वर्ष से प्रारम्भ हो जाता है। 120 डेसीबल से अधिक शोर श्रवण तन्त्र को बेकार कर देता है। 160 डेसीबल शोर में कान का पर्दा फट जाता है तथा मनुष्य सदैव के लिए बहरा हो जाता है।

शारीरिक विकास व व्यवहार में बदलाव –

केलीफोर्निया विश्वविद्यालय के नोवल जोन्स ने सवा दो लाख से भी अधिक शिशुओं का परीक्षण करने के बाद निष्कर्ष दिया कि शोर प्रदूषण में रहने वाली स्त्रियों के शिशुओं में जन्म से ही शारीरिक विकृतियां आ जाती है, जिनसे उनका विकास तो अवरूद्ध होता ही है, उनके व्यवहार में भी बदलाव आ जाता है।

शारीरिक स्तर में बदलाव को निम्नलिखित बिन्दुओं में अभिव्यक्त कर सकते हैं।

1. **पाचन शक्ति में खराबी –** अत्यधिक शोर के कारण पाचक रसों के निर्माण में कमी आने से पाचन शक्ति खराब हो जाती है। पाचन शक्ति खराब होना अनेक रोगों की जड़ है। पेट में अप्स की अधिकता से आमाशय और आहार नलिका में जलन होती है जो बाद में अल्सर में परिवर्तित हो जाती है।
2. **मोटापे में वृद्धि –** शोर से आदमी को मानसिक थकान महसूस होती है जिससे शरीर में शिथिलता आने के कारण चर्बी की मात्रा बढ़ने से मोटापे में वृद्धि हो जाती है।
3. **गंजापन बढ़ना –** मानसिक परेशानी होने के कारण उम्र से पहले ही बाल सफेद होकर कम होने लगते है तथा व्यक्ति गंजा हो जाता है।
4. **स्मरण शक्ति में कमी –** अवांछित शोर का दुष्परिणाम मानव की स्मरण शक्ति में कमी होना है, क्योंकि शोर मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव डालता है।

5. **कार्यक्षमता में कमी –** अत्यधिक शोर होने पर मनुष्य का ध्यान कार्य में न लग कर शोर की ओर चला जाता है जिससे उसकी कार्य कुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा मस्तिष्क की उद्विग्रता के कारण धीरे धीरे कार्यक्षमता कम होने लगती है।
6. **चिड़चिड़ापन –** शोर मनुष्य के आचरण एंव मानसिक दशाओं पर बहुत जटिल प्रभाव डालता है। इस वजह से मनुष्य में तनाव, खीझ, झुंझलाहट, चिड़चिड़ापन आने लगता है । अधिक शोर में रहने वाले व्यक्ति, बिना बात उत्तेजित हो जाते हैं तथा परिवार एवं सहयोगियों से बात करने में झुंझलाहट व्यक्त करते हैं।
7. **रक्तचाप में बढ़ोतरी –** अधिक शोर से मोटापा आने के कारण रक्तचाप बढ़ता है जो कालान्तर शोर में हृदय जाता है।
8. **शारीरिक विकास में असमानता –** वैज्ञानिक परीक्षणों के अनुसार शोरगुल का प्रभावनवजात शिशुओं के सामान्य विकास पर अधिक पड़ता है। शोर की वजह से उनका सामान्य शारीरिक विकास नहीं हो पाता है और प्रदूषण से इनकी त्वचा पीली भी पड़ जाती है।

मानसिक स्तर में बदलाव

अत्यधिक शोर के परिणामस्वरूप मनुष्य में कुण्ठा, तनाव, भय, पागलपन के लक्षण प्रतीत होने लगते हैं। शोर से उत्पन्न तनाव मनुष्य की मानसिकता को बदल रहा है। इन मानसिक स्तर पर हुए बदलाव को निम्न बिन्दुओं में अभिव्यक्त किया जा सकता है।

1. **सिर दर्द –** बहुत भीड़–भाड़ एवं शोर वाले क्षेत्रों में मनुष्य को सिर दर्द की शिकायत रहती है। इस सिर दर्द को कम करने के लिए काम में ली गयी औषधियाँ मस्तिष्क क्षमता को घटाती है।
2. **अनिद्रा –** शोर का दुष्परिणाम अनिद्रा रोग है। जब व्यक्ति जरूरत के अनुसार पूरी नींद नहीं ले पाता है तो उसे कई रोग हो जाते हैं। कभी कभी मनुष्य सोने के लिए नींद की गोलियां भी खा लेता है जो कालान्तर में नुकसान पहुंचाती हैं।
3. **पागलपन –** शोर के कारण मनुष्य का चिड़चिड़ा होना, छोटी–छोटी बातों पर उत्तेजित होना, मारना–पीटना आदि पागलपन के निशान होते हैं।

चिकित्सा शोध से ज्ञात हुआ है कि उपरोक्त प्रभावों के अतिरिक्त शोर के प्रजनन क्षमता एवं यौन इच्छाओं पर प्रतिकूल प्रभाव, रक्त में कोलेस्ट्रोल एवं कार्टिसान जैसे विषैले पदार्थ भी बढ़ जाते है।

7.5.2 जीव–जन्तुओं तथा वनस्पति पर प्रभाव (Effects on vegetation and Animals)

अत्यधिक शोर से मानव ही प्रभावित नहीं होता है बल्कि जीव जन्तु पर भी हानिकारक प्रभाव पड़ते हैं। लगातार होने वाले शोर से जीव–जन्तु अपने आवास स्थल को बदल लेते हैं। शोर के कारण वन्य प्राणियों के नैसर्गिक कार्यकलापों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं। कभी कभी तो पक्षी अण्डे देना बन्द कर देते हैं। अनेक सूक्ष्म जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। पालतू पशुओं के स्वास्थ्य पर असर पड़ता है तथा दूध की मात्रा में कमी आ जाती है। जीव–जन्तुओं के साथ साथ शोर का दुष्प्रभाव वनस्पति के विकास पर भी पड़ता है। अमरीका की डोरोथी लेक ने एक बार कुछ

पौधों को पॉप म्यूजिक और कुछ को रविशंकर का सितार वादन सुनवाया तो पाप संगीत सुनने वाले पौधें मात्र 35 अंश झुके तथा सितार सुनने वाले 70 अंश तक झुक गए।

7.5.3 प्राकृतिक भूदृश्यों पर प्रभाव (Effects on Natural Landscpes)

विस्फोटों तथा अत्यधिक गर्जना के कारण उत्पन्न शोर से प्राकृतिक भू–दृश्यों को नुकसान पहुंचता है इसके कारण चट्टानें खिसकने से भू–स्खलन की घटनाएं होती हैं। हिमाच्छादित पर्वतीय क्षेत्रों में विस्फोट के शोर से हिम टूट कर पिघल जाती है तथा पर्वतीय ढाल नग्न हो जाते हैं।

7.5.4 भवनों पर प्रभाव (Effects on Building)

शोर के कारण जैविक ही नहीं अजैविक पदार्थ भी प्रभावित होते हैं। तेज ध्वनि के धमाकों और विस्फोट से पुरानी इमारतें, पुल अनेक ऐतिहासिक भवन में टूटन क्रिया हो जाती है। चन्देल राजाओं द्वारा निर्मित खजुराहों के विश्वविख्यात मन्दिर में पिछले वर्षो में वायुयान के शोर की अधिकता से दरार पड़ना शुरू हो गयी है। इसी तरह उड़ीसा के लिंगराज मंदिर में भी दरारें पड़ गयी है। वायुयान के उड़ान भरते समय उनकी आवाज से निकटवर्ती मकानों की खिड़कियों के शीशे टूट जाते है। परमाणु विस्फोटों के कारण होने वाला कंपन सैकड़ों किलोमीटर दूर स्थित भवनों एवं अन्य निर्माणों को क्षति पहुंचाते हैं।

शोर एक परेशानी मात्र नहीं है बल्कि स्पष्ट रूप से जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। इसलिए शोर प्रदूषण का शमन या नियत्रंण आवश्यक है।

7.6 शोर प्रदूषण पर नियंत्रण के उपाये (Measures to Control on noise pollution)

शोर प्रदूषण के व्यापक दुष्प्रभाव को देखते हुए इस पर नियन्त्रण के प्रयास आवश्यक है। यद्यपि इसे पूर्ण रूप से रोक पाना एक कठिन कार्य है। ध्वनि प्रदूषण की रोकथाम एक चुनौती पूर्ण समस्या है फिर भी शोर पर नियंत्रण करने के लिए उसके स्रोत पर शोर में कमी करके, शोर के रास्ते बन्द करके, रास्ते की लम्बाई बढ़ाकर तथा शोर ग्रहण करने वाले को सुरक्षित उपाय करके किया जा सकता है। शोर से उत्पन्न समस्याओं पर नियंत्रण करने के लिए निम्न उपाय किए जा सकते हैं।

1. शोर उत्पन्न करने वाले उद्योगों की स्थापना आबादी व अभ्यारणों से पर्याप्त दूरी पर की जानी चाहिए। इनका निर्माण ध्वनि निरोधक दीवारों (sound Proff wall) से होना चाहिए। उद्योगों' के ढांचे इस प्रकार बनाए की ध्वनि गूंजे नहीं अपितु विस्तीर्ण हो जाए।
2. उद्योगों में पुरानी हो चुकी मशीनों के स्थान पर उच्च तकनीक विकास द्वारा विकसित न्यून शोर प्रदूषण वाली मशीनों को लगाया जाना चाहिए। मशीनों को ध्वनि अवशोषकों से ढककर शोर प्रदूषण कम किया जा सकता है जैसा कि विकसित देशों में इसका उपयोग किया जा रहा है।
3. उद्योगों में कार्य करने वाले तथा खनन कार्य में लगे श्रमिकों को शोर के प्रभाव से मुक्त करने के लिए इयर प्लग या इयर मफ यंत्र उपलब्ध कराए जाए जिससे कान के पर्दे पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव नहीं पड़े।

4. पुराने वाहन जो अत्यधिक शोर करते हैं उनको चलाने पर कानूनन रोक लगानी चाहिए तथा नये वाहनों के द्वारा भी सड़कों की खराब हालात के कारण आवाज ज्यादा आती है इसके लिए सड़कों की समय समय पर मरम्मत की जानी चाहिए तथा यातायात व्यवस्था सुचारू होनी चाहिए।
5. वाहनों के उचित रख–रखाव के साथ उनमें प्रयुक्त हार्न एवं सायरन की ध्वनि को तेज नहीं बजाना चाहिए इसके लिए नई तकनीक उपयोग करके हार्न की आवाज को मधुर भी बनाया जा सकता है। हार्न का प्रयोग अनावश्यक नहीं करना चाहिए वाहनों में उन्नत किस्म के साइलेंसर लगाकर शोर को कम किया जा सकता है।
6. आबादी क्षेत्रों में भारी वाहनों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए। नगरों में शोर प्रदूषण तथा यातायात दबाव कम करने के लिए नगरों के बाहर बाईपास तथा मुद्रिका मार्ग बनाये जाने चाहिए। इन मार्गों के सहारे होने वाले रिहायशी उपयोग के लिए हो रहे निर्माण पर रोक लगानी चाहिए।
7. रेलों के शोर को कम करने के लिए बेलास्ट रहित (Ballast Less) रेल मार्गों का निर्माण करना चाहिए तथा रेल इंजनों एवं उसकी सीटी (हॉर्न) की आवाज को नियंत्रित किया जाना चाहिए!
8. हवाई अड्डों को एकान्त स्थानों में बनाना चाहिए तथा पहले से बने हवाई अड्डों के आस पास स्थानीय बस्तियों को स्थानान्तरित कर देना चाहिए। विमानों के इंजन के शोर को कम करने के लिए इन पर शोर अवशोषक का प्रयोग करना चाहिए।
9. विभिन्न घरेलू उपकरणों की नियमित साफ–सफाई तथा स्नेहक पदार्थों का प्रयोग करके शोर कम किया जा सकता है। जैसे मिक्सर ग्राइन्डर, पानी चलाने की इलेक्ट्रिक मोटर इत्यादि में बुश बदलने तथा स्नेहक पदार्थ लगाने से शोर कम हो जाता है।
10. घरों में रेडियो, टी.वी., टेपरिकार्डर, टेलीफोन की घंटी की आवाज को कम रखकर शोर में वृद्धि को कम किया जा सकता है।
11. धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक आयोजनों में उच्च शक्ति के ध्वनि विस्तारक इलेक्ट्रोनिक उपकरणों के प्रयोग पर रोक लगनी चाहिए। रात्रि में ध्वनि विस्तारकों तथा शोर उत्पन्न करने वाले उपकरणों के प्रयोग पर भी रोक लगानी चाहिए। विद्युत पूर्ति के लिए उपयोग में लिए जाने वाले जेनरेटरों पर भी साइलेंसर का प्रयोग करना चाहिए।
12. सघन बसी आबादी में आतिशबाजी पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए तथा विस्फोटक पदार्थों के गोदाम बस्तियों से बाहर होने चाहिए साथ ही आकस्मिक दुर्घटना से बचने के लिए आपातकालीन उपाय होने चाहिए।
13. बहु मंजिले भवनों के निर्माण में ध्वनि को अवशोषित करने वाली सामग्री जैसे एकोस्टिक टाइल्स का प्रयोग करना चाहिए। पुरा ऐतिहासिक महत्व के भवनों के ऊपर से वायुयानों की नीची उड़ान को पाबन्द किया जाना चाहिए।
14. पर्वतीय वन क्षेत्रों में विस्फोटकों के प्रयोग पर रोक लगनी चाहिए।
15. व्यस्त मार्गों तथा औद्योगिक क्षेत्रों में शोर के स्तर को नियंत्रित करने के लिए नियमित जांच की जानी चाहिए।

16. शोर प्रदूषण के नियंत्रण में वृक्ष भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होते हैं। अमरीका में किए गए अध्ययन के अनुसार वृक्षों की हरित पट्टी के द्वारा प्रति 30 मीटर की दूरी पर 7 डेसीबल शोर कम हो जाता है। वैज्ञानिकों का सुझाव है कि चीड़, आम, ताड़, नारियल, इमली, नीम आदि के वृक्ष 10 से 15 डेसीबल तक का शोर कम कर देते हैं। वृक्ष उच्च ध्वनि तरंगों को अवशोषित करके शोर कम करने के साथ ही वायुमण्डल को भी शुद्ध रखते हैं। अत: नगरों, राजमार्गों, औद्योगिक बस्तियों में वृक्ष लगाकर हरित पट्टी विकसित की जानी चाहिए।
17. शोर प्रदूषण को रोकने के लिए व्यापक कानून बनाकर कारगार ढंग से लागू किया जाना चाहिए। इसके लिए साधारण उपायों के साथ कानूनी सहायता ली जा सकती है। इंगलैण्ड तथा ब्राजील में 80 डेसीबल से अधिक शोर करने वाले व्यक्ति के विरूद्ध कानूनी कार्यवाही किए जाने का प्रावधान है।
18. जन सामान्य को शोर प्रदूषणों के कारणों तथा नियंत्रण के उपायों के बारे में विभिन्न संचार माध्यमों से जानकारी प्रदान करनी चाहिए।

शोर को नियंत्रित करने के लिए उपरोक्त वर्णित उपाय तो कारगार हैं ही साथ ही यदि मनुष्य स्वयं इनसे बचाव करे तो वह ध्वनि प्रदूषण से बहुत सीमा तक मुक्त हो सकता है।

7.7 बचाव (Safety)

मनुष्य को वाहनों के अनावश्यक प्रयोग से बचना चाहिए। यदि आप रेलवे लाइन, मुख्य सड़क, हवाई अड्डा या बहुत शोर वाली जगह रहते है तो ज्यादा शोर वाले समय में इयर मास्क का उपयोग कर सकते है। कोशिश करें कि आपका घर शान्त क्षेत्र में हो। यदि रिहायशी इलाके में देर रात को लाउडस्पीकर से या अन्य किसी तरह का शोर हो तो पुलिस की मदद ली जा सकती है सप्ताहंत में किसी शांत जगह पर चले जाए जहां कानों को आराम मिले। संगीत सुनने के लिए इयर फोन के इस्तेमाल से बचना चाहिए।

हर क्षण होने वाला शोर आपको स्वस्थ जीवन से दूर ले जा रहा है शोर के कारण कई लोग श्रवण सम्बन्धी समस्या से ग्रस्त है और इनको खबर तक नहीं होती है। चिकित्सक के पास तभी पहुंचते है जब बहुत देर हो चुकी होती है। विशेषज्ञ ऑडियोग्राम के द्वारा बहरेपन का स्तर पता लगाते है और समस्या बढ़ गई हो तो (Hearing aid) सुनने की मशीन लगवाने की सलाह देते हैं। लेकिन खोई हुई श्रवण शक्ति लौटने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए बचाव ही एक तरीका है।

बोध प्रश्न – 1

1. शेर की गर्जना की ध्वनि की तीव्रता (डेसीबल में) कितनी होती है?

   .....

   .....

2. शोर की तीव्रता मापने की मात्रक इकाई क्या है?

   .....

   .....

3. सामान्यत: कितने डेसीबल से अधिक ध्वनि, शोर की श्रेणी में आती है?

.....

.....

4. डेसीबल को रिकॉर्ड करने के लिए कौन से यंत्र का प्रयोग करते है?

.....

.....

5. रामचरित मानस में शोर के प्रभाव से किस परिणाम का उदाहरण दिया है?

.....

.....

7.8 मृदा प्रदूषण का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Soil Pollution)

मृदा भूमि की ऊपरी परत है जो चट्टानों के टूटने फूटने से बनती है। इसकी ऊपरी सतह बारीक कणों से बनी होती है। यह सभी प्रकार के उपज के लिए श्रेष्ठ मानी जाती है, किन्तु प्रकृति के प्रकोप तथा मानव की क्रियाओं से जब इसकी प्राकृतिक गुणवत्ता नष्ट होने लगती है तो मृदा प्रदूषण होना शुरू हो जाता है। मृदा प्रदूषण को भूमि प्रदूषण अथवा भू–प्रदूषण भी कहते हैं।

प्राकृतिक रूप से पायी जाने वाली मृदा की भौतिक, रासायनिक व जैविक संरचना में होने वाला अवांछनीय परिवर्तन ही मृदा प्रदूषण है जिसका प्रभाव जीवमण्डल के सभी घटकों पर पड़ता है।

डेटवायलर के अनुसार "मानव के द्वारा मृदा के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक स्वरूप में परिवर्तन से मृदा निर्माण की अपेक्षा विनाश अधिक होता है। यह मृदा विनाश ही मृदा प्रदूषण कहलाता है।"

7.9 मृदा प्रदूषण के स्रोत (Sources of Soil Pollution)

मृदा प्रदूषण विभिन्न प्रकार के अवांछित अपशिष्ट पदार्थों का निक्षेपण तथा प्राकृतिक कारणों का परिणाम है जिससे मृदा की उर्वरा शक्ति प्रभावित होती है। मृदा प्रदूषण के विभिन्न स्रोत है जिनका वर्गीकरण आगे दिया जा रहा है।

प्राकृतिक स्रोत	**मानवीय स्रोत**
अपरदन	औद्योगिक अपशिष्ट
ज्वालामुखी क्रिया	घरेलू अपशिष्ट
भूस्खलन	खनन अपशिष्ट
समुद्री तूफान	कृषि अपशिष्ट
बाढ़	अपरदन
मरुस्थलीय पवने	वन विनाश
पर्वतीय क्षेत्रों में प्रवाहित जल	सिंचाई पद्धति
जैविक	गहन कृषि
	रेडियोधर्मी पदार्थ
	जीव जन्तु

7.9.1 प्राकृतिक स्रोत

मृदा की गुणवत्ता के हलास में विभिन्न प्राकृतिक कारण उत्तरदायी है इनमें अपरदन, ज्वालामुखी क्रियायें, भूस्खलन, सखी तूफान, बाढ़ आदि प्रमुख है। विभिन्न भौगोलिक दशाओं में विभिन्न कारक सक्रिय होते हैं, जैसे शुष्क मरूस्थल में पवन, समुद्री भागों में प्रचण्ड लहरें, पर्वतीय क्षेत्रों में प्रवाहित जल आदि। प्राकृतिक कारकों द्वारा मृदा के कणों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाने से मृदा की मूल संरचना बदल जाती है। मृदा की गुणवत्ता में हलास का प्रमुख कारण अपरदन ही होता है।

7.9.1.1. अपरदन

प्रति वर्ष लाखों हेक्टेयर भूमि की ऊपरी सतह नदी, वर्षा अथवा बाढ़ में बह जाती है। मरूस्थलों से उड़कर रेत के कण दूसरी जगह जाकर जमा हो जाते हैं। प्रकृति द्वारा मिट्टी की चोरी एवं उसकी रेंगती मृत्यु (Creeping Death) कहलाती है।

मृदा अपरदन उन सभी भौतिक प्रक्रियाओं का परिणाम है जो मृदा कणों को उनकी मूल सतह से अलग करते हैं। यह मृदा अपरदन प्राकृतिक तथा मानवीय क्रियाओं द्वारा होता है। परन्तु यहां हम सिर्फ प्राकृतिक प्रक्रियाओं पर ही विचार करेंगे। प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा किये हुए अपरदन को दो भतों में बांट सकते हैं।

(1) भू–वैज्ञानिक अपरदन (Geological Erosion) (2) त्वरित अपरदन (Accelerated erosion)

भूवैज्ञानिक अपरदन

भूवैज्ञानिक मृदा अपरदन एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जिसकी प्रवृत्ति पृथ्वी तल के उबड़ खाबड़ तल को समतल बनाना होता है। इस प्रक्रिया की शुरूआत अपक्षय (weathering) से होती है। इस अपक्षय के अनेक भौतिक कारण होते हैं। विभिन्न अपक्षय प्रक्रियाओं से गुजरकर मृदा का अपरदन शुरू हो जाता है।

त्वरित अपरदन

कृषि के दौरान, भूमि पर अनेक साधनों से अत्यधिक दाब पड़ता है जिसके परिणाम स्वरूप वनस्पति आवरण तथा जलवायु के मध्य संतुलन बिगड़ जाता है। इस कारण से प्राकृतिक साधनों से भूमि कटाव की दर भूमि निर्माण की दर से अधिक होती है। इस प्रकार के मृदा अपरदन को त्वरित अपरदन कहते हैं। इसकी दर तथा परिमाण भूवैज्ञानिक अपरदन से अधिक अधिक होता है।

मृदा अपरदन के प्राकृतिक कारणों को हम निम्न भागों में विभक्त कर सकते है –

1. जल अपरदन
2. समुद्र तटीय अपरदन
3. वायु अपरदन

1. जल द्वारा अपरदन

बहता हुआ जल बलशाली होता है और इस बल से मृदा का परिवहन होता है। मृदा अपरदन वर्षा की बूंदो, पानी की धारा तथा बर्फ के माध्यम से होता है। भूतल पर गिरने वाली वर्षा की ले से मृदा कणों का विगलन होकर जल के साथ बहकर दूर चले जाते है इस प्रकार के अपरदन को' 'धावन'' या 'परत' अपरदन (Sheet erosion) के नाम से जाना जाता है। बहते हुए जल के द्वारा नदी के किनारों को सरिता तीर अपरदन कहते हैं। जहां नदियाँ–नाले अपनी धारा को बदलते है तो अपरदन त्वरित गति से होता है। सरिता तीर अपरदन खेतिहर भूमि, सड़क मार्ग, रेलमार्ग तथा पुलों को अधिक क्षति पहुंचाते हैं।

समुद्र तटीय अपरदन

सखी किनारों पर तरंग क्रिया तथा कुछ स्थानों पर समुद्र के फैलाव के कारण होता है। तटीय अपरदन पर नियंत्रण पाना जल द्वारा अपरदन के अन्य तरीकों की अपेक्षा अधिक कठिन है।

वायु द्वारा अपरदन

वायु द्वारा मृदा अपरदन उन स्थानों में बहुत सामान्य है जहां वनस्पति भूमि को ढकने तथा उसको सुरक्षा प्रदान करने के लिए पर्याप्त नहीं है ऐसी दशाएं शुष्क भूमि (मरूस्थलों) में तथा समुद्र, झील तथा नदियों के रेतीले किनारों पर होती हैं। जहां पर वायु के तेज प्रवाह से मिट्टी के बारीक हल्के कण बहुत दूर तक एवं स्थान से दूसरे स्थान तक उड़कर चले जाते है जो खेतिहार भूमि, फलोधान इत्यादि पर जमा होते हैं जो धीरे धीरे मिट्टी के जमा होने से टीलों का रूप परिवर्तित कर लेते हैं तथा खेती की भूमि तथा फलोधान को नष्ट कर देते है।

अपरदन के अलावा मृदा प्रदूषण के अन्य प्रमुख प्राकृतिक कारणों में निम्न कारणों का भी महत्वपूर्ण योगदान है।

7.9.1.2 सेम की समस्या

जब भूमि पर सिंचाई या अन्य स्रोतों से पानी की अधिकता हो जाती है तथा उस पानी को जमीन की सतह के नीचे कठोर चट्टानों की वजह से पूर्ण रूप से अवशोषित नहीं कर पाती है तो भू सतह के नीचे दबे लवण युक्त आर्सेनिक तथा अन्य पदार्थों से युक्त चट्टानें पानी के साथ ऊपर आ जाते हैं तथा वे पदार्थ, भूमि को अनुपजाऊ बना देते हैं। यह समस्या राजस्थान के गंगानगर तथा हुनमानगढ़ जिले में सर्वाधिक है।

7.9.1.3 जलाक्रान्त

जब भूजल स्तर भूसतह पर आ जाता है तो स्थायी दलदल हो जाता है और कृषि अयोग्य हो जाती है उत्तराखण्ड तथा उत्तरप्रदेश के तराई क्षेत्र इसके उदाहरण है।

7.9.1.4 जंगली घास (कांस घास)

यह ऐसी घास है जो अपने अलावा किसी और वनस्पति को उत्पन्न नहीं होने देती है। इस घास का विस्तार भी बहुत तेजी से होता है। उत्तरप्रदेश के महोवा जिले में पाई जाती है।

7.9.1.5 तापमान

तापमान की न्यूनता तथा अधिकता दोनों ही स्थिति मृदा में उपस्थित जीवाणुओं के लिए हानिकारक है इसके अलावा उनकी क्रियाशीलता कम हो जाती है और मृदा कृषि के अयोग्य हो जाती है। राजस्थान के मरूस्थलीय क्षेत्र में अधिक तापमान का असर मृदा प्रदूषण का प्रमुख कारण है।

उपरोक्त कारणों के अलावा मृदा प्रदूषण के लिए अन्य प्राकृतिक कारण और भी हैं। ज्वालामुखी उदगार में निकलने वाली सल्फर युक्त राख तथा गर्म दलदली लावा के प्रवाह से प्रभावित क्षेत्रों की मृदा की उर्वरता समाप्त हो जाती है। पर्वतीय क्षेत्रों में वनस्पति विहीन सीधे ढालों के भूस्खलन होने से कृषि भूमि तथा वन भूमि का विनाश होता है। समुद्री तूफान, बाढ़, मरूस्थलीय पवनें, पर्वतीय क्षेत्रों से प्रवाहित जल, जैविक क्रियायें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मृदा प्रदूषण का स्रोत बनती हैं।

7.9.2 मानवीय स्रोत

जनसंख्या की बेतहाशा वृद्धि के पोषण हेतु अधिकाधिक उत्पादन करने के लिए रासायनिक खाद, कीटनाशी दवाओं का उपयोग मृदा प्रदूषण का प्रमुख कारण है। इसके अलावा नगरीकरण, औद्योगिकरण, सिंचाई पद्धति, जीव जन्तु, रेडियोधर्मी पदार्थ, ठोस अपशिष्ट पदार्थ, वन विनाश, खनन क्रिया, मृदा अपरदन के कारण मृदा प्रदूषित हो रही है। आगे इन कारणों पर विस्तार से प्रकाश डालेंगे।

7.9.2.1 औद्योगिक अपशिष्ट

औद्योगिक संस्थानों से अधिक मात्रा में कचरा व अपशिष्ट पदार्थ निकलते है जिससे अनेक गैसें व रासायनिक तत्व मृदा को प्रदूषित करते हैं। अनेक उद्योगों से राख, विषैले अम्लीय व क्षारीय पदार्थ निकलकर मृदा पर फैलने से मृदा को प्रदूषित करता है नीचे दी हुई तालिका में प्रमुख उद्योग एवं उनसे निसृत अपशिष्ट व लक्षण बताए गए है।

तालिका– 7.4 : प्रमुख उद्योग उनके अपशिष्ट व लक्षण

	उद्योग	आपशिष्ट	लक्षण
1	रबड़ व प्लास्टिक	रबड़ व प्लास्टिक	उच्च बी.ओ.डी गन्ध उच्च निलम्बित पदार्थ–अपरिवर्तनशील pH मान
2	औषधि	सूक्ष्मजीवी तथा कार्बनिक रसायन	विटामिन, रसायन, निलम्बित तथा घुलित कार्बनिक पदार्थ
3	वस्त्र उद्योग	सूती ऊनी,रेशमी वस्त्रों के धागे	पदार्थो का उच्चमान, रंजक आदि
4	रसायन	कच्चा माल व अंतिम उत्पाद	विशैले, अम्लीय, क्षारीय, विस्फोटक, तीव्र दुर्गन्धदार
5	उर्वरक	रासायनिक, ठोस अवशिष्ट	कैल्सियम सल्फेट तथा कैल्सियम फ्लोराइड आदि
6	लोह	लौह छीलक, राख, कार्बन कण, अन्य ठोस पदार्थ	विशैले तथा जले-अधजले कार्बन, कण व खनिज पदार्थ

7.9.2.2 कृषि अपशिष्ट

कृषि कार्यों में दोषपूर्ण सिंचाई, अत्यधिक जुताई, झूमिंग कृषि, अत्यधिक कीटनाशी दवा तक रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से मृदा प्रदूषित होती है। रासायनिक खादों से मृदा अम्लीय तथा क्षारीय होकर धीरे धीरे अनुपजाऊ हो जाती है। कीटनाशकों के उपयोग से मृदा को उपजाऊ

बनाने वाले जीव एवं बैक्टीरिया मर जाते हैं। कुछ कीटनाशक जैसे डी डी टी., क्लोरेडेन, आर्सेनिक आदि दीर्घकालीन तक मृदा में रहने के कारण मृदा को प्रदूषित कर देते है।

कृषि क्षेत्रों में कृषि उत्पाद के निकालने के पश्चात् बचा हुआ भूसा, डंठल, घास – फूस आदि को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया जाता है जिस पर पानी पड़ने से सड़ने लगता है वो भी मृदा प्रदूषण का कारण बनता है।

7.9.2.3. घरेलू अपशिष्ट

मृदा प्रदूषण के लिए घरेलू अपशिष्ट भी उत्तरदायी है। घरों में प्रतिदिन सफाई में निकली धूल –मिट्टी, कागज, गत्ता, कपड़ा, प्लास्टिक, लकड़ी, धातु के टुकड़े, बचा हुआ भोजन, खराब फल व सब्जियाँ, बची हुई दवाएं काम में ली हुई चाय की पत्तियाँ आदि को एकत्रित करके घर के बाहर किसी एक स्थान पर डाल दिया जाता है। अभी भारत जैसे देशों में कूडा करकट डालने के लिए विकसित देशों जैसी व्यवस्था नहीं है। घर के बाहर डाले हुए अपशिष्ट पदार्थ सड़ गल कर किसी न किसी रूप में वाहित होकर उपजाऊ मृदा पर पहुंच कर उसे प्रदूषित करते है।

7.9.2.4 खनन अपशिष्ट

खनन क्षेत्रों से, विभिन्न धातुओं के अयस्क, अभ्रक आदि के उत्खनन से निकला मलवा तथा सूक्ष्म कण, वायु तथा पानी के साथ प्रवाहित होकर निकटवर्ती भूमि में पहुंचकर उस क्षेत्र की मृदा उर्वरता को समाप्त कर देते हैं।

उत्खनन कार्यों में ली जाने वाली भूमि की ऊपरी परत को हटाने के उस स्थान की भूमि तो कम होती ही है तथा अपरदन की दर में भी वृद्धि होती है।

7.4.2.5 अपरदन

विशेषत: मृदा अपरदन प्राकृतिक कारणों से तो होती ही है, परन्तु मानव भी इसके लिए उत्तरदायी है, मानव अपने अनेक उपयोगों के लिए जैसे कृषि भूमि का विस्तार, मकानों का निर्माण, सड़कों का विकास, खनन, अत्यधिक चराई, मकानों के लिए ईंट आदि के लिए मृदा का अपरदन कर उस अनुपयोगी बनाता है। मृदा अपरदन से मृदा की उपयोगिता तो बहुत कम समय के नष्ट हो जाती है। जबकि मृदा के निर्माण में हजारों वर्ष लग जाते हैं मृदा की गुणवत्ता से निरन्तर ह्रास से भूमि बंजर हो जाती है।

7.9.2.6. वन विनाश

वन विनाश की प्रक्रिया में वनों से लकड़ी काटना, वृक्षों को काटकर गिराना, पशुओं द्वारा चराई कराना, वन क्षेत्र में खनन कार्य करना आदि हैं। भारत और नेपाल में किए गए कई अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि भोजन, पशुधन, आग जलाने की लकड़ी तथा इमारती लकड़ी की मांग के कारण वनों का विनाश हुआ है, वनस्पति और मृदा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। वनों के विनाश का दुष्प्रभाव मृदा पर पड़ता है, मृदा में उपजाउपन बढ़ाने वाले जैविक तत्व वृक्षों एवं पौधों से प्राप्त होते हैं। वृक्षों की कमी से ये जैवांश धीरे धीरे कम होकर मृदा को अनुपजाऊ बना देते हैं। वनस्पति आवरण नहीं होने से मृदा का अपरदन भी अधिक होता है। इस तरह वन विनाश से मृदा का गुणात्मक ह्रास के साथ प्रदूषण बढ़ता है।

7.9.2.7 सिंचाई पद्धति

नहरों द्वारा खेतों में अधिक मात्रा में सिंचाई करने से अनेक क्षेत्रों में वरीयता व लवणता की मात्रा बढ़ने से मृदा की अनेक समस्या पैदा हुई हैं। नहरी सिंचाई क्षेत्रों में कृषि समतल होने की वजह से अतिरिक्त सिंचित जल की निकासी की सुव्यवस्था नहीं होती है। ऐसे क्षेत्रों में जलाधिक्य से सेम की समस्या उत्पन्न हो जाती है, राजस्थान नहरी क्षेत्र में आने वाले गंगानगर एवं हनुमानगढ़ जिला इससे सर्वाधिक ग्रसित है। सिंचाई के साधनों के लिए बढ़ाई गई नहरों के कभी–कभी अचानक टूट जाने से कृषि फसलों के नुकसान के साथ मिट्टी का बहकर चले जाना भी एक बड़ी मृदा समस्या है।

7.9.2.8 गहन कृषि

गहन कृषि के अन्तर्गत सीमित भूमि पर उन्नत कृषि तकनीकों एवं वैज्ञानिक विधियों से निरन्तर अधिकाधिक फसल उत्पादन लेना है। कृषि भूमि से लगातार उपयोग में लेने से अनेक जैविक तत्व शोर, मृदाशिम एवं रेडियो नष्ट हो जाते है। देश के जिन भागों में गहन कृषि का प्रचलन है वहां मृदा में लगातार पोषक तत्वो की कमी हो रही है। पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान का उत्तरी भाग इसके उदाहरण है। जिन क्षेत्रों में अधिक सिंचाई के साथ गहन कृषि होती है वहां की मृदा में जिंक, मैंग्रीज व लौह की कमी आ जाती है तथा मृदा प्रदूषित होने लगती है।

7.9.2.9 रेडियोधर्मी पदार्थ

परमाणु परीक्षणों में विस्फोट के समय होने वाले 'फाल आउट' में रेडियोधर्मी तत्व जब पृथ्वी पर गिरते है तो मृदा को प्रदूषित करते हैं। भूमि में दबाये जाने वाले परमाणु कचरे से फैला विकिरण मृदा की उर्वरा शक्ति को कम करता है।

7.9.2.10 जीव जन्तु

मृदा को प्रदूषित करने वाले सूक्ष्म जीवों में रोग जनित जीव तथा कुछ बैक्टीरिया होते है जो अपशिष्ट पदार्थों के सड़ने से उत्पन्न अनेक जीवाणु मृदा प्रदूषण करते है। जन्तुओं के मल–मूत्र विसर्जन से में अनेक प्रकार के नुकसान देही परजीवी मिल जाते है जो अनेक रोगों को जन्म देते हैं।

7.9.2.11 सार्वजनिक स्वायत्त शासी संस्थाओं का अपशिष्ट

प्रत्येक नगर, कस्बे, ग्रामों में स्वायत्तशासी स्थानीय संस्थाओं जैसे नगर परिषद, नगर निगम, नगर पालिका एवं पंचायतों द्वारा सार्वजनिक रूप से होने वाली गन्दगी एवं कूड़ा करकट की सफाई करवाई जाती है जिसमें घरेलू अपशिष्ट के अलावा विभिन्न संस्थानों, बाजारों, सड़कों आदि से एकत्रित कूड़ा करकट, मृत जानवरों के अवशेष, मकानों के तोड़ने फोड़ने से निकला मलवा आदि भी मृदा प्रदूषण के कारण बनते है क्योंकि इस कचरे को किसी न किसी जगह पर एकत्रित किया जाता है तथा दिन प्रतिदिन इसका विस्तार होने से उपयोगी भूमि पर मृदा प्रदूषण होता है।

एक अनुमान के अनुसार हमारे देश में 90 प्रतिशत कूड़ा करकट, राख, मिट्टी व कार्बन के रूप में होता है। इन अपशिष्टों की मात्रा नगरों के आकार, विकास व विस्तार के साथ कम ज्यादा होती है

7.10 मृदा प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Soil Pollution)

मृदा हमारे जीवन के अस्तित्व को कायम रखने के लिए पोषक तत्वों के उत्पादन का संसाधन है,लेकिन जब मृदा प्रदूषित होती है तो इसका दुष्प्रभाव मनुष्य एवं जीव जन्तुओं पर भी पड़ता है। मृदा प्रदूषण के दुष्प्रभावों को हम निम्न भागों में वर्गीकृत कर सकते है।

1. मानव पर
2. जीव जन्तुओं पर
3. वनस्पति पर
4. कृषि पर
5. प्राकृतिक भू–दृश्यों पर
6. भवन निर्माण पर

7.10.1 मानव पर प्रभाव (Effects on Man)

प्रदूषित मृदा में बेरीलियम, कोबाल्ट, निकिल, तांबा, जिंक, टिन, केडमियम, पारा, सीसा, आदि विषैली धातुएं पायी जाती है, जो मानव के स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं। मृदा की ऊपरी सतह पर औसतन 0.18 पीपीएम. (पार्ट्स पर मिलियन) केडमियम पाया जाता है, जो यकृत तथा गुर्दो में जमा होकर गुर्दो में पथरी बनाता है। यह मटर, मूली, चौलाई, पालक आदि के माध्यम से शरीर में पहुंचता है। सीसा एवं आर्सेनिक संचयी विष होने के कारण एनीमिया जैसे रोग हो जाते है। संक्षेप में कह सकते है कि पौधों द्वारा विषैली धातुओं के अवशोषण से मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) का मानना है कि तीसरी दुनिया में होने वाले रोगों एवं अनापेक्षित मौतों के कारण मृदा में उपस्थित कीटनाशक ही है। क्लोरीन युक्त हाइड्रोकार्बन्स जैसे डी.डी.टी. का अपघटन नहीं होने से जल एवं खनिजों के अवशोषण के साथ पौधों द्वारा खाद्य श्रृंखला में प्रवेश कर अनेक रोगों को जन्म देते हैं। उ.प्र., बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र राज्यों में कीटनाशकों से युक्त मृदा से उत्पादित खाद्य पदार्थों से सामूहिक मौतें हो चुकी हैं।

7.10.2 जीव–जन्तुओं पर प्रभाव (Effect on Animals and Insects)

कीटाणुनाशी के मृदा में मिलने से (केचुंआ) तथा अन्य जीव मर जाते हैं। प्रदूषित मृदा के हानिकारक रसायन खाद्य श्रृंखला द्वारा जीव–जन्तुओं के शरीर में पहुंचकर नुकसान पहुंचाते है तथा पक्षियों में अण्डजनन की क्रिया को विलम्बित करते हैं। कचरे के ढेर में पड़ी प्लास्टिक की थैलियां पशुओं के शरीर में पहुंचकर उनकी मृत्यु का कारण बन जाती है। परमाणु विस्फोटों से विकरित रेडियोधर्मी पदार्थ वनस्पति के माध्यम से जीव जन्तुओं में प्रवेश कर घातक दुष्प्रभाव डालते है।

7.10.3 वनस्पति पर प्रभाव (Effect on Vegetation)

सल्फर डाइ–ऑक्साइड या सल्फर के यौगिक जल से क्रिया करके अम्ल बनते हैं। जो मृदा पर आकर उसे अम्लीय बना देते हैं। जो वनस्पति के लिए हानिकारक है। मृदा अपरदन के द्वारा पोषक तत्वों में आई कमी से मृदा की उर्वरकता घटने से वनस्पति नहीं उग पाती है। खनन क्षेत्रों से निकले मलवे के ढेर तथा विशाल गर्तों में वनस्पति नहीं उग पाती है। मृदा में भारी धातुओं की सान्द्रता से पौधों की वृद्धि रूक जाती है और कभी कभी पौधे मर भी जाते हैं। सीसा, जस्ता, केडमियम की अधिकता से पौधों की वृद्धि इसलिए रूक जाती है क्योंकि पर्णहरित घट जाता है। निम्न तालिका में मृदा प्रदूषण के प्रभाव बताए गये है।

तालिका 7.5 : मृदा प्रदूषक स्रोत एवं वनस्पतियों पर दुष्प्रभाव

	मृदा प्रदूषण तत्व	स्रोत	प्रभाव
1	केडमियम (Cd)	जिंक उत्पादन, मानव माल जल, खनन,कास्मेटिक एवं बैटरी उद्योय	पर्णहरि घर जाना, वृद्धि रुक जाना पत्तियों की नसों के बीच पीले–सफेद धब्बे होना
2	जिंक (Zn)	खनन, मल जल एवं संदूषित जल	उपरोक्त एवं पत्तियों के सिरे मुड़कर मृत होना
3	क्रोमियम (Cr)	ओद्योगिक अपजल संदूषित जल एवं खनन	पत्तियों का पीला पड़ जाना एवं धब्बे पड़ना
4	मैंग्नीज (Mn)	वाहित मल–जल उपयोग एवं ओद्योगिक अपजल	पत्तियों का मुड़ना, पर्णहरित पत्तियाँ
5	निकिल (Ni)	इलेक्ट्रोनिक उद्योग	असमान्य वृद्धि पत्तियों पर सफ़ेद धब्बे
6	मोलिब्डीनम (Mo)	खनन से	वृद्धि रुकना

7.10.4 कृषि पर प्रभाव (Effects on Agriculture)

कृषि उत्पादन का मुख्य स्रोत मृदा ही प्रदूषित होगी तो कृषि पर प्रभाव पड़ना निश्चित है। प्रदूषित जल (विशेषकर मल–जल) से लगातार सिंचाई करने से मृदा छिद्र अवरूद्ध हो जाते है जिससे कृषि के लिए मृदा में जिन जीवों की उपस्थिति जरूरी होती है वे जीव मर जाते है। औद्योगिक अपशिष्टों के घुलनशील व अघुलनशील हानिकारक तत्वों द्वारा मृदा प्रदूषित होने से भूमि की उर्वरा शक्ति को कम करके कृषि उत्पादन को प्रभावित करते हैं। वायु द्वारा अपरदित बालू रेत के खेतों में जमा होने से कृषि भूमि बेकार हो जाती है। वर्षा जल के साथ खनन अपशिष्ट कृषि योग्य भूमि में फैलकर कृषि भूमि को बेकार कर देते हैं।

7.10.5 प्राकृतिक भू-दृश्यों पर प्रभाव (Effects on Natural Landscapes)

मृदा प्रदूषण व अपरदन के दुष्प्रभाव प्रकृति रचित भू–दृश्यों पर भी पड़ते है। मृदा अपरदन से धरातल का प्राकृतिक स्वरूप बदल जाता है। पर्वतीय क्षेत्रों में मृदा अपरदन के साथ वनस्पति का नाश होने से पर्वतीय क्षेत्र की नैसर्गिक सुन्दरता समाप्त हो जाती है।

7.10.6 भवन निर्माण पर प्रभाव (Effects on Building Construction)

मृदा अपरदन के कारण प्रवाहित जल के साथ बहकर आने वाले लवणीय पदार्थ जल स्रोतों जैसे तालाब व झीलों में एकत्रित होते रहते हैं। पानी के सूखने के बाद जमी हुई इस मृदा को भवन निर्माण सामग्री के काम में लिया जाता है जिससे भवनों में क्षरण होने लगता है।

मृदा प्रदूषण से ही वायु प्रदूषण एवं जल प्रदूषण में भी वृद्धि होती है। अपशिष्ट पदार्थों का नदियों के साथ बहकर जाने से समुद्रों में जाकर जमा होने से सामुद्रिक असन्तुलन आ रहा है। नगरीय पर्यावरण का दूषित होना, स्थान स्थान पर कीचड़ होना, नालियों का अवरूद्ध होना, पेयजल का प्रदूषित होना मृदा प्रदूषण का ही परिणाम है।

7.11 मृदा प्रदूषण पर नियन्त्रण के उपाय (Measures of Control On Soil Pollution)

मृदा प्रदूषण को रोकने के उपायों का तात्पर्य है कि मृदा का उसकी उपयोग क्षमता के अनुसार प्रयोग करना एवं संरक्षण की विधियों को अपनाकर उसके भू–क्षरण को रोकना एवं मृदा की उर्वरकता को बनाए रखना है। भूमि में आये विकारों से जो मृदा अनुपजाऊ हो जाती है उसे उन विकारों से बचाना है। मृदा को प्रदूषण रहित रखने एवं उसे बचाने के लिए हम निम्न उपायों पर विचार करेंगे।

1. अपशिष्टों का निस्तारण
2. भस्मीकरण
3. मृदा संरक्षण
4. रासायनिक उर्वरकों का न्यूनतम उपयोग
5. फसल चक्र के प्रबन्धन
6. कीटनाशकों के उपयोग में कमी
7. वृक्षारोपण

7.11.1 अपशिष्टों का निस्तारण

इस संदर्भ में भारत सरकार के 1975 में अपशिष्ट पदार्थ के नियंत्रण एवं निस्तारण हेतु एक कमेटी (Committee on Urban Waste) का गठन किया जिसके प्रथम अध्यक्ष बी. शिवारमन थे। उन्होंने जो सुझाव दिए थे वे इस प्रकार है। कूड़ादान (Refuse Bins) ऐसे बनाये जाए और ऐसी जगह लगाए जाये जिनका उपयोग आसपास के लोग कूड़ा डालने के लिए आसानी से कर सकें। जन स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए अपशिष्ट पदार्थों का निस्तारण तथा कूड़ा आदि इकट्ठा करने के लिए अच्छी यांत्रिकी व्यवस्था योग्य अभियन्ताओं के अधीन होनी चाहिए। सफाई कर्मचारियों द्वारा अपशिष्ट मल–मूत्र को आवश्यक रूप से इधर–उधर डालने तथा सिर पर मैला लादकर ले जाने की व्यवस्था को समाप्त करना चाहिए।

विशेष स्थानों जैसे बाजार, मण्डी आदि जहां बेकार वस्तुएं एवं कूड़ा करकट अधिक जमा होता है। ऐसे क्षेत्रों में कूड़ा करकट (Refuse) की सफाई हेतु अलग से Levy लगाकार इसको एकत्रित कर वहां से हटाने की नियमित व्यवस्था होनी चाहिए।

अपशिष्ट पदार्थ एवं कचरे को ढकी हुई कूड़ा वाहन में ले जावे लोगों को सफाई एवं सेनीटेशन के बारे में शिथिल किया जावे, यह कार्य स्कूल, स्वयं सेवी संस्थायें, सेमीनार आदि के माध्यम से किए जा सकते हैं।

सम्पूर्ण शहर में भूमिगत नाला (Drainage System) होना चाहिए। मृदा प्रदूषण सबसे ज्यादा ठोस अपशिष्ट व कूड़ा करकट से होता है। अत: मृदा प्रदूषण को खत्म करने के लिए अपशिष्टों का निस्तारण आवश्यक है। अपशिष्टों के निस्तारण के लिए निम्न विधियां काम में लाई जा सकती है।

7.11.1.1 महासागरों में निस्तारण (Occean Dumping)

विश्व के कई विकसित देशों में ठोस अपशिष्टों को महासागरों में डालकर उनका निस्तारण किया जाता है। इसके पीछे यह सोच होती है कि महासागर बहुत गहरे होते हैं, तथा जो अपशिष्ट इसमें डाले जायेंगे वह इसकी गहराई में समा जायेंगे। परन्तु यह सोच सही नहीं है यद्यपि स्थल से तो अपशिष्ट पदार्थो का निस्तारण हो जाता है परन्तु यह सागरीय जल को प्रदूषित कर सागरीय पारिस्थितिकी को प्रभावित करता है, इसलिए 1970 से पर्यावरण गुणवत्ता परिषद ने सचेत किया कि महासागरों में अपशिष्ट डालने पर रोक लगाना आवश्यक है, केवल वे ही अपशिष्ट डाले जाये जो हानिकारक नहीं हो।

7.11.1.2 भस्मीकरण (Incineration)

इस विधि के द्वारा अपशिष्टों को भस्म करके उनका निस्तारण किया जाता है जिससे उसकी मात्रा में 60 से 80 प्रतिशत तक की कमी हो जाती है। परन्तु इसके द्वारा वायु प्रदूषण भी होता है अत: अपशिष्टों को भस्म करते समय वायु प्रदूषण के बचाव को ध्यान में रखकर अपशिष्टों की दहन क्रिया करनी चाहिए। दहन क्रिया द्वारा अपशिष्टों का निस्तारण उस स्थिति में ही करना चाहिए जब यह सुनिश्चित हो कि इससे वायु प्रदूषण एवं इससे उत्पन्न राख का बिखराव नहीं हो, इसके दहन के दौरान उत्पन्न ऊर्जा के काम में लिया जा सके। दहन क्रिया विभिन्न प्रकार के दहन संयत्रों द्वारा की जाती है जिसमें घरेलू भट्टी से लेकर महानगरों में काम आने वाली विशाल भट्टियां होती है। इन संयत्रों से प्राप्त राख को सीमेन्ट में मिश्रित कर भवन निर्माण व ईटं बनाने के काम में लिया जा सकता है।

7.11.1.3 रासायनिक प्रक्रिया द्वारा (By Chemical Processing)

अपशिष्ट निस्तारण में रासायनिक प्रक्रिया को काम में लिया जा सकता है, यह खर्चीली प्रक्रिया है परन्तु इससे लाभ यह होता है कि इससे कुछ उपयोगी पदार्थ तथा ऊर्जा प्राप्त कर इसको उपयोग में ले सकते हैं। इसमें वे अपशिष्ट ज्यादा लाभकारी होते हैं जिनसे पुन: वस्तुओं का निर्माण (Recycling) हो जाता है जैसे कागज की लुगदी बनाना, प्लास्टिक बनाना, धातु का उपयोग करना आदि। इससे अपशिष्टों की समाप्ति से मृदा प्रदूषित होने से तो बचती ही है साथ में इनका पुन: उपयोग हो जाता

7.11.1.4 दारण (Rendring)

पशुओं की मृत अवस्था में उनके निस्तारण में दारण विधि को काम में लेकर पशुओं की हड्डियों, वसा, रक्त आदि अवशेषों को पकाकर चर्बी प्राप्त की जा सकती है जिसे साबुन बनाने में प्रयोग लिया जाता है तथा साथ में निकलने वाला प्रोटीन पदार्थ पशुचारे के काम आता है।

7.11.1.5 कम्पोस्ट बनाना (Composting)

नगरीय गन्दगी से साधारण प्रक्रिया द्वारा तैयार किया जाने वाला उर्वरक है। इसको तैयार करने के लिए अपशिष्ट पदार्थो से जैवकीय पदार्थ तथा कार्बनिक अपशिष्टों को भूमि में दबा कर, सड़ाकर या अन्य विधियों से कम्पोस्ट खाद बनाकर कृषि उपयोग में लेते है। कम्पोस्ट खाद बनाने की विधि में मानव तथा पशु–मल एवं कूड़ा करकट गढ़डों में डाल दिया जाता है। ये अपशिष्ट पदार्थ जीवाणुओं द्वारा अपघटित (Decompose) होकर कुछ समय उपरान्त उर्वरक के रूप में तैयार हो जाते हैं।

7.11.1.6 ऊर्जा उत्पादन (Energy Production)

अपशिष्ट पदार्थों से ऊर्जा उत्पादन कर सदुपयोग किया जा सकता है। अनेक विकसित देशों में यह कार्य सफलता पूर्वक किया जा रहा है। धातु रहित अपशिष्ट पदार्थों से अनेक तकनीकों द्वारा ऊर्जा उत्पादित की जाती है इस प्रक्रिया में अपशिष्टों से वाष्प उत्पादित कर, उससे टरर्बाइन चला कर विद्युत का उत्पादन किया जाता है पशुओं के मल से गोबर गैस प्लान्ट लगाये जाते है।

7.11.1.7 अन्य (Others)

अपशिष्ट निस्तारण के लिए निम्न प्रयोग भी काम में लाये जा सकते है। इनमें मिश्रित कार्बनिक पदार्थों को गर्म करके कुछ उपयोगी गैसें जैसे मिथेन प्राप्त करके उपयोगी ईंधन के रूप में काम में लिया जा सकता है।

गन्दगी को पाइप लाइन से प्रवाहित किया जावे। ठोस अपशिष्टों को जहां अनुपयोगी गहरे गर्त हो उनको भरने में उपयोग लिया जा सकता है। जिससे समतलीकरण भी हो जाये तथा अपशिष्टों का निस्तारण भी हो सके।

अपशिष्टों की कमी करने के लिए व्यक्तिगत स्तर पर हम खरीददारी से अनावश्यक वस्तुओं का उपयोग घटा सकते हैं। प्लास्टिक के थैलों के प्रयोग में कमी ला सकते हैं।

कचरे को भारी मशीन से दबाकर (Compact) गठीला कर दिया जाता है। जिससे उसका आयतन कम हो जाने से कम भूमि घेरता है।

मृदा प्रदूषण का मुख्य स्रोत ठोस अपशिष्ट पदार्थों के प्रबन्धन के लिए कानूनी पहल तथा सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है, सरकारी प्रयासों की सफलता के लिए जन सहभागिता भी जरूरी है। उपयुर्क्त विधियों के अतिरिक्त मृदा प्रदूषण नियंत्रण व्यवस्था को कानूनी उपायों के द्वारा मजबूत किया जाना चाहिए।

7.11.2 मृदा संरक्षण (Soil Conservation)

मृदा को नष्ट होने से बचाने के लिए उसका संरक्षण आवश्यक है। मृदा अपरदन पर प्रभावी नियन्त्रण के लिए मृदा सरंक्षण के विभिन्न उपाय किए जाने चाहिए जैसे वनों की कटाई व

अनियन्त्रित पशु चारण पर रोक मिश्रित कृषि, बाढ़ नियन्त्रण, झूम कृषि पर रोक, फसल चक्रीकरण, ढालों के अनुरूप जुताई, खेतों की मेड़बन्दी आदि है।

तीव्र नगरीकरण और औद्योगीकरण के कारण वनों की कटाई बड़े स्तर पर हुई है, यद्यपि वर्तमान में इसमें कमी आई है फिर भी वनों से वृक्ष काटकर उनका विनाश हो रहा है। वन मिट्टी को जैविक तत्व तो प्रदान करते ही है साथ में भू – क्षरण को नियंत्रित करते है अत: वनों की कटाई पर प्रतिबन्ध लगाकर वन क्षेत्र में वृद्धि करनी चाहिए।

7.11.3 रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों का नियंत्रित उपयोग (Controlled use of Chemical Fertilisers and pesticides)

कृषि कार्यों में रासायनिक उर्वरकों का उपयोग नियन्त्रित एवं सन्तुलित होना चाहिए इसके स्थान पर जैविक खाद का उपयोग किया जाना चाहिए। कृषि कार्यों में कीटनाशकों का प्रयोग आवश्यकतानुसार करके मृदा को प्रदूषित होने से बचाना चाहिए। कृषि वैज्ञानिकों द्वारा तैयार उन्नत किस्म के बीजों का अधिक उपयोग करना चाहिए, जिनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक हो। मृदा की नियंत्रित जांच होनी चाहिए।

7.11.4 अन्य उपाय

1. ईंट–भट्टा उद्योग में उपजाऊ मृदा के उपयोग पर रोक लगा देनी चाहिए।
2. खनन क्षेत्रों में विशाल गर्तो को मलवे से भरकर वृक्षारोपण करना चाहिए।
3. दोषपूर्ण सिंचाई पद्धति से होने वाले मृदा प्रदूषण को रोकने के लिए जल प्रबन्धन की वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।
4. गहन कृषि पद्धति के कारण मृदा में तेजी से घटते पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए फसलों में परिवर्तन, भूमि विश्राम आदि उपाय किए जाने चाहिए।
5. प्लास्टिक के स्थान पर वैकल्पिक सामग्री का प्रयोग किया जाना चाहिए।
6. भूमि प्रदूषण सम्बन्धी कानूनों को प्रभावशाली ढंग से लागू किया जाना चाहिए।

बोध प्रश्न– 2

(अ) रिक्त स्थानों की पूर्ति करो –

1. मृदा प्रदूषण को ..... प्रदूषण भी कहते है।
2. मरूभूमि में बालू के कणों का स्थानान्तरण ..... द्वारा होता है।
3. लगातार गहन कृषि से मृदा में ..... कमी आ जाती है।
4. नगरों में ..... संस्थाओं द्वारा सर्वाधिक अपशिष्ट पदार्थ एकत्रित किए जाते हैं।
5. अपशिष्टों से रासायनिक क्रिया द्वारा पुन: वस्तु निर्माणको ..... कहते है।

(ब) निम्न प्रश्नों के सही उत्तर छांटकर लिखिए.

1. लगातार गहन कृषि का परिणाम होता है :

   (अ) मृदा की उर्वरता बढ़ना (ब) मृदा में पोषक तत्वों की कमी

(स) मृदा अपरदन (द) क्षारियता

2. दोषपूर्ण सिंचाई पद्धति के कारण होता है :

(अ) मृदा प्रदूषण (ब) मृदा संरक्षण

(स) मृदा अपरदन (द) वायु प्रदूषण

3. मृदा की उर्वरता बढाने वाले सूक्ष्म जीव किससे नष्ट हो जाते है?

(अ) अधिक सिंचाई से (ब) कीटनाशी रसायनों से

(स) कृषियन्त्रों के प्रयोग से (द) उर्वरकों से

4. किस गतिविधि से भूमि का प्राकृतिक भू–दृश्य विकृत हो जाता है?

(अ) वृक्षारोपण (ब) उद्योगों की स्थापना

(स) कृषि (द) खनन

5. अधिक सिंचित तथा सघन कृषि वाले भागों की मृदा में प्राय: किसका अभाव रहता है?

(अ) जिंक (ब) मैंगनीज

(स) लौह तत्व (द) उक्त सभी

रेडियोधर्मी प्रदूषण (Radio Active Pollution)

परमाणु तत्वों को विभिन्न प्रयोजनों में उपयोग करने के दौरान रेडियोधर्मी तत्व वातावरण में प्रवेश कर रेडियोधर्मी प्रदूषण उत्पन्न करते है। यूरेनियम, थोरियम, चूटोनियम, सीजियम, कोबाल्ट, स्ट्रान्शियम आदि रेडियो सक्रिय तत्व नाभिकीय प्रक्रियाओं में काम आते हैं, अत: इनके विकिरण से उत्पन्न खतरों को रेडियोधर्मी प्रदूषण या नाभिकीय प्रदूषण कहा जाता है।

धुंआ, नालों की गन्दगी, कारखानों से निकलने वाले अपजल से होने वाले प्रदूषण तो हमें दिखाई देते है लेकिन कुछ ऐसे भी तत्व होते है जो दिखाई नहीं देते है लेकिन पर्यावरण को निरन्तर प्रदूषित कर रहे हैं। ऐसे प्रदूषणों में रेडियोधर्मी प्रदूषण प्रमुख है जो प्राणी जगत के लिए अत्यधिक हानिकारक है, परमाणु विस्फोटों के द्वारा इलेक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रोन के साथ ही साथ अल्फा, बीटा और गामा कण भी प्रवाहित होते है विस्फोट के समय उत्पन्न रेडियोधर्मी पदार्थ वायुमण्डल बाहय परत में प्रवेश कर जाते है और ठण्डे होकर छोटे–छोटे ठोस कणों के रूप में वायु में विसीरत होकर रेडियोधर्मी प्रदूषण फैलाते है।

रेडियोधर्मी प्रदूषण का अर्थ और परिभाषा (Meaning And definition of radio Active Pollution)

नाभिकीय पदार्थों की क्रियाशीलता के फलस्वरूप हुए प्रदूषण को नाभिकीय अथवा रेडियोधर्मी प्रदूषण कहते है।

एच.पी. जमेट के अनुसार "पर्यावरण में प्राकृतिक विकिरण के बढ़ने को रेडियोधर्मी प्रदूषण कहते है।

Maxwell, K.E. “Radio–active substance are among the most tonic material known. The magnitude of their injurious effects is in a range that might be said figuratively to represent a “quantum jump”.

वर्तमान में परमाणु ऊर्जा वैकल्पिक ऊर्जा के रूप में अक्षय स्रोत माना जाता है। आइन्सटीन के द्रव्यमान ऊर्जा समीकरण $(M = mc^2)$ के परिप्रेक्ष्य में न्यू मेक्सिको के रेगिस्तान में 16 जुलाई, 1945 को प्रोजेक्ट के अग्रणी वैज्ञानिक ओपर हाईमर ने प्रथम परमाणु बम का परीक्षण कर सिद्ध किया कि परमाणु के अत्यन्त अल्प द्रव्यमान से असीमित ऊर्जा प्राप्त हो सकती है। बड़े या भारी नाभिकों को गतिमान न्यूट्रान से विखण्डित किया जाता है। यह भारी नाभिक विखण्डित होकर दो छोटे नाभिक बनाती है और द्रव्यमान की क्षति के कारण अत्यधिक ऊर्जा उत्सर्जित होती है। एक ग्राम यूरेनियम 235 के विखण्डन से $5\times10^{23} MW$ जो 250 कि.ग्रा. कोयले से प्राप्त ऊर्जा के तुल्य का उत्पादन होता है। इसके अतिरिक्त PU (प्लयूटोनियम), TH (थोरियम) के विखण्डन से भी इस उष्मा उर्जा से भी वाष्पित जल से टरबाइन चला कर विद्युत का उत्पादन किया जाता है। जो 20 टन टी.एन.टी. से ऊर्जा के तुल्य है। यह 20,000 KWH ऊर्जा उत्पन्न करने में सक्षम है। यह दुर्भाग्य है कि मानव ने इस असीमित ऊर्जा का परमाणु बम के रूप में इस्तेमाल ज्यादा किया है। भारत में परमाणु ऊर्जा के शान्तिपूर्ण उपयोग के लिए भारतीय वैज्ञानिक होमी जहाँगीर भाभा ने सराहनीय प्रयास किया। भारत में इसी प्रयास के कारण विभिन्न परमाणु भट्टियों से सालाना लगभग 1800 MW का विद्युत उत्पादन होता है जो कुल उत्पादित ऊर्जा का 3 प्रतिशत भाग है।

परमाणु ऊर्जा प्राप्त करने का दूसरा महत्वपूर्ण तरीका है– परमाणु संलयन। दो छोटे परमाणुओं से उच्च ताप एवं दाब की अवस्था में बड़े आकार का नाभिक/परमाणु निर्मित होने को परमाणु संलयन कहते हैं। इस प्रक्रिया में द्रव्यमान क्षति होती है। फलस्वरूप अत्यधिक ऊर्जा उत्सर्जित होती है। परमाणु संलयन में उत्सर्जित ऊर्जा, परमाणु विखण्डन से उत्सर्जित ऊर्जा की तुलना में अत्यधिक होती हे।

हाइड्रोजन के आइसोटोप्स–टयूटिरियम एवं ट्राटियम के संलयन से 20.6 MW ऊर्जा उत्सर्जित होती है। समान द्रव्यमान की स्थिति में यह ऊर्जा विखण्डन से 4.2 गुणा अधिक होती है। एक ग्राम टयूटिरियम एवं ट्राटियम से संलयन से उत्सर्जित ऊर्जा 45 बेरल तेल से उत्सर्जित ऊर्जा के तुल्य होती है परन्तु जैसा कि विदित है कि संलयन हेतु अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न करना अत्यन्त कठिन है। हम जानते हैं कि सूर्य से भी संलयन प्रक्रिया के द्वारा ही असीम ऊर्जा का उत्सर्जन करता है तो आगामी एक हजार करोड़ वर्ष तक ऊर्जा देने में सक्षम हो सकता है।

वर्तमान में मांग व आपूर्ति के रूप में यूरेनियम का ईधन के रूप में इस्तेमाल लगभग 100 वर्ष ही हो सकता है। परमाणु ऊर्जा से सस्ती बिजली प्राप्त करने के बाद उत्सर्जित विकिरण राख आदि अत्यन्त प्रदूषणकारी तक कैंसर आदि जैसे रोग उत्पन्न करने वाले अवशेष हैं। हिरोशिमा एवं नागा सकी पर गिराये परमाणु बम की त्रासदी का अन्त अभी तक नहीं हुआ। रूस के चर्नोबिल परमाणु भट्टी का हादसा भी अत्यन्त गम्भीर था। अत: परमाणु ऊर्जा अत्यन्त सावधानीपूर्वक काम में लायी जाने वाली ऊर्जा का स्रोत है।

परमाणु ऊर्जा का आधार रेडियोधर्मी पदार्थों के विखण्डन की प्रक्रिया है जो एक ओर तो अथाह शक्ति का स्रोत है तो दूसरी ओर रेडियोधर्मी प्रदूषण का जन्मदाता है जिसका प्रभाव लम्बे समय तक बना रहता है।

रेडियोधर्मी प्रदूषण के तत्व (Content of Radio Active pollution)

रेडियोधर्मी प्रदूषण के उत्तरदायी पदार्थ को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है

1. रेडियोधर्मी खनिज
2. कास्मिक किरणें
3. वायु से उत्पन्न होने वाले न्यूक्लाइड्स

रेडियोधर्मी तत्व पोटेशियम 40 यूरेनियम 238, थोरियम 232 पृथ्वी की परतों में काफी हद तक उपस्थित है।

परमाणु विस्फोट, परमाणु भट्टियों का कचरा ओर उनका रिसना रेडियोधर्मी प्रदूषण को जन्म देते हैं रेडियो सक्रिय अपशिष्ट पदार्थ मुख्यत: परमाणु विद्युत केन्द्रों चिकित्सालयों, रेडियों समस्थानिक उद्योगों, आयुध उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्ट प्रदूषकों को सक्रियता के आधार पर तीन उप वर्गों में बांट सकते है।

1. न्यून सक्रियता वाले अपशिष्ट : प्लास्टिक, सीसा
2. मध्यम सक्रियता वाले अपशिष्ट : सीजियम–137, स्ट्रांशियम–90 निकिल 59, कार्बन–141
3. उच्च सक्रियता वाले अपशिष्ट : यूरेनियम और रेडियो न्यूक्लिआई

रेडियोधर्मी प्रदूषण के स्रोत (Sources of Radio Active pollution)

रेडियोधर्मिता के स्रोतों को दो भागों में बांटा जा सकता है –

1. प्राकृतिक स्रोत
2. मानवीय स्रोत

प्राकृतिक स्रोत प्रकृति में विभिन्न क्रिया–कलापों से आने वाली किरणों के द्वारा तथा पार्थिक किसी विकिरण के कारण रेडियोधर्मी प्रदूषण फैलता है। सूर्यग्रहण तथा विभिन्न खगोलिय घटनाओं के कारण हानिकारक किरणें निकलती है साथ ही भूगर्भ में विद्यमान रेडियम, यूरेनियम, जिरकोनियम, थोरियम, मोलिब्डिनियम आदि भी प्रमुख स्रोत है इसके अलावा कोबाल्ट, कार्बन, स्ट्राशियम भी इसके कारण है।

मानवीय स्रोत (Human Source)

मानवीय स्रोतों में परमाणु बम, हाइड्रोजन बम, अणु बम, आदि का परीक्षणों के फलस्वरूप रेडियोधर्मी पदार्थ उत्पन्न होने से प्रदूषण होता है। ऊर्जा उत्पादन संयत्रों तथा रेडियो आइसोटोस जैसे आयोडिन, स्ट्रॉशियम, प्लेटिनम, कोबाल्ट आदि का दवाइयों में उपयोग रेडियोधर्मी प्रदूषण के प्रमुख मानवीय स्रोत है। एक्सरे मशीन तथा रेडियोग्राफी से उत्पन्न रेडियोधर्मी अपशिष्ट पदार्थ भी इसके प्रमुख स्रोत है।

परमाणु शक्ति के उपयोग के साथ ही रेडियोधर्मी अपशिष्टों में भी भारी वृद्धि हो रही है। ये अपशिष्ट न्यून मात्रा में होने के उपरान्त अत्यधिक प्रदूषण के कारण बन जाते है। रेडियोधर्मी अपशिष्ट तीन प्रकार के होते है –

1. **खनन अपाशष्ट (Mining waste) –** वे अपशिष्ट जो यूरेनियम धातु की खदानों से बचे रहे जाते है। इस अपशिष्ट पदार्थ से गामा किरणों के विकरण होने के साथ राडोन गैस (Radon Gas) भी उत्पन्न होती है, जो श्वाँस के साथ फैफड़ों में पहुंच जाती है। जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।
2. **विघटित पदार्थ (Fission Product) :** परमाणु भट्टी से विघटित पदार्थ के रूप में मिलते है, इस प्रक्रिया में उपयोग में ली गई वे छड़े होती है जो रेडियोधर्मीता से युक्त होती है जो अत्यधिक हानिकारक अपशिष्ट होती हैं।
3. **क्रियात्मक उत्पाद (Activation Product) :** जो रेडियोधर्मी पदार्थ के सम्पर्क में आकर रेडियोधर्मी हो जाती है उदाहरण के लिए जो द्रव ठंडे करने के लिए प्रयुक्त किये जाते है वे भी रेडियो धर्मिता ग्रहण कर लेते है।

रेडियोधर्मिता के स्तर के आधार पर इन अपशिष्टों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

1. **निम्न स्तरीय अपशिष्ट :** वे अपशिष्ट जो तरल रूप में होते है जिनमें रेडियोधर्मीता बहुत कम होने के कारण जल में प्रवाहित कर दिया जाता है। रेडियोधर्मिता न्यूनतम होने के बावजूद यह हानिकारक है।
2. **मध्यम स्तरीय अपशिष्ट :** ये अपशिष्ट वे होते है जो घुलते नहीं है इसलिए इन्हें विशेष प्रक्रियाओं से समाप्त किया जाता है या दफना दिया जाता है।
3. **उच्च श्रेणी के अपशिष्ट :** नाभिकीय ईंधन की पुन: प्रक्रिया से उत्पन्न होते है जो पर्यावरण के लिए सर्वाधिक खतरनाक है क्योंकि ये सैंकडों वर्ष तक समाप्त होते नहीं है।

रेडियोधर्मी प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Radio Active Pollution)

विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों की श्रृंखला में सबसे हानिकारक अभिशाप इस प्रदूषण का है जबकि ज्यादातर व्यक्ति इस प्रदूषण के बारे में अधिक जागत नहीं है, जितना की वायु और जल प्रदूषण के बारे में है। इस प्रदूषण का अत्यधिक प्रभाव पर्यावरण पर होता है जो सम्पूर्ण मानव जाति के लिए खतरा बन गया है आणविक अस्त्र–शस्त्रों का निर्माण कर मनुष्य ने अपने विनाश की तैयारी स्वयं कर ली है।

जिसका परिणाम द्वितीय विश्व युद्ध में 6 अगस्त 1945 को हिरोशिमा तथा 9 अगस्त 1945 को नागासाकी में परमाणु बम गिराने से आज भी भुगत रहे हैं।

रेडियोधर्मी प्रदूषण के प्रभाव का अध्ययन हम निम्न बिन्दुओं पर कर सकते है:

1. मानव पर
2. पर्यावरण पर
3. जीवों पर
4. संसाधनों पर

1. मानव पर प्रभाव

रेडियोधर्मी प्रदूषण में रेडियोधर्मी पदार्थों से निकलने वाली विकिरण सबसे ज्यादा हानिकारक है क्योंकि रेडियोधर्मी पदार्थों का अस्तित्व कुछ वर्षों से लेकर लाखों वर्ष तक होता है, जिनसे

विकीर्ण होने वाली किरणों से अत्यधिक दुष्प्रभाव होता है। रेडियोधर्मी विकिरण का प्रभाव उसकी भेदन क्षमता व स्थिति पर निर्भर करता है अधिक भेदन क्षमता वाले अल्फा विकिरण अपेक्षाकृत अधिक खतरनाक है शरीर के अन्दर पहुंचने पर इनका प्रभाव अधिक होता है। बीटा विकिरण शरीर के भीतरी अंगों पर अधिक प्रभाव डालते हैं। जबकि अल्फा विकिरण त्वचा द्वारा रोक दिए जाते हैं। निम्न तालिका में विभिन्न परमाणु पदार्थों के समय एवं विकिरण की प्रवृत्ति को स्पष्ट किया गया है।

तालिका–7.7 : रेडियोधर्मी पदार्थो का समय एवं विकिरण की प्रवृति

पदार्थ	अर्द्ध जीवन (Half life) वर्ष में	विकिरण
कार्बन – 14	5,568.0	बीटा
कोबाल्ट - 60	5.24	बीटा, गामा
हाइड्रोजन–3 (ट्रीटियम)	12.26	बीटा
आयोडिन - 131	8.08	बीटा, गामा
फास्फोरस - 32	14.3	बीटा
प्लूटोनियम – 239	24360.0	अल्फा, गामा
रेडियम – 226	1622.0	अल्फा, बीटा, गामा
स्ट्रांशियम - 90	27.2	बीटा
यूरेनियम - 235	7100 लाख	अल्फा, गामा
यूरेनियम - 238	45.1 लाख	अल्फा, बीटा, गामा

स्रोत : मैक्सवैल, के.ई. "इन्वायरनमेन्ट ऑफ लाइफ, पृ. 230

रेडियोधर्मी पदार्थों के विघटन के फलस्वरूप दो प्रकार की विकिरण उत्पन्न होती है। (1) विद्युत चुम्बकीय विकिरण तथा (2) कणिकीय विकिरण। इन सभी विकिरणों के मानव पर खतरनाक दुष्प्रभाव होते है। जिन्हें आगे दिया गया है।

1. विकिरण के द्वारा डी.एन.ए. (D.N.A.) अनुवांशिक परिवर्तन हो जाते हैं। फलस्वरूप अनुवांशिक रोग एवं परिवर्तन हो सकेत हैं।
2. त्वचा पर खुजली (Itching) एवं फोड़े हो जाते हैं।
3. त्वचा की ऊपरी परत (Epidermis) अलग होकर धीरे धीरे घाव हो जाते हैं।
4. बालों का कमजोर होकर झड़ना शुरू हो जाता है।
5. परमाणु विखंडन के धुएँ से मानव त्वचा पर फफोले हो जाते हैं तथा धुंआ फेफड़ों में जाने पर फेफड़ो का कैंसर हो जाता है।
6. रेडियोधर्मी विकिरण से जीन परिवर्तन (Mutation) हो जाता है।
7. गर्भस्थ शिशु की मृत्यु हो जाती है।
8. आंखो के लैंस नष्ट होने से मोतिया बिंद एवं अंधे होने की आशंका रहती है।
9. प्रजनन ग्रन्थियों का निष्क्रिय होने से बन्ध्यता उत्पन्न हो जाती है।
10. इसकी वजह से विभिन्न बीमारियाँ जैसे एनीमिया (रक्त अल्पता) खून के थक्के जमना आदि हो जाती है।

11. रेडियोधर्मी आयोडीन (I^{131}) थायराइड ग्रन्थि में एकत्रित होकर कैंसर पैदा करता है तथा स्ट्रॉयन्शियम – 90 हड्डियों में जमा होकर कैंसर को जन्म देता है। रेडियोधर्मी पदार्थ स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। यूरेनियम के खनन के दौरान पर्यावरण में प्रवेश करके पेड़ पौधों, भोजन व जल के द्वारा शरीर में आसानी से प्रवेश कर जाते है और स्वास्थ्य को खराब कर देते हैं।
12. **पर्यावरण पर प्रभाव –** विखण्डन से उस क्षेत्र का तापमान 10^0C से 40^0C तक अधिक हो जाता है। तथा अणुबम के विस्फोट से कार्बन मोनो–ऑक्साइड निकलती है जो बादलों से मिलकर पर्यावरण को प्रदूषित कर बहुत कुछ नष्ट कर देती है।
13. **जीवों पर प्रभाव –** वृक्षों के साथ कार्बनिक यौगिकों के मिलने से जटिल यौगिक बन जाते है। रेडियो विकिरण पौधों से चिपक कर उनके तत्वों को क्षति पहुंचाते है। ऐसे वृक्षों के फल और पत्तियों के सेवन से तन्त्रिका तन्त्र के विभिन्न रोग, ल्युकेमिनिया, बोन कैंसर हो जाते है।

संसाधनो पर प्रभाव – कृषि फसलें, संग्रहित ईंधन, तेल और गैस के भण्डारों के विनष्टीकरण की आशंका बढ़ जाती है। परमाणु भट्टियों से निकले कचरे को विसर्जित करना एक विश्वव्यापी संकट बन गया है। कोबाल्ट, स्ट्रांशियम, थोरियम, कार्बन आदि से प्रदूषण, नाभिकीय शस्त्रों के विस्फोट से निकले रेडियोधर्मी पदार्थो से भारी संसाधन क्षति ग्रस्त होते हैं।

रेडियोधर्मी प्रदूषण को रोकने के उपाय (Measures to Prevent the Radio Active Pollution)

विश्व के विकसित राष्ट्रों सहित विकासशील देशों में परमाणु बिजलीघरों एवं परमाणु परीक्षणों से उत्पन्न होने वाले रेडियो सक्रिय अपशिष्टों से अत्यधिक मात्रा में पर्यावरण एवं जनसंख्या के लिएचिन्ता का विषय है रेडियोधर्मी पदार्थों के प्रदूषण से बचाव के लिए निम्नलिखित उपाय कर सकते है।

1. संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा परमाणु युद्ध तथा परमाणु बम बनाने पर प्रतिबन्ध लगाया जावें।
2. वायुमण्डल, जलमण्डल तथा स्थल मण्डल पर किसी भी प्रकार के नाभिकीय परीक्षण बन्द कर देने चाहिए।
3. रेडियोधर्मी प्रदूषण फैलाने वाले पदार्थों जैसे स्ट्रॉन्शियम, थोरियम, कार्बन आदि पर नियन्त्रण करना चाहिए।
4. परमाणु को समुद्रों में विसर्जित नहीं किया जावे।
5. रेडियोधर्मी प्रदूषण से बचने के लिए रेडियोधर्मी तत्वों के सम्पर्क में कम से कम आना चाहिए। एक्सरे तथा रेडियोथैरेपी अत्यावश्यक होने पर ही करवानी चाहिए।
6. रेडियोधर्मी प्रदूषण के दुष्प्रभावों से लोगों को परीचित करवाना चाहिए तथा पर्यावरण अध्ययन को शिक्षा तथा औषधि विज्ञान से जोड़ना चाहिए।
7. सरकार को समय–समय पर पर्यावरण में रेडियो विकिरण एवं प्रदूषण की जांच करवानी चाहिए।

8. रेडियोधर्मी पदार्थों का प्रयोग ऊर्जा उत्पादन, चिकित्सा व कृषि क्षेत्रों में मानव मात्र के हितों तक ही सीमित होना चाहिए।
9. परमाणु ऊर्जा खनिजों के उत्खनन, परिवहन एवं भण्डारण के दौरान विकिरण को रोकने के उपाय किए जाए।
10. रेडियोधर्मिता से प्रभावित क्षेत्रों के निकट मनुष्यों एवं जीव–जन्तुओं के विचरण पर रोक लगानी चाहिए।

बोध प्रश्न– 3

1. सर्वप्रथम परमाणु बम का प्रयोग जापान के किन शहरों पर किया गया ?

   .....

   .....

2. रेडियोधर्मी विकिरण के आनुवांशिक प्रभाव में कौन से रोग हो जाते है ?

   .....

   .....

3. रेडियोधर्मी विकिरणों के सम्पर्क में आने से आँखों में कौनसा रोग हो जाता है?

   .....

   .....

4. रेडियोधर्मी आयोडीन कौन सी ग्रन्थि में एकत्रित होकर कैंसर पैदा करता है?

   .....

   .....

5. चिकित्सा पद्धति में रेडियोधर्मी तत्वों का उपयोग किस–किस रूप में होता है?

   .....

   .....

7.18 सारांश (Summary)

शोर प्रदूषण से तात्पर्य ऐसी ध्वनि से है जो सुनने वाले को अवांछित लगे। शोर प्रदूषण एक ऐसी पर्यावरणीय समस्या है जो की गुणवत्ता में हास लाती है। नगरीय क्षेत्रों में शोर प्रदूषण अधिक होता है क्योंकि वहां पर घनी आबादी होती है तथा औद्योगिक और अन्य गतिविधियां जैसे परिवहन और गाड़ियों का आना जाना आदि लगातार होता रहता है। शोर के औद्योगिक स्रोतों के अतिरिक्त अन्य स्रोत धार्मिक या राजनीतिक प्रचार के ध्वनि विस्तारक यंत्र, मनोरंजन के इलेक्ट्रोनिक्स उपकरण गलियों एवं सड़को पर हॉकरों की आवाजों से शोर होता है। ये सभी मानवीय कारण होते है इसके अलावा प्राकृतिक कारण जैसे सखी लहरें, बादलों व बिजली की गड़गड़ाहट भी है शोर प्रदूषण से बहुत सारे खतरे होते है इनमें मानसिक सदमा, बहरापन, शारीरिक थकान, उच्च रक्त चाप, हृदय तथा रक्त वाहिकाओं संबंधी रोग, अनिद्रा, पेट का अल्सर आदि रोग हो जाते है, साधारणत: शोर प्रदूषण और उसकी मात्रा पर नियंत्रण आपसी

सूझ–बूझ और जन चेतना से किया जा सकता है कुछ मामलों में शोर प्रदूषण को सख्त कानून बनाकर रोका जा सकता है।

मृदा भूमि की ऊपरी परत है जो चट्टानों की विखण्डन क्रिया में बारीक कणों से बनती है। यह उपजाऊ मृदा जब मानवीय एवं प्राकृतिक क्रियाओं के द्वारा अपनी गुणवत्ता खोने लगती हैं तो उसे मृदा प्रदूषण कहते हैं। मानव की मुख्य क्रियाओं में वनोबूलन, गहन कृषि, खनन, घरेलू अपशिष्टों का बहिस्त्राव, सिंचाई के दोषपूर्ण तरीके, कीटनाशियों का उपयोग आदि से है जो मृदा की गुणवत्ता में कमी लाती है। मृदा के अपरदन के लिए प्रकृति एवं मानव दोनों ही उत्तरदायी है । मृदा का अपरदन आर्थिक रूप से तो विनाशकारी है ही साथ में इससे भूमि की उत्पादकता भी समाप्त हो जाती है। मृदा प्रदूषण को भूमि सरंक्षण, अपशिष्टों का उचित तरीके से निस्तारण, वृक्षारोपण, कीटनाशी रसायनों के उपयोग में कमी तथा फसल चक्र प्रबन्धन से नियंत्रित किया जा सकता है। अंत में मृदा की गुणवत्ता बचाने के लिए हम निम्न पंक्ति का मनन कर सकते हैं।

"मां ते मर्म विभग्वारि मां ते हृदयमर्पिपमू" अर्थात हे पवित्र करने वाली भूमि। मैं तेरे हृदय को आघात न पहुंचाऊ अर्थात तुम्हारा अत्यधिक दोहन न करूं और तुम पर कचरा व जहरीले पदार्थ न डालूं। निःसंदेह यह वेद वाक्य मृदा प्रदूषण को न होने देने तथा उसे रोकने का संदेश दे रहा है।

रेडियोधर्मी पदार्थ विघटित होने पर विकिरण उत्सर्जित करते है। इन विकिरणों की पहचान अल्फा, बीटा और गामा के रूप में हुई है। इन विकिरणों के स्रोत प्राकृतिक तथा मानवीय दोनों ही हैं। विकिरणों का स्रोत प्रमुखतः यूरेनियम, थोरियम, प्लैटिनम, पौटेशियम तथा कार्बन है। स्ट्रॉप्शियम–90 वनस्पतियों तथा डेयरी उत्पादों में समाविष्ट हो कर मानव के भोजन–चक्र में पहुंचकर अनेक रोगों को जन्म देता है। रेडियोधर्मी" वस्तुओं का इस्तेमाल विद्युत उत्पादन, परमाणु हथियार तथा चिकित्सा क्षेत्र में किया जाता है। इनके अपशिष्टों का प्रभाव मानव, जीव–जन्तुओं पर सर्वाधिक होता है। परमाणु बमों के विस्फोट से जो हानि होती है इसका अन्दाजा हिरोशिमा और नागासाकी पर हुए परमाणु विस्फोट से हुए घातक परिणामों से लगा सकते हैं।

रेडियोधर्मी विकिरणों से जीन–परिवर्तन हो जाता है तथा केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र रक्त बनाने वाले उत्तक, आंख, त्वचा तथा शरीर के बहुत से अंगो पर हानिकारक प्रभाव होते हैं। भविष्य में रेडियोधर्मी पदार्थों के व्यापक इस्तेमाल से रेडियोधर्मी प्रदूषण में वृद्धि हो सकती हैं। अतः विकिरण के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने के लिए ठोस उपाय करना आवश्यक है।

7.19 शब्दावली (Glossary)

- **अपक्षय :** किसी भूखण्ड के वायु, ताप तथा रासायनिक क्रियाओं द्वारा अपक्षयित होने के लिए प्रयोग किया शब्द।
- **कम्पोस्टिंग :** कार्बनिक अपशिष्ट वाहित मल का जैविक अपघअतकरण जिससे अपशिष्ट हानिरहित हो जाते हैं।
- **बायोगैस :** रसोई के नम कचरे एवं पशुओं के मल से संयत्र में गैस उत्पन्न करते है।

- **डेसीबल :** ध्वनि की मात्रा को मापने की इकाई
- **साउन्ड मीटर :** ध्वनि स्तर को मापने के लिए एक यंत्र
- **साइलेंसर :** ध्वनि के द्वारा तेज शोर को कम करने का एक उपकरण
- **ऑडियोग्राम :** बहरेपन का स्तर पता लगाने की मशीन
- **मृदा :** भूमि की ऊपरी परत जो चट्टानों के टूटने फूटने से बारीक कणों द्वारा बनती है।
- **अपरदन :** भौतिक एवं मानवीय क्रियाओं के द्वारा मृदा कणों का अपनी मूल सतह से अलग होना।
- **जलाक्रान्त :** जब भूजल, भूसतह पर आकर स्थायी रूप से रूककर दलदल बना देता है।
- **गहन कृषि :** सीमित भूमि पर उन्नत कृषि तकनीकों से अधिकाधिक फसल पैदा करना।
- **मृदा सरंक्षण :** मृदा को नष्ट होने से बचाने के लिए किए उपायों से मृदा को बचाना।
- **भस्मीकरण :** इस विधि के द्वारा अपशिष्टों को भस्म करके उनका निस्तारण करना।

7.20 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Gilpin, Alean : **Dictionary of Environmental Terms,** 1978
2. Maxwell, K.E. : Environmental of Life, P. 61 Dicheman Peby Co., Colifornia, 1973
3. Rao, K.L : **Indian water wealth,** Orient Longman, N. Delhi, 1975
4. Sharma, H.S. (eds) : **Environmental Design and Development.** Scientific Pub. Jodhpur, 1988
5. Stamp, Dudley : **A Glossary of Geographical term Longman,** London., 1928
6. अरूण, रधुवंशी ओर चन्दलेखा रघबुंशी : **पर्यावरण तथा प्रदूषण,** म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1987
7. कलवार, सुगन चन्द : **पर्यावरण संरक्षण,** पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2000
8. श्रीवास्तव, वी.के. एवं राव.बीपी : **पर्यावरण ओर पारिस्थितिकी,** वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 1991
9. Gurjar, R.K. and Shukla Laxmi : **Water Resources, Environment and the people,** Pointer Publisher, Jaipur, 1998
10. दुबे, सुशील कुमार : **औद्योगिक प्रदूषण एवं मानव जीवन व कानपुर नगर का भौगोलिक अध्ययन,** शोध पत्र, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका वाल्यूम 38, 2005
11. सिंह, सविन्दर : **पर्यावरण भूगोल प्रयाग पुस्तक सदन,** इलाहाबाद (यू.पी.), 1991
12. शर्मा दामोदर एवं हीर महर्षि : **जल एवं जल प्रदूषण,** साहित्यगार, जयपुर, 1996
13. गुर्जर, रामकुमार : **पर्यावरणीय समस्याएं,** पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2000
14. अवस्थी, एन.एम. : **पर्यावरणीय अध्ययन,** लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, 2004

15. जोशी, रतन : **पर्यावरण अध्ययन,** साहित्य भवन, पब्लिकेशन, आगरा, 2007
16. सक्सेना, हरि मोहन : **पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी भूगोल,** राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1994
17. भरूचा, ईराक : **पर्यावरण अध्ययन,** विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के लिए निर्मित– ओरियंट लांग्मेन, प्राइवेट लिमिटेड, 2006
18. गुर्जर, रामकुमार एवं जाट बी.सी. : **पर्यावरण अध्ययन,** पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2004
19. शर्मा, एम.एल. एवं नाटानी पी.एन. : पर्यावरणीय अध्ययन, माया प्रकाशन मंदिर, जयपुर, 2005
20. मित्तल, संतोष एवं अग्रवाल मीनू : **पर्यावरणीय शिक्षा,** नव चेतना पब्लिकेशन, जयपुर, 2004
21. जांगिड, मोहन लाल : **ऊर्जा के स्रोत, स्थिति एवं संरक्षण,** शिविरा पत्रिका, माध्यमिक शिक्षा, निदेशालय, राजस्थान, अंक 6 पृष्ठ 15, 2002
22. कलवार, सुगन चन्द : **पर्यावरण एवं परती भूमि,** पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 1996
23. Kalwar, S.C. : **Wastelands and Planing for Development,** Concept Publishing Company, New Delhi, 2008
24. Kalwar, S.C. : **Environmental Issues and Sustainable Development,** Pointer Publishers, Jaipur, 2003
25. Kalwar, S.C. et.al. : **Geomorphology and Environmental Sustainability,** Concept Publishing Company, New Delhi, 2005

7.21 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. – 100
2. डेसीबल
3. डेसीबल
4. साउन्ड मीटर
5. गर्भ गिरना

बोध प्रश्न–2

(अ)	(ब)
1. भूमि	(द) मृदा में पोषक तत्वों की कमी
2. वायु	(अ) मृदा प्रदूषण
3. मृदा में पोषक तत्वों की	(द) कीटनाशी रसायनों का
4. स्वायत्तशासी	(द) खनन
5. पुन : चक्र (Recycling)4	(ब) उक्त सभी

बोध प्रश्न – 3

1. हिरोशीमा व नागासाकी
2. आनुवंशिक
3. मोतिया बिन्द
4. थायराइड
5. एक्सरे तथा रेडियो थैरेपी

7.22 अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1. शोर प्रदूषण से आप का क्या आशय है? मानवीय सहन क्षमता के संदर्भ में शोर प्रदूषण की व्याख्या कीजिए।
2. शोर प्रदूषण को परिभाषित करते हुए इसके स्त्रोत बताइये।
3. शोर प्रदूषण के प्रभावों का वर्णन कीजिए।
4. शोर प्रदूषण की रोकथाम के लिए क्या–क्या उपाय है?
5. निम्न पर टिप्पणियां लिखें –
   (1) शोर का मापन या प्रबलता
   (2) शोर और शोर में अन्तर
   (3) शोर प्रदूषण का जन्तुओं पर प्रभाव
   (4) ध्वनिप्रदूषण में वाहनों की भूमिका
6. मृदा/भूमि प्रदूषण को परिभाषित करते हुए उसके स्रोत बताइये।
7. मृदा प्रदूषण के प्रभावों की व्याख्या कीजिए।
8. मृदा प्रदूषण के प्रभाव को नियंत्रित करने के उपाय लिखिए।
9. मृदा अपरदन के प्राकृतिक एवं मानवीय कारणों पर एक भौगोलिक नोट लिखिए।
10. निम्न पर टिप्पणियां लिखें।
    (1) मृदा प्रदूषण के प्राकृतिक स्रोत
    (2) खनन से मृदा अवनयन
    (3) मृदा में रासायनिक उर्वरक तथा कीटनाशकों के उपयोग के दुष्परिणाम
    (4) मृदा पर घरेलू अपशिष्टों का प्रभाव
11. रेडियोधर्मी प्रदूषण पर एक लेख लिखिए।
12. रेडियोधर्मी प्रदूषण से होने वाले खतरों का विवरण लिखें।
13. रेडियोधर्मी प्रदूषण से क्या अभिप्राय है तथा उसके स्रोत क्या है?
14. रेडियोधर्मी प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपाय लिखिए।
15. निम्न पर टिप्पणियां लिखें।
    (1) रेडियोधर्मी पदार्थो के मानव हितकारी उपयोग
    (2) रेडियोधर्मी प्रदूषण का अभिप्राय
    (3) रेडियोधर्मिता के मानवीय स्वास्थ्य पर प्रभाव
    (4) रेडियोधर्मिता अपशिष्टों के प्रकार

इकाई 8 : मानव जनसंख्या एवं पर्यावरण: जनसंख्या वृद्धि एवं वितरण, जनसांख्यिकीय संक्रमण, जनसंख्या वृद्धि पर परिस्थितिक नियंत्रण, नगरीय परिस्थितिकी, पर्यावरण एवं मानवीय स्वास्थ्य, भारतीय परिदृश्य (Human Population and the Environment : Population growth and distribution, Demographic transition, Ecological checks on growth of population, Urban Ecology, Environment & Human Health, Indian Scenario.)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 जनसंख्या वृद्धि

- 8.2.1 जनसंख्या वृद्धि के कारण
- 8.2.2 जनसंख्या वृद्धि: स्थानिक प्रारूप

8.3 जनसंख्या वितरण

- 8.3.1 जनसंख्या वितरण को प्रभावित करने वाले कारक
- 8.3.2 जनसंख्या वितरण : स्थानिक प्रारूप
  - 8.3.2.1 जनबहुल क्षेत्र
  - 8.3.2.2 विरल जनसंख्या क्षेत्र

8.4 जनसांख्यिकीय संक्रमण

8.5 जनसंख्या वृद्धि पर पारिस्थितिकी नियंत्रण

- 8.5.1 माल्थस का जनसंख्या वृद्धि सिद्धांत
- 8.5.2 अनुकूलतम जनसंख्या

8.6 नगरीय पारिस्थितिकी

8.7 पर्यावरण एवं मानवीय स्वास्थ्य

8.8 भारतीय परिदृश्य

8.9 सारांश

8.10 शब्दावली
8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ
8.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.0 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई, मानव जनसंख्या एवं पर्यावरण अध्ययन के निम्न उद्देश्य हैं–

- पर्यावरण एवं मानव जनसंख्या के अंतर्संम्बंधों को स्पष्ट करना,
- विश्व जनसंख्या वृद्धि एवं वितरण प्रारूपों का विश्लेषण प्रस्तुत करना,
- जनसांख्यिकीय संक्रमण की संकल्पना को स्पष्ट करना,
- जनसंख्या वृद्धि पर पारिस्थितिकीय नियंत्रणों की व्याख्या करना,
- नगरीय पारिस्थितिकी की समीक्षा करना,
- पर्यावरण एवं मानवीय स्वास्थ्य के अंतर्सम्बन्ध को समझाना,
- पर्यावरण एवं मानव जनसंख्या विषय पर भारतीय परिदृश्य की जानकारी उपलब्ध कराना।

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव जनसंख्या एवं पर्यावरण के मध्य जटिल अंतर्सम्बन्ध पाये जाते हैं। मानव जनसंख्या, पर्यावरण को न केवल आवास के रूप में उपयोग करती है, अपितु अपने विभिन्न क्रियाकलापों से प्राकृतिक भू–दृश्यों का रूपांतरण करती है। प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण के घटक तत्व परस्पर अंतर्क्रिया द्वारा विश्व के विभिन्न क्षेत्रो में जनांकिकीय प्रतिरूपों का निर्माण करते हैं। दूसरी ओर मानवीय क्रियाकलाप पर्यावरण में श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करते हैं और पर्यावरण की क्रियात्मकता एवं गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। जनसंख्या दबाव एवं पर्यावरण के अत्याधिक विदोहन से पर्यावरणीय व्यवस्थाएं विरूपित हो जाती हैं और पर्यावरणीय संकट उत्पन्न हो जाते हैं । अत: मानव जनसंख्या एवं पर्यावरण के मध्य बेहतर तालमेल की आवश्यकता होती है जिसके द्वारा आर्थिक प्रौद्योगिक विकासजन्य विषमताओं का निराकरण सरलता से हो सके।

8.2 जनसंख्या वृद्धि (Population Growth)

जनसंख्या वृद्धि एक निरंतर प्रक्रिया है। पिछले 10,000 वर्षों में मानव जनसंख्या में 1000 गुणा से अधिक वृद्धि हुई है, जिसमें से अधिकांश जनसंख्या वृद्धि पिछली 3 शताब्दियों में हुई है। सन् 2001 में विश्व की जनसंख्या 6.137 बिलियन थी। संयुक्त राष्ट्र संघ के जनसंख्या संदर्भ ब्यूरो के अनुमानों परिदृश्य के अनुसार सन् 2025 तक विश्व की जनसंख्या 8.0 बिलियन तथा सन् 2050 तक लगभग 10.0 बिलियन हो जायेगी। विश्व स्तर पर जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के पश्चात् भी चिकित्सा सुविधाओं के प्रसार एवं मृत्युदरों में कमी के कारण अगले कुछ दशकों तक जनसंख्या वृद्धि दर ऊंची बने रहना, संभावित है। यदि उपर्युक्त परिवार कल्याण कार्यक्रम सफल रहते हैं, तब ही दूर भविष्य में जनसंख्या वृद्धि दर में

कमी एवं जनसंख्या का स्थिरीकरण हो पायेगा। विश्व जनसंख्या वृद्धि को कालक्रमानुसार तीन चरणों में विभाजित कर सकते हैं –

(i) 1650 ई0 से पूर्व,

(ii) 1650 ई0 से 1950 ई0 के मध्य, तथा

(iii) 1950 ई0 के पश्चात् जनसंख्या की वृद्धि।

(i) 1650 ई0 से पूर्व : डूरण्ड (Durand, 1973) के अनुसार 8000 ईसा पूर्व में कुल जनसंख्या 5 मिलियन रही होगी। संग्रहण एवं आखेट वाली उनकी अर्थव्यवस्था भूमि के विस्तृत उपयोग पर आधारित थी। ऊँची मृत्युदर जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करती थी। डीवी (Deevey, 1960) के मतानुसार आखेट एवं संग्रहण के लिए प्रयुक्त निर्धारित क्षेत्रों की पोषण क्षमता का जनसमूहों की जनसंख्या एवं जनसंख्या वृद्धि पर सीमाकारी प्रभाव (Limiting effect) होता था।

कृषि के विकास के कारण मुत्यु दर में कमी आई। भोजन की बढ़ती हुई आपूर्ति के परिणामस्वरूप बीमारियों के विरूद्ध प्रतिरोधक क्षमता, जीवन प्रत्याशा और अंततः जनसंख्या में वृद्धि हुई होगी। ईसा के समय कुल जनसंख्या 200–300 मिलियन के बीच रही होगी। कृषि क्रांति (Agricultural revolution–8000 B.C.) के फलस्वरूप मानव के स्थाई बसाव क्षेत्र विकसित हुए, विभिन्न सामाजिक–आर्थिक प्रक्रियाओं द्वारा सांस्कृतिक ढांचे का निर्माण हुआ और नये–नये व्यवसायों का सृजन हुआ। यद्यपि इस जटिल होती अर्थव्यवस्था में पूर्व की तुलना में अधिक लोगों के भरण–पोषण की क्षमता थी लेकिन ट्रिवार्था एवं व्योटिन्सकी के अनुसार युद्ध एंव महामारियों के प्रकोप के कारण उस समय जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि मात्र 0.1 प्रतिशत थी, जिसे नगण्य कहा जा सकता है। 1500 ई0 में विश्व की कुल जनसंख्या 530 मिलियन होने का अनुमान है जो कारसौण्डर्स के अनुसार सन 1650 तक बढ़कर 545 मिलियन हो गई।

(ii) 1650 ई0ई 1950 से 0 के मध्य : 17 वीं शताब्दी के मध्य से जनसंख्या में उत्तरोत्तर तीव्र वृद्धि होने लगी। प्राथमिक आर्थिक संसाधनों से संबंधित आर्थिक क्रियाओं का विकास हुआ। जीवन प्रत्याशा में वृद्धि के चिकित्सीय तरीके खोज लिये गए। जनसंख्या वृद्धि का द्वितीय चरण मुख्यत : औद्योगिक क्रांति (Industrial revolution) के साथ 18 वीं शताब्दी में प्रारंभ हुआ।

औद्योगिक क्रांति ने यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका में द्वितीयक (विनिर्माण) एवं तृतीयक (सेवायें) व्यवसाय प्रधान अर्थव्यवस्था को जन्म दिया। ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय केंद्रों की जनसंख्या के स्थानांतरण से नगरीय जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई। औद्योगिक प्रक्रियाओं से जहां एक ओर प्रति पर व्यक्ति उत्पादन बढ़ गए, वहीं दूसरी ओर नगरीय केंद्रो में पर्यावरणीय प्रदूषण, भीडभाड, गंदगी तथा अन्य सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृतिक समस्याएं उत्पन्न होने लगी। यद्यपि महामारियों के प्रकोप व चिकित्सकीय उपायों की अपर्याप्तता से सघन बसे क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर जनसंख्या के विनाश के कारण मृत्यु दर पर्याप्त ऊँची थी, लेकिन उच्च आर्थिक संभावनाओं के कारण इस काल में अभूतपूर्व जनसंख्या वृद्धि हुई।

फलत: 300 वर्षो में विश्व की जनसंख्या बढ़कर 2, 493 मिलियन (1950) हो गई, जो 1650 ई. की जनसंख्या के 4.5 गुणा से भी अधिक है। कृषि, उद्योग, तकनीक विकास एवं चिकित्सा सुविधा से मृत्युदर में कमी, तीव्र जनसंख्या वृद्धि का प्रमुख कारण थी। 1650 ई. से 1850 ई. के बीच के 200 वर्षो में जनसंख्या में लगभग दोगुनी वृद्धि हुई जो अगले 100 वर्षो (1850 ई. से 1950 ई.) के अंतराल में पुन: दोगुनी से भी अधिक हो गई। 1950 ई. तक जनसंख्या की तीव्र वृद्धि ने विश्व के अनेक क्षेत्रों (दक्षिण पूर्वी एशिया, पश्चिमी यूरोप) में गंभीर समस्या का रूप धारण कर लिया। इस अवधि में जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर लगभग 0.6 प्रतिशत थी।

(iii) 1950 ई. के पश्चात् जनसंख्या की वृद्धि : जनसंख्या वृद्धि का तृतीय चरण द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आरंभ हुआ। 20 वीं शताब्दी के आरंभ में जनसंख्या वृद्धि की वार्षिक दर 0.5 प्रतिशत थी जो शताब्दी के मध्य तक लगभग 2 प्रतिशत हो गई। जनसंख्या की यह अप्रत्याशित वृद्धि चिकित्सा क्रांति (Medical revolution) के कारण हुई है। यूरोप तथा अमेरिका से इस क्रांति का प्रसार लैटिन अमेरिका, अफ्रीका तथा एशिया के अविकसित एवं विकासशील देशों में हुआ, फलस्वरूप चिकित्सा सुविधाओं में वृद्धि तथा जीवन प्रत्याशा (Life Expectancy) में सुधार से 1950 में जो विश्व जनसंख्या 2,493 मिलियन थी, केवल 40 वर्षो में दुगुनी होकर 1990 में 5,295 मिलियन हो गई। जनसंख्या वृद्धि का दूसरा प्रमुख कारण किन्हीं क्षेत्रों में राजनीतिक अस्थिरता एवं अकाल को छोड़कर अभूतपूर्व आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षा का वातावरण है। सन् 2001 में विश्व की जनसंख्या 6,137 मिलियन आंकलित की गई। जिसका संयुक्त राष्ट्र संघ के जनसंख्या संदर्भ ब्यूरो के अनुसार 2012 ई. तक 7,000 मिलियन हो जाने का अनुमान है। प्रतिवर्ष विश्व जनसंख्या में लगभग 90 मिलियन की वृद्धि हो रही है तथा समस्त प्रयासों के उपरांत भी विश्व जनसंख्या में कम से कम 2050 ई. तक वृद्धि होती रहेगी।

तालिका 8.1 विश्व जनसंख्या वृद्धि (1650–2001)

वर्ष	**जनसंख्या (मिलियन)**	**औसत वार्षिक वृद्धि**	
		(मिलियन)	**(मिलियन)**
1650	545	1.8	0.29
1750	728	3.5	0.44
1800	906	5.3	0.51
1900	1171	8.7	0.64
1920	1810	21.8	1.11
1940	2246	24.7	1.05
1950	2493	49.1	1.81
1960	4492	64.8	2.15
1969	5293	145.8	2.23

1981	4492	70.4	1.70
1990	5293	80.1	1.76
2001	6137	84.4	1.82

स्त्रोत : पर्यावरण एवम पारिस्थितिक भूगोल, डॉ. हरिमोहन सक्सेना

8.3.1 जनसंख्या वृद्धि के कारण

जनसंख्या वृद्धि के कालिक विश्लेषण से स्पष्ट है कि आर्थिक संभावनाओं की उपलब्धता विशेषकर रोजगार के अवसर एवं खाद्य सुरक्षा तथा सामाजिक सुरक्षा जनसंख्या वृद्धि को सीधे प्रोत्साहित करते हैं। 20 वीं शताब्दी में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं –

1. विश्व युद्धों (प्रथम एवं द्वितीय) से पूर्व, तीन शताब्दियों तक अधिसंख्य देशों में शांति एवं सुरक्षा का वातावरण था। जिसके कारण मानव समाज की सामान्य प्रगति एवं उत्पादन क्षमता का विकास होता रहा था।
2. गहन कृषि (Intensive Farming) तथा यांत्रिक कृषि (Mechanised farming) के द्वारा खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि हुई। इससे खाद्य आपूर्ति अधिक निश्चित हो गई
3. औद्योगिकीकरण के द्वारा जटिल अर्थतंत्रों का विकास हुआ जिससे खनन, विनिर्माण, परिवहन, वाणिज्य तथा प्रबंधन के क्षेत्र में नित नए रोजगार, बढ़ती जनसंख्या को मिलते रहे।
4. विज्ञान एवं तकनीकी प्रगति से जीवन को सरल–सुखी–संपन्न बनाने के प्रचुर साधन प्राप्त हुए।
5. स्वास्थ्य एवं चिकित्सा विज्ञान की उन्नति के द्वारा बीमारियों पर नियंत्रण एवं जीवन प्रत्याशा में वृद्धि होने से मृत्यु दर कम हो गई।
6. नये बसे हुए क्षेत्रों जैसे उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड में मानव आप्रवास (immigration) के कारण जनसंख्या बड़ी, क्योंकि यूरोप तथा एशिया के सघन क्षेत्रों से मनुष्य इन क्षेत्रों में जाकर बसते रहे। इस अप्रवास तथा उतप्रवास (emigration) से दोनों ही क्षेत्रो में जनसंख्या–संसाधन के सकारात्मक,सामंजस्य से जनसंख्या वृद्धि को प्रोत्साहन मिला।

8.2.2 जनसंख्या वृद्धि : स्थानिक प्रारूप (Population Growth : Spatial Pattern)

पिछली 3 शताब्दियों में विश्व की कुल जनसंख्या में लगभग दस गुणा वृद्धि हुई है, वहीं उत्तरी अमेरिका में लगभग 490 गुणा, दक्षिण अमेरिका में 29 गुणा, एशिया में 9 गुणा, यूरोप में 5 गुणा, ओसानिया में 15 गुणा तथा अफ्रीका में 8 गुणा वृद्धि हुई है। इस विषमता का कारण स्पष्ट है, उत्तरी अमेरिका में प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता, अनुकूल जलवायु तथा उपजाऊ मिट्टियों का उपयोग करके कृषि, उद्योग,परिवहन के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हुई है। आर्थिक विकास और विपुल संभावनाओं के कारण उत्तरी अमेरिका की जनसंख्या में तीव्रतम वृद्धि देखी गई, जबकि अफ्रीका अस्वास्थ्यकर जलवायु, विशाल मरूभूमि, संक्रामक रोगों तथा आर्थिक विपन्नता से ग्रसित रहा है । सम्प्रति यूरोप की जनसंख्या की वृद्धि दर में उत्प्रवास एवं वैज्ञानिक निरोधों

के उपायोग के फलस्वरूप हास हुआ है। दक्षिणी अमेरिका तथा ओसानिया आर्थिक संभावनाओं वाले नये बसे क्षेत्र होने के कारण औसत से अधिक जनसंख्या वृद्धि दर्शाते हैं। विभिन्न महाद्वीपों की जनसंख्या वृद्धि की दरों में विषमता स्पष्ट दिखाई देती है। सन् 2001 में सर्वाधिक वार्षिक वृद्धि दर 2.5 प्रतिशत अफ्रीका तथा ओसानिया में दर्ज की गई। इसी प्रकार उत्तरी अमेरिका में 2.0 प्रतिशत, दक्षिणी अमेरिका में 1.6 प्रतिशत तथा एशिया में 1.4 प्रतिशत वार्षिक जनसंख्या वृद्धि दर्ज की गई। यूरोप में ऋणात्मक जनसंख्या वृद्धि (–0.1 वार्षिक) दर्ज की गई, अर्थात् यूरोप में जनसंख्या का हास हो रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ के विश्व संसाधन सस्थान के अनुसार 2025 तक यूरोप की जनसंख्या में लगभग 4 प्रतिशत तथा 2050 तक लगभग 13 प्रतिशत की कमी हो जायेगी। जनसंख्या प्रवृत्तियों से स्पष्ट होता है कि अधिक जनसंख्या वाले, प्राचीन बसे अथवा विकसित देशों की तुलना में कम जनसंख्या एवं नवीन संभावनाओं वाले विकासशील देशो में जनसंख्या वृद्धि की दर ऊंची है। नये बसे एवं विपुल आर्थिक संभावना वाले विकसित देशों में भी उच्च जनसंख्या वृद्धि अंकित की जाती है।

तालिका 8.2 विभिन्न महाद्वीपों में जनसंख्या वृद्धि– 2001

महाद्वीप	**जनसंख्या (मिलियन में)**	**जन्मदर (प्रति हजार)**	**मृत्युदर (प्रति हजार)**	**वृद्धि का प्रतिशत**
एशिया (रूप के अतिरिक्त)	3720	22	8	1.4
उत्तरी अमेरिका	491	14	9	2.0
यूरोप	583	10	11	-0.1
दक्षिणी अमेरिका	350	23	7	1.6
ऑस्ट्रेलिया (ओसानिया)	31	18	7	2.5
अफ्रीका	818	38	7	2.5

विभिन्न देशों की जनसंख्या वृद्धि दरों में पर्याप्त अंतर है। संयुक्त राष्ट्र संघ के विश्व संसाधन 1998–99 प्रकाशन के अनुसार ईरान की जनसंख्या 19 वर्षो में दोगुनी हो जायेगी। इसी प्रकार नाइजीरिया की जनसंख्या 23 वर्षों में, पाकिस्तान की जनसंख्या 25 वर्षों में, बांग्लादेश की जनसंख्या 29 वर्षो में तथा भारत की जनसंख्या 35 वर्षों में दोगुनी हो जायेगी। दूसरी ओर निम्न जनसंख्या वृद्धि वाले देश जैसे यूनाइटेड किंगडम (U.K.) की जनसंख्या 280 वर्षों में, जापान की जनसंख्या 267 वर्षो में, फ्रांस की जनसंख्या 182 वर्षों में तथा संयुक्त राज्य अमेरिका (U.S.A.) की जनसंख्या 99 वर्षों दोगुनी हो पायेगी। रूस तथा जर्मनी की जनसंख्या अगले 500 वर्षो में भी दोगुनी नहीं हो पायेगी।

8.3 जनसंख्या वितरण (Population Distribution)

सन् 2001 में विश्व की कुल जनसंख्या 6137 मिलियन थी, परन्तु विश्व में जनसंख्या का वितरण समान नही है। सम्पूर्ण जनसंख्या का 50 प्रतिशत जहां केवल 5 प्रतिशत से कम स्थल भाग में केंद्रित है, वहीं 56 प्रतिशत स्थल भाग में मात्र 5 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। विश्व

की 80 प्रतिशत जनसंख्या उत्तरी महाद्वीपों में तथा शेष 20 प्रतिशत जनसंख्या तीन दक्षिणी महाद्वीपों (दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका तथा ऑस्ट्रेलिया) में निवास करती है।

अंक्षाशीय वितरण की दृष्टि से लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या 20° से 60° उत्तरी अक्षांशों के मध्य, मुख्यत: प्राचीन विश्व में रहती है। इसी प्रकार विश्व की अधिकांश जनसंख्या महाद्वीपों के किनारों पर घनीभूत हैं, जबकि महाद्वीपों के आंतरिक भाग विरल आबाद या जनशून्य है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि विश्व की 75 प्रतिशत आबादी समुद्र से 960 किमी. के घेरे में तथा 66 प्रतिशत आबादी 480 किमी. के घेरे में संकेंद्रित है। जनसंख्या के वितरण पर ऊँचाई (Altitute) का प्रभाव भी स्पष्ट दिखता है। स्ट्राजेव्स्की (Straszewski) के अनुसार विश्व की 60 प्रतिशत जनसंख्या समुद्र तल से 200 मीटर की ऊँचाई तक ही निवास करती है, जबकि 80 प्रतिशत आबादी 500 मीटर की ऊँचाई तक सीमित है।

8.3.1 जनसंख्या वितरण को प्रभावित करने वाले कारक (Factors effecting Population distribution)

विश्व जनसंख्या वितरण में विषमता उत्पन्न करने वाले कारक निम्नलिखित है–

1. **स्थिति :** स्थिति का प्रभाव किसी प्रदेश की जलवायु, कृषिगत उत्पादनों, परिवहन, व्यापारिक गम्यता एवं आर्थिक विकास पर सबसे अधिक पड़ता है। विश्व की 75 प्रतिशत जनसंख्या महासगरीय तट–समीपस्थ पेटियों में निवास करती है, क्योंकि यहाँ मत्स्य प्राप्ति, समुद्री परिवहन, सम जलवायु, समतल कृषि योग्य मैदानी भूमि तथा औद्योगिक विकास की पर्याप्त संभावनाएँ पाई जाती हैं।
2. **जलवायु :** विश्व के सबसे घने बसे क्षेत्र मानसूनी तथा समशीतोष्ण जलवायु प्रदेश है। मानसून एशियाई देशों, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोपीय देशों में अनुकूल जलवायु के कारण ही सघन जनसंख्या पाई जाती है। इसके विपरीत उष्ण एवं मरूस्थलीय जलवायु वाले सहारा, गोबी आदि, उष्णार्द जलवायु वाले अमेजन, कांगो बेसिन, भारत के तराई क्षेत्र आदि तथा शीत प्रधान क्षेत्र टुंड्रा, साइबेरिया आदि जनसंख्या को आकर्षित नहीं करते। कृषि प्रधान देशों में फसलों का उत्पादन तथा फसलों पर निर्भर जनसंख्या की सघनता वर्षा की मात्रा से सीधे जुड़ी होती है।
3. **धरातल :** समतल मैदानी क्षेत्रों में विश्व जनसंख्या के प्रमुख जमघट मिलते हैं, क्योंकि इन क्षेत्रों मानव जनसंख्या एवं में कृषि हेतु अनुकूल मिट्टी, सिंचाई, परिवहन, औद्योगिक विकास एवं व्यापार की सुविधा होती है। पर्वतीय एवं पठारी प्रदेशों में समतल मैदानों की अपेक्षा कम जनसंख्या मिलती है, क्योंकि इन क्षेत्रों में कृषि परिवहन एवं मानव बसाव हेतु विशेष अनुकूलताएँ नहीं होती।
4. **मिट्टी :** उपजाऊ मिट्टी के क्षेत्रों में सघन जनसंख्या मिलती है। दोमट एवं कांप मिट्टियाँ कृषि के लिए बहुत उपयोगी है। इन मिट्टियों में अपेक्षाकृत अधिक फसल उत्पादन होता है, जिसके द्वारा अधिक जनसंख्या का भरण–पोषण संभव होता है। मानसून एशिया की नदियों के उपजाऊ दोमट एवं कांप मिट्टी के चावल उत्पादक क्षेत्रों में सघन जनसंख्या मिलती है।

5. **जलापूर्ति :** जल मानव जीवन का अभिन्न अंग है, क्योंकि यह घरेलू कार्य, सिंचाई, परिवहन, उद्योग आदि से संबंधित आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। विश्व के अधिकांश बड़े नगर नदियों अथवा जलापूर्ति के अन्य स्रोतों के सन्निकट ही स्थिति है। मानसून एशिया में भारत, चीन तथा बांग्लादेश में जनसंख्या के जमघट गंगा, यांग्टीसीक्यांग तथा पदमा नदियों के बेसिन में ही मिलते हैं। विश्व के मरूस्थल जल के अभाव के कारण अधिकांशत: विरल जनसंख्या क्षेत्र है।

6. वन, खनिज एवं शक्ति संसाधन : वन संपदा तथा खनिज संसाधन, जो मानव के आर्थिक विकास के लिए अत्यंत उपयोगी है, जनसंख्या को आकर्षित करते हैं। विषम प्राकृतिक वातावरण में भी मानव उपर्युक्त संसाधन के स्रोतों के निकट बस जाता है। उच्च अक्षांशों तथा पर्वतीय भागों में इमारती लकड़ी वाले वनों के निकट भी जनसंख्या बसी हुई है। भारत का छोटा नागपुर का पठार जैसा विषम पठारी क्षेत्र महत्वपूर्ण खनिज स्रोतों की उपलब्धता के कारण घना आबाद है।

   500 उत्तरी अक्षांश के सहारे यूरोप की कोयला पेटी यूरोपीय जनसंख्या की धुरी है। निर्माण उद्योगों तथा परिवहन के लिए विद्युत, कोयला तथा पैट्रोलियम पदार्थो की आवश्यकता होती है। शक्ति संसाधनों के निकट विकसित औद्योगिक क्षेत्रों में विपुल आर्थिक संभावनाओं के कारण सघन जनसंख्या मिलती है।

7. **सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश :** सामाजिक रीति–रिवाज, धार्मिक रूढ़ियाँ तथा परंपरागत जीवन शैली भी जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करती है। निम्न आर्थिक आकांक्षाओं वाले परम्परागत समाजों में उच्च आर्थिक आकांक्षाओं वाले आधुनिक समाजों की तुलना में उच्च जनसंख्या वृद्धि पाई जाती है। प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व चीन के निवासी अपने पूर्वजों की कब्र की नियमित पूजा करते थे। अत: दूसरे देशों में बहुत कम प्रवास करते थे, फलस्वरूप नैसर्गिक वृद्धि के कारण वहाँ जनसंख्या सघन होती गई। इसके विपरीत यूरोपीय जनसंख्या बड़े पैमाने पर आर्थिक संभावनाओं की खोज में उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका आदि की ओर प्रवास कर वहीं स्थाई रूप से बस गई।

8. **आर्थिक एवं तकनीकी विकास :** आंग्ल अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोप में आर्थिक एवं तकनीकी विकास के द्वारा नवीन उपकरणों, आधुनिक मशीनों तथा परिवहन के द्रुत साधनों के उपयोग से जहाँ एक ओर प्राकृतिक वातावरण की कठोरता पर नियंत्रण किया गया है, वहीं दूसरी ओर कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि की गई है। ऐसे भागो में मानव अधिक प्रगतिशील, संपन्न तथा उच्च जीवन स्तर से युक्त होता है। किसी प्रदेश की आर्थिक उन्नति होने पर उसकी जनसंख्या पोषण क्षमता (Population supporting capacity) बढ़ जाती है और वह औद्योगिक उत्पादनों के बदले कृषिगत भोज्य पदार्थो के आयात द्वारा सघन जनसंख्या का भरण–पोषण कर सकता है। ब्रिटेन, जर्मनी, स्विट्जरलैण्ड आदि देश इसके उदाहरण है।

9. **ऐतिहासिक एवं राजनीतिक कारक :** वे क्षेत्र प्राय: जनबहुल हैं जो मानव बसाव एवं सभ्यता के प्राचीन केंद्र रहे हैं। मानसून एशिया में मानव बसाव का इतिहास अति प्राचीन हैं। नदी–

घाटी आधारित सभ्यताओं के फलस्वरूप नदियों के बेसिन प्राचीन काल से ही सघन बसाव क्षेत्र रहे हैं। विश्व का राजनीतिक विभक्तिकरण भी जनसंख्या के असमान वितरण का बड़ा कारण है। राजनीतिक सीमायें सघन बसे देशों की जनसंख्या को अपेक्षाकृत निर्जन देशों में स्थानान्तरण करने से रोकती हैं। जनसंख्या के देशांतरिक स्थानांतरण (प्रवजन) पर विभिन्न देशों की प्रवजन नीतियों का कठोर नियंत्रण रहता है। ऑस्ट्रेलिया की श्वेत नीति (White Policy) अन्य देशों के अश्वेत लोगों को यहां बसने से रोकती है। दूसरी ओर अन्य राजनीतिक कारणों जैसे युद्ध, विभाजन आदि के द्वारा जनसंख्या का व्यापक स्थानान्तरण भी होता है।

8.3.2 जनसंख्या वितरण : स्थानिक प्रारूप (Population Distribution : Spatial pattern)

जनसंख्या वितरण के आधार पर विश्व में दो प्रकार के क्षेत्र मिलते हैं। प्रथम–जनबहुल क्षेत्र तथा द्वितीय–विरल जनसंख्या क्षेत्र। जनबहुल क्षेत्रों में पूर्वी एशिया, दक्षिण एशिया, पश्चिमी यूरोप तथा आंग्ल – अमेरिका का पूर्वी भाग आते हैं। इसके अतिरिक्त कतिपय लघु जनबहुल क्षेत्र भी हैं जैसे – संयुक्त राज्य अमेरिका में लॉस एंजिल्स क्षेत्र, अफ्रीका में नील नदी की घाटी, विक्टोरिया झील का समीपवर्ती क्षेत्र, नाइजीरिया का तटीय क्षेत्र, मध्य अमेरिका में नगरीय क्षेत्र, दक्षिणी अमेरिका में काराकस, रियो–डी–जेनेरो, ब्यूनस आयर्स तथा साओपालो के तटीय क्षेत्र आदि। अत्याधिक जनसंख्या वाले सीमित क्षेत्रों के विपरीत विश्व का विशाल विरल जनसंख्या क्षेत्र क्षेत्र लगभग 70 प्रतिशत स्थलखंड पर फैला है। ध्रुवीय एवं अति शीतल प्रदेश, उष्ण व मध्य अक्षांशीय मरूस्थल, विषवत् रेखीय आर्द्र वन प्रदेश तथा उच्च पर्वतीय प्रदेश, प्रमुख 4 प्रकार के विरल जनसंख्या क्षेत्र है।

8.3.2.1 जनबहुल क्षेत्र (Densely Population Area)

1. **पूर्वी एशिया के जनबहुल क्षेत्र :** विश्व की 27 प्रतिशत (2001) जनसंख्या पूर्वी एशिया में मिलती है। चीन (1273.0 मिलियन), ताईवान (225 मि.), जापान (127.2 मि.), उत्तरी कोरिया (22.6 मि.), दक्षिणी कोरिया (48.8 मि.), वियतनाम (787 मि.), फिलीपींस (77.2 मि.) तथा हांगकांग (6.9 मि.) में संयुक्त रूप से 1656 मिलियन (2001) से अधिक जनसंख्या रहती है। चीन में ह्वांगहो, यांग्टी–सीक्यांग तथा जेचवान बेसिन प्रमुख खेतीहर क्षेत्र है, जहाँ अति सघन जनसंख्या है। यद्यपि औद्योगिक विकास के फलस्वरूप चीन के तटवर्ती क्षेत्रों से भी पर्याप्त नगरीय जनसंख्या केंद्रित है। जापान के समुद्रतटीय मैदानी भागों तथा वियतनाम में युआन तथा मीकांग डेल्टा में सघन जनसंख्या है। जापान, दक्षिणी कोरिया, ताईवान तथा हांगाकांग में नगरीय जनसंख्या का उच्च सक्रेंद्रण मिलता है।
2. **दक्षिण एशिया के जनबहुल क्षेत्र :** दक्षिण एशिया में विश्व की 28 प्रतिशत (2001) जनसंख्या विद्यमान है। दक्षिण एशिया में भारत (1027.0 मिलियन), बांग्लादेश (133.5 एवं चितरण जनसांख्यिकीय मि.), पाकिस्तान (145.0 मि.), इण्डोनेशिया (214.0 मि), थाईलैण्ड (62.4 मि.), म्यानमार (47.8 मि.), नेपाल (24.8 मि.), मलेशिया (23.1 मि.),

श्रीलंका (19.5 मि.), कंबोडिया (13.1 मिलियन), लाओस (5.4 मिलियन), सिंगापुर (4.1 मि.), भूटान (0.9 मि.) तथा मालदीव (0.3 मि.) में संयुक्त रूप से 1721 मिलियन (2001) से अधिक जनसंख्या रहती है। भारत में सतलुज–गंगा–ब्रह्मपुत्र का मैदान, पूर्वी तटीय मैदान व प्रायद्वीपीय नदी घाटियां, पाकिस्तान में पंजाब, सिंधु नदी का डेल्टा, बांग्लादेश में गंगा– ब्रह्मपुत्र का डेल्टा, नेपाल में नेपाल घाटी का क्षेत्र, श्रीलंका के तटीय क्षेत्र, म्यानमार में इरावदी डेल्टा, थाइलैण्ड में मेनाम व चायो–फ्राया बेसिन तथा कम्बोडिया में मीकांग डेल्टा सघन जनक्षेत्र है। इन एशियाई देशों में जनसंख्या मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है तथा कृषि एवं दूसरे प्राथमिक व्यवसायों की प्रधानता है। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, म्यानमार में लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य संलग्न है। सिंगापुर (100 प्रतिशत) तथा ब्रुनेई में उच्च नगरीय जनसंख्या मिलती है।

मानसूनी जलवायु वाले दक्षिणी–पूर्वी एशिया के जनबहुल क्षेत्र को 'चाँवल की संस्कृति का क्षेत्र' (Rice Cultured Zone) भी कहते हैं। इन क्षेत्रों में वर्ष में दो या तीन फसलें उगाई जाती हैं। पूर्वी तथा दक्षिणी एशिया में जनसंख्या का वितरण समान नहीं हैं यहां छोटे–बडे जनसंकुल क्षेत्रों के बीच विस्तृत रिक्त क्षेत्र भी हैं।

3. **पश्चिमी यूरोप के जनबहुल क्षेत्र :** पश्चिमी यूरोप में समुद्र के समकारी प्रभाव के कारण विश्व की 6 प्रतिशत (2001) से अधिक जनसंख्या निवास करती है। जर्मनी (82.2 मिस्किन), यूनाइटेड किंगडम (60.0 मिलियन), फ्रांस (59.2 मि.), इटली (57.8 मिलियन), स्पेन (39.8 मि.), पोलेण्ड (38.8 मि.), नीदरलैण्ड्स (16.0 मि.), बेल्वियम (10.3 मि.), पुर्तगाल 10.0 मि.), आयरलैण्ड (3.8 मि.) तथा लक्समबर्ग (0.4 मि.) में संयुक्त रूप से 378 मिलियन (2001) से अधिक जनसंख्या रहती है। एशियाई जनसंख्या के विपरीत यूरोपीय जनसंख्या का आर्थिक आधार उद्योग है। परिवहन रथ वाणिज्य अधिक विकसित है तथा जीवन स्तर एशियाई जनसंख्या से अधिक ऊँचा है। पश्चिमी यूरोप में जनसंख्या का जमाव ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा, नगरीय क्षेत्रों में अधिक है। यहाँ एशियाई जनसमूह के विपरीत जनसंख्या का प्राय: सर्वत्र समान वितरण मिलता है। 50^0 उत्तरी अक्षांश के साथ ब्रिटेन से खेन तक फैली कोयला पेटी (Coal Belt) को यूरोपीय जनसंख्या की धुरी (Axis of European population) कहते हैं। ग्रेट ब्रिटेन तथा बेल्जियम के कोयला क्षेत्र, फ्रांस के उत्तरी तथा पूर्वी कोयला क्षेत्र तथा जर्मनी का सार (Sarr) कोयला क्षेत्र प्रमुख जनसंकुल क्षेत्र हैं। फ्रांस में राईन नदी की बेसिन भी जनसंख्या की एक सघन पेटी है जो उद्योग तथा कृषि दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। जर्मनी का रूर (Ruhr), यूरोप का विशाल औद्योगिक क्षेत्र होने के साथ–साथ जनबहुल क्षेत्र भी है। इटली का पो बेसिन ग्रामीण तथा नगरीय दोनों प्रकार की जनसंख्या की पेटी है। स्पेन, पुर्तगाल, दक्षिणी फ्रांस तथा इटली के भूमध्यसागरीय तटों एवं नदी घाटियों में जनसंख्या के सघन जमाव मिलते हैं।

तालिका 8.3 : विभिन्न महाद्वीपों में जनसंख्या घनत्व, 2001

महाद्वीप	जनसंख्या (मिलियन)	क्षेत्रफल (मिलियन वर्ग किमी.	जनसंख्या घनत्व (प्रति वर्ग किमी.
एशिया	3720	310	120
यूरोप	583	80	73
अफ्रीका	818	300	27
उत्तरी अमेरिका	491	240	20
दक्षिणी अमेरिका	350	180	19
रूस	144	170	8
आस्ट्रेलिया (ओसानीय)	31	90	3
विश्व	6137	1370	45

4. **आंग्ल अमेरिका का पूर्वी भाग :** उत्तरी अमेरिका का केवल 16 प्रतिशत क्षेत्र ही जनसंकुल है। इसमें संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तरी–पूर्वी भाग (वृहत्तर झीलों के पूर्वी भाग) तथा कनाडा के पूर्वी भाग 300 से 450 उत्तरी अक्षांशों के मध्य स्थित हैं। आंग्ल अमेरिका की 85 प्रतिशत जनसंख्या 1000 पश्चिमी देशांतर के पूर्व में रहती है। यह आंग्ल अमेरिका का सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र है और विश्व का प्रमुख औद्योगिक केंद्र होने के साथ ही विश्व का सर्वाधिक विस्तृत व्यापारिक कृषि प्रदेश भी है। इस प्रदेश में गेहूँ मक्का तथा कपास की प्रमुख कृषि पेटियाँ हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में सर्वाधिक सघन जनसंख्या हडसन नदी के मुहाने पर मिलती है। यह क्षेत्र उत्तर पूर्व में न्यूयॉर्क के बोस्टन तक तथा दक्षिण पश्चिम में फिलाडेल्फिया तक फैला हुआ है। अटलांटिक तट पर बड़े बंदरगाह हैं। यह क्षेत्र कोयला, खनिज व जल विद्युत की प्रचुरता तथा व्यापार, उद्योग व परिवहन की दृष्टि से विकसित है। संयुक्त राज्य अमेरिका में जनसंख्या का दूसरा बड़ा जमाव झीलों के निकटवर्ती प्रदेश में पाया जाता है। यह प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र भी हैं। इसमें मिशीगन झील के दक्षिण–पश्चिमी तट पर जनसंख्या अधिक सघन है। शिकागो तथा मिलवाकी प्रसिद्ध नगर है। आटोरियो झील के दक्षिणी तट पर सारेबूज, राचेस्टर तथा ईरी झील के दक्षिण पश्चिमी तट पर क्लीवलैण्ड, बफैलो तथा डेट्राइट आदि औद्योगिक नगर प्रमुख जनबहुल क्षेत्र हैं। वृहत्तर झीलों के उत्तर में जनसंख्या का तीसरा बड़ा जमाव कनाडा में है, जहाँ कनाडा की 70 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। यहाँ कनाडा के प्रमुख औद्योगिक नगर ओटावा, मांट्रियल, टोरंटो तथा क्यूबेक आदि स्थिति है। कनाडा की गेहूँ की पेटी भी इस क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि में सहायक सिद्ध हुई है।

8.3.2.2 विरल जनसंख्या क्षेत्र (Sparsely Population Area)

1. **ध्रुवीय एवं अतिशीतल प्रदेश :** यह प्रदेश संपूर्ण अंटार्कटिका तथा उत्तरी अमेरिका में

अलास्का से ग्रीनलैण्ड एवं यूरेशिया में नार्वे से कमचटका तक फैला हुआ है। यहाँ शीतकाल बहुत लंबा, कठोर तथा असहनीय है। केवल आर्कटिक टुण्ड्रा में कुछ एस्किमो आखेटक जनजातियाँ रहती है। जिन क्षेत्रों में खनिज उपलब्ध है वहाँ मानव बसाव के क्षेत्र बन गए। संक्रमण, जनसंख्या वृद्धि पर गैलीबेयर (स्वीडन) में लौह अयस्क, यूकन घाटी (कनाडा) तथा फेयर बैंक्स, फोर्ट यूकन पारिस्थितिक नियंत्रण, (अलास्का) में स्वर्ण तथा साइबेरिया एवं एशियाई टुण्ड्रा में स्वर्ण, नमक, पेट्रोलियम तथा कोयले का खनन किया जाता है, परंतु अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन खनन क्षेत्रों को समीपवर्ती विकसित क्षेत्रों पर निर्भर रहना पड़ता है।

2. उष्ण एवं मध्य अक्षांशीय मरूस्थल : मरूस्थलों में जनसंख्या की विरलता का मुख्य कारण जल की कमी अथवा जल की अनुपलब्धता है। सिंधु घाटी, नील घाटी, सोनोरा मरूस्थल (मैक्सिको एवं संयुक्त राज्य अमेरिका) तथा यूरेशिया के कुछ मरूद्यानों को छोडकर शेष सभी उष्णकटिबंधीय मरूस्थल, सहारा, अरब, थार, पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया, कालाहारी, अटाकामा, मैक्सिकन तथा मध्य अक्षांशीय मरूस्थल गोबी (मंगोलिया), सिन्स्पांग (मध्य एशिया) बंजर एवं विरल आबाद क्षेत्र है। अफ्रीका के कालाहारी मरूस्थल में आखेट एवं खाद्य संग्राहक बुशमैन तथा सहारा व अरब के मरूस्थल में घुमक्कड़ बददु जनजातियाँ अल्प संख्या में रहती है। इसी प्रकार मध्य एशिया तथा आस्ट्रेलिया के मरूस्थल की सीमाओं पर भेड–बकरी चराने वाले कुछ मानव समुदाय रहते हैं। मरूस्थलों में जहाँ कहीं खनिज उपलब्ध है, वहाँ नगर बस गए हैं। कालगुर्ली तथा कूलगार्डी (ऑस्ट्रेलिया) तथा क्रिपल क्रीक (संयुक्त राज्य अमेरिका) स्वर्ण खनन पर आधारित मरूस्थलीय नगर हैं। अरब तथा लीबिया के आंतरिक क्षेत्रों में भी पेट्रोलियम की उपलब्धता के कारण कुछ मानव बस्तियाँ स्थापित हो सकी हैं।

3. **विषवत् रेखीय आर्द्रवन :** विषवत्रेखीय प्रदेशों में वर्ष भर ऊंचे तापमान तथा उच्च आर्द्रता एवं वर्षा के कारण घने सदाबहार वन पाये जाते हैं। दक्षिण अमेरिका में अमेजन बेसिन, अफ्रीका में कांगो बेसिन तथा दक्षिण पूर्वी एशिया के द्वीपों (जावा के अतिरिक्त) में इन वनों का विस्तार है। इन वनों में मक्खी, मच्छर, कीट पतंगों की भरमार होती है तथा ये मानव के लिए उपयुक्त नहीं होते। यहाँ फसलें उगाना, पशुपालन या पशुचारण भी कठिन होता है। इन सघन वनों में बाहरी संपर्को से विलग आखेटकों, संग्रहकर्ताओं तथा स्थानांतरी कृषक समुदायों की अल्प संख्या निवास करती है।

4. **उच्च पर्वतीय प्रदेश :** पर्वतों का उच्चावच बहुत विषम होता है, इसलिए पर्वतों पर ऊँचाई के साथ–साथ जनसंख्या विरल होती जाती है। हिमालय, आल्पस, रॉकी तथा एण्डीज पर्वतों के 2500 मीटर के ऊपर के क्षेत्र प्राय: जनविहीन हैं। उच्च अक्षांशीय क्षेत्रों जैसे स्कॉटलैण्ड, वेल्स, नॉर्वे, कनाडा तथा ग्रीनलैण्ड में जनसंख्या अपेक्षाकृत कम ऊँचाई पर ही विरल हो जाती है परन्तु खनिज क्षेत्र अपवादस्वरूप हैं। पीरू तथा बोलिविया (दक्षिणी अमेरिका) में समुद्र तल से 4000 मीटर से भी अधिक ऊँचाई पर मूल्यवान धातुओं का खनन किया जाता है तथा इन खनन केन्द्रों पर पर्याप्त जनसंख्या निवास करती है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों

में जहां निचले क्षेत्रों में जलवायु अनुकूल नहीं होती, वहाँ अधिकांश नगर एंव बस्तियाँ समुद्र तल से 2000 मीटर की ऊंचाई तक विकसित हुई हैं।

8.4 जनसांख्यिकीय संक्रमण (Demographic Transition)

जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्तों में जनसांख्यिकीय संक्रमण सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है, जो जनांकिकी नवीनतम आंकडों पर आधारित है। मूलतः इस सिद्धान्त का प्रतिपादन थाम्पसन (W.S.Thompson, 1929) तथा नोटेस्टीन (F.W. Notestein, 1945) द्वारा किया गया था। यह सिद्धान्त अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में अनुभव की गई जन्मता (Fertility) मर्त्यता (Mortality) की प्रवृत्तियों पर आधारित है। जनसांख्यिकीय संक्रमण के अनुसार आधुनिक विकास की प्रक्रिया में जब ग्रामीण कृषक समाजों का औद्योगिक, नगरीय समाजों में प्रतिस्थापन होता है, तो उसमें उच्च जन्म दर तथा उच्च मृत्यु दर से निम्न जन्म दर तथा निम्न मृत्यु दर के रूप में जनांकिकीय परिवर्तन होते हैं। इस सिद्धान्त की तीन प्रमुख परिकल्पनाएँ हैं –

1. जन्म दरों में कमी आने से पूर्व मृत्यु दरों में कमी आती है।
2. मर्त्यता के अनुसार ही जन्मता घटती है।
3. जनसांख्यिकीय संक्रमण के साथ ही समाज का सामाजिक–आर्थिक रूपान्तरण होता है।

नोटेस्टीन के अनुसार जनसंख्या की दशा, जन्म और मृत्यु दर का प्रतिफल है। किसी भी प्रदेश में जन्म एवम् मृत्यु दर में विषमता के फलस्वरूप उच्च, निम्न अथवा स्थिर जनसंख्या वृद्धि पाई जाती है।

वर्तमान विश्व में विभिन्न देश जनसांख्यिकीय संक्रमण की भिन्न–भिन्न अवस्थाओं से होकर गुजर रहे हैं। **ट्रिवार्था** (Trewartha) के अनुसार इसका कारण मानव की सांस्कृतिक विविधता है, जो भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न जन्मता प्रारूपों का निर्माण करती हैं।

ब्लेकर (C.P. Blacker, 1947) ने जनसांख्यिकीय संक्रमण को विशेषताओं (Rhythmic Characteristics) के आधार पर 5 अवस्थाओं में विभाजित किया है –

(i) उच्च जन्म7मृत्यु दर वाली स्थिर अवस्था

(ii) उच्च जन्म दर किन्तु घटती मृत्यु दर वाली शीघ्र बढ़ने वाली अवस्था

(iii) गिरती जन्म दर और तीव्र गति से घटती मृत्यु दर वाली देर से बढ़ने वाली अवस्था

(iv) निम्न मृत्यु दर से संतुलित निम्न जन्म दर वाली निम्न स्थिरता की अवस्था

(v) निम्न मृत्यु और जन्म तथा जन्म से अधिक मृत्यु वाली हयासोन्दुख अवस्था

चित्र– 8.1 : जनसांख्यिकीय संक्रमण (पीटर हैगेट पर आधारित)

प्रथम अवस्था में जन्मता तथा मर्त्यता 35 प्रति हजार से अधिक होती है, यद्यपि महामारियाँ एवम् मानव जनसंख्या एवं अनिश्चित खाद्य–आपूर्ति के कारण मर्त्यता में काफी उतार–चढ़ाव होते रहते हैं। यह स्थिर एवम् मन्द वृद्धि की अवस्था है, जिसमें जनसंख्या उत्पादन की व्यर्थपूर्ण प्रक्रियाओं में लगी रहती है। यह अवधि मुख्यत: कृषक समाजों में पायी जाती है, जहाँ निम्न अथवा मध्यम जनसंख्या घनत्व मिलते हैं। पारिस्थितिक नियंत्रण, सामान्यत: उत्पादकता नीची रहती है बड़े परिवार होते हैं तथा जीवन प्रत्याशा कम होती है बहुसंख्य साक्षरता एवम् तकनीकी ज्ञान का अभाव होता है तथा कृषिगत एवम् नगरीय विकास अत्यंत सीमित होता है। लगभग 200 वर्ष पूर्व विश्व के सभी देश जनसांख्यिकीय संक्रमण की इसी अवस्था में थे। जन्मता एवम् मर्त्यता के पर्याप्त एवम् प्रमाणिक आंकड़ों के अभाव में वर्तमान विश्व में ऐसे विरल क्षेत्रों की पहचान सुनिश्चित करना कठिन है। साथ ही आधुनिक तकनीकी, विशेषकर चिकित्सा विज्ञान के प्रसार के कारण विश्व का कोई भी भाग मृत्यु दरों में गिरावट से अछूता नहीं रहा है। अत: इस अवस्था को पूर्व–ओद्योगिक एवम् पूर्व–आधुनिक अवस्था भी कहते हैं।

जनसांख्यिकीय संक्रमण की द्वितीय अवस्था में उच्च, किन्तु गिरती हुई जन्म दरें (30 प्रति हजार से अधिक) तथा तेजी से घटती हुई मृत्यु दरें (15 प्रति हजार से अधिक) पायी जाती है। स्वास्थ्य एवम् चिकित्सा की दशाओं में सुधार के कारण मृत्यु दरों में तेजी से गिरावट आती है, किन्तु जन्म दरें ऊँची बनी रहती हैं। इस कारण कुल जनसंख्या में निरन्तर बढ़ती दर से तीव्र वृद्धि होने लगती है। जीवन प्रत्याशा बढ़ने लगती है। औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रियाएं महत्वपूर्ण हो जाती है। विश्व के अधिकांश कम विकसित देश जनसांख्यिकीय संक्रमण की इस विस्फोटक अवस्था से गुजर रहे हैं।

तृतीय अवस्था में जन्म दरों में गिरावट आने लगती है, जबकि मृत्यु दरें तेजी से कम होने लगती हैं। जिसके कारण कुल जनसंख्या की वृद्धि दर में कमी आने लगती है। छोटे परिवार विकसित होने लगते है। आर्थिक विकास की प्रक्रियाएं गति पकड़ने लगती हैं। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, केन्या तथा इण्डोनेशिया इस अवस्था से गुजर रहे हैं। जहां जन्म दरों में धीरे–धीरे कमी आ रही है, परन्तु मर्त्यता में तीव्र गिरावट के कारण ऊंची जनसंख्या वृद्धि बनी हुई है।

जनसांख्यिकीय संक्रमण की चतुर्थ अवस्था में जन्म एवम् मृत्यु दरें पर्याप्त घट जाती है और जनसंख्या प्राय: स्थिर हो जाती है। इस अवस्था में उच्च औद्योगिकरण एवम् नगरीकरण होता है । साक्षरता, शिक्षा एवम् तकनीकी ज्ञान का स्तर ऊँचा होता है। छोटे परिवारों का आकर्षण तथा उच्च श्रेणी का श्रम विभाजन होता है। आंग्ल अमेरिका, पश्चिमी यूरोपीय देश, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, सिंगापुर तथा जापान जनसांख्यिकीय संक्रमण की इस अवस्था में पहुँच गये हैं।

जनसांख्यिकीय संक्रमण की पंचम अवस्था कतिपय यूरोपीय देशों में अनुभव की जा रही हैं, जहाँ कई देशों में जन्म दर जनसंख्या की प्रतिस्थापन दरों से भी नीचे चली गई है और ऋणात्मक जनसंख्या वृद्धि अंकित की जा रही है।

जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धान्त को यद्यपि व्यापक मान्यता मिली है, परन्तु कई बिन्दुओं पर इसकी आलोचना भी होती है। लॉश्की (Loschky) तथा विलकोस (Wildcose) के अनुसार यह

सिद्धान्त न तो पूर्वानुमानपरक (Predicative) है और न ही इसकी अवस्थाएँ क्रमिक तथा अटल है।

वस्तुत: यह सिद्धान्त विश्व के जनांकिकीय इतिहास का वृहत् सामान्यीकरण करता है तथा विभिन्न देशों में उनके विशेष सामाजिक–आर्थिक संदर्भों में जनसांख्यिकीय संक्रमण की प्रक्रिया को समझने में मदद करता है।

8.5 जनसंख्या वृद्धि पर पारिस्थितिक नियंत्रण (Ecological Checks on Growth of Population)

यद्यपि जनसंख्या वृद्धि एक अनवरत प्रक्रिया है, परन्तु इस असीमित वृद्धि पर पारिस्थितिक नियंत्रण सीमाकारी प्रभाव रखते है। फलस्वरूप विभिन्न सामाजिक–आर्थिक, राजनीतिक एवम् पारिस्थितिकीय समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है, जिनके निराकरण हेतु जनसंख्या समायोजन अनिवार्य हो जाता है, अन्यथा जनसंख्या को प्राकृतिक वातावरण से होने वाले दुष्परिणामों को भुगतना पड़ता है।

चित्र 8.2 में जनसंख्या वृद्धि तथा सीमित वहन् क्षमता से युक्त पर्यावरण के मध्य तीन प्रकार के कल्पित सम्बंधों को प्रदर्शित करते हैं। प्रथम दशा में संतृप्त स्तर (Saturation level) तक पहुँचने के बाद जनसंख्या वृद्धि दर एकाएक घटती है। द्वितीय दशा में संतृप्त स्तर से पहले ही जनसंख्या वृद्धि दर घटने लगती है, जबकि तृतीय दशा में जनसंख्या वृद्धि दर संतृप्त स्तर के ऊपर पहुँचकर खाद्य आपूर्ति की कमी के कारण घटती है एवम् संतृप्त स्तर के ऊपर–नीचे होती रहती है।

8.5.1 माल्थस का जनसंख्या वृद्धि सिद्धांत

अंग्रेज अर्थशास्त्री माल्थस (T.R. Malthus) ने जनसंख्या का जीविकोपार्जन के साधनों के संदर्भ में अध्ययन सन 1798 में प्रस्तुत किया। माल्थस के अनुसार किसी प्रदेश में जीविकोपार्जन के साधनों की तुलना में जनसंख्या अधिक तीव्रता से बढ़ती है। जीविकोपार्जन के साधनों में वृद्धि 1, 2,3,4,5,6,..... की दर से अथवा गणितीय श्रेणी (Arithmatic Progression) से होती है, वहीं दूसरी ओर जनसंख्या में वृद्धि 1,2,4,8,16,32,.....की दर से अर्थात् गुणोत्तर श्रेणी (Geometric Prograssion) में होती है। फलस्वरूप जनसंख्या एवम् संसाधनों में असंतुलन बढ़ता जाता है। इस प्रकार, भविष्य में मनुष्य जीविकोपार्जन के साधन चाहे जितना बढ़ाये, हर दशा में जनसंख्या की वृद्धि अधिक ही रहेगी। परिणामस्वरूप पर्याप्त खाद्य–सामग्री के अभाव में युद्ध, भुखमरी, बीमारी आदि से मृत्युदर अधिक हो जायेगी और जनसंख्या का हास होगा।

माल्थस का सिद्धांत दो मान्यताओं पर आधारित है–

(i) जन्मदर किसी क्षेत्र में मनुष्य की शारीरिक क्षमता पर निर्भर है।

(ii) जीविकोपार्जन के साधनों के उत्पादन में दीर्घकाल तक तीव्र वृद्धि सम्भव नहीं है।

माल्थस के अनुसार जीविकोपार्जन के साधनों के उत्पादन में उत्पत्ति हास नियम (Law of diminishing returns) लागू होता है और श्रम की अतिरिक्त इकाइयों द्वारा एक सीमा के पश्चात् उत्पादन को नहीं बढ़ाया जा सकता। इसके अतिरिक्त उत्पादन वृद्धि के लिये श्रम के साथ –साथ भूमि एवम् पूंजी की आवश्यकता होती है, जिसकी मात्रा सीमित है। अत: विवाह स्थगन तथा नैतिक नियंत्रण आदि निरोधात्मक उपायों (Preventive Checks) द्वारा जनसंख्या नियन्त्रण आवश्यक है, अन्यथा प्राकृतिक नियंत्रण युद्ध, महामारियों, अकाल आदि धनात्मक उपायों (Positive Checks) द्वारा जनसंख्या का विनाश कर देते हैं।

चित्र–8.2 : जनसंख्या वृद्धि पर पारिस्थितिक नियंत्रण

स्रोत : पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी भूगोल, हरिमोहन सक्सेना (पीटर हैगेट पर आधारित)

सिद्धांत के आलोचकों के अनुसार माल्थस की दोनों मान्यताएँ भ्रामक हैं। औद्योगिकरण एवम् चिकित्सा सुविधा के प्रसार के आरंभिक संक्रमण काल के पश्चात् जनसंख्या वृद्धि की तीव्रता कम हो जाती है, जबकि नियोजित भूमि उपयोग एवम् नवीन कृषि तकनीकों के प्रयोग से खाद्यानों के उत्पादन में वृद्धि भी की जा सकती है। विकसित परिवहन तंत्र द्वारा अतिरेक क्षेत्रों (Surplus areas) से अभाव क्षेत्रों (deficit areas) में संसाधन एवम् जनसंख्या का स्थानान्तरण किया जा सकता है।

माल्थस के उत्पादन सम्बन्धी अनुमान भले ही ठीक न रहे हों, परन्तु उनके भौतिक तथ्य सही है । 1948 में आसवार्न तथा वोग्ट ने नव–माल्थस सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इनके अनुसार विश्व में कृषि क्षेत्रों का विस्तार सम्भव नहीं है। कृषि भूमि की उत्पादन क्षमता कम हो रही है। महामारियों पर नियन्त्रण एवम् चिकित्सा सुविधा की वृद्धि से मृत्यु दर में हास हुआ है, परन्तु जन्म दरों में विशेष कमी नहीं हुई है। अत: जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हो रही है। प्रति 25 वर्ष में यह दोगुनी हो जाती है। इस दर से दो शताब्दियों में खाद्य–संसाधन तथा जनसंख्या का अनुपात 9:256 तथा तीन शताब्दियों में 13: 4096 हो जाने को संभावना है। परिणामतः: संसाधन (खाद्य) तथा जनसंख्या के बीच अत्यधिक असंतुलन हो जायेगा।

8.5.2 अनुकूलनतम जनसंख्या (Optimum Population)

माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त के प्रकाशन के पश्चात अनेक अर्थशास्त्रियों ने विचार–विमर्श शुरू कर दिया कि, क्या बढ़ती हुई जनसंख्या सदैव हानिकारक होती है? इसके लिये यह कहा गया कि जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ श्रम में विशिष्टता आती है, जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है। **सिजविक** (Sidwick) ने अपनी पुस्तक (Principles of Political Economy) में उपर्युक्त विचार समुचित ढंग से प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार व्यक्तिगत प्रतिष्ठान में अधिकतम प्रतिफल अथवा लाभ का बिन्दु होता है, ठीक उसी प्रकार राष्ट्रीय अर्थतन्त्र में अधिकतम लाभ का बिन्दु होता है। बाद में केनन (E.Cannen) ने इस सिद्धान्त को क्रमबद्ध एवम् वैज्ञानिक रूप दिया।

अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त की दो मान्यताएं हैं–

1. किसी देश की जनसंख्या वृद्धि में कुल जनसंख्या एवम् कार्यकारी जनसंख्या का अनुपात अपरिवर्तित रहता है, अर्थात् प्रति श्रमिक उत्पादन बढ़ने या घटने पर प्रति व्यक्ति आय में भी उसी अनुपात में परिवर्तन होता है।
2. जब जनसंख्या में वृद्धि होती है तो देश के प्राकृतिक साधन, पूंजी की मात्रा तथा तकनीकी अवस्था अपरिवर्तित रहते हैं।

केनन के अनुसार किसी समय विशेष पर जब श्रम की मात्रा एक निश्चित बिन्दु तक बढ़ाई जाती है, तो तज्जनित प्रतिफल अनुपात से अधिक मात्रा में बढ़ता है। किन्तु यदि श्रम की मात्रा उस बिन्दु से आगे बढ़ाई जाती है तो तज्जनित प्रतिफल अनुपात से कम मात्रा में बढ़ता है। जिस बिन्दु पर श्रम की औसत उत्पादकता में हास होना शुरू हो जाता है, उसी बिन्दु पर देश की प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होती है। यही बिन्दु अधिकतम लाभ का बिन्दु होता है। अत: किसी देश की अनूकूलतम जनसंख्या का तात्पर्य उस जनसंख्या के आकार से है, जो दिये हुए प्राकृतिक साधन, पूंजी और तकनीकी दशाओं से अधिकतम आय प्रदान करता है।

इस सिद्धान्त में दो प्रमुख कमी हैं, प्रथम तो यह कि किसी देश की अनुकूलतम जनसंख्या कभी भी स्थिर नहीं होती तथा द्वितीय यह कि किसी देश की अनुकूलतम जनसंख्या का निर्धारण सरल नहीं है। इस आधार पर अतिरेक तथा अल्प जनसंख्या को भी परिभाषित किया गया है। यदि वास्तविक जनसंख्या, अनुकूलतम जनसंख्या से अधिक बढ़ जाती है, तो वह देश अतिरेक जनसंख्या वाला तथा वास्तविक जनसंख्या अनुकूलतम जनसंख्या से कम है, तो वह देश अल्प जनसंख्या वाला कहा जाता है।

डाल्टन के अनुसार अतिरेक एवम् अल्प जनसंख्या के निर्धारण हेतु निम्नांकित सूत्र उपयुक्त है–

M=Maladjustment (असंतुलन)

$$M = \frac{A-O}{O}$$

A=Actual Population
(वास्तविक जनसंख्या)
O=Optimum Population
(अनुकूलतम जनसंख्या)

अनुकूलतम जनसंख्या की परिभाषा के सन्दर्भ में अर्थशास्त्रियों में प्रबल मतभेद हैं। डाल्टन के अनुसार अनुकूलतम जनसंख्या वह है, जिसमें प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होती है। रॉबिन्स के शब्दों में अनुकूलतम जनसंख्या वह है, जो अधिकतम लाभ/प्रतिफल को सम्भव बनाती है। हिक्स के अनुसार अनुकूलतम जनसंख्या ,जनसंख्या का वह स्तर है, जिस पर प्रति व्यक्ति उत्पादन अधिकतम होता है। **कार सौण्डर्स** का कहना है कि अनुकूलतम जनसंख्या कल्याणकारी होनी चाहिये। **वोल्फ** के शब्दों में अनुकूलतम जनसंख्या वह है, जिससे अधिकतम उत्पादन सम्भव हो। इस प्रकार अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त संसाधनों एवम् जनसंख्या के सम्बन्धों की आर्थिक दृष्टिकोण से व्याख्या करता है तथा अतिरेक जनसंख्या को अव्यावहारिक बताता है।

8.6 नगरीय पारिस्थितिकी (Urban Ecology)

आज विश्व में तेजी से नगरीकरण हो रहा है। सन 1939 में विश्व में दस लाख नगरों (Million Cities) की संख्या 57 थी, जो 1991 में बढ़कर 300 हो गई। इसी प्रकार 1800 ई0 में विश्व की 1.7 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में रहती थी, जो 1900 में 5.5 प्रतिशत, 1975 में 25.8 प्रतिशत तथा 1991 में 40 प्रतिशत हो गई। 1981–91 में नगरीय जनसंख्या में 3.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर्ज की गई और इसके अनुसार 2000 ई. में विश्व में लगभग 50 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या अनुमानित है। विभिन्न देशों में नगरीकरण की मात्रा में अन्तर पाया जाता है। विश्व का सर्वाधिक नगरीकृत उत्तरी यूरोप में, जहाँ बेल्जियम में 97 प्रतिशत नगरीकरण पाया जाता है, वहीं विश्व में न्यूनतम नगरीकृत पूर्वी अफ्रीका के बुरूण्डी तथा रूवाण्डा में 5 प्रतिशत नगरीकरण मिलता है। (1999) भारत में 27.8 प्रतिशत (2001) जनसंख्या नगरीय क्षेत्रों में निवास करती है।

उच्च जनसंख्या घनत्व जन्य, आर्थिक समूहन से प्राप्त लाभों के कारण नगरीकरण का निरन्तर प्रसार हो रहा है। जहाँ एक ओर इसका रोजगार, उत्पादन, आय एवम् बाजार पर सकारात्मक प्रभाव देखा जाता है, वहीं दूसरी ओर नगरीकरण से आवास की कमी, अपर्याप्त जलापूर्ति, गन्दगी एवम् अपशिष्ट निस्तारण, भीड़–भाड़, यातायात अवरूद्धता, वायु, जल व ध्वनि प्रदूषण तथा सामाजिक असुरक्षा आदि कई समस्याएं भी सामने आ रही हैं। नगरीय पर्यावरण की गुणवत्ता में कुल मिलाकर निरन्तर हास हो रहा है। बड़े शहर संतृप्त बिन्दु (Saturation Point) तक पहुँच गये हैं और उनका आधारभूत ढाँचा लगातार बढ़ते जनसंख्या दबाव का सामना नहीं कर पा रहा। नगरों को 'आर्थिक वृद्धि का इंजिन' (Engines of Economic growth) माना जाता है, क्योंकि वे राष्ट्रीय आय में औसतन 60 प्रतिशत का योगदान करते हैं, परन्तु पर्यावरणीय दृष्टि से वे आन्तरिक तौर पर अनुपयुक्त हैं। विकासशील देशों में स्थिति ओर भी अधिक खराब है, जहाँ बड़े नगर बहुत तेजी से वृद्धि कर रहे हैं तथा नगरीय पारिस्थितिकी की सुरक्षा के लिये बहुत थोड़े प्रयास किया जा रहे हैं। यद्यपि कुल विनिवेश का लगभग 80 प्रतिशत नगरीय क्षेत्रों के विकास पर खर्च किया जा रहा है, परन्तु फिर भी यहाँ रहने वाले लोगों की मूलभूत पारिस्थितिक नियंत्रण, नगरीय आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो रही हैं। लगभग 30 प्रतिशत से 60 प्रतिशत जनसंख्या को घुटन भरे घरों एवम् गन्दी बस्तियों (Slums) में रहना

पड़ता है। भारत में 22.5 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या मलीन बस्तियों (Slums) में रहती है (2001)। तथा नगरीय क्षेत्रों में 35 प्रतिशत परिवार एक कमरे में गुजारा करते हैं (2001)। जबकि नगरीय क्षेत्रों में 2 प्रतिशत से अधिक परिवार बिना किसी आवास के रहते हैं (2001)। अत: नगरीकरण, जनसंख्या के लिये चुनौती बनता जा रहा है। नगरीकरण की प्रक्रिया साथ–साथ औद्योगिकरण से नगरीय क्षय, स्थान अभाव मलीन बस्तियों की वृद्धि तथा वायु एवम् जल का अशुद्धीकरण हो रहा है। नगरीय मलीन बस्तियों में लोगों को आश्रय हेतु न्यूनतम जगह, जल की न्यूनतम मात्रा, स्वच्छता एवम् बिजली भी नहीं मिल पा रही है।

अत: नगरीय पारिस्थितिकी की संरक्षा हेतु औद्योगिक ढाँचे के पुनर्निर्माण तथा नवीन तकनीकी विकास की आवश्यकता है। नगरीकरण की प्रक्रिया इस प्रकार व्यवस्थित की जानी चाहिए जिसमें नगरीय क्षेत्रों को प्रदूषण मुक्त एवम् पर्यावरणीय अनुकूल क्षेत्रों के रूप में विकसित किया जाए।

8.7 पर्यावरण एवम् मानवीय स्वास्थ्य (Environment and Human Health)

मानव क्रिया कलाप जनित पर्यावरणीय परिवर्तनों का प्रभाव स्वास्थ्य प्रतिरूपों पर भी पड़ा है। नगरीकरण एवम् औद्योगिकरण द्वारा आर्थिक समृद्धता की अपेक्षा की जाती है, परन्तु साथ ही भीड़–भाड़ तथा दूषित पेयजल के कारण संक्रामक अतिसार एवम् विषाणु जनित क्षय रोग का प्रसार हो रहा है। विश्व में प्रति वर्ष 3 मिलियन से अधिक बच्चों की जल जनित रोगों के कारण मृत्यु हो जाती है, जबकि 2 मिलियन लोग प्रतिवर्ष क्षय रोग से मर जाते हैं। उच्च घनत्व वाले नगरीय यातायात के कारण दमा जैसे श्वसन रोगों का प्रसार हो रहा है। घुटन भरे घरों तथा सार्वजनिक स्थलों, यातायात के साधनों एवम् उद्योगों द्वारा उत्सर्जित धुंए, धुम्रपान तथा अनुपयुक्त चूल्हों के प्रयोग से कई सौ मिलियन लोग फेफडों का कैंसर तथा क्षय रोग जैसे गम्भीर श्वसन रोगों से ग्रसित हो रहे हैं। कृषि में कीटनाशकों के प्रयोग से जहाँ हरित क्रांति के दौरान उत्पादनों में आशातीत वृद्धि हुई है, वहीं ये खेतों में कार्य करने वाले तथा कृषिगत उत्पादनों का उपभोग करने वाले लोगों के स्वास्थ्य को गम्भीर क्षति पहुँचा रहे हैं। सुरक्षा उपायों की अनदेखी के कारण कई मिलियन लोग घरों तथा कार्य स्थलों पर हानिकारक रसायनों के सम्पर्क में आ जाते हैं, जो उनके स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव डालते हैं।

चक्रवात, बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं से प्रति वर्ष विश्व में 80,000 लोग मारे जाते हैं। भारी वर्षा के कारण मलेरिया तथा अतिसार, आंत्रशोथ, पीलिया जैसी संक्रमित जल एवम् भोजन से होने वाली बीमारियां फैल जाती हैं। 1997–98 में अल–निनो प्रभाव के कारण कई देशों में स्वास्थ्य पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। अल–निनो के कारण बाढ़, सूखा तथा बीमारियों में वृद्धि देखी गई। सन् 2003 में उत्तरी मध्य यूरोप में उष्ण लहरों (Heat Waves) के कारण 20,000 लोग मारे गये। ओजोन क्षरण के कारण पराबैंगनी विकिरण की मात्रा बढ़ने से त्वचा के कैंसर का खतरा बढ़ गया है।

आर्थिक विषमता, स्वास्थ्य दशाओं पर गहरा प्रभाव डालती है। निम्न आय वाले देशों में 36 प्रतिशत बच्चे तथा मध्यम आय वाले देशों में 12 प्रतिशत बच्चे कुपोषण से ग्रस्त पाये जाते हैं।

विश्व की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या, मलेरिया संभावित उष्ण व उपोष्ण कटिबन्धीय निर्धनतम देशों में रहती हैं, जहाँ प्रतिवर्ष एक मिलियन लोग मलेरिया के कारण मर जाते हैं। विश्व में लगभग 2.4 बिलियन गरीब लोग अस्वास्थ्यकर दशाओं में रहते हैं।

इस प्रकार आर्थिक विकास के कारण कई दीर्घ कालिक स्वास्थ्य समस्याएँ भी उत्पन्न हो गई हैं। जहाँ बेहतर चिकित्सा सुविधाओं के कारण जीवन प्रत्याशा में वृद्धि, महामारियों की रोकथाम तथा शिशु मृत्यु दरों में कमी आई हैं, वहीं इससे अनियन्त्रित जनसंख्या वृद्धि भी हुई हैं, जिसका पर्यावरण की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। समाज का बेहतर स्वास्थ्य स्तर, बेहतर जीवन दशाओं तथा स्थिर जनसंख्या वृद्धि द्वारा ही सम्भव है।

8.8 भारतीय परिदृश्य (Indian Scenario)

भारत जनसंख्या की दृष्टि से चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा देश है। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 1028 मिलियन है, जो विश्व की कुल जनसंख्या का 16.8 प्रतिशत है। भारत की जनसंख्या 1.9 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर से बढ़ रही है, जबकि विश्व की औसत वार्षिक जनसंख्या वृद्धि दर 1.3 प्रतिशत तथा चीन की 1.25 प्रतिशत ही है। पिछले दो दशकों में (1981–2001) भारत में जनसंख्या वृद्धि दर में गिरावट की प्रवृति देखी जा रही है, जिसका मुख्य कारण शिक्षा, सामाजिक जागरूकता तथा ग्रामीण क्षेत्रों तक चिकित्सा सुविधाओं का प्रसार है। इस अवधि में जन्म दर 34 प्रति हजार (1981) से घटकर 26 प्रति हजार (2001) हो गई है। संयुक्त राष्ट्र संघ के जनसंख्या अनुमानों के अनुसार 2025 तक भारत की जनसंख्या 1330 मिलियन हो जायेगी तथा वार्षिक जनसंख्या वृद्धि 1.5 प्रतिशत के स्तर पर पहुंच जायेगी। भारत के विभिन्न राज्यों में दशकीय जनसंख्या वृद्धि (1991–2001) में पर्याप्त असमानताएं हैं। नागालैण्ड (64.4 प्रतिशत), दादर–नगर हवेली (59.2 प्रतिशत), दमन द्वीप (55.6 प्रतिशत), दिल्ली (46.3 प्रतिशत) तथा चण्डीगढ़ (40.33 प्रतिशत) में जहां 40 प्रतिशत से अधिक दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर्ज की गई, वहीं दूसरी ओर गोवा (14.9 प्रतिशत), आन्ध्र प्रदेश (13.9 प्रतिशत), तमिलनाडु (11.2 प्रतिशत) तथा केरल (9.4 प्रतिशत) में दशकीय जनसंख्या वृद्धि 15 प्रतिशत से भी कम रही।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्राकृतिक, आर्थिक एवम् सांस्कृतिक भिन्नता के कारण जनसंख्या का स्थानिक वितरण समान नहीं है। जिन क्षेत्रों में बेहतर जलवायु, उपजाऊ मिट्टी, पर्याप्त जलापूर्ति, खनिज, यातायात गम्यता एवम् उद्योगों का संकेन्द्रण हैं, वहाँ सघन जनसंख्या पाई जाती है। सतलज–गंगा–ब्रहमपुत्र का मैदान तथा पूर्वी एवम् पश्चिमी तटीय मैदानों में जनसंख्या का घनत्व 500 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. से भी अधिक है। इसके विपरीत कठोर जलवायु, पर्वतीय क्षेत्रों, मरूस्थलों, बंजर क्षेत्रों, घने जंगलों तथा दलदली भागों में विरल जनसंख्या मिलती है। उत्तर प्रदेश, जो भारत के कुल क्षेत्रफल का 7.25 प्रतिशत भाग रखता है, वहाँ देश की 16.2 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। देश के छः राज्य उत्तर प्रदेश, उत्तरा खण्ड, बिहार, महाराष्ट्र,

पश्चिम बंगाल तथा आन्ध्र प्रदेश देश की लगभग आधी जनसंख्या रखते हैं, जबकि इन राज्यों के अन्तर्गत देश का 35 प्रतिशत क्षेत्रफल ही आता है।

2001 की जनगणना के अनुसार भारत में औसत जनसंख्या घनत्व 324 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है। देश के बड़े राज्यों में सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व पश्चिम बंगाल में 903 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी., बिहार में 881 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. तथा केरल में 819 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. पाया जाता है। केन्द्र शासित क्षेत्र दिल्ली में सर्वाधिक 9340 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. तथा चण्डीगढ़ में 7900 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. का जनसंख्या घनत्व मिलता है। भारत में न्यूनतम जनसंख्या घनत्व अरूणाचल प्रदेश में 13 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. तथा मिजोरम में 42 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. दर्ज किया जाता हे।

विगत् दशकों में यद्यपि भारत की जनसंख्या वृद्धि दर में कमी आई है, परन्तु एक बिलियन से बड़े जनसंख्या आधार के कारण, जनसंख्या की निरपेक्ष वृद्धि अभी भी लगभग 20 मिलियन प्रति वर्ष है। इस तीव्र जनसंख्या वृद्धि के परिणाम, आर्थिक तंत्र एवम् प्राकृतिक पर्यावरण पर निम्न रूपों में दिखाई पड़ते हैं–

1. प्रति व्यक्ति कृषि भूमि में गिरावट एवम् कृषि पर भार में वृद्धि,
2. बेरोजगारी तथा भूमिहीन श्रमिकों की संख्या में वृद्धि
3. निर्धनता, निम्न जीवन स्तर एवम् कुपोषण,
4. संसाधनों एवम् सार्वजनिक सेवाओं पर भारी दबाव,
5. ऊर्जा एवम् पेयजल की कमी
6. पर्यावरण अवक्रमण एवम् पारिस्थितिकीय समस्याओं में वृद्धि आदि।

2001 की जनगणना के अनुसार भारत में 286 मिलियन लोग देश के 5161 नगरीय क्षेत्रों में रहते हैं, जो देश की कुल जनसंख्या का 278 प्रतिशत है। भारत में सर्वाधिक नगरीकृत राज्य गोआ (49.8 प्रतिशत), मिजोरम (49.6 प्रतिशत), तमिलनाडु (44.0 प्रतिशत), तथा महाराष्ट्र (42.4 प्रतिशत) है, जबकि सबसे कम नगरीकृत राज्यों में हिमाचल प्रदेश (9.8 प्रतिशत), बिहार (10.1 प्रतिशत), सिक्किम (11.1 प्रतिशत), असम (12.9 प्रतिशत) तथा उड़ीसा (15.0 प्रतिशत) को सम्मिलित किया जाता है।

केन्द्र शासित क्षेत्रों में सर्वाधिक नगरीकरण दिल्ली (93.2 प्रतिशत) तथा चण्डीगढ़ (89.8 प्रतिशत) में मिलता है। देश के पश्चिमी तथा दक्षिणी भागों में अपेक्षाकृत ज्यादा नगरीकरण हुआ है। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में 35 दस लाखी नगर है, जिसमें वृहत्तर मुम्बई 16.37 मिलियन की जनसंख्या वाला देश का सबसे बड़ा नगरीय समूहन है।

भारतीय नगरीकरण निर्वाहक स्तर का है तथा कुछ औद्योगिक केन्द्रों को छोड़कर इनमें तृतीयक व्यवसायों (सेवा) की प्रधानता है। भारत में नगरीय क्षेत्रों की प्रमुख समस्याएं निम्न प्रकार हैं–

1. स्थानाभाव तथा रिहायशी मकानों की कमी
2. सामाजिक सुविधाओं का अभाव
3. यातायात का उच्च घनत्व

4. अपर्याप्त जलापूर्ति
5. ऊर्जा की कमी
6. पर्यावरणीय प्रदूषण।
7. बेरोजगारी एवम् सामाजिक तनाव
8. अपराधों में वृद्धि
9. मलीन बस्तियों का विकास
10. नगरीय अपशिष्ट
11. नियोजित विकास का अभाव

आर्थिक उदारीकरण के कारण भारत के नगरीय क्षेत्रों में संरचनात्मक परिवर्तन हो रहे हैं और नये आर्थिक प्रतिरूप विकसित हो रहे हैं। ऐसे में, जहाँ एक ओर नगरीय क्षेत्रों को तीव्र जनसंख्या वृद्धि एवम् नगरीकरण का सामना करना है, वहीं नगरों का दूरगामी नियोजन तथा कुशल प्रशासन भी जरूरी है।

बोध प्रश्न–1

1. सन 2001 में विश्व की कुल जनसंख्या कितनी थी?

   .....

   .....

2. सन 2001 में सर्वाधिक वार्षिक जनसंख्या वृद्धि दर किन महाद्वीपों में अंकित की गई?

   .....

   .....

3. संयुक्त राष्ट्र संघ के जनसंख्या अनुमानों के अनुसार किन दो देशों की जनसंख्या 500 वर्षो में भी दो गुनी नहीं हो पायेगी?

   .....

   .....

4. सन 2001 में ऋणात्मक जनसंख्या वृद्धि किस महाद्वीप में अंकित की गई?

   .....

   .....

5. स्ट्राजेव्स्की के अनुसार विश्व की कितनी प्रतिशत जनसंख्या समुद्र तल से 200 मीटर की ऊंचाई तक निवास करती है?

   .....

   .....

6. जनसंख्या संक्रमण सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया?

   .....

   .....

7. माल्थस ने जनसंख्या वृद्धि का सिद्धान्त कब प्रस्तुत किया?

.....

.....

8. अनुकूलतम जनसंख्या सम्बंधी विचारो के प्रस्तुतीकरण हेतु सिजविक द्वारा लिखित पुस्तक का नाम बताइये।

.....

.....

9. सन 2001 में भारत में मलीन बस्तियों में रहने वाली नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत कितना था?

.....

.....

10. वर्ष 2003 में उत्तरी मध्य यूरोप में 20,000 लोगों की मृत्यु किस प्राकृतिक परिघटना के कारण हुई?

.....

.....

11. विश्व में प्रति वर्ष जल जनित रोगों से मरने वाले बच्चों की संख्या कितनी हैं?

.....

.....

12. भारतीय जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर बताइये।

.....

.....

13. भारत में किन छः राज्यों में देश की लगभग आधी जनसंख्या निवास करती है?

.....

.....

14. 1991–2001 की अवधि में निम्नतम दशकीय जनसंख्या वृद्धि किस राज्य में दर्ज की गई?

.....

.....

15. सन 2001 में केन्द्र शासित क्षेत्र दिल्ली में जनसंख्या घनत्व कितना था?

.....

.....

16. सन 2001 में भारत में नगरीय जनसंख्या की प्रतिशत मात्रा कितनी थी?

.....

.....

8.9 सारांश (Summary)

मानव जनसंख्या एवम् पर्यावरण के मध्य घनिष्ठ कार्य–कारण सम्बंध पाये जाते हैं। विश्व के विभिन्न भागों में मानव समुदायों ने अपने प्राकृतिक पर्यावरण के साथ समायोजन के द्वारा सांस्कृतिक प्रतिरूपों का निर्माण किया है। ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में आर्थिक एवम् तकनीकी क्षमताओं में उत्तरोत्तर वृद्धि के फलस्वरूप मानव, प्राकृतिक प्रतिकूलताओं का बेहतर ढंग से सामना कर सकता है, परन्तु विश्व जनसंख्या वृद्धि एवम् वितरण प्रारूपों के विश्लेषण से स्वत: स्पष्ट है कि विश्व के जिन क्षेत्रों में प्राकृतिक अनुकूलताएं हैं, उन्हीं क्षेत्रों में व्यापक सांस्कृतिक रूपान्तरण एवम् सघन जनसंख्या का बसाव हुआ है।

विगत शताब्दियों में चिकित्सा क्रांति एवम् आर्थिक सम्भावनाओं की अभूतपूर्व वृद्धि के कारण विश्व में तीव्र जनसंख्या वृद्धि हुई है। जनसंख्या के बढ़ते दबाव के कारण अधिसंख्य क्षेत्रों में मानव जनसंख्या एवम् पर्यावरण का सामंजस्य बिगड़ रहा है और संसाधन असंतुलन एवम् तज्जनित समस्याएं खड़ी हो रही है। 'क्लब ऑफ रोम' (Club of Rome) का कहना है कि पृथ्वी एक अन्तरिक्ष यान की तरह है, जिस पर लदे संसाधन एक दिन स्वत: समाप्त हो जायेंगे। अत: यदि मनुष्य ने संसाधनों का उचित उपयोग नहीं किया तो उनका विनाश अवश्यम्भावी है। माल्थस का जनसंख्या वृद्धि सिद्धान्त तथा नव माल्थस सिद्धान्त, जहाँ जनसंख्या वृद्धि तथा संसाधन विकास की प्रकृति में मात्रात्मक विभेद के कारण अतिरेक जनसंख्या वृद्धि के गम्भीर परिणामों का विश्लेषण करते हैं, वहीं अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त, यद्यपि सभी स्थितियों में जनसंख्या वृद्धि को बुरा नहीं मानता, परन्तु अतिरेक जनसंख्या को आर्थिक उत्पादनों की दृष्टि से हानिकारक मानता है। जनसंख्या संक्रमण सिद्धान्त विगत शताब्दियों के अनुभव के आधार पर आगामी समय में विश्व के विभिन्न देशों में जनसंख्या परिवर्तनों को समझने में सहायता करता है। यद्यपि तीव्र जनसंख्या वृद्धि के रोकने के लिये शून्य जनसंख्या वृद्धि की अवधारणा काफी आकर्षक है, परन्तु सभी अनुमानों के अनुसार विभिन्न देशों के जनसंख्या पिरामिड की संरचना तथा राजनीतिक विषमता के कारण जनसंख्या वृद्धि दर को निकट भविष्य में प्रभावी ढंग से घटा पाना सम्भव नहीं लगता।

आप विश्व में नगरीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप जनसंख्या का आर्थिक समूहन हो रहा है। नगरीय क्षेत्र उद्योग, व्यापार, परिवहन, रोजगार एवम् आय के बड़े केन्द्रों के रूप में विकसित हो रहे हैं, परन्तु तीव्र जनसंख्या वृद्धि एवम् संरचनात्मक दोषों के कारण नगरीय पारिस्थितिकी का ह्रास हो रहा है और नगर, प्रदूषण, आधारभूत चीजों की अनुपलब्धता एवम् अस्वास्थ्यकर दशाओं से ग्रसित हैं। अत: नगरीकरण की प्रक्रिया पर बेहतर निगरानी एवम् नगरीय क्षेत्रों में कुशल पर्यावरण प्रबन्धन की आवश्यकता है।

मानव स्वास्थ्य एवम् पर्यावरण का गहरा सम्बन्ध है, जहां एक ओर विश्व के निर्धन, कम विकसित देशों में पोषण एवम् स्वास्थ्य दशाओं को सुधारने की आवश्यकता है, वहीं दूसरी ओर सम्पन्न देशों में आर्थिक–औद्योगिक क्रियाओं की बहुलता के कारण पर्यावरण प्रदूषण, जनसंकुलता एवम् अस्वास्थ्यकर दशाओं का निर्माण हो रहा है। तीव्र गतिशीलता के कारण सिकुड़ती हुई दुनिया में पिछले कुछ वर्षो में इनफ्लुएंजा तथा दूसरी संक्रामक बीमारियों का एक

क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में प्रसारण देखा गया है। यद्यपि आधुनिक चिकित्सा तंत्र ने बड़ी तत्परता से इसका सामना किया है, फिर भी मानवीय स्वास्थ्य की दृष्टि से विकास की प्रक्रिया एवम् पर्यावरण के बीच बेहतर तालमेल जरूरी है।

भारत में यद्यपि पिछले दो दशकों में जनसंख्या वृद्धि की दर में कमी आने से नई आशाओं का संचार हुआ है, परन्तु बड़े जनसंख्या आधार के दबाव एवम् ढांचागत समस्याओं के कारण आर्थिक विकास का असर बहुसंख्य लोगों में उभर कर नहीं आ पाता और गहरी सामाजिक–आर्थिक विषमताओं का निर्माण करता है। भारत में नगरीकरण, स्वास्थ्य दशाओं तथा पर्यावरण एवम् जीवन की गुणवत्ता में सुधार की काफी सम्भावनाएं हैं।

8.10 शब्दावली (Glossary)

- **जनसंख्या घनत्व :** किसी प्रदेश की जनसंख्या तथा कुल क्षेत्रफल का पारस्परिक अनुपात
- **नगरीकरण :** नगरों में जन बसाव होना, नगरों का क्षेत्रीय विस्तार होना अथवा नगरीय प्रवृतियों में वृद्धि होना
- **जनांकिकी :** जनसंख्या सम्बंधी आंकडों के विश्लेषण का विज्ञान
- **अप्रवास :** किसी क्षेत्र में जनसंख्या का आकार बस जाना
- **उत्प्रवास :** किसी क्षेत्र से जनसंख्या का अन्यत्र चले जाना
- **'मिलीयन सिटी' :** नगरीय क्षेत्र, जिसकी जनसंख्या दस लाख या अधिक हो
- **जनसंख्या पिरामिड :** किसी देश अथवा प्रदेश की जनसंख्या को लिंग एवम् आयु वर्गों के अनुसार दर्शाने वाला आरेख
- **जनसंख्या वृद्धि दर :** किसी क्षेत्र में इकाई समय में जनसंख्या परिवर्तन की प्रतिशत मात्रा
- **जीवन प्रत्याशा :** किसी क्षेत्र में लोगों के जीवित रहने के औसत वर्षो की संख्या

8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ (Refference Books)

1. Erach, Bharucha : **Environmental Studies,** University Press, Hyderabad, 2006.
2. चान्दना, आर.सी. : **जनसंख्या भूगोल,** कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना
3. दुबे एवम् सिंह : **जनसंख्या भूगोल,** रावत पब्लिकेशनस्, जयपुर
4. Hussain, Majid : **Geography of Indi,** Tata McGraw, New Delhi, 2008.
5. Hussain, majid : **Human geography,** Rawat publication, Jaipur, 2006.
6. कौशिक, गर्ग **संसाधन एवम् पर्यावरण,** रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2000
7. कौशिक, शर्मा : **मानव भूगोल,** रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2006
8. Mandal, R.B. : **Urban Geography,** Concept Publication Company, New Delhi
9. नेगी, पी.एस : **पारिस्थितिकी एवम् पर्यावरण भूगोल,** रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2004
10. Saxena, H.M. : **Environmental Geography,** Rawat Publications, Jaipur,

2000

11. सक्सेना, हरिमोहन : **पर्यावरण एवम् पारिस्थितिकी भूगोल,** राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2002

8.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. मिलियन
2. अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया (ओसानिया)
3. रूस तथा जर्मनी
4. यूरोप
5. प्रतिशत
6. थाम्पसन तथा नोटेस्टीन ने
7. 1798 में
8. Principles of Political Economy
9. 22.5 प्रतिशत
10. Heat Waves के कारण
11. मिलियन से अधिक
12. 1.9 प्रतिशत
13. उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल तथा आन्ध्र प्रदेश
14. केरल (9.4 प्रतिशत)
15. व्यक्ति प्रति वर्ग किमी.
16. 27.8 प्रतिशत

8.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विश्व में जनसंख्या वृद्धि का कालिक (Temporal) तथा स्थानिक (Spatial) विश्लेषण प्रस्तुत कीजिए।
2. विश्व में तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारणों की समीक्षा कीजिए।
3. विश्व के जन बहुल एवम् विरल जनसंख्या क्षेत्रों का वर्णन करते हुए मानव जनसंख्या के वितरण पर पर्यावरण के प्रभाव की व्याख्या कीजिए।
4. विश्व के विभिन्न भागों में जनसंख्या घनत्व के वितरण को समझाइये।
5. जनसांख्यिकीय संक्रमण की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए, इसकी विभिन्न अवस्थाओं की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
6. 'जनसंख्या वृद्धि पर पारिस्थितिकी नियंत्रण' विषय पर एक लेख लिखिए।
7. जनसंख्या एवम् प्राकृतिक संसाधनों के अन्तर्सम्बन्धों को स्पष्ट करते हुए माल्थस के जनसंख्या वृद्धि सिद्धान्त एवम् अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त पर प्रकाश डालिए।

8. तीव्र जनसंख्या वृद्धि एवम् आधुनिक विकास के कारण नगरीय पारिस्थितिकी ह्रास को समझाइये।
9. विकासशील एवम् विकसित देशों में मानव स्वास्थ्य सम्बन्धी दशाओं की समीक्षा कीजिए।
10. भारतीय जनसंख्या परिदृश्य पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई 9 : प्राकृतिक संसाधन एवम् उनका संरक्षण (Natural Resource and their Conservation)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 संसाधन : अर्थ एवं प्रकृति

9.3 प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण

9.4 संसाधन संरक्षण की अवधारणा

9.5 प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण

9.5.1 वन्य संसाधनों का संरक्षण

9.5.1.1 वन संरक्षण

9.5.1.2 वन्य जीवों का संरक्षण

9.5.1.3 जैव विविधता का संरक्षण

9.5.2 मृदा संरक्षण

9.5.3 जल संरक्षण

9.5.4 खनिज संसाधनों का संरक्षण

9.5.5 ऊर्जा संसाधनों का संरक्षण

9.5.5.1 कोयला संरक्षण

9.5.5.2 खनिज तेल (पेट्रोलियम) का संरक्षण

9.6 सारांश

9.7 शब्दावली

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

9.0 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य है –

(i) संसाधनों के अर्थ एवम् प्रकृति का विश्लेषण करना,

(ii) प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण प्रस्तुत करना,

(iii) संसाधन संरक्षण की अवधारणा एवम् आवश्यकता को स्पष्ट करना,

(iv) प्रमुख प्राकृतिक संसाधनों की उपयोगिता, ह्रास एवम् उसके परिणाम तथा संरक्षण के

(v) उपायों की जानकारी प्रदान करना।

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव जीवन का अस्तित्व, विकास की प्रक्रिया तथा सम्पूर्ण अर्थतन्त्र संसाधनों पर निर्भर है। किसी भी देश अथवा प्रदेश के आर्थिक विकास के स्तर के निर्धारण में संसाधनों, विशेषकर प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता एवम् बहुलता महत्वपूर्ण भूमिका रखती है। प्रकृति ने वायु, जल, उष्मा, प्राकृतिक वनस्पति, मिट्टी, वन्य जीव, धातु, जीवाश्म ईंधन आदि के रूप में विपुल प्राकृतिक संसाधन प्रदान किये हैं तथा अपने तकनीकी कौशल एवम् ज्ञान के बल पर मानव, सभ्यता के आरम्भिक काल से इन संसाधनों का किसी न किसी रूप में उपयोग करता रहा है। प्रकृति में इन असंख्य पदार्थों व ऊर्जा का भण्डारण उदासीन तत्वों (Neutral stuffs) के रूप में होता है, जिन्हें मानव अपने सांस्कृतिक कौशल के संयोग से उपयोगिता प्राप्त कर, संसाधनों में परिवर्तित कर देता है। इस प्रकार विभिन्न देश–काल में मानव समुदायों की बौद्धिक एवम् सांस्कृतिक क्षमता के आधार पर संसाधनों का स्वरूप निर्धारित होता है।

प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग की प्रक्रिया में मानव प्राय: उनकी उपलब्धता का दुरूपयोग करता है और पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करता है। आरम्भ में इस पक्ष की ओर मानव द्वारा समुचित ध्यान नहीं दिया गया और परिणामस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का अनियोजित शोषण किया गया । परन्तु शीघ्र ही यह अनुभव किया जाने लगा कि उपर्युक्त संसाधन असीमित नहीं है और यदि इनका समुचित उपयोग नहीं किया गया तो वह दिन दूर नहीं रहेगा, जब प्राकृतिक संसाधनों की कमी हो जायेगी और पारिस्थितिकी संकट उत्पन्न हो जायेंगे। भविष्य के प्रति ऐसी विषम संभावनाओं के कारण ही संरक्षण की अवधारणा का विकास हुआ, ताकि प्राकृतिक संसाधनों को दीर्घकाल तक प्रयोजनीय बनाये रखा जा सके और विकास की प्रक्रिया अबाधित चलती रहे।

9.2 संसाधन : अर्थ एवम् प्रकृति (Resources : Meaning and Nature)

जिम्मरमैन (Zimmerman, 1951) ने संसाधनों का अर्थ स्पष्ट करते हुए, तीन तत्वों को महत्व दिया है–

(i) जिनकी सहायता अथवा आपूर्ति पर कोई आश्रित हो

(ii) दिये गये लक्ष्यों को प्राप्त करने के साधन

(iii) अवसरों से लाभ उठाने अथवा कठिनाइयों से मुक्त होने की क्षमता

सामान्य शब्दों में मानव की आवश्यकता पूर्ति के लिए जिन पदार्थों, ऊर्जा, उपायों अथवा प्रणालियों का उपयोग किया जाता है, उन्हें संसाधन कहते हैं।

जिम्मरमैन ने अपनी पुस्तक **'World Resources and Industries'** में लिखा है –

“the word ‘resource’ does not refer to a thing or substance but to a function which a thing or a substance may perform or to an operation in which it may take part.”

अर्थात् 'संसाधन शब्द का आशय किसी वस्तु या तत्व से नहीं है, वरन् किसी वस्तु या तत्व द्वारा किये गये कार्य (function) अथवा संक्रिया (operation), जिसमें वह भाग लेता है, से है। 'दूसरे शब्दों में संसाधन (शब्द) वह संक्षिप्तीकरण है, जो मानव द्वारा गुण अभिमूल्यन को प्रकट करता है और किसी कार्य या संक्रिया से सम्बन्धित होता है।

संसाधन का अस्तित्व (Existence) मूल्यांकन करने वाले (व्यक्ति या समूह) पर निर्भर करता है । कोई भी वस्तु मानव की आवश्यकता पूर्ति के लिए प्रयोग किए जाने के कार्य द्वारा संसाधन बन जाती है। इस प्रकार संसाधन बनने के लिए किसी वस्तु में दो गुण होना आवश्यक है–

(i) उपयोगिता (Utility)

(ii) कार्यात्मकता (Functionability) या कार्य करने की योग्यता

संसाधन, मानव के लिए कार्यात्मक, अर्थात् कार्य करने की क्षमता रखते हैं। कोई भी वह परिघटना, जो मानवीय इच्छाओं की संतुष्टि कर सकती है तथा मानवीय कल्याण प्रदान करती है, कार्यात्मक होती है और संसाधन कहलाती है। संसाधनों को यह कार्यात्मकता मानव ने प्रदान की है, क्योंकि जब मानव ने इनकी उपयोगिता को पहचान एवम् उस उपयोगिता को प्राप्त करने का तरीका विकसित किया, तब ही ये संसाधन बन सके। इस प्रकार 'संसाधन होते नहीं हैं, अपितु उनका निर्माण किया जाता है या वे मानव प्रयास से बनते हैं।' इस संसाधन कार्यात्मकता में मानवीय ज्ञान और क्षमता के साथ–साथ वृद्धि या विस्तार होता है। अत: संसाधन स्थैतिक नहीं हैं, अपितु विकास की प्रक्रिया में नये संसाधन निर्मित होते हैं, और पुराने संसाधनों की उपयोगिता एवम् कार्यात्मकता में परिवर्तन आता है। संसाधनों के अनुचित प्रयोग से इनमें संकुचन भी होता है तथा प्रतिरोधों (resistance) का विस्तार होता है, जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में 100 मिलियन एकड़ भूमि अनुचित प्रयोग के कारण कृषि के लिए पूर्णत: बेकार हो चुकी है। अत: यह कहा जा सकता है कि पृथ्वी, मानव एवं संस्कृति के योग से संसाधनों का निर्माण अनवरत जारी रहता है।

9.3 प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण (Classification of Natural Resources)

संसाधनों के क्रमबद्ध अध्ययन के लिए विभिन्न वर्गीकरण योजनाएं निरूपित की गई हैं, जो अधिकार क्षेत्र, पुन: पूर्ति, वितरण, उपयोगिता आदि पर आधारित है। प्राकृतिक संसाधनों के अध्ययन की दृष्टि से निम्न वर्गीकरण महत्वपूर्ण हैं–

1. वितरण की दृष्टि से–

(i) सर्वसुलभ संसाधन (Ubiquities): जो पृथ्वी पर सर्वत्र पाये जाते हैं, जैसे वायुमण्डल में नाइट्रोजन, ऑक्सीजन आदि गैसें।

(ii) सामान्य सुलभ संसाधन (Commonalties): जो पृथ्वी पर सामान्यत: पाये जाते हैं, जैसे कृषि उत्पादन योग्य भूमि, मिट्टी, जल आदि।

(iii) विरल संसाधन (Rarities) : जिनकी स्थिति केवल थोड़े से स्थानों पर होती है, जैसे पैट्रोलियम, ताँबा, टिन आदि खनिज पदार्थ।

(iv) एकल संसाधन (Uniquities) : जो पृथ्वी पर एक या दो स्थानों पर उपलब्ध हों, जैसे क्रायोलाइट धातु, जो प्राकृतिक रूप में केवल ग्रीनलैण्ड में मिलती है।

2. प्रयोग की दृष्टि से–

(i) अप्रयुक्त संसाधन (Unused resource): किसी क्षेत्र में स्थित किसी संसाधनका जब तक प्रयोग नहीं किया जाता, तब तक वह अप्रयुक्त संसाधन कहलाता है।

(ii) अप्रयोजनीय संसाधन (Unusable resource): यदि कोई संसाधन वर्तमान तकनीकी के अनुसार प्रयोग नहीं किया जा सकता, तब तक वह अप्रयुक्त संसाधन कहलाता है।

(iii) संभाव्य संसाधन (Potential resources): किसी क्षेत्र के वे संसाधन, जो निकट भविष्य में प्रयोग किए जा सकते हैं, संभाव्य संसाधन कहलाते हैं।

(iv) गुप्त संसाधन (Latent resource): ऐसे बहुत से पदार्थ, जिनका पूरा–पूरा उपयोग मनुष्य को ज्ञात नहीं है, गुप्त संसाधन कहलाते हैं।

3. ओवेन (Owen, 1971) का संसाधन वर्गीकरण

संसाधन प्रकार	**उदाहरण**
(I) अक्षयशील संसाधन (Inexhaustible)	सूर्य प्रकाश, वायु, जल
(i) अपरिवर्तनीय (Immutable)	ज्वार शक्ति
(ii) दुष्प्रयोजनीय (Misusbale)	जल
(II) क्षयशील संसाधन (Exhaustible)	जीवाश्म ईंधन, खनि
(i) परिरक्षणीय (Maintainable)	वन, वन्य जीवन, उर्वरता
(a) पुनर्नवीनीकरणीय (Renewable)	पादप, जन्तु, मिट्टी की उर्वरता
(b) अनवीकरणीय (Non renewable)	वन्य जीवन
(i) अपरिरक्षणीय (Non maintainable)	अधिकांश खनिज
(a) पुन: प्रयोज्य (Reusable)	मूल्यवान पत्थर, हीरे, जवाहरात
(b) पुन: अप्रयोजनीय (Non Reusable)	कोयला, पैट्रोल, गैस

9.4 संसाधन संरक्षण की अवधारणा (Concept of Resource Conservation)

मानव आदि काल से ही प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग एवम् उपभोग करता रहा है, परन्तु विशेषत: 18 वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति (Industrial revolution) के परिणामस्वरूप बडे. पैमाने पर आर्थिक उत्पादनों के लिए प्राकृतिक संसाधनों के शोषण में भारी वृद्धि हुई। 20 वीं शताब्दी के आरम्भ तक यह सामान्य धारणा थी कि पृथ्वी पर प्राकृतिक संसाधनों की अपरिमित मात्रा उपलब्ध है। यद्यपि कुछ सामाजिक वैज्ञानिक आज भी मानव ज्ञान एवम् कौशल के परिपेक्ष्य में इस धारणा को सही मानते हैं, परन्तु कालान्तर में प्राकृतिक संसाधनों की

विशालता का विचार क्रमश: बदलने लगा। लिओनर्ड जोबलर के अनुसार संसाधनों के प्रति मानव के दृष्टिकोण में परिवर्तन के निम्नलिखित कारण रहे–

(i) मिट्टी का गम्भीर अपरदन,

(ii) बाढ़ों द्वारा अपार हानि,

(iii) दो महायुद्धों के दौरान कच्चे पदार्थों (Raw Materials) का बड़ी मात्रा में विदोहन,

(iv) संसार के समस्त भागों की खोज, पूर्ण होना,

(v) विश्व की जनसंख्या में तीव्र वृद्धि,

(vi) मानव के जीवन स्तर में सुधार,

(vii) युद्ध एवम् उथल पुथल के कारण कच्चे पदार्थों की आत्मनिर्भरता पर बल दिया जाना।

जोबलर ने प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग की निम्न अवस्थाएं मानी हैं :–

1. **न्यूनता की अवस्था** (Stage of Scarcity): प्राचीन काल में ज्ञान के अभाव में प्राकृतिक संसाधन विरल थे तथा विदोहन की तकनीकी ज्ञात न होने के कारण उनका उत्पादन काफी कम था।
2. **अधिकता की अवस्था** (Stage of abundance): औद्योगिक क्रान्ति से लेकर 1950 तक यह अवस्था थी। नवीन संसाधनों का विकास हुआ।
3. **बदलती हुई अधिकता की अवस्था (Stage of changing abundance):** 1950 के आसपास संसाधनों की प्रचुरता के साथ ही कच्चे माल की असीमित माँग के कारण श्रम व पूंजी की खपत पर अधिक बल दिया जाने लगा।
4. **भविष्य में कमी की अवस्था (Stage of future scarcity) :** आधुनिक युग में प्राकृतिक संसाधनों की उत्तरोत्तर कमी आंकी जा रही है।

वस्तुत : भविष्य में प्राकृतिक संसाधनों के समाप्त अथवा अप्रयोजनीय हो जाने की आशंका के कारण ही संरक्षण की अवधारणा का उदय हुआ। संरक्षण (Conservation) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1907 में अमेरिकी वन अधिकारी गिफोर्ड पिन्वोट द्वारा किया गया। संरक्षण की परिभाषा, प्राकृतिक संसाधनों के दक्षतम एवम् हितकारी उपयोग के रूप में की जाती है। ऐली (Ely) के अनुसार “Conservation means a sacrifice of the present generation to future generation.” अर्थात् 'संरक्षण का तात्पर्य वर्तमान पीढ़ी द्वारा भविष्य की पीढ़ियों के लिए त्याग है।'

जिम्मरमैन ने एल.सी.ग्रे (L.C. Gray) को उद्धत करते हुए लिखा है –

“लाभ प्राप्त करने के उत्तर कालीन स्वीकृत उद्देश्यों के लिए उपभोग की वर्तमान दर को कम करने की कोई भी विधि संरक्षण कही जा सकती है।"

पार्किन्स के अनुसार– "संरक्षण हमारे संसाधनों के प्रयोग द्वारा अधिकतम लाभ प्राप्त करके, समाज की सुरक्षा की खोज है, इसमें चल सम्पत्ति के निर्माण, रक्षा के प्रयत्नों, अधिक प्रभावशाली विधियों की खोज, तुरन्त रोजगार तथा संसाधनों के नवीनीकरण को पूर्ववत् बनाए रखना सम्मिलित है।"

मैकनॉल के अनुसार संरक्षण की तीन प्रमुख विशेषताएँ हैं–

(i) संरक्षण एक बचत् प्रक्रिया है।

(ii) संरक्षण से आशय संसाधनों की बर्बादी रोकने से है।

(iii) संरक्षण से आशय संसाधनों के विवेकपूर्ण प्रयोग से है।

अत: स्पष्ट है कि संसाधनों का उचित एवम् नियोजित उपयोग ही संरक्षण है।

संरक्षण का प्रमुख उद्देश्य प्रकृति में हस्तक्षेप के कारण उत्पन्न क्षतिकारक परिघटनाओं को खोजना तथा उन्हें निष्प्रभावित या क्षीण करना है, ताकि आने वाली पीढ़ियों के लिए, बिना किसी आर्थिक कटौती के प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम परिरक्षण सुनिश्चित हो सके। संरक्षण के उद्देश्यों को निम्न प्रकार रखा जा सकता है –

(i) पर्यावरण के प्रदूषण को रोकना, जिससे मानव स्वास्थ्य की सुरक्षा की जा सके।

(ii) प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण प्रयोग (rational use) का विकास करना, ताकि वे संसाधन दीर्घकाल तक प्राप्त होते रहें।

(iii) निश्चित क्षेत्रों में कुछ आर्थिक क्रियाओं को रोकना

9.5 प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण (Conservation of Natural Resources)

9.5.1.1 वन्य संसाधनों का संरक्षण

वन्य संसाधनों के संरक्षण के अन्तर्गत वन संरक्षण, वन्य जीवों का संरक्षण, जैव विविधता का संरक्षण एवम् सम्बंधित उत्पादों एवम् क्रियाओं के संरक्षण को सम्मिलित किया जाता है।

9.5.1.1 वन संरक्षण (Forest conservation)

वन प्रकृति प्रदत्त संपदा है, जो एक ओर मानव के अनेक उपयोग में आते हैं तो दूसरी ओर पर्यावरण के सन्तुलन को बनाये रखने में सहायक होते हैं। वनों से अनेक प्रकार की उपयोगी वस्तुएं प्राप्त होती हैं। साथ ही ये अनेक जीव–जन्तुओं के आश्रय स्थल भी हैं। विश्व के अनेक उद्योगों को वनों से कच्चा माल प्राप्त होता है। वनों के उत्पादों की मांग में निरन्तर वृद्धि हो रही है, परन्तु अनियोजित शोषण के कारण विश्व की वन सम्पदा में निरन्तर कमी आ रही है। वर्तमान में विश्व के मात्र 16 प्रतिशत भू–भाग अर्थात् लगभग 2 अरब हेक्टेयर भूमि पर ही वन रह गये हैं। वनों के विनाश के लिये उत्तरदायी प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैं –

1. कृषि विस्तार हेतु वनोन्मूलन,
2. निर्माण कार्यों हेतु वनोन्मूलन,
3. औद्योगिक उत्पादनों हेतु अत्यधिक शोषण,
4. उर्जा (विशेषकर ईंधन) के लिए वनों का शोषण,
5. काष्ठ प्राप्ति एवं खनन हेतु वनोन्मूलन,
6. अनियंत्रित पशुचारण द्वारा वन विनाश,
7. प्राकृतिक कारणों जैसे अग्नि, दीमक आदि के कारण वन विनाश।

वनों के विनाश से होने वाली हानियाँ निम्न प्रकार हैं –

1. पारिस्थितिक असन्तुलन उत्पन्न होना,
2. वायुमण्डल में नमी धारण करने की क्षमता में कमी,
3. तापमान में वृद्धि,
4. वर्षा की कमी,
5. मृदा अपरदन में वृद्धि
6. बाढ़ के प्रकोप में वृद्धि,
7. पर्यावरण प्रदूषण में वृद्धि,
8. भूमि की उर्वरता में कमी,
9. वन्य जीव–जन्तुओं की प्रजातियों का विलोपन,
10. वनोत्पादों की उपलब्धता में कमी।

उपर्युक्त हानियों को दृष्टिगत रखते हुए आज विश्व के सभी देश वन संरक्षण (Forest Conservation) की ओर प्रयत्नशील हैं। वन संरक्षण के लिये नियोजित प्रयास न केवल सरकारी स्तर पर अपितु सामाजिक तथा व्यक्तिगत स्तर पर भी आवश्यक है। वन संरक्षण से सम्बन्धित कतिपय उपाय निम्नांकित है–

1. **नियन्त्रित एवं उचित विधि से कटाई (Protectinist and Suitable felling techniques) :** ईंधन के अतिरिक्त लकड़ी के व्यापारिक एवं व्यावसायिक उपयोग में निरन्तर वृद्धि हो रही है। अत: वन संरक्षा हेतु प्राथमिक उपाय नियन्त्रित एवं उचित विधि से कटाई करना है, जिससे उनका अनवरत उपयोग सम्भव हो सके। सामान्यतया लकड़ी की कटाई की तीन विधियों का प्रयोग उचित प्रबन्धन हेतु किया जाता है–

   (1) निर्वृक्षीकरण (Clear Cutting)

   (2) वरणात्मक कटाई (Selective Cutting)

   (3) परिरक्षित कटाई (Shelter Wood Cutting)

   निर्वृक्षीकरण उन क्षेत्रों में किया जाता है जहाँ एक ही प्रकार की लकड़ी का विस्तृत क्षेत्र में विस्तार होता है। एक समान आयु के वृक्षों को व्यावसायिक दृष्टि से एक खण्ड विशेष में काट लिया जाता है, तत्पश्चात् उन्हें पुन: अंकुरित होने को छोड दिया जाता है। वरणात्मक कटाई में परिपक वृक्षों का चयन कर उन्हें क्रमानुसार काटा जाता है अर्थात् इन वनों में सदैव वृक्ष रहते हैं और क्रमिक रूप से चयनित वृक्ष समूहों का उपयोग किया जाता है। जबकि परिरक्षित कटाई में निकृष्ट गुणवत्ता वाले वृक्षों को पहले काटा जाता है, जिससे उत्तम काष्ठ प्रदान करने वाले वृक्षों की वृद्धि हो सके। तत्पश्चात् द्वितीय श्रेणी के वृक्षों को काटा जाता है और अन्त में उत्तम श्रेणी के। इसके मध्य काल में वृक्षों को पुन: विकसित होने का समय उपलब्ध हो जाता है।

2. वनों का आग से बचाव (Protection of Forest from) : वनों में कभी–कभी आग अत्यधिक विनाशकारी रूप ग्रहण कर लेती है, जिससे सैकडों वर्ग किमी. का क्षेत्र वृक्ष रहित

हो जाता है। गर्म, शुष्क एवं तेज हवा वाले मौसम में अनेक वृक्षों की शाखाएँ या बाँस जैसे वृक्ष आपसी घर्षण से आग का कारण बन जाते हैं।

इसके साथ ही मानवीय लापरवाही जैसे वन में केम्प फायर के पश्चात् लकड़ी जलती छोड़ना, जलती तीली, सिगरेट आदि फेंकना अथवा कभी–कभी जान–बूझ कर किसी वृक्ष को जलाना, वन में आग लगने के कारण बनते हैं। वनों को आग से बचाने के लिये जो सावधानी रखनी आवश्यक है, इसमें वन क्षेत्रों में ज्वलनशील सामग्री पर रोक, अवरोधों (fire breaks) का निर्माण, निगरानी चौकियों तथा आग पर नियन्त्रण करने वाले दस्तों की व्यवस्था प्रमुख है। वनों की आग को हैलिकॉप्टर से किये छिडकावों की सहायता से ही बुझाया जा सकता है। अत: आग की तुरन्त सूचना तथा उसे बुझाने की समुचित व्यवस्था वन संरक्षण के लिये आवश्यक है।

3. **कृषि एवं आवास हेतु वनों के विनाश पर रोक (Check on felling of tree for Agriculture and Habitation) :** कृषि क्षेत्रों के विस्तार एवं विकास हेतु वनों को काटना एक सामान्य प्रक्रिया रही है, परन्तु अब वनों का क्षेत्र इतना सीमित रह गया है कि पारिस्थितिक संतुलन बनाये रखने के लिए वन भूमि की कीमत पर कृषि विस्तार नहीं किया जाना चाहिये। कृषि के व्यापक आधुनिकीकरण द्वारा कृषि उत्पादनों में वृद्धि की जा सकती है। इसी प्रकार अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका तथा एशिया के वन क्षेत्रों में स्थानान्तरण कृषि (shifting cultivation) करने वाले आदिवासी समुदायों को स्थाई कृषि के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। एक अनुमान के अनुसार विश्व में 4 करोड़ वर्ग कि.मी. क्षेत्र में लगभग 20 करोड़ आदिवासी इसी प्रकार की कृषि करते हैं। अकेले आइवरी कोस्ट में 1956 से 1966 के मध्य स्थानान्तरणनशील कृषि के कारण 40 प्रतिशत वन क्षेत्र नष्ट हो गया। कृषि के साथ–साथ अधिवासों के विस्तार के लिये भी वनों को साफ कर दिया जाता है। अत: अधिवासों के नियोजन में वन रक्षण का प्रावधान किया जाना चाहिए।

4. **वन रक्षण (Forest Production) :** वन संरक्षण हेतु वन रक्षण करना आवश्यक है अनेक बार पर्यावरणीय कारकों बाढ़, चक्रवातीय तीव्र हवाओं, आँधियों, सूखा आदि से भी वनों को हानि होती है। वनों में पशुचारण नियन्त्रित किया जाना आवश्यक है। इसके लिये क्षेत्रों का निर्धारण, चारण क्षेत्रों का समयानुसार परिवर्तन तथा नवीन पौधों की पशुओं से रक्षा आवश्यक है। इसी प्रकार पादप रोगों से वनों की रक्षा भी जरूरी है। अधिकांश रोग परजीवी फफूँदी के द्वारा होते हैं। रोग ग्रस्त वृक्ष समूहों का पता लगाना तथा उन्हें नष्ट करना या रोगाणुओं को फैलने से रोकना वन रक्षण हेतु अपरिहार्य है।

5. **बांधों के कारण से वनों के जल–मग्न होने से बचाना :** विश्व में जहाँ कहीं भी नदियों पर बांध बनाये जाते हैं, वहाँ उस क्षेत्र के वन जल–मग्न हो जाते हैं। भारत में भाखड़ा नांगल, गांधी सागर, तुंगभद्रा, नागार्जुन सागर, दामोदर, हीराकुण्ड, रिहन्द, टिहरी, सरदार सरोवर आदि विशाल बांधो के निर्माण से हजारों वर्ग किमी. का वन क्षेत्र जलमग्न हो गया है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि बांध नहीं बनाये जावें, अपितु बांध स्थलों का चयन इस प्रकार किया जाय कि उनसे कम से कम वन क्षेत्र जलमग्न हो। साथ ही बांध निर्माण के

पश्चात् अन्य विकास कार्यों के साथ इस बात पर भी बल दिया जाय कि उस क्षेत्र में पुन: वृक्षारोपण किया जाय जिससे पारिस्थितिक सन्तुलन बना रहे।

6. **वनों का पर्यटन स्थलों के रूप में विकास (Development of Forest as Tourist sites) :** वन संरक्षण का एक सफल उपाय इनका पर्यटन स्थलों के रूप में विकास है। वन प्राकृतिक सुन्दरता एवं सुरम्यता से युक्त होते हैं जो सहज ही में पर्यटकों को आकर्षित करते है। इससे वन संरक्षण तो होता ही है साथ ही आर्थिक लाभ भी प्राप्त होता है। इस दिशा में, अनेक देशों में राष्ट्रीय पार्क एवं अभयारण्यों के विकास के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इनके विकास से विभिन्न पादप प्रजातियों की रक्षा के साथ–साथ वन्य जीवों का भी संरक्षण होता है। इस प्रकार वन प्रदेशों की सुरक्षा हेतु इनको पर्यटन स्थलों के रूप में विकसित करना दोहरा लाभप्रद है।
7. **पुनर्वनीकरण (Reforestation) :** वन संरक्षण हेतु जहाँ एक ओर वनों की रक्षा करना उपयोगी है, वहीं दूसरी ओर वृक्षारोपण की भी आवश्यकता है। यह एक नियमित प्रक्रिया के रूप में होना चाहिये, क्योंकि एक ओर विविध उपयोगों हेतु वन को जिस अनुपात में काटा जाता है उसके साथ ही यदि उसी अनुपात में नये वृक्ष लगा दिये जायें तो वनोबूलन की समस्या से बचा जा सकता है। नये वृक्ष लगाने के साथ–साथ यह भी जरूरी है कि वे ठीक प्रकार से विकसित हो सकें। इसके अतिरिक्त वृक्षों का चयन उपयोगिता एवं स्थानीय पर्यावरण को दृष्टिगत रख कर किया जाना अत्यंत आवश्यक है।
8. **वन सैर क्षण में प्रशासनिक भूमिका (Administrative role in Forest Conservation) :** वनों के संरक्षण में सरकार एवं स्थानीय प्रशासन की महत्ती भूमिका है। प्रशासन वन संरक्षण हेतु निम्न प्रमुख कार्य सम्पादित कर सकता है –
   1. वनों के संरक्षण हेतु कानून (एक्ट) बनाना,
   2. देश के वनों का सर्वेक्षण करवाना,
   3. वनों के विभिन्न प्रकारों या श्रेणियों को सूचीबद्ध करना एवं सुरक्षित वन क्षेत्रों (Reserved Forest Areas) का निर्धारण करना,
   4. ऐसे क्षेत्रों का पता लगाना, जहाँ वन विकास की आवश्यकता है और जहाँ वृक्षारोपण सम्भव हैं,
   5. आर्थिक दृष्टि से उपयोगी वनों का निर्धारण एवं व्यवस्थापन,
   6. वनों की अग्नि या अन्य प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा करना,
   7. वन अनुसन्धान हेतु प्रयोगशालाओं की स्थापना करना,
   8. राष्ट्रीय पार्क एवं अभयारण्यों की स्थापना करना,
   9. वृक्षारोपण कार्यक्रम का संचालन करना,
   10. सतत निरीक्षण द्वारा वन विकास को रोकना तथा वनों को क्षति पहुँचाने वालों के विरूद्ध दण्डात्मक कार्यवाही करना,
   11. वन संरक्षण हेतु प्रोत्साहन एवं पुरस्कार देना,

12. वन उत्पादनों पर सरकारी निगरानी व्यवस्था का निर्धारण करना,
13. वन विकास हेतु राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय योजनाओं को तैयार करना।.

9. जन चेतना एवं सामाजिक भागीदारी का निर्माण(Formation of People Awareness and Social Participation) : वन संरक्षण एवं वृक्षारोपण जैसे कार्यक्रमों के लिये जन चेतना तथा सामाजिक भागीदारी का निर्माण करना आवश्यक है। जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करे कि वन, उसके तथा भविष्य की पीढ़ियों के लिये आवश्यक हैं तो संरक्षण स्व: होने लगेगा। वन संरक्षण में गैर सरकारी संगठनों की भी महती भूमिका है। आज विश्व में वन संरक्षण के लिए अनेक संगठन विभिन्न देशों में कार्यरत हैं। भारत में 'चिपको' आन्दोलन इसका अपूर्व उदाहरण है। इसी प्रकार 'सामाजिक वानिकी' (Social Forestry) कार्यक्रम कुछ प्रदेशों में पर्याप्त सफल रहे हैं। इसमें स्थानीय ग्रामीणों के माध्यम से वानिकी कार्यक्रम इस प्रकार चलाया जाता है कि उनको लाभ भी प्राप्त हो और वन विकास भी हो सके।

10. वन प्रबन्धन (Forest Management) : वन संरक्षण हेतु वन प्रबन्धन का अत्यधिक महत्व है। वनों का सुनियोजित उपयोग एवं नियोजन उचित प्रबन्धन द्वारा ही सम्भव है। वन प्रबन्धन के अन्तर्गत निम्नलिखित गतिविधियों पर विशेष ध्यान दिया जाता है –

1. वन सर्वेक्षण,
2. वनों का वर्गीकरण
3. वनों का आर्थिक उपयोग,
4. वनों का प्रशासनिक व्यवस्थापन,
5. पर्यटन हेतु वन क्षेत्रों का उपयोग,
6. सामाजिक वानिकी
7. वन उपयोगिता के अवबोध कार्यक्रम/सामाजिक चेतना जागृत करना,
8. वन संरक्षण हेतु नवीन विधियों का विकास,
9. वन अनुसन्धान,
10. वानिकी योजनाएं तैयार करना रण उनका क्रियान्वयन करना।

स्पष्ट है कि वन संरक्षण वर्तमान युग की प्राथमिक आवश्यकता है। वन संरक्षण, पर्यावरण संरक्षण का प्रमुख अंग है क्योंकि वन पारिस्थितिक–तन्त्र के सन्तुलन में प्रभावी भूमिका रखते हैं।

9.5.1.2 वन्य जीवों का संरक्षण (Wide–Life conservation)

वन्य जीव हमारे जैव परिमण्डल के अभिन्न अंग हैं, अत: उनकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति का वही महत्व है जो जैव परिमण्डल की अन्य इकाइयों या कारकों का होता है। वनों में निवास करने वाले जीव–जन्तु क्षेत्रीय पारिस्थितिकी की उपज होते हैं और प्राकृतिक पर्यावरण से सामन्जस्य स्थापित कर न केवल स्वयं का अस्तित्व बनाये रखते हैं, अपितु पारिस्थितिक–तन्त्र के परिचालन में भी सहायक होते हैं। आज तीव्र जनसंख्या वृद्धि, औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं

अत्यधिक शोषण ने इनके अस्तित्व को संकट में डाल दिया है। वनों के विनाश एवम् पर्यावरण अवक्रमण के कारण इनके आवास क्षेत्र (Habitat) में परिवर्तित हो रहे हैं या वे समाप्त होते जा रहे हैं।

Iternational Union for the Conservation of Number (IUCN) की Red Data Book में विश्व में पक्षियों की 400 प्रजातियों स्तनधारी जन्तुओं की 305 प्रजातियों, मछलियों की 193 प्रजातियाँ तथा उभयचरों एवम् सरीसृपों की 138 प्रजातियों के लुप्त होने की संभावना व्यक्त की गई है।

प्रत्येक जीव प्रजाति आनुवांशिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है तथा अप्रतिस्थापनीय है, जो यदि एक बार लुप्त हो गई तो उसे पुन: उत्पन्न करना असम्भव है। अनेक अंतराष्ट्रीय संगठन इस दिशा में प्रयास कर रहे हैं, जिसमें विश्व वन्य जीवकोष (World Wild Life Fund) प्रमुख है। विश्व के विभिन्न देश भी अपने–अपने क्षेत्रों के वन्य जीवों को संरक्षित करने में प्रयत्नशील हैं। राष्ट्रीय उद्यानों रच अभयारण्यों की स्थापना इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। वन्य जीवों के सैर क्षण हेतु कतिपय कदम निम्नलिखित हैं

(i) वन्य जीवों सम्बन्धी सम्पूर्ण जानकारी एकत्र करना (विशेषकर उनकी संख्या एवं वृद्धि की)

(ii) वनों के विनाश को रोकना,

(iii) सुरक्षित रख अनुकूल आवासीय स्थलों का परिरक्षण,

(iv) प्रदूषण एवं अन्य प्राकृतिक आपदा से वन्य जीवों की रक्षा,

(v) वन्य जीवों के शिकार पर पूरी तरह रोक लगाना,

(vi) क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वन्य जीवों से प्राप्त उत्पादों के क्रय – विक्रय पर प्रतिबन्ध लगाना तथा दोषी व्यक्ति को कठोर दण्ड की व्यवस्था करना।

(vii) अभयारण्यों की स्थापना कर, उन्हें पर्यटन स्थलों के रूप में विकसित करना।

(viii) वन्य जीवों की विलुप्त होती प्रजातियों की समुचित जानकारी जुटाना तथा उनके संरक्षण की विशेष व्यवस्था करना।

(ix) अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर वन्य जीवों के संरक्षण हेतु जन चेतना जागृत करना।

UNESCO द्वारा सन् 1971 में वन्य जीवन के संरक्षण हेतु Man and Biosphere (MAB) कार्यक्रम की शुरूआत की गई। इसके अन्तर्गत 1985 में विश्व के 65 देशों में 115 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र पर 243 जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र (Biosphere Reserves)। सन् 2002 में भारत में निम्नलिखित 15 जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र निर्धारित थे।

जैव मण्डल आरक्षित क्षेत्र का नाम	**राज्य/केन्द्र शासित क्षेत्र**
नामदफा	अरूणाचल प्रदेश
फूलों की घाटी	उत्तराखंड
मन्नार की खाड़ी	तमिलनाडु
सुन्दरवन	पश्चिम बंगाल
थार मरूस्थल	राजस्थान
मानस	असम

कच्छ का छोटा रन	गुजरात
उत्तरी द्वीप (अण्डमान)	अण्डमान–निकोबार
नन्दा देवी	उत्तराखंड
काजीरंगा	असम
कान्हा	मध्य प्रदेश
नोकरेक–तुरा श्रेणी	मेघालय
नीलगिरि	कर्नाटक–केरल–तमिलनाडु
सिमली पाल	उड़ीसा
वृहत् निकोबार	अण्डमान–निकोबार

भारत में वन्य प्राणियों के संरक्षण के लिए 88 राष्ट्रीय उद्यानों तथा 566 वन्य जीव अभ्यारण्यों की स्थापना की गई है (2001–02), जिनके अन्तर्गत लगभग 153000.34 वर्ग किमी. क्षेत्र अधिसूचित किया गया है। भारत में संकटग्रस्त प्रजातियों के संरक्षण के लिए विशेष परियोजनाओं जैसे बांध परियोजना, गिर सिंह परियोजना, घड़ियाल प्रजनन परियोजना, गैंडा संरक्षण परियोजना, हाथी परियोजना, हिम तेन्दुआ परियोजना, कस्तूरी मृग परियोजना आदि का संचालन किया जा रहा है। इस प्रकार वन्य जीव संरक्षण की दृष्टि से सुरक्षित क्षेत्रों (Protected Areas) का निर्धारण सबसे बड़ी आवश्यकता। 'IUCN' के अनुसार संवेदनशील पारिस्थितिकी तंत्रों का 10 प्रतिशत तथा सामान्य पारिस्थितिकी तंत्रों का 5 प्रतिशत क्षेत्र अवश्य ही सुरक्षित किया जाना चाहिए।

9.5.1.3 जैव विविधता का संरक्षण (Conservation of Bio–diversity)

संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रौद्योगिकी मूल्यांकन (Technology Assessment) कार्यालय के अनुसार "जैव विविधता का तात्पर्य जीव–जन्तुओं में पायी जाने वाली विभिन्नता, विषमता और पारिस्थितिकी जटिलता से है। "जैविक प्रजातियों के विलुप्तीकरण (Exitncition) तथा जैव विविधता के हास को गम्भीर पर्यावरणीय समस्या के रूप में देखा जा रहा है। विश्व में वनस्पति एवम् जीव–जन्तुओं की कुल 1,413,000 प्रजातियां अभिनिर्धारित है। इसके अतिरिक्त विशाल संख्या में प्रजातियों के अभिनिर्धारण का कार्य शेष है। यदि बाकी प्रजातियाँ भी पहचान ली जाएं, तो यह संख्या 5 मिलियन से भी अधिक हो सकती है। इन प्रजातियों की विशेषताओं एवम् उपयोगिता की जानकारी पृथ्वी पर मानव के बेहतर भविष्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, परन्तु जैविक संसाधनों के अनियोजित शोषण के कारण निरन्तर अनेक प्रजातियों विलुप्त होती जा रही है। पारिस्थितिकी तन्त्रों में प्रत्येक प्रजाति का कार्यात्मक स्थान (Niche) होता है और इस कारण किसी भी प्रजाति का विलुप्तीकरण, पारिस्थितिकी तंत्रों में संचयी प्रभाव छोड़ता है, जिससे शृंखलाबद्ध प्रतिकूलताए उत्पन्न होती हैं।

जैव विविधता के अन्तर्गत तीन प्रकार की विविधताएं सम्मिलित की जाती हैं –

1. **आनुवंशिक विविधता (Genetic diversity) :** एक ही प्रजाति के सदस्यों में व्यक्तिगत जीन्स (genes) की विभिन्नता के कारण उत्पन्न विविधता।

2. **प्रजातीय विविधता (Species diversity) :** किसी क्षेत्र में भिन्न–भिन्न प्रकार के पादपों एवम् जन्तुओं की जातीय अथवा श्रेणीगत (Class wise) विलगता।
3. **सामुदायिक विविधता (Community diversity) :** भिन्न–भिन्न पारिस्थितिकी तन्त्रों में विशेष प्रजातियों के कार्यात्मक एवम् अन्तर्क्रियात्मक समूहन से निर्मित जैव समुदायों की भिन्नता।

जैव विविधता के सबसे बड़े भण्डार उष्ण कटिबंधीय कम विकसित (less developed) देशों में है, जहाँ विकास एवम् जीवन स्तर की समस्याओं के कारण संरक्षण उपायों की व्यापक अनदेखी की जा रही है। जैव विविधता के हास के निम्नलिखित कारण हैं–

1. **कृषि भूमि के लिए वनों को काटना (Felling of trees for agricultural land):** विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि के कारण खाद्यान्न उत्पादन के लिए अगले 30 वर्षों में 120 मिलियन हेक्टेयर अतिरिक्त कृषि भूमि की आवश्यकता होगी। खाद्य एवम् कृषि संगठन (FAO) के अनुसार ऐसे अधिकांश देश लैटिन अमेरिका एवम् उप–सहारा अफ्रीका के होंगे, जो सबसे अधिक जैव–विविधता समृद्ध देश भी हैं।
2. **पक्षियों की विभिन्न प्रजातियों का विलुप्तीकरण (Extinction of various species of birds) :** एक आकलन के अनुसार पर्यावरणीय अवक्रमण एवम् आश्रय स्थलों के विनाश (destruction of habitats) के कारण अगले 50 वर्षो में पक्षियों की 350 प्रजातियां विलुप्त हो जायेंगी।
3. **सागरीय पारिस्थितकी तंत्रों का अवक्रमण (Degradation) :** विभिन्न स्रोतों द्वारा प्रदूषण तथा मछलियों को अंधाधुंध व्यापारिक स्तर पर पकड़ने के कारण मछलियों एवम् दूसरे सागरीय जीवों की कई प्रजातियां विलुप्तीकरण की कगार पर पहुँच गई हैं। सागर तटीय क्षेत्रों में ऐकाकल्चर (Aquaculture) जैसे, समुद्री केकडों की 'खेती' तथा मछलियों की कुछ प्रजातियों का व्यापारिक उद्देश्यों से कृत्रिम अभिजनन (Artificial breeding) जैसे टूना (Tuna) का अभिजनन आदि, सागरीय पारिस्थितिकी तंत्रों में परिवर्तन एवम् प्रतिक्रियाएं उत्पन्न कर रहे हैं।
4. **भूमण्डलीय उष्णता एवम् जलवायु परिवर्तन (Global warming and climate chnage) :** आवास क्षेत्रों (Habitats) के भौतिक पर्यावरण में व्यापक परिवर्तनों के कारण अनेक संवेदनशील प्रजातियां विलुप्त हो जायेगी, जबकि दूसरी पादप एवम् जन्तु प्रजातियों को इन खतरनाक परिवर्तनों से जूझना पडेगा।
5. **आनुवांशिक संवर्धित (Genetically modified) या ट्रांसजेनिक (Transgenic) फसलें :** लम्बे समय में, ट्रांसजेनिक फसलों से विद्यमान जैव विविधता में कमी आ सकती है। ट्रांसजेनिक फसलों के परागकण अन्य सम्बंधित प्रजातियों, खरपतवार या जंगली प्रजातियों में पहुँचकर घातक जैविकीय परिवर्तन (severe biological changes) उत्पन्न कर सकते है

6. **बाहरी (exotic) तथा वर्ण–संकर (hybrid) प्रजातियों का प्रयोग :** इन प्रजातियों के किसी क्षेत्र में उपयोग के कारण स्थानीय (local) जीव–जन्तु व फसलों या वनस्पति का विलुप्तीकरण होने लगता है, जिसके कारण न केवल पारिस्थितिकी तंत्र बुरी तरह प्रभावित होते हैं, अपितु प्रतिक्रियाओं के कारण क्षेत्र की जैव विविधता का भी हास होता है।

प्रारम्भ में जैव विविधता का संरक्षण जीन (gene) प्रजाति (species) तथा आवास के संरक्षण तक सीमित था, परन्तु आज कई दूसरे प्रभावकारी उपायों को भी अपनाया जा रहा है, जैसे–

(i) बीज कोषों (Seed banks) का रख–रखाव,

(ii) कृषि वानिकी (Forestry),

(iii) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समझौतों द्वारा व्यवस्थापन,

(iv) जल ग्रहण क्षेत्रों का बेहतर प्रबन्धन,

(v) प्रौद्योगिक नीतियों में सुधार लाना,

(vi) विशिष्ट पारिस्थितिकी तन्त्रों का, सुरक्षित क्षेत्रों (Protected areas) के रूप में व्यापक जाल (network) तैयार करना,

(vii) क्षेत्रीय विकास कार्यक्रमों में जैव विविधता की प्रासंगिकता को उपयोग के सन्दर्भ में सम्मिलित करना, आदि।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1993 में जैविक विविधता के संरक्षण हेतु एक सन्धि का प्रारूप तैयार किया, जिस पर अधिकांश देशों ने हस्ताक्षर किये। इस सन्धि के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित है–

1. जैव विविधता सम्बंधी राष्ट्रीय जानकारी एवम् प्रजातियों की पहचान तथा उन पर संरक्षण के दृष्टिकोण से निगरानी रखना।
2. राष्ट्रीय जैव विविधता के संरक्षण के समुचित उपाय करना।
3. जैव विविधता को प्रभावित करने वाली परियोजनाओं का मूल्यांकन करना।
4. जैव विविधता के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय नीति तैयार करना।
5. नियमित रूप से जैव विविधता पर राष्ट्रीय प्रतिवेदन तैयार कर उसका प्रभावशाली तरीके से क्रियान्वयन करना।

वस्तुत: पारिस्थितिकी संतुलन एवम् मानव कल्याण के लिए जैव विविधता की सुरक्षा एक राष्ट्रीय कार्य है, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय कार्ययोजना के रूप में पूर्ण किया जाना आवश्यक है।

9.5.2 मृदा संरक्षण (Soil Conservation)

भूमि की उपरी परत–मृदा, एक प्राकृतिक संसाधन है, जिसका निर्माण खनिज एवं कार्बनिक पदार्थों के योग से होता है। मृदा सभी प्रकार की वनस्पति एवं कृषि के विकास का आधार है। सामान्यत : यह माना जाता है कि मृदा एक ऐसा संसाधन है जो कभी समाप्त नहीं होता और प्रकृति इसे संरक्षित करती रहती है, किन्तु वास्तविकता इससे भिन्न है। प्राकृतिक एवं मानवीय कारणों से मृदा नष्ट होती जा रही है। मृदा के विनाश का मूलभूत कारण मृदा अपरदन (Soil Erosion) है। मृदा अपरदन अनेक प्रकार से होता है। ये हैं–

(i) सामान्य मृदा अपरदन– यह मृदा अपरदन की प्राकृतिक क्रिया है, जिसमें मृदा का नवीनीकरण एवं स्थानान्तरण मन्द गति से होता रहता है।

(ii) जल द्वारा मृदा अपरदन– इसके अन्तर्गत जल द्वारा मिट्टी का कटाव तथा मिट्टी को बहा ले जाना, सम्मिलित करते हैं। यह सर्वाधिक विनाशकारी है। इसके निम्न उप प्रकार है–

(अ) छप छपाव अपरदन (Splash erosion)

(ब) परत अपरदन (Sheet Erosion)

(स) नलिका अपरदन (Rill Erosion)

(द) अवनलिका अपरदन (Gully Erosion)

(य) सरिता तटीय अपरदन (Steam Bank/Reparian Erosion)

(iii) वायु द्वारा मृदा अपरदन : शुष्क एवं वनस्पति रहित क्षेत्रों में तीव्र वेग वाली वायु द्वारा असंगठित मिट्टी को उड़ा ले जाने की क्रिया, वायु द्वारा मृदा अपरदन कहलाती है।

(iv) त्वरित मृदा अपरदन (Accelerated Erosion): यह मृदा अपरदन का कोई पृथक प्रकार नहीं है, अपितु मानवीय क्रियाओं के कारण उपर्युक्त प्रकार के अपरदनों की गति में तीव्रता आ जाने को, त्वरित मृदा अपरदन कहा जाता है।

मृदा अपरदन, यद्यपि एक प्राकृतिक क्रिया भी है, परन्तु मानवीय क्रिया–कलापों के कारण मृदा अपरदन की तीव्रता एवं व्यापकता में कई गुणा वृद्धि हुई है। मृदा अपरदन के विभिन्न कारण निम्न प्रकार हैं–

(i) तीव्र वर्षा, वाही जल (Run off water) तथा बाढ़,

(ii) कृषि विस्तार, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के लिए भूमि उपयोग परिवर्तन तथा प्राकृतिक वनस्पति का विनाश,

(iii) खनन एवं परिवहन जालों (Transport Networks) का निर्माण,

(iv) अनियन्त्रित पशुचारण,

(v) कृषि में भारी मशीनों एवं रसायनों के उपयोग से मिट्टियों में भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन, आदि।

मृदा अपरदन तथा विनाश का प्रभाव निम्न रूपों में दिखाई देता है–

(i) मिट्टी की उर्वरा शक्ति में ह्रास,

(ii) नलिकाओं (Rills), अवनलिकाओं (Gullies) तथा बीहड़ों (Ravines) के कारण भूमि का अनुप्रयोगी हो जाना,

(iii) कृषिगत उत्पादनों में कमी,

(iv) वनस्पति आवरण में कमी,

(v) चरागाहों का विनाश,

(vi) मरूस्थलीकरण (Desertification) की प्रक्रिया में तीव्रता,

(vii) प्राकृतिक प्रकोपों (बाढ़, सूखा आदि) में वृद्धि

(viii) पारिस्थितिक प्रतिकूलताओं का निर्माण।

मृदा अपरदन के फलस्वरूप भूमि का विनाश होता जाता है। इससे भूमि का उपजाऊपन नष्ट होता रहता है और अन्त में भूमि बंजर हो जाती है। मृदा अपरदन अधिक होने से वनस्पति विनाश तो होता ही है साथ में पुन: वृक्षारोपण भी सम्भव नहीं होता। अत: वर्तमान परिपेक्ष्य में मृदा संरक्षण अपरिहार्य है। मृदा संरक्षण का प्रमुख उद्देश्य मिट्टी के कटाव को रोकना तथा उसके उपजाऊपन को बनाये रखना है, जिससे कि भूमि बंजर न होने पाये। मृदा संरक्षण की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं–

1. **वनस्पति आवरण का विकास एवं संरक्षी वृक्षारोपण :** भूमि को संगठित रखने का सहज एवं सार्थक उपाय वृक्षारोपण है, क्योंकि वृक्षों की जडें. भूमि को जकड़े रहती हैं, जिससे कि वह प्रवाहित नहीं होती। मृदा संरक्षण हेतु संरक्षी वृक्षारोपण पेटियों के रूप में किया जाता है। जल अवरोधित करने हेतु ये संरक्षी पट्टियाँ ढाल के आर–पार उगायी जाती हैं। इनमें वृक्षों की सघन कतारें होती है, जिनके मध्य झाड़ियाँ आदि लगा दी जाती हैं। इसी प्रकार वायु अवरोधी के रूप में हरित पट्टियाँ आवश्यकतानुसार कतारों के रूप में विकसित की जाती हैं। जो वायु की गति कम कर, मिट्टी को उड़ने से बचाती हैं।
2. **पट्टीदार कृषि (Strip Cropping) :** इस विधि में अपरदन–रोधी फसलों को समोच्च रेखाओं पर चौड़ी पट्टियों के क्रम में बोया जाता है, जिससे प्रवाहित जल का वेग कम हो जाता है, तथा सिल्ट अपरदन–रोधी पट्टियों में एकत्र हो जाती है, जिससे मृदा अपरदन की मात्रा कम हो जाती है।
3. **वेदिकाकरण (Terracing) :** पर्वतीय ढ़ालों पर भूमि का कटाव अपेक्षाकृत अधिक होता है । अत: इन ढ़ालों पर यदि सीढ़ीदार खेत बनाये जायें, तो एक ओर कृषि हेतु भूमि उपलब्धता में वृद्धि होती है, वहीं दूसरी ओर मृदा अपरदन में भी कमी आ जाती है।
4. **शस्यावर्तन या फसल चक्रीकरण (Crop–rotation) :** भूमि पर यदि निरन्तर एक ही प्रकार की फसल उगाई जाती है तो उससे मृदा में अनेक लवणों एवं रासायनिक, जैविक तत्वों की कमी हो जाती है और मृदा की उर्वरा शक्ति का हास हो जाता है। मृदा में विभिन्न तत्वों के सन्तुलन को बनाये रखने के लिये फसलों का चक्रीकरण आवश्यक है। फसल चक्रीकरण में जलवायु दशाओं के अनुसार दो या तीन फसलों को क्रमानुसार उगाया जाता है, जिससे मिट्टी पर्याप्त समय तक उपजाऊ बनी रहती है।
5. **अवनलिका नियन्त्रण (Drainage Control) :** अवनलिकाओं द्वारा मृदा विनाश एवं भूमि को अनुपयोगी बनाने से बचाने के लिए अवनलिका नियन्त्रण क्रिया अति आवश्यक है। इसके लिए निम्न विधियों का प्रयोग किया जा सकता है–
   (i) अपवाह जल को अवरोध बाँध (Check Dam) बनाकर रोकना,
   (ii) अपवाह का पथ परिवर्तित करना
   (iii) वनस्पति आवरण में वृद्धि करना, तथा
   (iv) नवीन संरचनायें बना कर अपरदन रोकना, आदि।

6. **समोच्च रेखीय जुताई (Contour Ploughing) :** इसमें खेतों की जुताई विशेष प्रकार से की जाती है, जिससे खेत की मृदा बह कर न चली जाय। जहाँ भी खेतों में ढलान है, वहाँ समोच्च कृषि की जानी चाहिये जिससे मृदा कणों का ढाल से प्रवाह न हो।
7. **पशुचारण पर नियन्त्रण (Control on Grazing) :** अनियन्त्रित पशु चारण, मृदा अपरदन एवं मरूस्थलीकरण का प्रमुख कारण है। पशुओं के खुरों से मृदा असंगठित हो कर निरन्तर अपरदित होती रहती है। साथ ही पशु वनस्पति आवरण को समाप्त कर मृदा अपरदन में वृद्धि करते हैं। अत: मृदा संरक्षण हेतु पशुचारण एवं पशुचारण क्षेत्रों का समुचित प्रबन्धन आवश्यक है।
8. **पलवार बाँधना (Mulching):** इस विधि में फसल काटते समय पौधों के तनों को ठूंठ के रूप में खेतों में छोड़ दिया जाता है। ये ठूंठ पंक्तियाँ. मृदा की नमी के वाष्पीकरण को रोकती हैं और मृदा को कार्बनिक पदार्थ प्रदान करती हैं। साथ ही मृदा को अपरदन से भी बचाती हैं।
9. **बाढ़ नियन्त्रण (Flood Control) :** बाढ़ द्वारा मृदा की ऊपरी परत बह जाती है। यद्यपि जहाँ इसका जमाव होता है, वहाँ उपजाऊपन में वृद्धि हो जाती है, परन्तु विस्तृत क्षेत्रों में इससे मृदा क्षरण होता है। नदियों पर बांध बना कर नदी जल के उचित प्रबन्धन द्वारा इसमें कमी की जा सकती है।
10. **स्थानान्तरणशील कृषि पर रोक (Check on Shifting Cultivation) :** आदिवासी जातियों द्वारा स्थानान्तरणशील कृषि से प्राकृतिक वनस्पति का विनाश होता है। कृषि के पश्चात् जब वे इस भूमि को छोड़ जाते हैं, तो वहाँ मृदा अपरदन अधिक होने लगता है। अत: स्थानान्तरणशील कृषि पर रोक लगाना आवश्यक है।
11. **उर्वरकों का प्रयोग (Use of Fertilisers) :** मृदा में उर्वरक मिलाने से न केवल उसकी उर्वरता में वृद्धि होती है, अपितु उसके गठन, संरचना और जल धारण करने की क्षमता में भी सुधार होता है, जिससे मृदा अपरदन में कमी आती है। जैविक खादों एवं अपशिष्टों जैसे पत्तियों, डण्ठलों आदि का प्रयोग भी इस दृष्टि से लाभकारी होता है।
12. **उचित भूमि उपयोग (Better landuse) :** मृदा संरक्षण हेतु उचित भूमि उपयोग अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक क्षेत्र का भू–सर्वेक्षण करके भूमि को विविध उपयोगों हेतु श्रेणीबद्ध किया जाना चाहिये। विभिन्न प्रकार के क्षेत्रों का उपयोग निर्धारित होना चाहिये, जैसे वन्य क्षेत्र, चारागाह, कृषि क्षेत्र, आवासीय क्षेत्र आदि। इसी प्रकार मृदाओं का भी, उनकी रासायनिक संरचना के आधार पर वर्गीकरण कर, उनके उचित उपयोग का निर्धारण आवश्यक है।
13. **मृदा की उर्वरता का अनुरक्षण (Degradation of Soil Fertility):** मृदा संरक्षण का एक महत्वपूर्ण पक्ष मृदा की उर्वरता को बनाये रखना है, क्योंकि इसी पर कृषि की प्रगति सम्भव है तथा अन्य वनस्पति विकास भी इसी के माध्यम से होता है। इसके लिये जहाँ मृदा की भौतिक एवं रासायनिक संरचना का ज्ञान आवश्यक हैं, वहीं फसलों का उचित चयन, चक्रीकरण, मृदा की ऊपरी परत का बहाव रोकना, जैविक तत्वों को बनाये रखना भी

आवश्यक है। अतिरेक सिंचाई से भूमि में क्षारीयता का विकास होने के कारण मृदा की उर्वरता नष्ट हो जाती है।

मृदा संसाधनों के समुचित उपयोग हेतु मृदा संरक्षण आवश्यक है। मृदा विशेषज्ञों, नियोजकों एवं प्रयोगकर्ताओं (मुख्यत: कृषकों) के सामूहिक प्रयत्नों से इस कार्य को बेहतर ढंग से किया जा सकता है।

9.5.3 जल संरक्षण (Water Conservation)

जल एक ऐसा प्राकृतिक संसाधन है, जिस पर न केवल मानव अपितु सम्पूर्ण वनस्पति एवं जीव जगत निर्भर है। विश्व में जल का प्रति व्यक्ति, प्रतिदिन, औसत उपभोग ग्रामीण क्षेत्रों में 50 लीटर तथा नगरीय क्षेत्रों में 150 लीटर होता है। पेयजल एवं घरेलू उपयोग के अतिरिक्त कृषि की सिंचाई एवं उद्योगों में भी जल का उपयोग होता है। यद्यपि जल चक्र (Hydrological Cycle) द्वारा, प्राकृतिक रूप से जल की उपलब्धता निरन्तर बनी रहती है, परन्तु अन्य पर्यावरणीय व्यतिक्रम एवं प्रदूषण के कारण जल संसाधनों का ह्रास हो रहा है। भूमिगत जल का स्तर कम होता जा रहा है, तथा अनेक देशों में पेयजल की समस्या गम्भीर हो गयी है। विश्व में उपलब्ध जल स्रोतों का समुचित उपयोग हो और जल की उपलब्धता भविष्य में भी बनी रहे, इसके लिए जल संरक्षण की विधियों को अपनाया जाना जरूरी है। जल संरक्षण की कुछ विधियाँ निम्नलिखित हैं–

1. **जल की उचित वितरण व्यवस्था (Suitable water distribution system) :** विश्व में जल की उपलब्धता अत्यधिक असमान है। अत: अतिरेक जल के स्रोतों से अपर्याप्त जल के क्षेत्र में जल का वितरण आवश्यक होता है। जल वितरण के प्रबन्धन में जल हानि एवं जल को प्रदूषित होने से बचाना, अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जल वितरण के प्रबन्धन से सम्बन्धित कतिपय तथ्य निम्न हैं–
   (i) जहाँ तक सम्भव हो जल वितरण पाइपों की सहायता से किया जाना चाहिये, जिससे भूमि जल को न सोखे तथा उसमें बाहरी गंदगी का समावेश न हो।
   (ii) जल संचय हेतु जहाँ जलाशयों का निर्माण किया जाय, वह यदि सीमित हो तो उसे पक्का बना दिया जाय।
   (iii) नहरों और वितरिकाओं को पक्का बना कर भूमि द्वारा सोखे जाने वाले जल को बचाया जा सकता है।
   (iv) जल के टैंकों को जहाँ तक सम्भव हो ढकने की व्यवस्था करनी चाहिये, जिससे वाष्पीकरण से होने वाली जल की हानि से बचा जा सकेगा और जल भी शुद्ध रहेगा।
2. **भूमिगत जल का विवेकपूर्ण प्रयोग (judicious use of Groundwater) :** भूमिगत जल, जल आपूर्ति का महत्वपूर्ण स्रोत है। विशेष रूप से शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क प्रदेशों में जहाँ वर्षा नाम मात्र की होती है, वहाँ भूमिगत जल पर ही जीवन आश्रित रहता है। भूमिगत जल का प्रयोग बड़े पैमाने पर सिंचाई हेतु भी किया जाता है। भूमिगत जल के सुनियोजित एवं विवेकपूर्ण उपयोग के लिए इसके उपयोग की मात्रा को सीमित एवं नियंत्रित किया जाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त जल ग्रहण क्षेत्रों (Water shed areas) के बेहतर प्रबन्धन

द्वारा भूमिगत जल की पुन: पूर्ति (Water Recharge) हेतु व्यापक कार्य योजना बनाई जानी चाहिए।

3. **वनस्पति विनाश पर नियन्त्रण (Control on Vegetation destruction) :** प्राकृतिक वनस्पति जल चक्र की क्रियाशीलता में महत्वपूर्ण भूमिका रखती है वनस्पति वायु मण्डल में नमी बनाये रखती है, तापमान में वृद्धि को रोकती है, वर्षा में सहायक होती है तथा वाष्पीकरण द्वारा जल हानि को रोकती है। अत: वनस्पति विनाश को रोकना जल संरक्षण के लिए आवश्यक है।
4. **जल प्रदूषण से बचाव (Protection from water pollution) :** जल की उपलब्धता बनाये रखने के साथ–साथ यह भी आवश्यक है कि जल को प्रदूषित होने से बचाया जा सके। विभिन्न औद्योगिक–नगरीय, कृषिगत एवं अन्य दूसरी उत्पादन प्रक्रियाओं के कारण तथा घरेलू बहिस्त्रावो द्वारा, जल के भौतिक एवं रासायनिक प्रदूषण को रोका जाना चाहिए। साथ ही इस प्रकार प्रदूषित जल को उपचारित करने के पश्चात् ही स्वच्छ जल के स्रोतों (नदियों, झीलों आदि) में छोड़ना चाहिए।
5. **वाही जल (Run off water) का समुचित उपयोग(Utilisation of Runoff water) :** वर्षा का जल, जो सतह पर व्यर्थ बह कर चला जाता है और क्षेत्रीय उपयोग में नहीं आता है, इसके लिए जल ग्रहण क्षेत्रों के विकास की समेकित योजना तैयार की जानी चाहिए। छोटे–छोटे जल चैनलों पर अवरोधक बाँध बनाकर तथा जोहड़ों, टैंको जैसी परम्परागत तकनीकों के प्रयोग से जल की उपलब्धता में वृद्धि की जा सकती है।
6. **सिंचाई हेतु जल का प्रबन्धन (Management of Water for Irrigation) :** कृषि क्षेत्रों में फसलोत्पादन हेतु सिंचाई के लिए जल प्रबन्धन की आवश्यकता होती है। नहरी सिंचाई (Canal irrigation) के क्षेत्रों में कृषकों के बीच जल की होड़ तथा अतिरेक सिंचाई के कारण जल भराव (Water logging) की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार नलकूपों (Tube Wells) द्वारा सिंचाई में भी भूमिगत जल संसाधनों का अतिरेक दोहन किया जा रहा है। इस प्रकार की प्रवृत्तियों पर रोक लगाकर तथा सिंचाई की परम्परागत एवं आधुनिक तकनीकों जैसे–फव्वारा सिंचाई (Sprinkle Irrigation), बून्द–बून्द सिंचाई (Drip Irrigation) आदि के योग से सिंचाई हेतु जल की मांग में कमी की जा सकती है ।
7. **अपशिष्ट जल का शोधन (Purification of Waste Water) :** प्रदूषित एवं अपशिष्ट जल के शोधन द्वारा उसे पुन: उपयोगी बना कर जल की कमी को एक सीमा तक हटाया जा सकता है। यद्यपि अपशिष्ट जल का शोधन पर्याप्त खर्चीला होता है तथा इसके लिये उच्च तकनीक की आवश्यकता होती है, परन्तु इस प्रकार शोधित जल उद्योगों, कृषि आदि की जल आवश्यकताओं की पूर्ति में उपयोगी हो सकता है।

पृथ्वी पर जीवन की रक्षा के लिए जल संसाधनों का संरक्षण अपरिहार्य है, अन्यथा भविष्य में जल संसाधन राजनीतिक संघर्षों का केन्द्र बन जायेंगे।

9.5.4 खनिज संसाधनों का संरक्षण (Conservation of Natural Resources)

खनिज पदार्थ, आर्थिक दृष्टि से विश्व के सबसे अधिक मूल्यवान प्राकृतिक संसाधन हैं। मानव सभ्यता के विकास के साथ ही साथ खनिजों के उपयोग में भी निरन्तर वृद्धि हुई है। वर्तमान मशीन युग (Machine age) में खनिज संसाधन आधारभूत हैं तथा इनके बिना औद्योगीकरण एवं आधुनिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आज खनिजों के अनुसन्धान, परिशोधन एवं वस्तु निर्माण में विज्ञान एवं तकनीकी का बहुतायत से उपयोग किया जा रहा है तथा खनिजों के उत्पादन एवं उपयोग में भारी वृद्धि की जा रही है। विश्व में खनिजों का वितरण बड़ा असमान एवं असंतुलित है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में खनिजों एवं खनिजों से बनी वस्तुओं का विनिमय प्रमुखता से किया जा सकता है। खनिज संसाधन अनवीकरणीय संसाधन (Non–renewable resource) हैं। अत: आधुनिक विकास की प्रक्रिया एवं अर्थतंत्रीय ढांचे की सुरक्षा के लिए खनिज संसाधनों का संरक्षण आवश्यक है। खनिज संरक्षण हेतु प्रमुख उपाय निम्नांकित हैं–

1. **भूगर्भिक सर्वेक्षण एवं नये खनिज क्षेत्रों की खोज :** वर्तमान खनिज सम्पदा के उपयोग के साथ–साथ नवीन क्षेत्रों का खोज कार्य नियमित रूप से किया जाना आवश्यक है। यह अन्वेषणों एवं वैज्ञानिक अनुसन्धान का ही परिणाम है कि आज सागर तली से अनेक प्रकार के खनिज पदार्थों का निष्कर्षण किया जा रहा है। सभी खनिज सम्भावित क्षेत्रों का आधुनिकतम तकनीकी से व्यापक सर्वेक्षण किया जाना चाहिए तथा जटिल संरचनात्मक क्षेत्रों से खनिज विदोहन की तकनीक विकसित की जानी चाहिए।
2. **खनिजों का बहुउद्देश्यीय उपयोग :** विविध प्रकार से उपयोग करते हुए सीमित मात्रा में उपलब्ध खनिजों का भी पर्याप्त लाभ उठाया जा सकता है। विभिन्न धात्विक खनिजों के सम्मिश्रण से मिश्रित धातुएँ (Alloys) प्राप्त होती हैं जो अत्यधिक उपयोगी होती हैं। खनिजों के बहुउद्देश्यीय उपयोग द्वारा इनकी उपयोगिता में वृद्धि होती है तथा सीमित मात्रा में उपलब्ध खनिजों का संरक्षण भी होता है।
3. **उत्खनित खनिजों से अधिकतम धातु प्राप्त करना :** आज तकनीकी विकास के उपरान्त भी खनिज अयस्कों से धातु तत्व की पूर्ण मात्रा को निकालना सम्भव नहीं हो पाया है। खानों से उत्खनन के पश्चात् परिशोधन (Refinement) द्वारा खनिजों की अशुद्धियाँ दूर की जाती हैं। जिससे वास्तविक खनिज प्राप्त होता है। इसकी मात्रा औसतन 40 से 60 प्रतिशत और कभी–कभी इससे भी बहुत कम होती है। उन्नत परिशोधन विधियों के विकास द्वारा इस मात्रा में वृद्धि की जानी चाहिये, जिससे अधिकतम खनिज तत्व प्राप्त हो सकें और जो धातु व्यर्थ चली जाती है उसका भी उपयोग हो सके।
4. **सुरक्षित भण्डार गृहों की स्थापना :** खनिजों के भण्डारण की समुचित व्यवस्था न होने के कारण उत्खनन के पश्चात् स्थानान्तरण, परिवहन आदि में बडी मात्रा में उनका क्षय होता है। (विशेषत: अधात्विक खनिजों का) अत: खनिजों के उचित भण्डारण एवं रख–रखाव की व्यवस्था की जानी चाहिये।

5. **खनिजों के विकल्पों की खोज:** खनिजों के उपयोग में तीव्र वृद्धि एवं सुरक्षित भण्डारों की कमी को देखते हुए यह आवश्यक है कि उनके विकल्पों की खोज हेतु अनुसन्धान किया जाय। आज अनेक स्थितियों में धातुओं के स्थान पर प्लास्टिक के प्रयोग में वृद्धि हुई है । इस दिशा में पर्याप्त अनुसंधान की आवश्यकता है, जिससे भविष्य में खनिजों का उपयोग सुनिश्चित हो सके।
6. **नियोजित खनन:** खनिज संरक्षण हेतु खनन कार्य को नियोजित करना आवश्यक है। अनेक बार विदेशी दबाव अथवा व्यापारिक लाभ हेतु खनिजों का अन्धाधुन्ध खनन किया जाता है और उन्हें सस्ते मूल्यों पर विदेशों में बेच दिया जाता है, जिससे खनिज भण्डारों के शीघ्र समाप्त होने का संकट उत्पन्न हो जाता है। अत: आवश्यकतानुसार नियोजित रूप से खनन किया जाना चाहिए।
7. **धातु का बारम्बार उपयोग:** धातु खनिजों से बनी वस्तुओं का उपयोग सीमित समय तक होता है, किन्तु उसमें प्रयुक्त धातु को बार–बार उपयोग में लाया जा सकता है। इसी प्रकार धातु छीलन (scrap) का भी समुचित उपयोग आवश्यक है, जिससे धातु उपयोग में वृद्धि हो सके और अतिरिक्त धातु की मांग में कमी की जा सके।
8. **गहराई तक खनन: सामान्यत:** खनिजों को ऊपरी सतह पर या सीमित गहराई तक खोद कर छोड़ दिया जाता है, क्योंकि जैसे–जैसे गहराई में वृद्धि होती है, लागत (Cost) बढ़ती जाती है, उच्च तकनीक की आवश्यकता होती है और जोखिम भी अधिक होता है। किन्तु यह प्रवृत्ति खनिजों के उपयोग एवं संरक्षण के लिये हानिकारक हैं, क्योंकि बचा हुआ खनिज वहाँ अनुपयोगी रह जाता है और उसे कालान्तर में दोबारा प्राप्त करने के लिए भारी वित्तीय निवेश की जरूरत पड़ती है। अत: समन्वित आर्थिक एवं तकनीकी प्रबन्ध द्वारा अधिकाधिक गहराई तक खनन किया जाना चाहिये।
9. **उचित प्रबन्धन :** खनिज संरक्षण हेतु उचित खनिज प्रबन्धन अत्यधिक आवश्यक है जिससे वर्तमान में खनिजों के उचित उपयोग के साथ ही भविष्य में उनकी उपलब्धता सुनिश्चित हो सके। खनिज संसाधनों के उचित प्रबन्धन हेतु निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं–
   (i) खनिज संसाधनों के सर्वेक्षण की व्यवस्था करना,
   (ii) खनिजों के उपयोग का प्राथमिकता के आधार पर निर्धारण करना,
   (iii) खनिज क्षेत्रों का निर्धारण एवं अनियमित खनन पर रोक,
   (iv) उपलब्ध खनिजों का विवेकपूर्ण एवं वैज्ञानिक रीति से उपयोग,,
   (v) खनिजों के प्रतिस्थापक पदार्थों की खोज,
   (vi) खनन में आधुनिक विधियों का उपयोग,
   (vii) सामरिक महत्व के एवं अल्प मात्रा में उपलब्ध खनिजों के संरक्षण की विशेष व्यवस्था करना,
   (viii) व्यापार हेतु खनिजों के विदोहन पर नियंत्रण,
   (ix) खनिजों के सुरक्षित भण्डार एवं उपयोग को दृष्टिगत रखते हुए दीर्घकालीन कार्य – योजना का निर्माण आदि।

9.5.5 ऊर्जा संसाधनों का संरक्षण (Conservation of Power Resources)

आधुनिक विकास के साथ ही साथ, सभी क्षेत्रों में ऊर्जा की खपत एवं मांग में आशातीत वृद्धि हुई है। ऊर्जा संसाधनों की बहुलता एवं उच्च उत्पादकता वाले देश अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सीधा दखल रखते हैं। आज विश्व के अधिकांश देश ऊर्जा की कमी की समस्या से ग्रसित है और अपनी सकल राष्ट्रीय आय (G N I) का बड़ा हिस्सा ऊर्जा संसाधनों पर खर्च करते हैं। विश्व की अधिकांश ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति कोयला तथा पैट्रोलियम पर निर्भर हैं और ये दोनों ही अनवीकरणीय, विषम वितरित तथा सीमित सुरक्षित भण्डारों वाले ऊर्जा संसाधन हैं। अत: ऊर्जा संसाधनों के सन्दर्भ में वैश्विक चिन्ता, जहाँ इनकी उत्पादन वृद्धि से सम्बन्धित है, वहीं वैकल्पिक साधनों के प्रयोग द्वारा इनके परिरक्षण एवं संरक्षण से भी जुड़ी हुई है।

9.5.5.1 कोयला संरक्षण (Conservation of Coal)

कोयला संरक्षण हेतु निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं–

1. **खनन क्षेत्रों के सन्निकट कोयला शोधन की व्यवस्था:** खदानों से निकला कोयला अशुद्ध होता है। औद्योगिक प्रक्रियाओं में समुचित उपयोग एवं बेहतर उष्मा प्राप्ति हेतु इसका शोधन आवश्यक होता है। कोयला शोधन की व्यवस्था खदान क्षेत्रों के समीप ही की जानी चाहिए, जिससे न केवल आर्थिक लागतों में कमी की जा सकती है, अपितु परिवहन आदि में होने वाली क्षति को भी कम किया जा सकता है।
2. **कोयला खनन हेतु आधुनिक मशीनों का प्रयोग:** कोयले का खनन यदि आधुनिक मशीनों द्वारा किया जाए, तो खनन के समय होने वाली कोयले की क्षति को न्यूनतम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक मशीनों से अधिक गहराई तक कोयला निकाला जा सकता है, जिससे क्षेत्र के कोयला संसाधन को अधिकतम उपयोग किया जा सकता है।
3. **रसायन उद्योग में कोयले का प्रयोग:** कोयले का प्रयोग रसायन उद्योग (Chemical Industry) में कच्चे माल (Raw Material) के रूप में किया जाता है, जिससे अनेक उपयोगी पदार्थ प्राप्त होते हैं, जैसे Coal Gas, कोलतार, बेन्जोल (Benzole), अमोनियम सल्फेट आदि। इन उद्योगों में कोयले के समुचित उपयोग द्वारा छीजत (waste) कम करके कोयले का संरक्षण किया जा सकता है।
4. **ऊर्जा उत्पादन में आधुनिकतम तकनीकों का प्रयोग–** ताप विद्युत गृहों, धातु शोधन उद्योगों, वाष्प इंजिनों आदि में आधुनिकतम तकनीकों के प्रयोग से कोयले से प्राप्त ऊर्जा एवं उष्मा के उत्पादन में अधिक दक्षता लाई जा सकती है, जिसके द्वारा अपेक्षाकृत कम कोयले के उपयोग से अधिक ऊर्जा का उत्पादन हो सकेगा और कोयले का संरक्षण किया जा सकेगा।
5. **घटिया कोयले की ईंटों का उपयोग–** जर्मनी, पोलेण्ड, बेल्जियम, हॉलेण्ड, रूस आदि यूरोपीय देशों में घटिया पीट कोयले की ईंटों (briquet) का प्रयोग उष्मा के लिए किया जाता है। इस प्रकार की ईंट कोयले के चूरे से भी बनाई जा सकती है, जिससे घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त न्यून मोटाई वाले कोयले के संस्तरों के खनन की तकनीक का विकास, कोयले का उचित रख–रखाव तथा परिवहन आदि कोयला संरक्षण में सहायक हो सकते हैं।

9.5.5.2 खनिज तेल (पेट्रोलियम) का संरक्षण (Conservation of Petrolium)

ऊर्जा संसाधनों के अन्तर्गत सर्वाधिक आवश्यकता खनिज तेल के संरक्षण की है क्योंकि परिवहन क्रान्ति (Transport Revolution) के पश्चात् पेट्रोलियम पदार्थों के उपभोग में अत्यधिक वृद्धि हुई है। विश्व में खनिज तेल का वितरण सीमित क्षेत्रों में संक्रेन्दित है, जिसके कारण अधिकांश देशों को खनिज तेल के आयात पर निर्भर रहना पड़ता है। वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में खनिज तेल की बढ़ती कीमतों के कारण अनेक देशों की अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हुई है। खनिज तेल की मांग के कारण निरन्तर उत्पादन वृद्धि से सुरक्षित भण्डारों पर भारी दबाव पड़ रहा है। यही कारण है कि पैट्रोलियम संरक्षण के प्रति आज विश्व के सभी देश सचेष्ट हैं। खनिज तेल के संरक्षण हेतु निम्न उपाय अपेक्षित हैं–

(i) सार्वजनिक परिवहन, Rapid Transit, और दूसरी ऐसी प्रणालियों को विकसित कर परिवहन के क्षेत्र में पेट्रोलियम की खपत को कम करना,

(ii) प्रौद्योगिकी सुधार द्वारा नये इंजिनों का विकास करना, जिनमें पेट्रोल, डीजल आदि की खपत कम होती हो,

(iii) व्यापक सर्वेक्षणों द्वारा खनिज तेल के नये क्षेत्रों का पता लगाना एवं उन्हें विकसित करना,

(iv) सागरीय क्षेत्रों से तेल के उत्पादन में वृद्धि करना,

(v) वर्तमान खनिज तेल के भण्डारों का आकलन करना एवं आवश्यकतानुसार उत्पादन नियन्त्रित करना,

(vi) तेल उत्खनन एवं परिशोधन में नवीनतम तकनीकों का प्रयोग करना,

(vii) पैट्रो–रसायन पदार्थों के अनुसन्धान को प्रोत्साहित करना,

(viii) तकनीकी हस्तान्तरण (Technology Transfer) द्वारा विकासशील एवं कम विकसित देशों को पैट्रोलियम पदार्थों की बचत करने वाली तकनीक उपलब्ध कराना।

(ix) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खनिज तेल के संरक्षण की व्यापक कार्य योजना बनाना,

(x) ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों जैसे Bio–diesel आदि के विकास द्वारा पेट्रोलियम पदार्थों के उपभोग में कमी लाना,

उपर्युक्त परिपेक्ष्य में ऊर्जा संसाधनों के संरक्षण की गम्भीर आवश्यकता है। वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों एवं पुनर्नवीकरणीय (Renewable) ऊर्जा संसाधनों के अधिकाधिक प्रयोग द्वारा न केवल कोयला एवं खनिज तेल जैसे ऊर्जा संसाधनों पर निर्भरता कम की जा सकती है। अपितु इन संसाधनों का संरक्षण भी किया जा सकता है। आणविक ऊर्जा (Atomic Energy) के सुरक्षित उपयोग से भविष्य की ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति संभव है।

बोध प्रश्न–1

1. World Resources and Industries नामक पुस्तक के लेखक कौन है ?

.....

.....

2. संसाधन बनने के लिए किसी वस्तु में किन दो गुणों का होना आवश्यक है ?

.....

.....

3. वे संसाधन, जो पृथ्वी पर सामान्यतः पाये जाते है, क्या कहलाते है ?

.....

.....

4. लियोनार्ड जोबलर के अनुसार वर्तमान में संसाधनों के प्रयोग की कौन सी अवस्था जारी हे ?

.....

.....

5. 'संरक्षण' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया?

.....

.....

6. IUCN का पूरा नाम बताइये।

.....

.....

7. सन 2002, में भारत में कितने जैव मण्डल आरक्षित क्षेत्र निर्धारित थे ?

.....

.....

8. लकड़ी की नियन्त्रित कटाई की किन्हीं दो विधियों का नाम लिखिए।

.....

.....

9. 'समोच्च रेखीय जुताई' किस प्राकृतिक संसाधन के संरक्षण की विधि है?

.....

.....

10. कोयले से प्राप्त किन्हीं दो उपयोगी पदार्थों के नाम लिखिए।

.....

.....

11. ऊष्मा के लिए घटिया पीट कोयले की ईंटों का प्रयोग किन यूरोपीय देशों में किया जाता है?

.....

.....

12. दो प्रमुख क्षयशील तथा अनवीकरणीय ऊर्जा संसाधनों का नाम लिखिए।

.....
.....

9.6 सारांश (Summary)

प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण वर्तमान विश्व की प्रमुख आवश्यकता है। इस उत्तरदायित्व का वहन संगठित प्रयासों द्वारा ही सम्भव है। विकासशील देशों में जहाँ संसाधन विकास की आवश्यकता है वहीं यह भी आवश्यक है, कि उनका अतिरिक्त शोषण न हो। (विशेषकर विकसित देशों द्वारा) ज्ञान–विज्ञान और तकनीकी विकास के माध्यम से संसाधनों का दक्षतम उपयोग किया जा सकता है कि किन्तु यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि ये संसाधन केवल वर्तमान हेतु ही नहीं हैं, अपितु भविष्य में भी इनकी आवश्यकता होगी। अत: संरक्षण के प्रति सदैव सचेष्ट रहना आवश्यक है। संसाधनों के उचित उपयोग द्वारा हम वर्तमान के साथ–साथ भविष्य को भी सुन्दर और सुखद बना सकते हैं।

9.6 शब्दावली (Glossary)

- **पुनर्नवीकरणीय संसाधन (Renewable Resources) :** वे संसाधन जिनकी पुनर्स्थापना संभव है ।
- **अनवीकरणीय संसाधन (Non renwable Resources) :** वे संसाधन जिनकी पुनर्स्थापना संभव नहीं है।
- **स्थानान्तरणशील कृषि (Shifting Cultivation) :** आदिवासियों द्वारा बारम्बार वनों को नष्ट करते हुए, की जाने वाली कृषि।
- **मरूस्थलीकरण (Desertification) :** शुष्क क्षेत्रों में पारिस्थितिकी विनाश की प्रक्रिया।
- **जल ग्रहण क्षेत्र (Water Shed) :** जल विभाजकों द्वारा पृथक इकाई क्षेत्र, जिसमें संग्रहित जल किसी एक निश्चित चैनल से होकर निकलता है।
- **जल भराव (Water logging) :** अतिरेक सिंचाई के कारण मृदा की ऊपरी परत के नीचे अप्रवेश्य लवणीय सतह की उपस्थिति से भूमि में निरन्तर पानी भरा रहना।

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. सक्सेना, हीरमोहन : **पर्यावरण एंव पारिस्थितिकी भूगोल,** राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2002
2. Saxena, H.M. : **Environmental Management,** Rawat Publications, Jaipur, 2004
3. कौशिक, गर्ग : **संसाधन एवं पर्यावरण,** रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2004
4. सिंह, सविन्द्र : **पर्यावरण भूगोल,** प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2002
5. गुर्जर, जाट : **संसाधन एवं पर्यावरण,** पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2004

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. जिम्मरमैन
2. उपयोगिता एवं कार्यात्मकता
3. सामान्य सुलभ संसाधन (Stage of future scarcity)
4. भविष्य में कमी की अवस्था (Stage of future scarcity)
5. गिफोर्ड पिन्वोट
6. International Union for the Conservation of the Nature
7. 15
8. वरणात्मक कटाई एवं परिरक्षित कटाई
9. मृदा संरक्षण
10. अमोनियम सल्फेट, कोलतार
11. जर्मनी, पोलेण्ड, बेल्जियम, हॉलेण्ड, रूस
12. कोयला एवं पैट्रोल

9.9. अभ्यासार्थ प्रश्न

1. संसाधनों के अर्थ एवं प्रकृति का विवेचन करते हुए, प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।
2. संसाधन संरक्षण की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसकी आवश्यकता का विश्लेषण कीजिए।
3. वन संसाधनों के संरक्षण के उपायों का वर्णन कीजिए।
4. जैव विविधता पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
5. मृदा संसाधनों के विनाश के परिणामों एवं संरक्षण विधियों पर प्रकाश डालिए।
6. वर्तमान विश्व में ऊर्जा संसाधनों के संरक्षण की आवश्यकता एवं उपायों की समीक्षा कीजिए।

इकाई 10 : पर्यावरण प्रबंधन: आवश्यकता, संकल्पनायें एवं उपागम (Environment Management : Need, Concepts and Approaches)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 पर्यावरण प्रबंधन की संकल्पना

10.3 पर्यावरण प्रबंधन की आवश्यकता

10.4 पर्यावरण प्रबंधन के उद्देश्य

10.5 पर्यावरण प्रबंधन के उपागम

10.6 पर्यावरण प्रबंधन के विविध पक्ष

10.6.1 पर्यावरण अवबोध तथा जनचेतना

10.6.2 पर्यावरण शिक्षा एवं प्रशिक्षण

10.6.3 संसाधन संरक्षण

10.6.4 पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन

10.6.5 पर्यावरण अवकर्षण तथा गुणवत्ता प्रबंध

10.7 भारत में पर्यावरण प्रबंधन

10.8 सारांश

10.9 शब्दावली

10.10 संदर्भ ग्रन्थ

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे कि–

- पर्यावरण प्रबंधन का अभिप्राय,
- पर्यावरण प्रबंधन की संकल्पना,
- पर्यावरण प्रबंधन की आवश्यकता,
- पर्यावरण प्रबंधन का उद्देश्य,
- पर्यावरण प्रबंधन के विभिन्न उपागम,
- पर्यावरण प्रबंधन के विविध महत्वपूर्ण पक्ष,
- भारत में पर्यावरण प्रबंधन।

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्राकृतिक पर्यावरण मात्र मानव ही नहीं वरन् संपूर्ण जीव जगत का आधार है। पर्यावरण के विभिन्न तत्वों का निरन्तर उपयोग करके ही मानव ने विकास के विभिन्न सोपान तय किये हैं। किन्तु अपने सामाजिक–आर्थिक विकास व प्रगति के लिए किए गए आधुनिक मानव के कुछ कार्य उसके लिए आत्मघाती सिद्ध हुए हैं। प्राकृतिक संसाधनों का अन्धाधुन्ध शोषण करके मानव पर्यावरण के मूल तत्वों को नष्ट करने पर उतारू हो गया है। पर्यावरण के अत्यधिक शोषण के कारण आज पारिस्थितिक सन्तुलन में बाधा, पर्यावरण हास, पर्यावरण प्रदूषण, भूमण्डलीय ताप में वृद्धि, ओजोन परत का क्षरण, आदि अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं। पर्यावरण संकट से निपटने के लिए पर्यावरण प्रबंधन की अवधारणा का विकास हुआ। मानव विकास की प्रारंभिक अवस्था में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन सीमित था, किन्तु बढ़ती जनसंख्या तथा तकनीकी विकास के कारण अतिदोहन होने लगा। अर्थात विकास की प्रक्रिया पर्यावरण हास का कारण बन गयी। वर्तमान विश्व के समक्ष उपस्थित पर्यावरण की विभिन्न समस्याओं का समाधान पर्यावरण के उचित नियोजन व प्रबंधन से ही संभव है। इसके अंतर्गत विकासीय कार्यों के लिये प्राकृतिक संसाधनों का बुद्धिमतापूर्ण उपयोग करने के साथ ही दुर्लभ एवं बहुमूल्य संसाधनों का संरक्षण तथा पृथ्वी पर स्वस्थ जीवन के लिये पर्यावरण के विभिन्न घटकों की गुणवत्ता का परिरक्षण करना है

10.2 पर्यावरण प्रबंधन की संकल्पना या अवधारणा (Concept of Environment Management)

पर्यावरण प्रबंधन पर्यावरण संकट से निपटने का एक मार्ग है, जिसमें नियोजन, विश्लेषण व मूल्यांकन द्वारा सीमित संसाधनों के विवेक सम्मत उपयोग तथा मानव की वर्तमान प्राथमिकताओं में परिवर्तन, आदि पक्ष सम्मिलित हैं, जिससे कि पर्यावरण के घटकों की उपयोगिता बनी रहे। पर्यावरण प्रबन्धन से तात्पर्य पर्यावरण के उचित उपयोग तथा संरक्षण के उपायों से है, ताकि यह जीव जगत के अधिकाधिक हित में हो तथा न्यूनतम प्रदूषण उत्पन्न करे जिससे कि पारिस्थितिक तन्त्र का सन्तुलन बना रहे।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति तथा प्राकृतिक संसाधन संरक्षण संगठन (IUCN) के अनुसार, "मानव कल्याण के लिए पारिस्थितिकी नियमों के आधार पर समस्त प्राकृतिक संसाधनों की निरन्तरता बनाये रखने हेतु इनका विवेकसम्भत उपयोग करते हुए इन्हें संरक्षण प्रदान करना तथा विकास कार्यों में इन नियमों को प्राथमिकता देना ही पर्यावरण प्रबंधन है।"

डेनिस मीडोज के अनुसार "पर्यावरण प्रबंधन की संकल्पना सामान्यत: पर्यावरण प्रतिरूप (मॉडल) से संबंधित होती है, जो यह सुनिश्चित करता है कि पूंजी, वार्षिक कृषि निवेश तथा भूमि विकास में वृद्धि के साथ खाद्य पदार्थों की आपूर्ति में भी वृद्धि होगी, परन्तु पर्यावरण प्रबंधन का प्रतिरूप इन कारकों की सीमाओं, आने वाली चुनौतियों तथा समस्याओं से निपटने के लिये नीतियों को भी समाहित करता है।" इस प्रकार पर्यावरण प्रबंधन मानव द्वारा प्रकृति के साथ

यथोचित समायोजन से संबंधित है, जिसमें पारिस्थितिकी संतुलन तथा पारिस्थितिक स्थिरता को भंग किये बिना प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण विदोहन एवं उपयोग किया जाना वांछनीय है।

पर्यावरण प्रबंधन की मूल अवधारणा अत्यन्त प्राचीन है। सैद्धान्तिक दृष्टि से नयी शब्दावली के कारण हमें यह नवीन लगती है। हजारों वर्ष पूर्व मानव तथा प्रकृति के रिश्ते अत्यन्त मधुर थे। हमारे पूर्वज पर्यावरण की कार्यव्यवस्था के बारे में पूरी जानकारी रखते थे और पर्यावरण प्रबंधन के साथ पूर्ण तालमेल से रहा करते थे। अपनी मूलभूत आवश्यकता के लिए वे पूर्णतया प्रकृति पर निर्भर थे। प्रकृति को ही वे पालनकर्ता मानते थे और अपनी सीमित आवश्यकताओं में ही प्रसन्न रहते थे। पर्यावरण से उनका संबंध सहजता पर आधारित था। पर्यावरण के प्रति उनके विकसित ज्ञान का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि वे इस बात से अवगत थे कि, आवश्यकता से अधिक फसल उगाने और चराई कराने से मिट्टी का क्षरण होता है और उपजाऊ भूमि रेगिस्तानी भूमि में बदल जाती है। लेकिन आज के तथाकथित विकास ने हमारे पर्यावरण के प्रति ज्ञान को सीमित कर राष्ट्रों के बीच क्षेत्रीयता की भावना और कुछ आर्थिक समूहों का निर्माण कर बड़ी मात्रा में गरीबी व हिंसा को बढ़ाया है तथा नए राष्ट्रों पर अपना आर्थिक अधिकार कर उनके पर्यावरण को बिगाड़ा है। आज मात्र 20 प्रतिशत लोग पृथ्वी के 80 प्रतिशत साधनों का उपयोग कर रहे हैं। इस असंगति ने पर्यावरण में अनेक समस्याएं उत्पन्न कर दी हैं। मनुष्य की कृत्रिम आवश्यकताएं निरन्तर बढ़ रही हैं और उनकी पूर्ति भी हो रही है। उत्पादन, उपभोग और वितरण की इस प्रक्रिया में उचित प्रबन्धकीय व्यवस्था के अभाव में पर्यावरण के तत्वों का गुणात्मक हास हो रहा है। अत: आज हमारे समक्ष चुनौती यह है कि, पर्यावरण को क्षति पहुंचाए बिना और पारिस्थितिकी संतुलन को भंग किए बिना गरीबी और अभाव की स्थिति से कैसे मुक्ति प्राप्त की जाए तथा विकास प्रक्रिया को निरन्तर जारी रखा जाय।

अस्तु,पर्यावरण प्रबंध का आशय ऐसी व्यवस्था से है जिसमे संसाधनों का दोहन, विनियोजन एवं प्रौद्योगिकी के विकास एवं संस्थागत परिवर्तन की दिशाओं का निर्धारण मानव की तात्कालिक आवश्यकताओं के साथ–साथ भावी आवश्यकताओं को भी दृष्टिगत रख कर किया जाता है। जिससे मानवीय आवश्यकताओं और अपेक्षाओं को पूरा करने की वर्तमान और भावी क्षमताओं में वृद्धि हो । इस तरह पर्यावरण प्रबंधन में दीर्घकालीन दृष्टि से वृद्धि करने वाले सभी मात्रात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तन, आर्थिक विकास और पारिस्थितिकी के मध्य संतुलन और उनमें मात्रात्मक एवं गुणात्मक वृद्धि की कार्यनीति सम्मिलित है। पर्यावरण प्रबंधन की उपरोक्त अवधारणा मानव कल्याण की वर्तमान वृद्धि के साथ–साथ उसे दीर्घकाल में अधिकतम बनाने का लक्ष्य लेकर चलती हैं। पर्यावरण प्रबंधन की अवधारणा और कार्यनीति में वे सभी प्रयास सम्मिलित हैं, जो मानव के उन सभी कार्यों एवं घटनाओं का परिसीमन एवं प्रबंधन करते हैं, जिनकी वजह से वर्तमान पर्यावरणीय संकट उत्पन्न हुआ है। ये प्रयास स्थानीय स्तर से लेकर विश्व स्तर तक किये जा सकते हैं। इन प्रयासों में सफलता की प्राप्ति के लिए एक सुनियोजित और सुविचारित कार्ययोजना कीं आवश्यकता होती है।

10.3 पर्यावरण प्रबंधन की आवश्यकता (Need of Environment Management)

पर्यावरण के विभिन्न तत्व जीवन के आधार हैं। विकास की प्रक्रिया में मानव ने पर्यावरण की गुणवत्ता की घोर उपेक्षा की है। इसके कारण आज पृथ्वी पर समस्त जीव जगत का अस्तित्व खतरे. में पड़ गया है।

वर्तमान विश्व में इस विषय में जागरूकता के साथ चिंता भी बढ़ रही है कि जिस पर्यावरण में हम रहते हैं, वह बड़ी तेजी से दूषित हो रहा है। कुछ ही वर्षो पहले तक वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास को मानवजाति एक सहज, स्वाभाविक मानवीय उपलब्धि मानकर चल रही थी, जिसकी कोई सीमा नहीं थी। किन्तु शीघ्र ही यह अनुभव होने लगा कि औद्योगिक विकास अनन्त तक चलने वाला नहीं है, उसकी सीमाएँ हैं और उन सीमाओं की अनदेखी करना भयंकर भूल भी हो सकती है। पिछले डेढ़–दो सौ वर्षो में स्वयं के कल्याण में ही मानव इतना अधिक व्यस्त रहा और यह भूल गया कि प्रकृति की प्रत्येक वस्तु का एक कारण है, जिसका कुछ न कुछ परिणाम अवश्य होता है। "इस निमित्त मानव ने अपनी बौद्धिक क्षमता का एक पक्षीय परिचय देते हुए पृथ्वी सतह की संरचना में स्टेपीज और प्रेअरीज जैसे क्षेत्रों में खेती प्रारंभ कर दी। वनों की कटाई, कृत्रिम झील, सिंचाई प्रणाली खनिज उत्खनन, वायुमण्डल तथा जल स्रोतों में विभिन्न अपशिष्टों के विसर्जन द्वारा जैवमण्डल में परिवर्तन तथा क्षेत्रीय एवं विश्व स्तर पर ताप एवं ऊर्जा संतुलन में परिवर्तन कर दिया। मानव द्वारा प्राकृतिक संतुलन में किये गये इन परिवर्तनों का परिणाम आज हमें जल, वायु, भूमि प्रदूषण, अम्ल वर्षा, घटते वन एवं वन्य जीव, बाढ़, सूखा, मिट्टी का क्षरण, कृषि योग्य भूमि का अपक्षरण, मरूभूमि का चतुर्दिक फैलाव, भू–स्खलन, प्राकृतिक जल विभाजक क्षेत्रों की बर्बादी, जलाभाव की आपदा, धरातलीय जल संतुलन में गिरावट, पर्यावरण का कीटनाशकों द्वारा विषकरण, विकिरण के जैविकीय दुष्प्रभावों, जनसंख्या की असमान वृद्धि, छोटे–छोटे क्षेत्रों में बढ़ती भीड़, अस्थिर पारिस्थितिकी तन्त्रों, ओजोन विरलता और विश्व तापमान में वृद्धि के रूप में परिलक्षित होता है। पर्यावरण की यह दुर्दशा पृथ्वी पर मानव के अस्तित्व के लिए खतरा बन रही है। प्रौद्योगिकी के विकास के साथ–साथ हमारे पास पृथ्वी के पारिस्थितिकी तन्त्रों को बुरी तरह से प्रभावित करने की क्षमता तो आ गई परन्तु इन तन्त्रों की कार्य प्रणाली की समझ हमें अभी भी नहीं हैं। पर्यावरण की' क्षति पूर्ति कर लेने की प्रकृति के पास बड़ी क्षमता है लेकिन इस क्षमता की भी सीमाएँ हैं। जनसंख्या के अस्तित्व और संसाधनों के समुचित उपयोग के मूलभूत नियमों के प्रति हमारी अज्ञानता से जैवमण्डल का पारिस्थितिकी संतुलन निरन्तर बिगड़ रहा है।

अत: आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने पर्यावरण की देखरेख अथवा उसका प्रबंधन सही तरीके से करें। पर्यावरणीय व्यवस्थाओं में हमारी दखलअंदाजी कम से कम हो। यह बात सुनिश्चित, कर लेनी चाहिए कि हमारे किसी भी क्रियाकलाप से पर्यावरण की नैसर्गिक गुणवत्ता में हास न हो। इसके लिए हमें अपने पर्यावरण और उसके सम्मुख खतरों के बारे में जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता है। हमारी गतिविधियों से पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का

अनुमान और विश्लेषण करना चाहिए, ताकि हम पहले से ही सावधानी के उपाय ढूँढ़ लें। पर्यावरण के प्रति सही दृष्टिकोण विकसित करने के लिए लोगों को शिक्षित करने की भी जरूरत हैं। उक्त पक्षों के प्रबंधन, नियमन और नियोजन के द्वारा ही हम मानव अस्तित्व की सुरक्षा और पर्यावरण की गुणवत्ता को दीर्घकाल तक बनाये रख सकते है।

10.4 पर्यावरण प्रबंधन के उद्देश्य (Objectives of Environment Management)

पर्यावरण प्रबंधन का मूल उद्देश्य पर्यावरण ह्रास रोकने के लिए प्रकृति के साथ समायोजन स्थापित करना है। विश्व विकास रिपोर्ट 1992 में पर्यावरण प्रबंधन और विकास के लिए दो आधार बताये गए–

(1) ऐसी नीति का निर्धारण जो उत्पादन और पर्यावरण में धनात्मक सहसम्बन्ध स्थापित करके अनुपयुक्त व असफल नीतियों में संशोधन करे और तकनीक में सन्तुलन और लाभदायक आय में विकास का मार्ग प्रशस्त करे ।

(2) ऐसी लक्ष्य निर्धारित नीति जो पर्यावरण के विशिष्ट पक्षों से सम्बन्धित समस्याओं व्यवस्थाओं तथा सुविधाओं के मूल्यांकन में पर्यावरणीय आधारों पर प्रबन्धन का आधार बन सकें।

पर्यावरण प्रबन्धन के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं :

1. पर्यावरण के सभी घटकों को प्रदूषित होने से बचाना,
2. विलुप्त होती जीवों की प्रजातियों को संरक्षित कर जैव विविधता बनाये रखना,
3. पर्यावरण नियोजन हेतु प्रारूप तैयार करना,
4. पर्यावरण सम्बन्धी राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय नीति निर्धारण में सहयोग करना,
5. पर्यावरण संरक्षण नीतियों व कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सहयोग प्रदान करना,
6. सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं में पर्यावरण प्रबन्धन हेतु समन्वय करना,
7. पर्यावरण प्रबंध हेतु व्यापक स्तर पर वांछित आंकड़े एकत्रित करना तथा उनका विश्लेषण करना,
8. विकास परियोजनाओं की स्थापना से पूर्व उनके पर्यावरणीय प्रभाव का आकलन करना,
9. पर्यावरण की गुणवत्ता बनाये रखने हेतु निरन्तर पुनरीक्षण की व्यवस्था करना,
10. पर्यावरण प्रबंधन हेतु किए गए उपायों के परिणामों की नियमित जांच व सुधार करना,
11. पर्यावरण प्रबंधन हेतु मानवीय एवं संस्थागत साधन जुटाना,
12. अवक्रमित (Degraded) पर्यावरण के पुनरूद्धार के प्रयास करना,
13. पर्यावरण संरक्षण विषयक जन चेतना जागृत करना,
14. पर्यावरण शिक्षा तथा पर्यावरण शोध को प्रोत्साहन आदि।

10.5 पर्यावरण प्रबंधन के उपागम (Approaches to Environment Management)

पर्यावरण प्रबंधन की रणनीतियां बनाते समय विभिन्न उपागम अपनाये जाते है, जिनमें प्रमुख निम्न है–

1. **स्थानिक उपागम :** क्षेत्रीय एवम् स्थानिक दृष्टि से पर्यावरण प्रबंधन तीन स्तरों पर तैयार किया जाता है– स्थानीय पर्यावरण प्रबंधन, प्रादेशिक पर्यावरण प्रबंधन तथा वैश्विक पर्यावरण प्रबंधन।
2. **कालिक उपागम :** सामयिक आधार पर पर्यावरण प्रबंधन उपागम में पूर्वानुभव, पर्यावरण अवकर्षण का वर्तमान स्तर तथा पर्यावरण संवर्द्धन की भावी योजना सम्मिलित है। काल पक्ष की दृष्टि से अल्पकालिक एवम् दीर्घकालिक प्रबंधन भी इसी का अंग है। पर्यावरण में होने वाले कुछ परिवर्तन अल्पकालिक होते है तो कुछ चिरकालिक होते हैं। प्रबंधन में इसका ध्यान रखना आवश्यक होता है।
3. **संरक्षणवादी उपागम :** इसके अंतर्गत दो प्रमुख उपागम हैं, परिरक्षात्मक उपागम तथा संरक्षणात्मक उपागम।

परिरक्षात्मक उपागम के अनुसार मानव को अपने पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करना चाहिए तथा प्रकृति के साथ छेड़छाड़ की भावना नहीं रखनी चाहिए। यह उपयोग व्यावहारिक नहीं है, क्योंकि प्रकृति के उपागम द्वारा ही विकास संभव है।

यह उपागम प्रकृति दोहन को निषिद्ध मानता है। सामान्य रूप से मनुष्य को अपने विकास के लिए प्रकृति का विभिन्न रूपों में दोहन करना ही पड़ता है।

संरक्षणात्मक उपागम के अन्तर्गत प्रकृति के सन्तुलित दोहन को महत्वपूर्ण माना गया है। अर्थात् विकास की पोषणीय (Sustainable) नीति का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ना चाहिए ताकि विकास के साथ प्रकृति का सन्तुलन बरकरार रह सके। इस तरह संरक्षणात्मक उपागम के दो प्रमुख आधार हैं– पहला प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के समय पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों को कम करना, दूसरा पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित प्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा पारिस्थितिक तंत्रों की अधिकतम उत्पादकता प्राप्त करना।

बोध प्रश्न – 1

1. पर्यावरण के उचित उपयोग तथा संरक्षण के उपाय जिससे पारिस्थितिक तंत्र का संतुलन बना रहे, कहलाता है।

   .....

   .....

2. पर्यावरण के अत्यधिक शोषण के कारण उत्पन्न वैश्विक समस्या का एक उदाहरण दीजिये।

   .....

   .....

3. पर्यावरण प्रबंधन का कोई एक उद्देश्य बताइये।

.....

.....

4. पर्यावरण प्रबंधन का कोई एक उपागम बताइये।

.....

.....

5. पर्यावरण प्रबंधन का कौन सा उपागम प्रकृति दोहन को निषिद्ध मानता है?

.....

.....

10.6 पर्यावरण प्रबंधन के विविध पक्ष (Various Aspects of Environment Management)

सामान्यत: किसी भी प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र के पर्यावरण प्रबंधन में सामाजिक–आर्थिक विकास तथा पारिस्थितिकीय सिद्धान्तों के आधार पर पर्यावरण की गुणवत्ता का परिरक्षण जैसे पक्ष मुख्यत: सम्मिलित होते है। पर्यावरण नियोजन एवम् प्रबंधन के अंतर्गत समस्त जीव–जगत को सम्मिलित किया जाना चाहिये।

पर्यावरण प्रबन्धन बहु पक्षीय उपायों एवं बहु स्तरीय कार्य योजनाओं पर आधारित होता है। इसमें पर्यावरण के सभी घटकों की गुणवत्ता बनाये रखने के उपाय किए जाते है। यद्यपि इसके अन्तर्गत पर्यावरण हास को रोकने वाले विभिन्न पक्षों का समावेश होता है, किन्तु उन पक्षों पर अधिक ध्यान दिया जाता है जो मानव के सामाजिक–आर्थिक, विकास पर सीधा प्रभाव डालते हैं। उदाहरणार्थ, विकसित देशों में प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से उत्पन्न समस्याएं हैं, तो विकासशील देशों में संसाधनों के अल्प विकास से उत्पन्न समस्याएं है, किन्तु पर्यावरण प्रबन्धन की मूल भावना एक ही होती है।

1. पर्यावरण अवबोध तथा जनचेतना
2. पर्यावरण शिक्षा एवम् प्रशिक्षण
3. संसाधन संरक्षण
4. पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन
5. पर्यावरण अवकर्षण तथा गुणवत्ता प्रबंध

10.6.1 पर्यावरण अवबोध तथा जनचेतना (Environment Awareness)

साधारणतया पर्यावरण अवबोध से अभिप्राय है, पर्यावरण के प्रति हमारा दृष्टिकोण अर्थात् मनुष्य पर्यावरण को किस रूप में देखता है। पर्यावरण के वास्तविक उपयोग एवं दुरूपयोग से होने वाली हानियों से अवगत होना तथा इनके प्रति चेतना व उदासीनता के दृष्टिकोण को अवबोध की संकल्पना कहते हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य पर्यावरण में रहकर अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा वातावरणीय सूचनायें अभिग्रहीत करता है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा एकत्रित की गई प्राथमिक सूचनाएँ भिन्न–भिन्न मनुष्यों में भिन्न होती है। उदाहरण के लिए प्राकृतिक वन को देखकर कुछ मनुष्यों में यह अभिग्रहण होता है कि इसमें इमारती लकड़ी या उपयोगी फल–फूल कितने

हैं, अन्य लोग उसकी वातावरणीय उपयोगिता को ग्रहण करते हैं। कुछ के लिए वो मात्र सुहावना दृश्य है तो अन्य के लिए वो वन्य–जीवों का रहने का स्थान है। इस प्रकार मनुष्य का वातावरण के साथ व्यवहार इस तथ्य पर निर्भर करता है कि वह अपने वातावरण को किस प्रकार देखना या महसूस करता है। पर्यावरण बोध एक ऐसा तथ्य है जो मानव व्यवहार को नियंत्रित करने की क्षमता रखता है। इसके द्वारा उसके निर्णय प्रभावित होते हैं।

पर्यावरण बोध से तात्पर्य मानव के उस ज्ञान और आचरण से है जो प्रकृति से सामंजस्य स्थापित कर प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता है। नैसर्गिक संवेदना के अनुसार अपने आचरण को संतुलित कर संसाधनों का उपयोग करता है। आज विश्व के अग्रणी कहे जाने वाले विकसित देशों में भय का वातावरण पनप रहा है, क्योंकि औद्योगिक उत्पादन की प्रगति के लिए इन देशों ने प्रकृति की अनदेखी की है। इनका पर्यावरण बोध इतना कमजोर हो गया है कि वे अपने जल, हवा, मिट्टी और वनस्पति को प्रदूषित कर रहे हैं, जो जीवन के आधार हैं। इन देशों ने अपनी उच्च तकनीक से संसाधनों का इतना दोहन और उपयोग किया, कि अगली पीढ़ी के लिए कुछ बचाना इन्हें याद ही नहीं रहा।

पर्यावरण बोध पर्यावरण के सानिध्य से जन्म लेता हैं। पर्यावरण का सानिध्य मानवीय गुणों को जन्म देता है। पर्यावरण बोध उस सामाजिक जागरूकता को कहते हैं, जो मनुष्य में प्रकृति–प्रेम व सामंजस्य की प्रवृत्ति को जागृत रखता है। पर्यावरण बोध केवल शिक्षा पाठ्यक्रम का अंग नहीं हैं, इसका सम्बन्ध मानवीय संस्कार से है।

पर्यावरण के प्रति जनजागृति या चेतना का सूक्ष्म किन्तु आधारभूत आयाम पर्यावरण अवबोध है। पर्यावरण बोध से प्रेरित समाज स्वयमेव इसे जनजागृति का आधार बनाता है। निरंतर घटते प्राकृतिक संसाधनों, ओजोन क्षरण, तेजाबी वर्षा इत्यादि पर्यावरणीय समस्याओं के लिये स्वयं मानव उत्तरदायी है। पर्यावरण की देख–भाल, सुरक्षा व इसे सन्तुलित रूप प्रदान करने हेतु उचित प्रबन्धन व जन भागीदारी की आवश्यकता है। जन भागीदारी, जनजागृति से ही संभव है। अत: प्रत्येक वृद्ध, युवा व बालक– बालिकाओं को पर्यावरण का ज्ञान करवाना एवं इसे स्वच्छ बनाए रखने की शिक्षा देना सरकार व समाज दोनों के ही प्रमुख दायित्व है। पर्यावरणीय जनजागृति के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है:

1. चूंकि पर्यावरण ही हमारा जीवन है, अत: पर्यावरणीय घटकों, परितंत्र, जैविक तंत्र, ऊर्जा के प्रवाह, घटकों के मध्य अन्योन्य क्रियाओं, जैव–भू–रासायनिक चक्रों इत्यादि की सम्पूर्ण जानकारी करवाना।
2. पर्यावरण की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए आर्थिक एवं सामाजिक विकास सुनिश्चित करना अर्थात् विनाश रहित विकास की अवधारणा को प्रबल करना।
3. वृक्ष हमारे जीवन के आधार है। इन्हें नष्ट नहीं करने तथा सघन वृक्षारोपण के लाभों की जानकारी जनमानस को उपलब्ध करवाना।
4. प्राकृतिक संसाधनों के स्रोत सीमित हैं, परन्तु इनका उपयोग भी आवश्यक है। पेट्रोलियम उत्पादों जैसे डीजल, व पेट्रोल, खनिजों, जल इत्यादि तत्वों के तर्कसंगत व न्यायोचित उपयोग व दक्षता से दोहन का ज्ञान प्रचारित करना।

5. स्वच्छ जल, वायु एवं मृदा से स्वच्छ पर्यावरण का निर्माण होता है। इसीलिए इन्हें प्रदूषित होने से बचाना एवं ऐसे विकासशील कार्यों को ही अंतिम रूप देना जो प्रदूषण रहित हों अथवा कम से कम प्रदूषण फैलाते हों। अत: विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों, इनके कारकों, प्रभावों एवं निराकरण के पहलुओं से जन–जन को अवगत कराना पर्यावरणीय जन जागृति का विशिष्ट अभियान है।
6. पर्यावरण के प्रबन्धन एवं इनके घटकों के प्रति मानव के दोस्ताना व्यवहार के ज्ञान से जन–चेतना जगाना। संचार के माध्यमों से लक्ष्य की प्राप्ति करना जैसे रेडियो, टीवी, लोक नाट्य, प्रदर्शनी, संगोष्ठी आदि।

10.6.2 पर्यावरणीय शिक्षा एवम् प्रशिक्षण (Environment Education and Training)

पर्यावरणीय शिक्षा पर्यावरण प्रबन्धन का अभिन्न अंग है। लोगों में पर्यावरण बोध को जागृत करना, पर्यावरण की समस्याओं से अवगत कराना, पर्यावरणीय दृष्टिकोण विकसित करना, पर्यावरण के घटकों के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न करना, पर्यावरण के विभिन्न पक्षों की जानकारी प्रदान करना पर्यावरण संरक्षण में सहभागिता अर्जित करना तथा पर्यावरणीय कानूनों की जानकारी आदि पक्ष इसमें सम्मिलित हैं। 1981 में 'पर्यावरण शिक्षा' पर भारतीय पर्यावरण संस्था ने निम्न सुझाव प्रस्तुत किये–

1. पर्यावरण शिक्षा का स्वरूप पर्यावरण नीति के विकास में सहायक हो तथा मानव के प्राकृतिक वातावरण के प्रति सम्बन्धों का द्योतक हो। पर्यावरण शिक्षा के अध्ययन से प्रत्येक व्यक्ति में यह भावना विकसित हो कि वह अपने आपको पर्यावरण का महत्वपूर्ण घटक समझे।
2. अध्यापन के विभिन्न स्तरों (माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर) में पर्यावरण शिक्षा का समन्वय होना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता विकसित हो सके।
3. पर्यावरण शिक्षा की गुणवत्ता इतनी हो कि वह विविध पर्यावरणीय संकल्पनाओं तथा सिद्धान्तों की जानकारी देने में समर्थ हो।
4. विभिन्न दिशा–निर्देश कार्यक्रम आरम्भ करके पर्यावरण से जुड़े अध्यापकों, चिकित्सकों, इंजीनियरों, नियोजकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, प्रशासकों व राजनीतिज्ञों को पर्यावरण शिक्षा कार्यक्रम को सुदृढ़ बनाने हेतु महत्वपूर्ण कार्य करने चाहिए।
5. विश्वविद्यालय स्तर पर विद्यार्थियों को मानव एवं पर्यावरण के मध्य सम्बन्धों का अध्यापन कराना चाहिए। इसके लिए उनसे विभिन्न पर्यावरणीय घटकों पर (case) अध्ययन कराकर प्रतिवेदन तैयार करवाना चाहिए।
6. शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर विद्यार्थियों को पर्यावरण जागरूकता तथा प्रशिक्षण देना चाहिए।
7. एकीकृत ग्रामीण विकास की प्रक्रिया में पर्यावरण सम्बन्धी पक्षों के सम्मिलित करना चाहिए।
8. पर्यावरण शिक्षा के द्वारा स्थानीय एवं क्षेत्रीय पर्यावरण के उपयोग, समस्याओं तथा उसके निवारण का ज्ञान करवाना चाहिए।

पर्यावरण शिक्षा एक अन्तर्विषयक विषय होने के कारण इसके समग्र अध्ययन के लिये विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों के ज्ञान का उपयोग करना आवश्यक है। पर्यावरण शिक्षा या अध्ययन वर्तमान में एक स्वतंत्र विषय के रूप में स्थापित हो चुका है। सामान्यत: इसके अंतर्गत निम्न तथ्यों का समावेश आवश्यक है–

1. **पर्यावरण के घटक :** मृदा, जलराशियाँ, वनस्पति, जलवायु, प्राणी, स्थलाकृति आदि।
2. **मानव पर्यावरण सम्बन्ध :** विभिन्न विचारधाराएं, निश्चयवाद, संभववाद, नवनिश्चयवाद आदि।
3. **पर्यावरण उपयोग :** कृषि, पशु पालन, सिंचाई, उद्योग, खनन, परिवहन।
4. **विकास तथा पर्यावरण समस्याएं :** प्रदूषण (जल, वायु, भूमि, शोर) वन विनाश, नगरीकरण, औद्योकिरण, ऊर्जा संकट, मरूस्थलीकरण, प्राकृतिक प्रकोप, संसाधनों की कमी।
5. **पर्यावरण संरक्षण :** प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण, प्रदूषण नियन्त्रण, वैकल्पिक संसाधन।
6. **पर्यावरण प्रबन्धन :** पर्यावरण प्रबंधन के विविध पक्ष प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय, पर्यावरण अधिनियमों का नियमन, पर्यटन स्थलों तथा अभयारण्यों का विकास, जनसंख्या वृद्धि व पर्यावरण में सामंजस्य, सतत् विकास, पर्यावरण चेतना का विकास आदि।

पर्यावरण शिक्षा को मात्र विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों तक ही सीमित न रखकर इसे अनोपचारिक शिक्षा के रूप में जन–जन तक पहुँचाना आवश्यक है। जहाँ जनसंख्या का एक बड़ा भाग अशिक्षित हो तो अनौपचारिक शिक्षा का महत्व और बढ़ जाता है। निरक्षर, कम पढ़े–लिखे तथा दैनिक काम–धंधों में संलग्न व्यक्तियों को अनौपचारिक रूप से पर्यावरण शिक्षा दी जानी चाहिये। मेले, प्रदर्शनी, फिल्म, पोस्टर, लोक नाट्य, रेडियो, दूरदर्शन आदि माध्यम इस दृष्टि से अत्यंत उपयोगी हो सकते है।

10.6.3 संसाधन संरक्षण (Resource Conservation)

प्राकृतिक संसाधनों का निरन्तर घटता भण्डार तथा गुणवत्ता में हास मानव के लिए चिन्ता के विषय हैं। मानव की आवश्यकताओं में निरन्तर वृद्धि हो रही है, तथा भविष्य में भी यह वृद्धि जारी रहने की सम्भावना है। एक ओर मानव के ज्ञान–विज्ञान में उन्नति के कारण संसाधनों के दोहन की क्षमता बढ़ी है, तो दूसरी ओर विश्व जनसंख्या में निरन्तर हो रही वृद्धि के कारण मांग में वृद्धि हुई है। इसके परिणामस्वरूप अगली पीढ़ी के लिए संसाधनों के अभाव की समस्या उत्पन्न हो गई है। मानव की आवश्यकताएं अनन्त हैं, जबकि प्रकृति प्रदत्त संसाधन सीमित हैं। संसाधनों के संरक्षण की विवेकपूर्ण नीति द्वारा ही भविष्य में संसाधनों के अभाव या न्यूनता की समस्या का हल सम्भव है। संरक्षण का अभिप्राय संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग से है। हेगेट के शब्दों में,' 'प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग का अनुकूलतम समय निर्धारण ही संसाधन संरक्षण है।" संरक्षण का आशय संसाधनों का उपभोग बन्द करने से नहीं है, और बंद किया भी नहीं जा सकता है। इसका आशय उस व्यवस्था या प्रबंधन से है, जिसके द्वारा वर्तमान संसाधनों का अधिकाधिक समय तक उपयोग किया जा सके। संसाधन संरक्षण को "व्यावहारिक पारिस्थितिकी"

भी कहा जाता है। पर्यावरण के कुछ प्रमुख संसाधनों का प्रबन्धन निम्न प्रकार से करके उन्हें संरक्षण प्रदान किया जा सकता है:

1. वन प्रबंधन : पारिस्थितिक सन्तुलन में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वन नव्यकरणीय प्राकृतिक संसाधन हैं, जिनका उचित प्रबन्धन करके अनन्तकाल तक उपयोग सम्भव है। वनों के प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष अनेक लाभ हैं। इनमें मृदा संरक्षण, मृदा में नमी बनाये रखना, वायुमण्डल को शुद्ध रखना, मरूस्थलीकरण को रोकना, तापमान को नियन्त्रित रखना, वर्षा को प्रभावित करना आदि प्रमुख हैं। आधुनिक काल में वनों का अत्यधिक विनाश हुआ है। तीव्र जनसंख्या वृद्धि, औद्योगीकरण, नगरीकरण, स्थानान्तरणशील कृषि, अधिवासों की स्थापना, अनियन्त्रित पशुचारण, वृहद् सिंचाई परियोजनाएं, खनन, इत्यादि वन विनाश के प्रमुख कारण हैं। वन क्षेत्र तेजी से सिमटते जा रहे हैं। पादपों की अनेक प्रजातियां विलुप्त हो गई हैं तथा अनेक विलुप्ति के कगार पर है। विश्व पर्यावरण को बचाना है तो वनों को बचाना होगा। वन प्रबन्धन के द्वारा ही वनों का संरक्षण व संवर्द्धन सम्भव है। वन प्रबन्धन के प्रमुख पक्ष निम्न हैं:

1. वनों की नियन्त्रित एवं वैज्ञानिक विधि से कटाई,
2. दावाग्नि पर प्रभावी नियन्त्रण के उपाय,
3. प्रत्येक क्षेत्र में वनों के निश्चित अनुपात कोबनाये रखना,
4. वनों का हानिकारक कीटों से रक्षण,
5. वनों का नियमित सर्वेक्षण तथा संरक्षण कार्यों का मूल्यांकन,
6. सघन वनों में मानवीय हस्तक्षेप पर रोक (कृषि, पशुचारण, खनन, अधिवास आदि),
7. पुनर्वनारोपण करना,
8. ईंधन के लिए वनों पर निर्भरता घटाने हेतु वैकल्पिक साधनों का विकास,
9. वनों की अवैध कटाई पर प्रभावी रोक के लिए अधिक चौकसी तथा वन संरक्षण कानूनों को कड़ाई से लागू करना,
10. वृहद परियोजना स्थलों के चयन से पूर्व वन विनाश का आंकलन,
11. संकटग्रस्त पादप जातियों के संरक्षण के समुचित उपाय,
12. वन संरक्षण तथा संवर्द्धन कार्यों में जनसहभागिता,
13. सामुदायिक वनों का विकास।

2. वन्य जीव प्रबंधन (Wild Life Management) : वन्य जीव पर्यावरण के महत्वपूर्ण घटक हैं। ये पारिस्थितिक सन्तुलन को बनाये रखने में सहयोग करते हैं। किसी भी कारण से इनकी संख्या में अत्यधिक कमी या अत्यधिक वृद्धि, पर्यावरण के लिए हानिकारक होती है। वन्य जीवों की निरन्तर घटती संख्या चिन्ता का विषय है। औद्योगीकरण, वन विनाश, नगरीकरण, खनन, परिवहन तथा कृषि के कारण जीवों के प्राकृतिक आवासों का नष्ट होना, जन्तुओं का शिकार व तस्करी, अनियन्त्रित पशुचारण, बाढ़, सूखा, दावाग्नि, आदि कारणों से वन्य प्राणियों के जीवन पर संकट बढ़ता जा रहा है । वन्य जीवों की अनेक जातियां

लुप्त हो चुकी हैं तथा अनेक संकटग्रस्त हैं। उचित वन्य जीव प्रबन्धन द्वारा ही वन्य जीवों की रक्षा की जा सकती हैं। आज वन्य जीवों के प्रबन्धन की महती आवश्यकता है। वन्य जीव प्रबन्धन के प्रमुख पक्ष निम्न हैं

1. वन्य जीवों की नियमित गणना द्वारा प्रजाति विशेष की वृद्धि या ह्रास की जानकारी प्राप्त करना,
2. संकटग्रस्त जातियों के संरक्षण हेतु विशेष परियोजनाओं (जैसे बाघ परियोजना), राष्ट्रीय उद्यान एवं अभयारण्यों की स्थापना,
3. परभक्षियों की संख्या पर नियन्त्रण तथा जैव विविधता बनाये रखना,
4. समय–समय पर वन्य जीवन संरक्षण नीतियों का मूल्यांकन व आवश्यकतानुसार संशोधन,
5. वन्य जीवों के नियन्त्रण कारकों (भोजन, जल, आवास आदि) की पहचान करके तद्रुरूप की व्यवस्था,
6. दावाग्नि, बाढ़ व सूखा जैसी प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के समुचित प्रबन्ध,
7. वनों की कटाई, शिकार, तस्करी, अत्यधिक पशुचारण आदि पर प्रभावी रोक,
8. जीव जन्तुओं के अभाव वाले क्षेत्रों में कृत्रिम प्रयासों से जीवों की संख्या में वृद्धि,
9. वन क्षेत्रों तथा अभयारण्यों में पर्यटन, परिवहन, इत्यादि गतिविधियों को एक निश्चित सीमा में रखना,
10. वन्य जीवों में फैलने वाले रोगों की रोकथाम,
11. वन्य प्राणियों के प्रति जन संवेदना तथा उनके संरक्षण हेतु जनचेतना का प्रसार आदि।

3. मृदा प्रबन्धन : मृदा प्रकृति द्वार प्रदत्त एक आधारभूत संसाधन है। इसका प्रभाव प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से पर्यावरण के अन्य घटकों पर भी पड़ता है। मृदा का निर्माण दीर्घकाल में होता है, जबकि प्राकृतिक व मानवीय कारकों द्वारा इसका अपरदन कम ही समय में हो जाता है। मृदा अपरदन से गुणवत्ता का क्षरण होता है। उपजाऊ भूमि बंजर भूमि में परिवर्तित हो जाती है। रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों के अधिक प्रयोग से मृदा प्रदूषित हो जाती है। अधिक सिंचाई के कारण क्षारीयता बढ़ने से मृदा की उत्पादकता नष्ट हो जाती है। अधिक चराई व वनों की कटाई से शुष्क प्रदेशों में मरूस्थलीकरण की प्रक्रिया तेज होती हैं। वनस्पति के अभाव में मृदा में प्लस की कमी होती है। भारत की लगभग 53 प्रतिशत भूमि कुप्रबन्धन का शिकार है। मृदा अपरदन एवं मृदा की उर्वरा शक्ति में ह्रास की समस्या से निपटने के लिए समुचित मृदा प्रबन्धन आवश्यक है।

मृदा प्रबन्धन के अन्तर्गत निम्न पक्ष सम्मिलित हैं :

1. मृदा अपरदन से प्रभावित क्षेत्रों की पहचान करके अपरदानकारी कारकों का मूल्यांकन करना,
2. मृदा संरक्षण की जैविक विधियों (वनस्पति आवरण, फसल चक्रीकरण, पट्टीदार कृषि, जैविक खाद का प्रयोग, पशुचारण पर नियन्त्रण, आदि) तथा यान्त्रिक विधियों (समोच्च रेखीय जुताई, वेदिकाकरण, अवनालिकाओं पर बांध बनाना, आदि) का प्रयोग,
3. मृदा परीक्षण तथा पोषक तत्वों की कृत्रिम आपूर्ति,
4. कीटनाशकों व रासायनिक उर्वरकों का सीमित व सुरक्षित प्रयोग,

5. सिंचाई में जल प्रबन्धन की वैज्ञानिक तकनीक का प्रयोग,
6. प्रदूषित जल से मृदा का बचाव,
7. स्थानानान्तरणशील कृषि पर रोक,
8. प्रदूषित मृदा के उपचार हेतु विभिन्न उपाय करना, जैसे – अम्लीय मृदा में चूना तथा क्षारीय मृदा में कैल्शियम सल्फेट मिलाना।
9. मृदा संरक्षण विषयक जनचेतना का संचार तथा मृदा प्रबन्धन में अधिकाधिक जनसहभागिता आदि।

4. जल प्रबंधन : जल पृथ्वी पर समस्त जीवों का आधार है, अत: इसकी गुणवत्ता व पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता बनाये रखना आवश्यक है। वर्तमान समय में जनसंख्या वृद्धि, तीव्र औद्योगीकरण, सिंचित भूमि के विस्तार आदि कारणों से जल संसाधनों का शोषण तीव्र गति से बढ़ा है। दूसरी ओर मानव की अनेक गतिविधियों के कारण जल प्रदूषित हो रहा है। इनमें जलराशियों के औद्योगीक अपशिष्टों का विसर्जन, घरेलू मल जल का प्रवाह, कीटनाशकों व उर्वरकों का बढ़ता प्रयोग आदि प्रमुख है। जल के उपभोग में होने वाली तीव्र वृद्धि, घटते भूमिगत जल स्तर तथा जल प्रदूषण के कारण जल संकट निरन्तर गहराता जा रहा है। मांग के अनुरूप जल की आपूर्ति बहुत बड़ी समस्या बन गई है। जल के उचित प्रबन्धन द्वारा इस

समस्या को नियन्त्रित किया जा सकता है। जल प्रबन्धन के प्रमुख पक्ष निम्न है:

1. जल संसाधनों का सर्वेक्षण व मूल्यांकन करके उपयोग हेतु कार्य योजना बनाना,
2. वर्षा जल को रोककर अधिकाधिक उपयोग तथा भूमिगत जलस्तर में वृद्धि,
3. जलाशयों व नहरों के जल का पुनर्वितरण,
4. आधुनिक यान्त्रिक सिंचाई विधियों का प्रयोग करके जल की बचत,
5. जल की गुणवत्ता का नियमित परीक्षण व शुद्धीकरण,
6. प्रदूषकों के जल राशियों में विसर्जन पर प्रभावी रोकथाम,
7. औद्योगिक तथा घरेलू बह:स्त्राव को उपचारित करके जल का पुनर्चक्रण।
8. भूमिगत जल का नियन्त्रित उपयोग,
9. उद्योगों में जल की अत्यधिक खपत को कम करने के लिए उन्नत तकनीक का विकास,
10. जलाशयों में शैवालों की वृद्धि पर नियन्त्रण,
11. जल संसाधनों के संरक्षण तथा उपभोग में मितव्ययता हेतु जनचेतना का संचार करना आदि।

5. खनिज सम्पदा प्रबन्धन : प्राकृतिक संसाधनों में खनिज सम्पदा का महत्वपूर्ण स्थान है । खनिज पदार्थ अनव्यकरणीय प्राकृतिक संसाधन हैं, जिनकी मानव द्वारा फिर से क्षतिपूर्ति सम्भव नहीं हैं। ये प्रकृति में सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं। पृथ्वी पर इनका वितरण भी असमान है। औद्योगिक विकास के लिए किए जाने वाले खनिजों के अविवेकपूर्ण दोहन के कारण आज अनेक खनिजों के भण्डार समाप्ति की कगार पर पहुँच गए हैं। आने वाली पीढ़ियों के लिए खनिजों के अभाव का संकट उत्पन्न हो गया है। अत्यधिक खनन से

पर्यावरण को हानि हो रही है। खनन के कारण वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण व ध्वनि प्रदूषण की समस्या बढ़ी है। खनन क्षेत्रों से निकलने वाला मलवा प्राकृतिक भू–दृश्य को विकृत करता है। भविष्य में खनिजों की उपलब्धता बनाये रखने तथा पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने के लिए खनिज संसाधनों का उचित प्रबन्धन आवश्यक है। खनिज सम्पदा के प्रबन्धन के प्रमुख पक्ष निम्न हैं :

1. उपलब्ध खनिज भण्डारों का सर्वेक्षण तथा सही आकलन,
2. नये खनिजों व खनिज क्षेत्रों की खोज के सतत् प्रयास,
3. निक्षेपों से खनिजों का पूर्ण निष्कर्षण,
4. खनिजों की उपलब्ध मात्रा के आधार पर नियन्त्रित खनन,
5. उत्खनित खनिज अयस्कों से अधिकाधिक खनिजों की प्राप्ति,
6. खनिजों के सुरक्षित भण्डारण की व्यवस्था,
7. उत्खन्न की उन्नत तकनीक का प्रयोग करके अपव्यय में कमी,
8. खनिजों का बहु उद्देश्यीय प्रयोग करना,
9. विरल खनिजों के विकल्पों की खोज,
10. धात्विक खनिजों का बारम्बार प्रयोग,
11. खनन अपशिष्टों का उचित निस्तारण, गर्तों का समतलीकरण तथा वनीकरण।

6. ऊर्जा संसाधनों का प्रबन्धन : ऊर्जा विकास का आधार है। ऊर्जा के द्वारा ही जीवमण्डलीय वृहद् पारिस्थितिक तन्त्र परिचालित होता है। ऊर्जा संसाधनों को उनके स्रोतों के आधार पर निम्न रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. कोयला
2. खनिज तेल
3. प्राकृतिक गैस
4. प्रवाहित जल
5. आणविक ईंधन
6. ज्वार भाटा
7. सौर्यशक्ति
8. पवन ऊर्जा
9. भूतापीय ऊर्जा आदि।

ऊर्जा के पारम्परिक स्रोत : कोयला, पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस आदि निश्चित मात्रा में पाये जाते है। अत: एक निश्चित समयोपरान्त इनका समाप्त होना तय है। एक अनुमान के अनुसार कोयला एंव पेट्रोलियम क्रमश: आगामी 450 तथा 50 वर्षो में समाप्त हो जायेंगे। इस प्रकार ऊर्जा संसाधनों के प्रबन्धन का महत्वपूर्ण पक्ष ऊर्जा के अपरम्परागत स्रोतों का विकास करना है। इन अपरम्परागत या असीमित ऊर्जा संसाधनों में सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा, बायो गैस आदि महत्वपूर्ण हैं। इन साधनों को विकसित करने, प्रचारित करने

और उपयोग में लेने में भी प्रबन्धन की भूमिका प्रभावी हो सकती हे। सामान्यतया ऊर्जा प्रबन्धन के निम्न पक्ष महत्वपूर्ण हैं–

1. जीवाश्मीय ईंधनों (कोयला, खनिज तेल, गैस) के उपयोग को सीमित करना।
2. ऊर्जा के गैर परंपरागत स्रोतों का विकास करके इनके प्रचलन को बढ़ाना।
3. जीवाश्मीय ईंधनों के उपयोग से पर्यावरण को होने वाली हानि को प्रबन्धित करना।
4. इनके नये स्रोतों की खोज करना।
5. जलविद्युत उत्पादन हेतु ऐसे स्थानों का चयन करना जहाँ पर्यावरण पर प्रभाव न्यूनतम हो।
6. परमाणु संयन्त्रों की स्थापना एवं देखरेख को उचित व्यवस्था हो।
7. बिजली के मानक उपकरणों को बढ़ावा दिया जाये,
8. विद्युत वितरण प्रणाली को दुरूस्त किया जाये ताकि वितरण हानि को रोका जा सके।
9. ऊर्जा की बचत ही ऊर्जा का उत्पादन है, जनसामान्य में इसका प्रचार किया जाये।

10.6.4 पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन (Environment Impact Assessment)

(इकाई 12 में इसका विस्तृत विवरण दिया गया है)

10.6.5 पर्यावरण अवकर्षण तथा गुणवत्ता प्रबंध (Environment Degradation and quality Management)

पर्यावरण अवकर्षण तथा प्रदूषण नियंत्रण पर्यावरण प्रबंधन के तात्कालिक महत्व के पक्ष हैं। पर्यावरण हास का प्रमुख कारण पर्यावरण के विभिन्न घटकों का प्रदूषित होना है। पर्यावरण प्रदूषण आज विश्व के समक्ष एक ज्वलन्त समस्या के रूप में है। प्रदूषण का दुष्प्रभाव मात्र मानव पर ही नहीं अपितु पर्यावरण के अन्य घटकों, जैसे वनस्पति, जन्तु आदि पर भी पड़ता है। पारिस्थितिक असन्तुलन, जनसंख्या वृद्धि, औद्योगीकरण, वन विनाश आदि कारणों से पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हुई है। प्रदूषण के कारण जीवन के आधार तत्वों–जल, वायु, मृदा आदि की प्राकृतिक गुणवत्ता में तीव्रता से हास हुआ हैं। विकसित एवं विकासशील सभी देश कम या अधिक रूप से प्रदूषण की चपेट में है। अत: प्रदूषण नियन्त्रण हेतु विश्व स्तर पर समन्वित तथा नियोजित प्रयास करने की आवश्यकता है। पर्यावरण के तत्वों की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए किए जाने वाले प्रबन्धन को गुणवत्ता प्रबन्धन कहते हैं। इसके अन्तर्गत जल, वायु, भूमि तथा ध्वनि प्रदूषण को नियन्त्रित करने के विभिन्न उपाय सम्मिलित है। उत्पादन व आर्थिक विकास की प्रक्रिया को अवरूद्ध नहीं किया जा सकता है, अत: प्रदूषकों के उत्पन्न होने पर भी पूर्ण रोक लगाना सम्भव नहीं है, किन्तु इनकी मात्रा तथा दुष्प्रभावों को कम अवश्य किया जा सकता है। वायु, जल तथा भूमि की गुणवत्ता बनाये रखने हेतु इनके प्रबन्धन की आवश्यकता है। (वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण आदि के स्रोत, प्रभाव एवं नियंत्रण का विस्तृत उल्लेख इकाई 5, 6 तथा 7 में किया गया है।)

10.7 भारत में पर्यावरण प्रबन्धन (Environment Management in India)

भारत में पर्यावरण प्रबन्धन की शुरूआत वैदिक काल से ही हो गई थी। वेदों एवं पुराणों में भूमि, जल, पवन, वनस्पति, अन्तरिक्ष, सूर्य, नदी, इत्यादि पर्यावरण के घटकों की पूजा अर्चना करने तथा पवित्रता बनाये रखने का उल्लेख मिलता है। किन्तु पर्यावरण नव चेतना का प्रारम्भ 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में आयोजित स्टॉकहोम सम्मेलन के पश्चात् हुआ। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इस सम्मेलन में दिए अपने भाषण में पर्यावरण के विविध पक्षों की ओर विश्व समुदाय का ध्यान आकृष्ट किया। स्टॉकहोम की ' मानव एवं जीवमण्डल' गोष्ठी में भाग लेने के बाद भारत में भी ऐसी एक समिति का गठन किया गया, जिसे ' 'पर्यावरणीय नियोजन और समन्वय की राष्ट्रीय समिति" (NCEPC) कहा गया। 1974 में केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड की स्थापना की गई। 1976 में संविधान में एक नया नीति निर्देशक सिद्धान्त जोड़ा गया, जिसके अनुसार "राज्य का यह कर्तव्य होगा कि वह पर्यावरण को बनाये रखे और उसे सुधारे तथा देश के वनों एवं वन्य प्राणियों की रक्षा करे।"

भारत सरकार ने 1980 में एक स्वतन्त्र पर्यावरण विभाग का गठन करके उसे पर्यावरण प्रबन्धन और परिस्थितिकी विकास का कार्य सौंपा गया। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, जल प्रदूषण नियन्त्रण तथा जल संरक्षण हेतु केन्द्रीय बोर्ड, नेचुरल हिस्ट्री के राष्ट्रीय संग्रहालय को इसके अन्तर्गत लिया गया। वर्तमान समय में अधिकांश राज्यों में प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड व पर्यावरण विभाग कार्यरत हैं। केन्द्रीय तथा राज्यों के प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड प्रदूषण की रोकथाम, प्रदूषण स्तर का निरीक्षण, पर्यावरणीय प्रभाव को ध्यान में रखकर उद्योगों को स्वीकृति देने तथा पर्यावरण विषयक जनचेतना जागृत करने के कार्य में संलग्न हैं।

1985 में भारत सरकार द्वारा पर्यावरण, वन और वन्य जीव मन्त्रालय का गठन इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। इसका कार्य क्षेत्र व्यापक है। यह वनस्पति व प्राणियों का सर्वेक्षण, प्रदूषण नियन्त्रण, पर्यावरण संरक्षण, बंजर भूमि विकास बोर्ड, वन संवर्द्धन व वृक्षारोपण, केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन, राष्ट्रीय पुरस्कार, पर्यावरणीय शोध को प्रोत्साहन, पर्यावरणीय सूचनाओं का आदान–प्रदान, पर्यावरणीय शिक्षण व प्रशिक्षण, गैर सरकारी संस्थाओं को पर्यावरण कार्यक्रम हेतु वित्तीय सहायता इत्यादि गतिविधियों का संचालन करता है। देश में प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में पर्यावरण अध्ययन का समावेश किया गया है। पर्यावरण को सुरक्षा प्रदान करने सम्बन्धी लगभग 200 कानूनी धाराएं बनी हुई हैं। पर्यावरण के लिए खतरनाक इकाइयों को तुरन्त बन्द करने या अन्यत्र स्थानान्तरित करने के सम्बन्ध में मन्त्रालय को कानूनी शक्तियां दिए जाने की आवश्यकता है।

सरकारी संस्थाओं के अलावा देश में लगभग 1500 गैर सरकारी संस्थाएं भी पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में कार्यरत हैं। 1973 में उत्तर प्रदेश के चमोली जिले से प्रारम्भ हुआ "चिपको आन्दोलन" आज हिमालय क्षेत्र में पर्यावरण की रक्षा हेतु एक जन आन्दोलन बन गया है। इसी प्रकार का आन्दोलन दक्षिण भारत में "अप्पिको" के नाम से चल रहा है। पश्चिमी राजस्थान के

मरूस्थली क्षेत्र में सामुदायिक प्रयासों से स्थापित" ओरन" पर्यावरण प्रबन्धन के क्षेत्र में एक अनुपम उदाहरण है। ओरन मरूस्थल के वन हैं। हर गांव का अपना एक सामुदायिक वन क्षेत्र "ओरन" होता है, जो कि 500 से 1500 बीघा तक फैला होता है। धार्मिक आस्था के कारण इनमें देवताओं का निवास माना जाता है। इनमें लकड़ी काटने, शिकार करने, मकान बनाने, कृषि करने आदि कार्यों पर रोक होती है। इनका रख–रखाव प्रत्येक ग्रामवासी का कर्तव्य होता है। पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में निरक्षर व कम पड़े लिखे लोगों द्वारा किया गया यह प्रयास अनुकरणीय है

इस प्रकार भारत में पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में अनेक प्रयास हुए हैं। किन्तु अभी भी जनसंख्या का बड़ा भाग पर्यावरण चेतना से अछूता है। अत: सरकारी व गैर सरकारी स्तर पर समन्वित प्रयासों से पर्यावरण संरक्षण व पर्यावरण प्रबन्धन को हमारी जीवन शैली का एक अंग तथा जन–आन्दोलन बनाने की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न – 2

1. पर्यावरण प्रबंधन के दो महत्वपूर्ण पक्ष बताइये।

   .....

   .....

2. पर्यावरण विषयक जनजागृति पैदा करने के प्रमुख माध्यम क्या है?

   .....

   .....

3. वन प्रबंधन के कोई दो पक्ष बनाइये।

   .....

   .....

4. खनिज प्रबंधन के कोई दो पक्ष बताइये।

   .....

   .....

5. ऊर्जा प्रबंधन के कोई दो पक्ष बताइये।

   .....

   .....

10.8 सारांश (Summary)

पर्यावरण के अवकर्षण से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं यथा ओजोन क्षरण, विश्व तापन, अम्ल वर्षा, बढ़ती प्राकृतिक आपदायें आदि से निपटने के लिये पर्यावरण के नियोजन एवं प्रबंधन की आवश्यकता महसूस हुयी। इसके अंतर्गत मानव कल्याण के लिये पारिस्थितिकी नियमों के आधार पर प्राकृतिक संसाधनों का विवेक सम्मत उपयोग करते हुये संरक्षण को प्राथमिकता दी गयी। इसमें मानव की तात्कालिक आवश्यकताओं के साथ ही भावी जरूरतों को भी ध्यान में रखा जाता है। पर्यावरण प्रबंधन में सम्मिलित महत्वपूर्ण पक्ष है–पर्यावरण अवबोध तथा

जनचेतना, पर्यावरण शिक्षा एवम् प्रशिक्षण, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, पर्यावरण प्रभाव का मूल्यांकन एवम् पर्यावरण अवकर्षण तथा गुणवत्ता प्रबंध। पर्यावरण प्रबंधन की दिशा में भारत में सरकारी तथा गैर सरकारी स्तर पर काफी प्रयास किये जा रहे हैं।

10.9 शब्दावली (Glossary)

- **पर्यावरण प्रबंधन :** पारिस्थितिकीय संतुलन बनाये रखते हुये मानवीय क्रियाकलापों के नियमन के लिये बनायी जाने वाली योजना।
- **गुणवत्ता प्रबंधन :** पर्यावरण के तत्वों की मौलिक गुणवत्ता बनाये रखने के लिये किया जाने वाला प्रबंधन।
- **पर्यावरण अवबोध :** मानव का पर्यावरण विषयक वह दृष्टिकोण एवम् आचरण जो प्रकृति से सामंजस्य व प्रेम दर्शाता है।
- **ओरन :** गाँव का सामुदायिक एवम् संरक्षित वन क्षेत्र।
- **चिपको :** हिमालय क्षेत्र में पर्यावरण की रक्षा हेतु चलाया गया जन आंदोलन।
- **अप्पिको :** दक्षिण भारत में पर्यावरण संरक्षण हेतु चलाया गया जन आंदोलन।

10.10 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. रतन जोशी : पर्यावरण भूगोल, साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा, 2003
2. सविन्द्र सिंह : पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1991
3. वी.के. श्रीवास्तव : पर्यावरण और पारिस्थितिकी, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 1990
4. रतन जोशी : पर्यावरण अध्ययन, साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा, 2004
5. आर.एम.लोढ़ा : मानव और पर्यावरण, हिमांशु प्रकाशन, उदयपुर, 1999

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. पर्यावरण प्रबंधन
2. अम्लीय वर्षा
3. पर्यावरण की गुणवत्ता बनाये रखना
4. स्थानिक उपागम–स्थानीय, प्रादेशिक एवम् वैश्विक
5. परिरक्षात्मक उपागम

बोध प्रश्न – 2

1. संसाधन संरक्षण, पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन
2. रेडियो, टीवी, फिल्म, पोस्टर, रैली।
3. पुनर्वनारोपण, सामुदायिक वनों का विकास,
4. नवीन खनिज निक्षेपों की खोज, घात्विक खनिजों का बांरबार प्रयोग,
5. गैर परंपरागत ऊर्जा स्रोतों का विकास, ऊर्जा की बचत।

10.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पर्यावरण अवबोध तथा जनचेतना पर एक लेख लिखिये।
2. पर्यावरण प्रबंधन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालिये।
3. वन, मृदा एवम् जल संसाधनों के संरक्षण के उपाय सुझाइये।
4. भारत में पर्यावरण प्रबंधन प्रयासों का लेखा प्रस्तुत कीजिये।

इकाई 11: जैव–विविधता एवं इसका प्रबंधन (Bio–diversity and its Management)

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 जैव विविधता की परिभाषा

11.3 जैव विविधता के प्रकार

11.3.1 आनुवांशिक विविधता

11.3.2 जातीय विविधता

11.3.3 पारिस्थितिकीय तंत्र विविधता

11.4 जैव भौगोलिक वर्गीकरण

11.4.1 भारत का जैव भौगोलिक वर्गीकरण

11.4.2 भारत के वानस्पतिक प्रदेश

11.4.3 भारत के जन्तु भौगोलिक प्रदेश

11.5 विश्वव्यापी, राष्ट्रीय एवं स्थानीय स्तर की जैव–विविधता

11.5.1 विश्वव्यापी जैव–विविधता

11.5.2 राष्ट्रीय स्तर की जैव–विविधता

11.5.3 स्थानीय स्तर की जैव-विविधता

11.5.4 जैव–विविधता वाले देश के रूप में भारत का स्थान

11.5.5 विश्वस्तर पर प्रजातियों की विविधता

11.6 जैव–विविधता के संवेदनशील क्षेत्र या तप्त स्थल

11.6.1 विश्व के प्रमुख तप्त स्थल

11.6.2 भारत की संकटग्रस्त एवं क्षेत्र विशेषी जातियों

11.6.3 क्षेत्र विशेषी जातियाँ

11.7 जैव–विविधता पर संकट के कारण

11.8 जैव–विविधता का संरक्षण

11.9 संरक्षण नीति

11.10 संरक्षण के प्रकार

11.10.1 स्वस्थाने/स्वआवासीय संरक्षण

11.10.2 बर्हिस्थाने/कृत्रिम आवासीय संरक्षण

11.11 सारांश

11.12 शब्दावली

11.13 संदर्भ ग्रंथ

11.14 बोध प्रश्नों के उतर
11.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे कि–

- जैव–विविधता के प्रकार,
- जैव भौगोलिक वर्गीकरण
- विश्वव्यापी, राष्ट्रीय एवं स्थानीय स्तर की जैव विविधता
- जैव–विविधता के संवेदनशील क्षेत्र,
- जैव–विविधता के संकट के कारण एवं संरक्षण।

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

जैव–विविधता से तात्पर्य वनस्पति एवं प्राणियों में पाये जाने वाले जातीय भेद से है। जैव विविधता शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अमेरिकी कीट विज्ञानी इ.ओ. विल्सन द्वारा 1986 में' अमेरिकन फोरम ऑन बायॉलोजिकल डाइवर्सिटी' में प्रस्तुत रिपोर्ट में किया गया था। वनस्पति एवं प्राणियों के साथ ही स्वयं मानव जाति के लिए भी पृथ्वी पर जैव विविधता होना आवश्यक है। इसका उत्पादक व उपभोगात्मक उपयोग, सामाजिक, नीतिपरक, सौन्दर्यगत व पारिस्थितिक रूप में महत्व है। लाल आकड़ों की पुस्तक (Red Data Book) में संकटग्रस्त पादपों की सूची रखी गई है। पश्चिमी घाट विकास योजना (W.G.D.P.) द्वारा भारत में पश्चिमी घाट की जैव विविधता को संरक्षित रखना था जैव विविधता के महत्व को देखते हुए राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसके संरक्षण के अनेक प्रयास किये जा रहे है।

11.2 जैव–विविधता की परिभाषा (Definition of Bio–diversity)

जैव विविधता के अन्तर्गत विभिन्न जातियों में आनुवांशिक विभिन्नता, किसी क्षेत्र में जातियों की विभिन्नता और किसी भू–भाग में आवास की विविधता को सम्मिलित किया जाता है। लेकिन जैव विविधता को जीवित जीवों से प्रदर्शित किया जाता है। अर्थात एक क्षेत्र विशेष में विविध प्रकार के जातियों के पाए जाने को ही जैव विविधता कहते हैं।

सरल रूप में जैव विविधता से तात्पर्य पारिस्थितिकी से जुड़े समस्त पौधे, पशु एवं सूक्ष्म जीवों के समुदाय एवं प्रजातियों के सम्मिलित होने से है।

विलसन के अनुसार जैव विविधता से तात्पर्य ऐसी छतरी से है, जिसका स्रोत पार्थिव धरातल, समुद्री व अन्य जलीय पारितंत्र के जीव समुदाय एवं विभिन्न प्रजातियाँ है। ये पारिस्थितिकीय विषमताओं से भरे पड़े हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1992 में पृथ्वी सम्मेलन के वन एवं विकास सम्मेलन के दौरान जल, थल तथा समुद्री पारिस्थितिकी में विद्यमान प्राणियों के बीच विविधता और पारिस्थितिकी जटिलता को जैव विविधता कहा है।

11.3 जैव–विविधता के प्रकार (Types of Bio–diversity)

यह मुख्य रूप तीन प्रकार की होती है :–

11.3.1 आनुवांशिक विविधता (Genetic Diversity)

आनुवांशिक विविधता के अन्तर्गत जीवगत जातियों के जीनों (Genes) का वर्णन होता है। इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के पौधों और जीवों के विविध प्रकार के जीन भण्डारों का अध्ययन किया जाता है।

11.3.2 जातीय विविधता (Species Diversity)

जातीय विविधता से तात्पर्य जीवों के वर्गीकरण की लघुतम इकाई जिसके सदस्यों में सर्वाधिक समानता पायी जाती है, और वे परस्पर सन्तानोत्पति करने में समर्थ होते है। दीर्घकालीन पृथकत्व के कारण एक ही जाति के विभिन्न वर्गों में उल्लेखनीय स्थानीय भिन्नतायें भी मिलती है। प्राय: मुख्य जीव या पौधे के नाम पर जातियों का नामकरण कर दिया जाता है। जातीय विविधता के अन्तर्गत विविध जातियों का प्रादेशिक स्तर पर वर्णन किया जाता है।

11.3.3 पारिस्थितिकी तंत्र विविधता (Ecosystem Diversity)

पारिस्थितिक तंत्र से तात्पर्य किसी पर्यावरण के समस्त जीवित एंव अजीवित कारकों की पारस्परिक अंतःक्रिया तथा उनके समाकलन से उत्पन्न तंत्र/पारिस्थितिक तंत्र से अजैविक संघटक (प्राकृतिक गैस, अजैविक रासायनिक पदार्थ, जलवायु दशायें) व जैविक संघटक (स्वपोषित संघटक और परपोषित संघटक) सम्मिलित होते हैं। इसका आकार अत्यंत वृहद से लेकर अतिलघुतम तक किसी भी तरह का हो सकता है। पारिस्थितिक विविधकता से तात्पर्य जैव विविधता से जन्मी पारिस्थितिकों की संख्या व वितरण से हैं।

बोध प्रश्न – 1

1. एक क्षेत्र विशेष में विविध प्रकार के जातियों के पाए जाने को क्या कहते हैं?

   .....

   .....

2. जैव विविधता के तीन प्रकार कौन–कौन से हैं?

   .....

   .....

3. जीव जगत जातियों के जीनों का वर्णन किस विविधता में होता हैं?

   .....

   .....

11.4 जैव भौगोलिक वर्गीकरण (Bio–Geographical regions)

विश्व के विभिन्न प्रदेशों में पाये जाने वाले प्राणिजात (fauna) और वनस्पति जात (flora) की समानताओं तथा विभिन्नताओं के आधार पर विश्व को छ: जैव भौगोलिक क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है – (i) पेलिआर्कटिक परिमण्डल (Palearctic realm) या पुरानी दुनिया, (ii)

निआर्कटिक परिमण्डल (Nearctic realm) या उतरी अमेरिका, (iii) इथियोपी परिमण्डल (Ethiopian realm) या सहारा मरूस्थल से दक्षिण का सम्पूर्ण अफ्रीका, (iv) प्राच्य परिमण्डल (oriental realm) या हिमालय से दक्षिण तक का क्षेत्र, (v) निओट्रापिकल परिमण्डल (Neotropical realm) या दक्षिण तथा केन्द्रिय अमेरिका और (vi) आस्ट्रेलियाई परिमण्डल (Australian realm) या आस्ट्रेलिया एवं संबंधित द्वीपसमूह। इन जैव भौगोलिक क्षेत्रों में अधिकांश समुद्रों, मरूस्थलों और पर्वतों द्वारा एक–दूसरे से पृथक हैं।

11.4.1 भारत का जैव भौगोलिक वर्गीकरण (Bio–geographical classification of India)

विश्व की 2.4 प्रतिशत भूमि भारत क अन्तर्गत है। भारत में भौगोलिक दशाओं में अन्तर होने के कारण यहां वृहद रूप में जैव विविधता पाई जाती है। यहाँ विश्व की 5 प्रतिशत जैव जातियाँ पाई जाती है। विश्व के लगभग सभी जैव भौगोलिक कटिबंधों के जन्तु व पादप भारत में भी पाये जाते हैं भारत को प्रमुख रूप से वानस्पतिक प्रदेश व प्राणी भौगोलिक प्रदेशों में विभक्त किया गया है।

11.4.2 भारत के वानस्पतिक प्रदेश (Botanical regions of India)

भारत में वनस्पति समृद्धता के आधार पर विश्व में दसवाँ स्थान है। भारत में विभिन्न प्रकार की जलवायु तथा मिट्टी उपलब्ध होने के कारण अनेक प्रकार की पादप प्रजातियां पाई जाती है। विभिन्न वनस्पति विशेषज्ञों द्वारा भारत को अनेक पादप प्रदेशों में विभक्त किया गया है।

हूकर द्वारा विभाजन

1. पूर्वी हिमालय
2. पश्चिमी हिमालय
3. सिन्धु का मैदान
4. गंगा का मैदान
5. मालाबार
6. दक्कन प्रदेश
7. सीलोन एवं मालद्वीप
8. म्यांमार
9. मलाया प्रायद्वीप

सी.सी. काल्डर द्वारा विभाजन

1. उतरी – पश्चिमी हिमालय प्रदेश
2. पूर्वी हिमालय
3. सिन्धु का मैदान
4. गंगा का मैदान
5. दक्कन प्रदेश
6. मालाबार प्रदेश

राजी द्वारा विभाजन

1. मालाबार क्षेत्र
2. कोंकण क्षेत्र
3. कर्नाटक
4. मैसूर
5. दक्कन पठार
6. बरार
7. उड़ीसा

चटर्जी द्वारा विभाजन

1. दक्कन
2. मालाबार
3. सिन्धु का मैदान
4. गंगा का मैदान
5. असम
6. पूर्वी हिमालय
7. केन्द्रीय हिमालय

8. पश्चिमी हिमालय
9. ऊपरी म्यामांर
10. निचला म्यामांर

भारत को भौगोलिक दृष्टि से निम्न वनस्पति प्रदेशों में विभक्त किया गया है:–

1. **पूर्वी हिमालय :** सिक्किम से अरूणाचल प्रदेश व नागालैण्ड तक विस्तृत। वर्षा का औसत अधिक। निम्न भागों में (उष्ण कटिबंधीय वनों की पेटी) पाये जाने वाले वृक्ष शहतूत, साल, चंदन, खेर, सेमल। ऊपरी भागों में (शीतोष्ण कटिबंधीय वन) ओक, बर्च, मैपिल, लारेल, चीड़, स्प्रूस, देवदार। उच्च पर्वतीय भागों में फर, जूनीफर बर्च, आर्किड़ व छोटी घास।
2. **पश्चिमी हिमालय :** कश्मीर से कुमायूं तथा सिक्किम के पश्चिम तक। वनों के प्रकार – कटिबंधीय तथा शीतोष्ण कटिबंधीय। प्रमुख वृक्ष–साल, ढाक, बांस व ताड़ के वृक्ष, लम्बी घास। अधिक ऊँचाई पर–नुकीली पत्नी वाले मिश्रित चीड़ वन जिनको चीड़ देवदार, बोने बास अल्पाइन।
3. **गंगा मैदान :** पश्चिमी भाग व पूर्वी भाग में विभक्त किया जा सकता है। पश्चिमी भाग में पतझड़ वन साल, शीशम, शहतूत आदि के वृक्ष जबकि पूर्वी भाग में अंजीर, ताड़ कटहल, चीकू, नाशपती। गंगा के डेल्टाई मैदान में सघन सुंदरवन क्षेत्र में सुन्दरी वृक्ष मुख्य है तथा मैंग्रूव वनस्पति पाई जाती है।
4. **सिन्धु–सतलज मैदान :** पंजाब, हरियाणा, राजस्थान व गुजरात के सीमित क्षेत्रों में अर्द्धमरूस्थलीय वनस्पति पाई जाती है। जिनमें बबूल, कीकर, खेजडी, आंवला, शीशम के वृक्ष है, जबकि मरूस्थलीय क्षेत्र में कटीली झाड़ियों व केक्टस पाये जाते है।
5. **दक्षिणी पठार :** यहां पर मानसूनी पतझड़ वन पाये जाते है। प्रमुख राज्य झारखण्ड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, कर्नाटक व महाराष्ट्र हैं। प्रमुख वृक्षों में साल, सागवान, चन्दन व शीशम आदि।
6. **मालाबार तट व द्वितीय क्षेत्र :** प्रायद्वीपीय भारत में पश्चिमी तट के समानान्तर सघन सदाबहार वन (सोला) पाये जाते है। प्रमुख वृक्ष महोगनी रबर, नारियल, ताड़ आदि है। पहाड़ी ढालों पर चाय व कहवा के बागान है। दलदली भागों में मेंग्रोव वनस्पति पाई जाती है, जबकि बंगाल की खाड़ी व अरब सागर में स्थित द्वीपों पर नारियल, ताड़, रबर व महोगनी के वृक्ष पाये जाते है।

11.4.3 भारत के जन्तु–भौगोलिक प्रदेश (Zoo–geographical Regions of India):

भारत की धरती के अंदर की घटनाओं ने यहाँ उच्चस्तरीय जैव विविधता की परिस्थितियाँ पैदा की है। जैव समूह राष्ट्रों में भारत पहले 15 देशों में सम्मिलित किया गया है। भारत के जलथलचारी प्राणियों में 62 प्रतिशत इसी देश में पाई जाती है।

भारत में जलवायु एवं वनस्पति की विविधता के कारण जीव–जन्तुओं में भी अत्यधिक विविधता पाई जाती है। वन्य प्राणियों के वितरण की दृष्टि से इसे निम्न जन्तु भौगोलिक प्रदेशों में विभक्त किया जाता हैं–

1. हिमालय प्रदेश
2. उत्तरी मैदान
3. मरूस्थलीय प्रदेश
4. प्रायद्वीपीय पठारी प्रदेश
5. मालाबार तट व नीलगिरी प्रदेश
6. द्वीप व डेल्टा प्रदेश

इनका विस्तृत वर्णन इस प्रकार हैं –

1. **हिमालय प्रदेश :** हिमालय प्रदेश को तीन उपविभागों लद्दाख का शीत शुष्क प्रदेश, हिमालय प्रदेश का निचला वनावरित क्षेत्र और हिमालय का वृक्ष रेखा से ऊपर के क्षेत्र में विभक्त किया गया है। हिमालय के पदीय प्रदेश में हाथी, सांभर, चीतल, सूअर, घड़ियाल आदि वन्य प्राणी पाये जाते हैं। जबकि ऊँचाई पर जंगली याक, गधा, भेड़, लाल पाण्डा आदि जीव मिलते है। शीत जलवायु वाले उच्च भागों में हिम तेंदुआ, भूरा भालू मोनाल आदि पाए जाते हैं।
2. **उत्तरी मैदान :** सघन जनसंख्या तथा विरल वनों वाले प्रदेश में बड़े वन्य जीवों का लगभग अभाव है। इसमें हाथी, शेर, चीता, तेंदुआ, नील गाय, भेड़िया, चीतल आदि पाये जाते है।
3. **मरूस्थलीय प्रदेश :** राजस्थान व गुजरात के शुष्क मरूस्थलीय क्षेत्र में चीतल, हिरन, लाल लोमड़ी, गोड़ावण पक्षी आदि पाये जाते है।
4. **प्रायद्वीपीय पठारी प्रदेश :** भारत का दक्षिणी भाग प्रायद्वीपीय पठारी भाग लावा निर्मित है। यहाँ प्रमुख रूप से हिरण, लंगूर, हाथी, शेर, नील गाय, जंगली सूअर, जंगली कुता आदि वन्य जन्तु पाए जाते है।
5. **मालाबार तट व नीलगिरी प्रदेश :** मालाबार तटीय प्रदेश में सम जलवायु के कारण हिरन, बन्दर, नेवला आदि वन्य जीव पाये जाते हैं, जबकि नीलगिरी प्रदेश पर्वतीय प्रदेश में आर्द्र जलवायु व सघन वन पाये जाने से उष्णकटिबंधीय जीव जंगली हाथी, लंगूर, गिब्बन व वृक्षवासी प्राणी अधिक पाये जाते हैं।
6. **द्वीप व डेल्टा प्रदेश :** अण्डमान–निकोबार द्वीप समूह व डेल्टाई भागों में बंदर, हिरण, घड़ियाल, कछुए, सांप पाये जाते हैं, जबकि पश्चिम बंगाल में स्थित सुंदरवन में बाघ प्रमुखतया: पाये जाते हैं।

बोध प्रश्न – 2

1. विश्व में पाये जाने वाले विभिन्न प्राणिजात और वनस्पति जात की विभिन्नता और समानता के आधार पर कितने जैव भौगोलिक क्षेत्रों में विभक्त किया गया है?

   .....

   .....

2. विश्व के छ: जैव भौगोलिक क्षेत्रों के नाम बताइये।

.....

.....

3. भारत में विश्व की कितनी प्रतिशत जैव जातियां पाई जाती हैं?

.....

.....

4. भारत में वनस्पति समृद्धता के आधार पर विश्व में कौन सा स्थान हैं?

.....

.....

11.5 विश्वव्यापी, राष्ट्रीय एवं स्थानीय स्तर की जैव–विविधता (Bio–diversity at Global, National and Local Level)

11.5.1 विश्वव्यापी जैव–विविधता (Global Biodiversity)

दुनिया के अधिकांश जैव–समृद्ध राष्ट्र 'दक्षिण' में स्थित विकासशील देश है। इसके विपरीत जैव विविधता के शोषण में समर्थ अधिकांश देश उत्तर के है। पूरे विश्व में जैव समृद्ध प्राकृतिक क्षेत्रों को महत्व दिया जा रहा है क्योंकि यह बात स्पष्ट हो गई है कि वे अमूल्य है। जैव विविधता में विश्वव्यापी विविधता पाये जाने का प्रमुख कारण भौगोलिक विविधता है। पृथ्वी पर जीव–जन्तुओं की लगभग 50 लाख प्रजातियाँ है। इनमें से अनेक एकाकी वर्ग मिलते हैं। जलवायु कटिबंध सीमा के अन्तर्गत भूमध्यरेखीय वर्षा वन प्रदेशों की जैव विविधता, टैंगा वन प्रदेशों, टुण्ड्रा प्रदेश आदि है । ए.आर. वालेस ने प्राणिजात की समानता के आधार पर विश्व को छः प्राणी – भौगोलिक प्रदेशों में विभक्त किया हैं–

1. **पेलिआर्कटिक प्रदेश :** इसके अन्तर्गत यूरोप, उत्तरी अफ्रीका एवं हिमालय के उत्तर की ओर का एशिया सम्मिलित किया जाता है। इस प्रदेश में स्थलीय कशेरूकियों के कुल 135 वंश पाये जाते है।
2. **निआर्कटिक प्रदेश :** निआर्कटिक प्रदेश में सम्पूर्ण उत्तरी अमेरिका व ग्रीनलैण्ड को सम्मिलित किया जाता है। यहां स्थलीय कशेरूकियों के वंशों की संख्या 55 है।
3. **निओट्रोपिकल प्रदेश :** यह प्रदेश मध्य अमेरिका व दक्षिण अमेरिका को सम्मिलित करता है। दक्षिण अमेरिका में सर्वाधिक पक्षियों की विविधता पाये जाने के कारण' पक्षियों का महाद्वीप' कहलाता है। यहां स्थलीय कशेरूकियों के वंशों की संख्या 155 है।
4. **इथियोपियन प्रदेश :** सम्पूर्ण अफ्रीका महाद्वीप (सहारा को छोड़कर) व अरब प्रायद्वीप का तटवर्ती व जन्तुओं की सर्वाधिक विविधता पाई जाती है। यहां स्थलीय कशेरूकियों के वंशों की संख्या 161 है।
5. **ओरिएन्टल प्रदेश :** इसमें हिमालय के दक्षिण की ओर का सम्पूर्ण एशिया महाद्वीप आता है। भारत भी इसमें सम्मिलित है। यहां स्थलीय कशेरूकियों के 153 वंश पाये जाते है।

6. **आस्ट्रेलियन प्रदेश** इस प्रदेश में आस्ट्रेलिया महाद्वीप तथा समीपवर्ती द्वीप आते हैं। यह सबसे छोटा प्रदेश होने से इसमें जैव विविधता की संख्या कम पाई जाती है। इसमें स्थलीय कशेरूकियों के 134 वंश मिलते है।

   जैव विविधता विश्व स्तर पर 14,13,000 जातियाँ पहचानी गई है। अचिन्हित की संख्या लगभग 5 मिलियन या और ज्यादा भी हो सकती है।

   1. कीट (Insects) 7,51,000
   2. पौधे (Plants) 2,48,000
   3. अन्य जानवर (other animals) 2,81,000
   4. फंजाई (Fungi) 69,000
   5. प्रोटिस्टा 30,000
   6. एल्गी (Algae) 26,000
   7. बैक्टिरिया (Bacteria) 48,000
   8. वाइरस (Virus) 1,000

11.5.2 राष्ट्रीय स्तर की जैव विविधता (National Biodiversity)

राष्ट्रीय स्तर पर मिलने वाले विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों के कारण भिन्नता मिलती है। इसे आवास जैव विविधता (Habitat Biodiversity) भी कहते हैं। विश्वव्यापी जैव विविधता के अन्तर्गत पूरी पृथ्वी जबकि राष्ट्रीय जैव विविधता एक राष्ट्र की सीमाओं तक सीमित होता है। भारत से अधिक आर्थिक जैव विविधता वाले देशों में दक्षिण अमेरिका के ब्राजील या दक्षिण पूर्व एशिया के देश जैसे मलेशिया और इण्डोनेशिया है। कई बार एक ही जैव विविधता प्रदेश में सम्मिलित राष्ट्रों की विविधता में प्रादेशिक भिन्नता के कारण अन्तर होता है। इसका उदाहरण इथियोपिया व युगाण्डा है। इसी प्रकार मानसूनी एशिया के अन्तर्गत भारत, चीन व वियतमान सम्मिलित है लेकिन यहां पाई जाने वाली जैव विविधता अलग है।

11.5.3 स्थानीय स्तर की जैव विविधता (Local level Biodiversity)

किसी भी स्थान पर मिलने वाले जीवों (प्राणी एवं वनस्पति) की जातियों की संख्या एंव विविधता को स्थानीय जैव विविधता कहते है। विश्व धरोहर संविदा जैसे अन्तर्राष्ट्रीय समझौते ने जैव विविधता क्षेत्रों के संरक्षण के प्रयास किये है, भारत ने भी इस पर हस्ताक्षर किये है और अपने अनेक संरक्षित क्षेत्रों को उसने विश्व धरोहर स्थलों में शामिल कर लिया है। भूटान भारत सीमा पर मानस, असम में काजीरंगा, राजस्थान में भरतपुर, हिमालय के नंदादेवी और पं. बंगाल में गंगा के डेल्टा में स्थित सुंदरवन इन स्थलों में शामिल है। उच्चावच, जलराशियां, तापमान, वर्षा, समुद्र से निकटता, मृदा संरचना व मानवीय क्रियाकलाप स्थानीय जैन विविधता को प्रभावित करते है। भौगोलिक दशाओं में स्थानीय भिन्नता के कारण राजस्थान, मध्यप्रदेश या उतरप्रदेश में जैव–विविधता में समरूपता नहीं है। इसी प्रकार राजस्थान के अरावली पर्वतीय प्रदेश, मैदानी व पठारी व प. मरूस्थलीय प्रदेश की जैवविविधता में अंतर पाया जाता है।

11.5.4 जैव विविधता वाले देश के रूप में भारत का स्थान

दुनिया में भारत का	स्थान	भारत में प्रजातियों की संख्या

स्तनपायी	आठवाँ	350
पक्षी	पांचवाँ	1200
सरीसृप	पंद्रहवाँ	453
जलथलचारी	पंद्रहवाँ	182
आवृतबीजी	पंद्रहवाँ - बीसवाँ	14500

11.5.5 विश्वस्तर पर प्रजातियों की विविधता (Global Species Diversity)

समूह	**दर्ज प्रजातियों की संख्या**
जीवाणु व हरे नीले शैवाल	4760
कवक	46983
शैवाल	26900
ब्रोयोफाइट (मास और लीवरवर्ट)	17000
अनावृतबीजी	750
आवृतबीजी (फूल देने वाले पौधे)	250000
प्रोटोजोआ	30800
स्पंज	5000
प्रवाल और जेलीफिश	9000
गोलकृमि और केंचुए	24000
झींगे	38000
कीड़े–मकोड़े	751000
दूसरे आर्थोपोड और छोटे अकशेरूकी	32461
मोलस्क	50000
तारामछली	6100
मछलियां	19050
सरीसृप	6300
पक्षी	9198
स्तनपायी	4170
योग	**1331472**

स्त्रोत : कंजर्विंग द वर्ल्डस बायोलॉजिकल डाइवसिर्टी WRI, IUCN, WWF–US, विश्व बैंक

11.6 जैव विधिवता के संवेदनशील क्षेत्र या तप्त स्थल (Hot - Spots of Biodiversity)

संवेदनशील क्षेत्र या तप्त स्थल (Hot Spots) से आशय उन स्थानों से है जो जैव–विविधता की दृष्टि से अत्यधिक सम्पन्न है, किन्तु वर्तमान में संकटग्रस्त हो गये है। इन स्थानों को

IUCN/UNEP ने भी तप्त स्थल कहा है। जीवों के आवास लगातार नष्ट होने के कारण यहां की अनेक जातियाँ संकटग्रस्त हो गई है।

विश्व स्तर पर संरक्षण के अंतर्गत 20 क्षेत्रों या तप्त स्थलों को चिन्हित किया गया है, इनमें से 12 उष्ण कटिबंधीय वनों के क्षेत्र है। जो कि मूलत: विकासशील देश है।

11.6.1 विश्व के प्रमुख तप्त स्थल (हॉट–स्पॉट)

1. हवाई द्वीप
2. कैलिफोर्निया का पुष्पी पादप क्षेत्र
3. कोलम्बिया चोको
4. इक्केडोर
5. प. अमेजोनिया
6. पूर्वी ब्राजील के अटलाण्टिक तटीय वन
7. मध्य चिली
8. आइवरी कोस्ट
9. पूर्वी अफ्रीका वन क्षेत्र - तंजानिया
10. पूर्वी मेडागास्कर
11. केप पुष्पी पादप क्षेत्र
12. पूर्वी हिमालय
13. पश्चिमी घाट
14. श्रीलंका
15. प्रायद्वीपीय मलेशिया
16. उत्तरी बोर्नियो
17. फिलिपीन्स
18. दक्षिण–पश्चिम आस्ट्रेलिया
19. क्वीन्सलैण्ड–आस्ट्रेलिया
20. न्यूकैलेडोनिया

मानचित्र–11.1 : विश्व के प्रमुख जैव विविधता संवेदनशील क्षेत्र (हॉट–स्पॉट)

जैव–विधिता एवं इसका प्रबंधन

11.6.2 भारत की संकटग्रस्त एवं क्षेत्र विशेषी जातियाँ (Endangered and Endemic Species of India)

ऐसे पादप या जन्तु जिनकी संख्या तीव्रता से घट रही है, या उनके लुप्त होने का संकट उत्पन्न हो गया है, संकटग्रस्त जीव या जाति कहलाते हैं। देश में पौधों और प्राणियों की अनेक प्रजातियाँ ऐसी है जो आज केवल एक या कुछ ही संरक्षित क्षेत्रों में पाई जाती है। महत्वपूर्ण संकटग्रस्त प्रजातियों में बाघ, हाथी, गेंडा आदि भारी प्राणी शामिल है, कम ज्ञात प्रमुख स्तनपायी प्राणियों में, जो केवल एक क्षेत्र तक सीमित है। भारत का जंगली गधा, हंगुल सुनहरा लंगूर आदि है। पक्षियों की संकटग्रस्त प्रजातियाँ साइबेरियाई सारस, ग्रेट इण्डियन बस्टर्ड आदि है।

भारतीय वानस्पतिक सर्वेक्षण संगठन (Botanical Survey of India, B.S.I.) द्वारा भारत के लगभग 450 संकटग्रस्त पादपों को पहचाना गया है। जबकि संकटग्रस्त जीव जातियों को लाल आंकडों की पुस्तक (Red Data Book) में प्रकाशित किया जाता है। जबकि भारतीय प्राणी सर्वेक्षण संगठन (Zoological Survey of India, Z.S.I.) द्वारा लगभग 160 प्राणियों को संकटग्रस्त जन्तुओं में शामिल किया गया है। बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी (BNHS) की रिपोर्ट के अनुसार भारत में पक्षियों की 1225 जातियों में से लगभग 78 लुप्त होने वाली है।

जैव विविधता पर संकट के कारण : जैव विविधता अमूल्य है फिर जैव विविधता के संकट ग्रस्त होने के कारणों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है–

1. **प्राकृतिक कारण :** ज्वालामुखी उद्गार, उल्कापात, दावानल, बाढ़, सूखा, तूफान, महामारी, जीव–जातियों में परस्पर प्रतियोगिता, कम प्रजनन क्षमता, धीमी वृद्धि दर, पुनर्जनन आदि कारकों का प्रभाव पड़ता है।
2. **मानव जनित कारण :** इसमें निम्न प्रमुख कारण है–
   - (i) प्राकृतिक आवासों का विनाश – शहरीकरण, चारागाहों के रूप में उपयोग, बांध निर्माण, कृत्रिम जलाशयों का निर्माण, खनन, पर्यटन केन्द्र का विकास, रेलमार्गों व सड़कों का बनना, कृषि भूमि का विस्तार, वनों में झूम कृषि के कारण पादप व वन्य जीवों के प्राकृतिक आवास नष्ट हो रहे है।
   - (ii) अवैध शिकार व तस्करी के कारण भी जैव विविधता पर संकट आया है।
   - (iii) फसलों व मवेशियों की रक्षा के लिए वन्य जीवों की मानव द्वारा हत्या करना।
   - (iv) प्राकृतिक आवासों में विदेशी या नई जातियों को प्रवेश कराना।
   - (v) कीटनाशक व दवाईयों के द्वारा अनेक जातियों का लुप्त होना।
   - (vi) अनेक बीमारियों के कारण वन्य जीवों व पादपों की अनेक जातियों में हानि होती है।
   - (vii) जल प्रदूषण के कारण अनेक जलीय जीव व जलीय पादप नष्ट हो जाते है।प्रदूषणों के फैलाव, औद्यौगिक सयंत्र की स्थापना के कारण, तेजाबी वर्षा का प्रभाव प्राणियों व पादपों पर पड़ता है।
   - (viii) विश्व तापन (Global warming) के कारण द्वीपीय जन्तुओं व वनस्पतियों की जैव विविधता में अत्यधिक हानि होती है।
   - (ix) अंधविश्वास व अज्ञानता के कारण अनेक जीवों की जातियों पर संकट उत्पन्न हो जाता है
   - (x) पौधों का उनकी औषधीय विशेषताओं के कारण अतिशोषण करना।

तालिका 11.1 : कुछ प्राकृतिक औषधियों के उत्पाद

उत्पाद	स्रोत	उपयोग
पेनीसीलिन कवक प्रतिजैविक	पेनीसीलिन कवक प्रतिजैविक	पेनीसीलिन कवक प्रतिजैविक
बेसीट्रासीन	बेसीट्रासीन	प्रतिजैविक
टेट्रासायक्लीन	बैक्ट्रीयम	प्रतिजैविक
एरिथ्रोमाडसीन	प्रतिजैविक	प्रतिजैविक

डिजिटेलिस	फास्सलव	हृदय उत्तेजक
कुनेन	सिनकोना बार्क	मलेरिया
डायोसोनिन	मेक्सिकन याम	जन्मदर नियत्रंण
कोर्टाइसन	मेक्सिकन याम	एण्टी इन्फ्तामेशन
साइटरेबिन	स्पोंजी	ल्यूकेमीया

(xi) मानव के अपनी स्वार्थी प्रकृति व भोगवादी संस्कृति, सामाजिक व नैतिक मूल्यमें गिरावट के कारण पर्यावरण अवनयन हो रहा है।

जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता का सहलग्नता मॉडल

स्रोत : ऐनसू व सहयोगियों पर आधारित

सामाजिक व नैतिक महत्व (Social & Ethical importance of Biodiversity)

जैव विविधता और पारिस्थितिक तंत्रो पर समाज आधारित है। ऐनसू व सहयोगी ने तीव्र गति से घटित भूमण्डलीय बदलाव के परिपेक्ष में मानव कल्याण का आधार समायोजन और सूचनाओं से युक्त पारितंत्र के प्रंबधन में निहित बताया है। सामाजिक कल्याण हेतु आर्थिक मूल्यों का विकास जैव भौगोलिक व जैव विविधात्मक अनुगमों से सम्भव होगा। इन वैज्ञानिकों के 'Linkage Model' में इस तथ्य को प्रकट किया है।

11.8 जैव–विविधता का संरक्षण (Conservation of Biodiversity)

पारिस्थितिक संतुलन और जैव विविधता में पारस्परिक रूप में गहरा संबंध पाया जाता है। जिस क्षेत्र में जितनी अधिक जैव विविधता पाई जाती है, वहाँ पारिस्थितिक संतुलन (Ecological Balance) उतना ही अच्छा होता है।

यदि जैव विविधता के विनाश को नहीं रोका जायेगा तो मानव जाति को भोजन, आवास, वस्त्र, औषधियाँ नहीं उपलब्ध होगी। जलवायु के प्रति जनसंख्या समायोजित नहीं हो पायेगी, कृषि, उद्योग धंधे, औद्योगिक विकास प्रभावित होंगे, भीषण बाढ़, अकाल जैसी समस्यायें सामने आयेगी अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न होंगी। जैव विविधता द्वारा ही सांस्कृतिक विविधता, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक प्रेरणा मिलती है।

इसके निरन्तर रूप से बढ़ते हास को देखते हुए इसका संरक्षण अत्यंत आवश्यक है।

संकटापन्न जातियाँ (Endangered Species) के बारे में सर्वप्रथम यूनेस्को (UNESCO) ने 1968 में संरक्षणकर्ताओं का ध्यान वनस्पति और जन्तु संरक्षण की ओर आकर्षित किया है। IVCN का मुख्यालय स्विट्जरलैण्ड के ग्लैण्ड (Gland) में है। जिसमें WCMC और IBP (International Biological Programme) के साथ मिलकर विश्व के सकंटग्रस्त पौधों और जन्तुओं को पहचाना है। 1980 में बाटेनिकल सर्वे ऑफ इण्डिया (BSI) में वन अनुसंधान संस्थान (Forest Research Institute) देहरादून द्वारा एक बुकलेट प्रस्तुत की गई जिमसें भयग्रस्त जातियों की संख्या को निर्देशित किया गया है।

BSI द्वारा	Volume I	1987 में 235 संकट्रापन्न पादप जातियाँ
	Volume II	1988 में 192 जातियाँ और जोड़ी गई
	Volume III	1990 में 199 जातियाँ और जोड़ी गई।

बोध प्रश्न – 3

1. BSI का पूरा नाम क्या हैं ?

   .....

   .....

2. वे क्षेत्र जो जैव विविधिता की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न किन्तु वर्तमान में सकंटग्रस्त हो, क्या कहलाते हैं ?

   .....

   .....

3. भूटान, भारत सीमा कौन सा संरक्षित क्षेत्र है ?

   .....

   .....

11.6.3 क्षेत्र विशेषी जातियां (Area Specific Species)

किसी क्षेत्र विशेष तक सीमित पादप एवं जन्तु जातियों को क्षेत्र विशेषी या क्षेत्र सीमित जातियाँ कहते है। सामान्यत: पादप एवं जन्तु जातियाँ बहुत विस्तृत क्षेत्र में पाई जाती है, जिससे क्षेत्र के बाहर इनका विस्तार नहीं होता है। कुछ जातियाँ द्वीप में कोई घाटी, पहाड़ी, पठार, नदी, झील में पाई जाती है। भारत की कुल ज्ञात जातियों में से लगभग 5 हजार क्षेत्र विशेषी हैं, हिमालय में स्थित सिक्किम की गहरी घाटियाँ अनेक क्षेत्र विशेषी पादप जातियों की केन्द्र है। यहाँ लगभग 1000 जातियों के विशेष क्षेत्रीय पादप हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत में लगभग 500 जातियों के विशेष क्षेत्रीय पादप पाये जाते है। इन दोनों क्षेत्रों में जलवायु विभिन्नताओं के कारण ऐसे पादप पाये जाते है।

डायोस्टपाइरोस एनिनम, राइटेक्स नेगुन्डो, कल्रोट्रोपिस जाइगेन्टिया, फाइकस इलास्ट्रिका, फेरोनिया – लाइमोनिया आदि ऐसे विशेष क्षेत्रीय पादप है, जो भारत में एक क्षेत्र विशेष तक ही सीमित हैं।

तालिका–11.2 : भारत में विलुप्त हो रहे जीव–जन्तुओं की संख्या

क्र.स.	प्रजाति	विलुप्त हो चुकी	विलुप्त होने का खतरा
1	पेड़–पौधे	384	19079
2	मछलियाँ	23	343
3	उभयचर	02	50
4	सरीसृप	21	170
5	बिना रीढ़ वाले जन्तु	98	1355
6	पक्षी	133	1037
7	स्तनधारी	83	497
	कुल	**744**	**22550**

संकटग्रस्त जातियो को बचाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय एवं स्थानीय स्तर पर अनेक प्रयास किये जा रहे है। संयुक्त राष्ट्र ने कहा है कि जैव विविधता का संरक्षण करना ही मानव जगत की प्राथमिकता है।

1992 में पृथ्वी शिखर सम्मेलन (Earth Summit Conference) में जैव विविधता के लोप का प्रमुख कारण मानवीय गतिविधियों को बताया है।

1972 में स्टॉक होम सम्मेलन में प्रधानमंत्री श्रीमति इंदिरा गांधी ने ऐसे समाज पर जोर दिया जो स्वत : स्फूर्ति, चितंनशील, स्वःनिर्देशित, दूसरों के प्रति अनुकम्पा और चिंता रखने वाले हो न कि अनुकूलन करने वाले और अनुकूलित होने वालों में विभाजित हो।

11.9 संरक्षण नीति (Strategy for Conservation of Bio–diversity)

जैव विविधता संरक्षण से अभिप्राय पारिस्थितिकीय स्थायित्व बनाये रखना है, इसके लिए संसाधनों के बुद्धिमतापूर्ण सदुपयोग और प्रकृति व मानव में सुसंगत की स्थिति बनाये रखने से है।

आजकल अनेक संस्थान पारितंत्र और प्रजातियों के संरक्षण में जुटी हुई हैं। जैविक विविधता की दृष्टि से कार्यरत प्रमुख संस्थान निम्न हैं–

1. यूनेस्को (UNESCO) की प्रबंधित जैव मण्डल आरक्षण संस्था (Biosphere Reserve Agency)
2. साइटस (CITES) Convention on International Trade in Endangered Species) वांशिगटन
3. ट्रेड रिकार्ड ऐनेलिसिस ऑफ फ्लोरा एण्ड फोना इन कॉमर्स (TRAFFIC)
4. इन्टरनेशनल यूनियन फॉर दि कन्जरवेशन ऑफ नेचर (IUCN)
5. वर्ल्ड वाइड फण्ड फॉर नेचर (WWF)

भारत में 2003 में संसद द्वारा जैव विविधता विधेयक पारित किया गया। भारत में जैव विविधता में सलंग्र संस्थान निम्म हैं–

1. वाइल्ड लाइफ इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डिया, देहरादून

2. नेशनल ब्यूरो ऑफ फिश जैनेटिक रिसोर्सेज, करनाल (हरियाणा)
3. रा. ब्यूरो ऑफ प्लाण्ट जैनेटिक रिसोर्सेज, न्यू दिल्ली
4. कन्तरवेशन प्रोग्राम नेशनल पार्कस सेन्च्यूरीज़ प्रोजेक्ट फार इन्डीविजुएल एनीमल्स

11.10 संरक्षण के प्रकार (Types of Conservation)

जैव विविधता के संरक्षण के दो मुख्य आधार हैं–

11.10.1 स्वस्थाने/स्व आवासीय संरक्षण (In–Situ Conservation

11.10.2 बर्हिस्थाने/कृत्रिम आवासीय संरक्षण (Ex–Situ Conservation)

11.10.1 स्वस्थाने/स्व आवासीय संरक्षण

इस प्रकार के संरक्षण में जीवों का संरक्षण प्राकृतिक आवासों में किया जाता है। जिससे जीवों के विकास के साथ–साथ वृद्धि भी हो। यह विधि अत्यन्त प्रभावशाली है। जैव विविधता पाये जाने वाले स्थलों पर ही इस प्रकार का संरक्षण होता है। जिस भी संकटग्रस्त जाति का संरक्षण करना हो उसके अनुसार ही पर्यावरणीय दशाओं के अन्तर्गत भू–आकृतियों, जलवायु और प्राकृतिक वनस्पति का चयन करके अनुकूल परिस्थितियां और सुरक्षा प्रदान की जाती है। इसके अन्तर्गत जीवमण्डल रिजर्व (Biosphere Reserve) अभयारण्य (wild life sancturies) तथा राष्ट्रीय उद्यान (National Park) बनाये जाते हैं।

तालिका– 11.3 : भारत में स्वस्थाने संरक्षण के क्षेत्र

संरक्षित क्षेत्र का प्रकार	संख्या
वन्य जीव अभयारण	494
राष्ट्रीय उद्यान	90
मैंग्रूव	15
नमा भूमि	20
जीव मण्डल रिजर्व	12
प्रवाल भित्ति (कोरल रीफ़)	04

जीव मण्डल रिजर्व (biosphere Reserve)

जैव विविधता के संरक्षण में यह सर्वोपयुक्त है। इसमें मानवीय हस्तक्षेप न्यून होता हैं। अत: ये क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न है। इसकी स्थापना का प्रमुख उद्देश्य पेड़–पौधों, पशुओं, जीवों, जीवाणुओं, प्रजातियों, आनुवांशिक विविधता का संरक्षण सुनिश्चित करना है।

यूनेस्को द्वारा 1971 में जैवमण्डल के कार्यक्रमों का विस्तृत नेटवर्क निर्माण किया गया है। इसके अधीन 1995 तक 411 जैव मण्डल आरक्षण केन्द्र 94 देशों में स्थापित किये जा चुके है। सर्वप्रथम 1986 में नीलगिरी संरक्षित जीव मण्डल की स्थापना की गई हैं।

भारत के 12 संरक्षित जीवमण्डल

क्र.सं. संसंरक्षित जीवमण्डल का नाम और कुल भौगोलिक अधिसूचना जारी होने की तारीख स्थिति

		क्षेत्रफल (वर्ग किमी. में)	
1.	नीलगिरि (5520)	01.08.86	सिरुवनी पहाड़ी, नीलाम्बर, मदुमलाई, बांदीपुर, नागरहोल और वायनाड का कुछ हिस्सा (केरल व कर्नाटक)
2.	नंदादेवी (2236.74)	18.01.88	चमोली, पिथौरागढ़ और बागेश्वर जिलों का कुछ भाग (उत्तरांचल)
3.	नोकरेक (820)	01.09.88	गारो हिल्स का कुछ भाग (मेघालय)
4.	मानस (2837)	14.03.89	कोकराझार, बोगईगांव, बारपेटा, नलबाड़ी, कामरूप और दरांग के कुछ भाग (असम)
	सुन्दरबन (9630)	29.03.89	गंगा और ब्रह्मपुत्र नदी प्रणालियों का डेल्टा क्षेत्र (प. बंगाल)
6.	मन्नार की खाड़ी (10500)	18.02.89	भारत और श्रीलंका के बीच मन्नार की खाड़ी का भारतीय इलाका (तमिलनाडु)
7.	ग्रेट निकोबार (885)	06.01.89	अंडमान निकोबार के दक्षिणी द्वीप
8.	सिमिलीपाल (4374)	21.06.94	मयूरभंज जिले का कुछ हिस्सा (उड़ीसा)
9.	डिबूसाईखोवा (765)	28.07.97	डिब्रूगढ़ और तिनसुखिया जिलों का कुछ भाग (असम)
10	देहंग देवाग (5111.5)	02.09.98	सिआंग और देगा घाटी (अरूणाचल प्रदेश)
11.	पचमढ़ी (4926.28)	03.03.99	होशंगाबाद, बैतूल और छिंदवाड़ा जिलों का कुछ हिस्सा (मध्य प्रदेश)
12.	कंचन जंघा (2619.92)	07.02.2000	कंचनजंघा राष्ट्रीय उद्यान और इसके आस–पास का उद्यान क्षेत्र (सिक्किम)

मानचित्र–11.3 : जैव मण्डल आरक्षण स्थल

राष्ट्रीय उद्यान (National Parks) : विश्व स्तर पर विरल एवं संकटग्रस्त जीवों को संरक्षण प्रदान करने के लिए इसकी स्थापना की गई है। भारत में सबसे पहले 1936 में हैली नेशनल पार्क (कालान्तर में जिम कार्बेट नेशनल पार्क, उत्तराखण्ड) की स्थापना की गई थी। इस प्रकार के उद्यान में मानवीय गतिविधियों पर पूर्णत: निषेध होता है।

इसकी सीमा कानून द्वारा निर्धारित होती है। भारत में कुल 90 राष्ट्रीय उद्यान है।

वन्य जीव अभ्यारण्य (Wild Life Sancturies) : इसका नियंत्रण राज्य सरकार द्वारा होता है। इसमें सीमित मानवीय क्रियाकलापों की ही अनुमति होती है। भारत में कुल 494 वन्य जीव अभ्यारण्य है, जो देश के लगभग 3 प्रतिशत भू–भाग में फैले हुए हैं।

तालिका–11.5 : वन्य जीव अभ्यारण्य और राष्ट्रीय उद्यानों की सूची

JAMMU AND KASHMIR

National Parks	***Area in Sq. Km.***	***Year of Notification***
• Dachigam	141.00	1981
• Hermis	4100.00	1981
• Kishtwar	310.00	1981
• ***Sanctuaries***		
• Baltal	03.00	1987
• Changthang	4000.00	1987
• Gulmarg	186.00	1987
• Hirpora	110.00	1987
• Hokarsar	10.00	-
• Kanji	250.00	1988
• Karakoram	1800.00	-
• Lachipora	800.00	1987
• Limber	26.00	1987
• Nandini	33.72	1981
• Overa	32.37	1981
• Overa–Aru	425.00	1987
• Ramnagar	12.90	1981
• Surinsar–Mansar	39.58	1981
• Tongri	20.00	-

HIMACHAL PRADESH

National Parks	***Area in Sq.Km***	***Year of Notification***
• Great Himalayan	605.61	1984

• Pin Valley	807.36	1987
Sanctuaries		
• Bandi	39.47	1962
• Chail	110.04	1976
• Churdhar	56.59	1985
• Daranghati	27.01	1962
• Darlaghat	98.71	1962
• Gamgul Siahbehi	105.46	1949
• Gobind Sagar and Naina Devi	120.67	1962
• Kais	12.20	1954
• Kalatop & Khajjiar	30.69	1949
• Kanwar	61.57	1954
• Khokhan	17.60	1954
• Kugti	330.00	1962
• Lippa Asrang	29.53	1962
• Majathal	31.64	1962
• Manali	31.27	1954
• Naina Devi	37.19	1962
• Nargu	243.13	1962
• Pong Dam Sanctuary	322.70	1983
• Raksham Chitkul	38.27	1962
• Renuka		
• Rupi Bhabha	354.14	1982
• Sechu Tuan Nala	655.32	1962
• Shikari Devi	71.19	1962
• Shilli		
• Simbalbara	17.20	1958
• Talra	36.16	1962
• Tirthan	68.25	1976
• Tundah	419.48	1962

PUNJAB

Sanctuaries	***Area in Sq. Km.***	***Year of Notification***

• Abohar	188.24	1975
• Harike Lake	43.00	1982
• Bir Gurdialpura		
• Bir Bunnerheri		
• Bir Motibagh		

CHANDIGARH

Sukhna	25.42

DELHI

Indira Priyadarshani	13.20

HARYANA

National Park	***Area in Sq.Km***	***Year of Notification***
• Sultanpur		
Sanctuaries		
• Bir Shikargarh	10.93	1975
• Chautala	113.96	1987

RAJASTHAN

National Parks	***Area in Sq.Km***	***Year of Notification***
• Desert	3162.00	1981
• Keoladeo	28.73	1981
• Ranthambore	392.00	1980
• Sariska	273.80	1982
Sancturies		
• Baretha	192.76	1985
• Bassi	152.90	
• Bhensrodgarh	229.14	1983
• Darah	265.83	1955
• Jaisamand	52.00	1956
• Jamwa Ramgarh	300.00	1982
• Jawahar Sagar	100.00	1980
• Keladevi	676.00	1983

• Kumbhalgarh	578.26	1971
• Mount Abu	288.84	1960
• Nahargarh	50.00	1980
• National Chambal	280.00	1983
• National Garihial		
• Phulwari	511.41	1983
• Ramgarh Bundi	307.00	1982
• Sariska	492.00	1958
• Sawai Mansingh	103.25	1984
• Shergarh	98.71	1983
• Sita Mata	422.94	1979
• Sunda Mata	107.00	
• Todgarh Raoli	495.27	1983
• TalChapper		
• Van Vihar	59.93	1955

UTTAR PRADESH

National Parks	***Area in Sq. Km.***	***Year of Notification***
• Corbett	520.82	1936
• Dudwa	490.29	1977
• Gangotri	1552.73	1991
• Govind4	72.08	1991
• Nanda Devi	630.33	1982
• Rajaji		
• Valley of Flowers	89.50	1982
• Sanctuaries	Area in Sq. Km.	Year of Notification
• Askot		
• Binsar	45.59	1988
• Chandra Prabha	78.00	1957
• Chilla		
• Govind Pashu Vihar	481.04	1954
• Hastinapur	20.73	1986
• Kaimur	500.75	1982

• Kateraniaghat	400.09	1976
• Kedarnath	975.24	1972
• Kishanpur	227.12	1972
• Maahavir Swamy		
• National Chambal	635.00	1979
• Nawabganj		
• Ranipur	230.31	1977
• Samaspur		
• Sohagabarwa	428.20	1987
• Sonanadi	301.18	1987

- ***Central India***
- **MADHYA PRADESH**

National Parks	***Area in sq. Km.***	***Year of Notification***
• Bandhavgarh	448.00	1968
• Fossil	0.27	
• Indravati	1258.37	1978
• Kanger Ghati	200.00	1982
• Kanha	940.00	1955
• Madhav	337.00	1959
• Panna	542.66	1981
• Pench	292.86	1977
• Sanjay	1938.01	1981
• Satpura	524.37	1981
• Van Vihar	4.45	
• ***Sanctuaries***		
• Achanakmar	551.55	1975
• Badankhoh	104.35	1975
• Bagdara	478.90	1978
• Barnawapara	244.66	1976
• Bhairamgarh	244.66	1976
• Bori	518.25	1977
• Gandhi Sagar	368.62	1974
• Ghatigaon	512.00	1981

• Gomardah	277.82	1972
• Karere	202.21	1981
• Ken Gharial	45.00	1981
• Kuno–Palpur	345.00	
• Kheoni	122.70	
• Narsingarh	57.19	1974
• National Chambhal	320.00	1978
• Noradehi	1034.52	1975
• Pachmarhi	461.85	1977
• Palpur	344.68	1981
• Pamed Wild Buffalo	262.00	1983
• Panpatha	245.84	1983
• Pench	449.39	
• Fensatallite	110.24	1983
• Ratapani	688.79	1976
• Sailana Florican	12.96	1983
• Sanjay (Dubri)	364.69	1975
• Sardarpur Florican	348.12	1983
• Samarsot	340.35	1978
• Singhori (Sindhari)	278.91	1976
• Sitanadi	553.36	1974
• Sone Gharial	41.80	1981
• Tamor Pingla	608.52	1978
• Udanti Wild Buffalo	247.59	1983

ORISSA

National Parks	***Area in Sq.Km.***	***Year of Notification***
• Bhitar Kanika	367.00	1988
• North Simlipal	845.70	1980
Sanctuaries		
• Badrama	304.03	1987
• Baispalli	168.35	1981
• Balukhand Konark	71.72	1984
• Bhitarkanika	70.00	1975

• Chandaka Dampara	175.79	1982
• Chilka Lake (Nalaban)	15.53	1987
• Debrigarh	346.91	1985
• Hadgarh	191.06	1978
• Karlapat	147.66	1992
• Khalasuni	116.00	1982
• Kotgarh	399.05	1981
• Kuldiha	272.75	1984
• Lakhari Valley	185.87	1985
• Satkosia Gorge	795.52	1976
• Simplipal	845.70	1979
• Sunabema	600.00	1988
• Ushakothi		

BIHAR

National Park	***Area in Sq. Km.***	***Year of Notification***
• Palamau	213.00	1986
Sanctuaries		
• Bhimbandh	681.90	1976
• Chandra Prabha		
• Dalma	193.22	1976
• Gautam Buddha	259.48	1976
• Hazaribagh	186.25	1976
• Kabar	204.00	1986
• Kaimur	1342.22	1978
• Koderma	177.95	1985
• Lawalang	211.03	1978
• Mahuadaur	63.25	1976
• Nakti Dam	206.40	1985
• Palamau	767.00	1976
• Parasnath	49.23	1984
• Rajgir	35.84	1978
Topchanchi		
• Valmikinagar	461.60	1978

- Udaipur

WESTERN INDIA

Maharashtra

National Parks	***Area in Sq. Km.***	***Year of Notification***
• Gugamal	361.80	1987
• Nawegaon	133.88	1975
• Pench	257.26	1975
• Sanjay Gandhi	86.96	1983
• Tadoba	116.55	1955
Sanctuaries		
• Andhari	509.27	1986
• Aner Dam	82.94	1986
• Bhimashankar	130.78	1985
• Bor	61.10	1970
• Chandoli	308.97	1985
• Chaprala	134.78	1986
• Dhakna Kolkaz		
• Gandhari		
• Gautala Autramghat	260.61	1986
• Great Indian Bustard	8496.44	1979
• Jaikwadi	341.05	1986
• Kalsubai Harishchandra	361.71	1986
• Katepurna	73.69	1988
• Koyna	423.55	1985
• Malvan Marine	29.12	1987
• Melghat	597.23	1985
• Nagzira	152.81	1970
• Nandur Madmeshwar	100.12	1986
• Painganga	324.62	1986
• Phansad	69.79	1986
• Radhangiri	371.88	1958
• Sagareshwar	10.87	1985
• Tansa	30.41	1970
• Wainganga		

• Yawal	177.52	1969

GUJARAT

National Parks	***Area in Sq. Km.***	***Year of Notification***
• Bansda	23.99	1979
• Gir	258.71	1975
• Marine(Gulf of Kutch)	162.89	1980
• Velavadar	34.08	1976
Sanctuaries		
• Balaram–Ambaji	542.08	1989
• Barda	192.31	1979
• Dhumkhal		
• Gir1	153.42	1965
• Jambughoda	130.38	1990
• Jessore	180.66	1978
• Khijadiya		
• Kutch Desert	7506.22	1986
• Marine (Gulf of Kutch)	293.03	1980
• Nal Sarovar	120.82	1969
• Narayan Sarovar (Chinkara)	765.79	1981
• Paniya	39.63	1989
• Purna	160.84	1990
• Rampura	15.01	1988
• Ratanmahal	55.65	1982
• Schoolpaneshwar	607.70	1982
• Wild Ass	4953.70	1973

GOA, DAMAN AND DIU

National Park	***Area in Sq.Km.***	***Year of Notification***
• Bhagwan Mahavir	107.00	1978
Sanctuaries		
• Bhagwan Mahavir	148.52	1967
• Cotigao	105.00	1968

EASTERN INDIA

West Bengal

National Parks	Area in Sq. Km.	Year of Notification
• Neora Valley	88.00	1992
• Singalila	78.60	1992
• Sundarban	1330.10	1984
Sanctuaries		
• Buxa	251.89	1986
• Bibnutibhushan		
• Betuadahary		
• Ballavpur		
• Chapramari		
• Gorumara		
• Halliday Island	5.95	1976
• Jaldapara	216.51	1990
• Jorpokhri		
• Lothian Island	38.00	1976
• Mahananda	127.22	1976
• Narendrapur		
• Parnadhan		
• Ramnabagan		
• Raiganj		
• Sajnakhali	362.40	1976
• Senchal	38.88	1976

Sikkim

National Park	***Area in Sq. Km.***	***Year of Notification***
• Khangchendzonga	849.50	1977
Sanctuaries		
• Fambong Lho	51.76	1984
• Kyongasia Alpine		
• Maenam	35.34	1987
• Shingba Rhododendron	32.50	1984

Arunachal Pradesh

National Parks	***Area in Sq. Km.***	***Year of Notification***
• Moiling	483.00	1986
• Namdapha	1985.24	1983
Sanctuaries		
• D'Ering Memorial	190.00	1978
• Dibang Valley	4149.00	1991
• Eagle nest	217.00	1989
• Itanagar	140.30	1978
• Kamlang	783.00	1989
• Kane	55.00	1991
• Mehao	281.50	1980
• Pakhui	861.95	1977
• Sessa Orchid	100.00	1989

Assam

National Park	***Area in Sq. Km.***	***Year of Notification***
• Kaziranga	429.96	1974
• Nambiar		
Sanctuaries		
• Barnadi	26.22	1980
• Dipor Beel	40.00	1989
• Garampani		
• Laokhowa	70.14	1979
• Manas	391.00	1928
• Nameri	137.07	1985
• Orang	72.60	1985
• Pabha	49.00	
• Pobitara	38.83	1987
• Sonai Rupai	175.00	1934

Manipur

National Park	***Area in Sq. Km.***	***Year of Notification***
• Keibul Lamjao	40.00	1977
• Siroi	41.30	1982

Sanctuary

• Yagoupokpi Lokchao	184.80	1989

Meghalaya

National Parks	**Area in Sq. Km.**	**Year of Notification**
• Balphakram	220.00	1986
• Nokrek	47.48	1986
Sanctuaries		
• Bhagmara		
• Nongkhyllem	29.00	1981
• Siju		

Mizoram

National Park	**Area in Sq. Km.**	**Year of Notification**
• Murlen	200.00	1991
• Phawngpui	50.00	1991
Santuaries		
• Dampa	500.00	1985
• Khawnglung	41.00	1991
• Ngengpui	150.00	1991

Nagaland

Sanctuaries	***Area in Sq. Km.***	***Year of Notification***
• Intanki	202.02	1975
• Pulebatze		
• Fakim		

Tripura

Sanctuaries	***Area in Sq. Km.***	***Year of Notification***
• Charilam		
• Gumti	389.54	1988
• Sepahijala	18.53	1987
• Trishna	170.56	1987

SOUTHERN INDIA

Andra Pradesh

National Parks	***Area in Sq. Km.***	***Year of Notification***
• Shri Venkataswara	353.00	
Sanctuaries		

• Coringa	235.79	1978
• Eturnagaram	803.00	1953
• Gubdlabrahmeswaram	1194.00	
• Kaundinya	357.60	
• Kawal	893.00	1965
• Kinnerasani	655.41	1977
• Kolleru	673.00	1963
• Krishna	194.81	
• Lanjamadugu		
• Manjira	20.001978	
• Nagarjunasagar Srisailam	3,568.00	1978
• Neelapattu	4,404.00	
• Pakhal	879.30	1952
• Papikonda	590.68	1978
• Pocharam	130.00	1952
• Pranahita	136.02	1980
• Pulicat	500.00	1976
• Rollapadu	614.00	
• Srilanka Malleswara	464.42	
• Siwaram	36.29	1978
• Srivenkateswara	506.94	

Karnataka

National Parks	***Area in Sq. Km.***	***Year of notification***
• Anshi	250.00	1987
• Bandipur	874.20	1974
• Bannerghatta	104.27	1974
• Kudremukh	600.32	1987
• Nagarhole	643.30	1988
Sanctuaaries		
• Arabithittu	13.50	1985
• Bhadra	492.46	1974
• Biligiri Rangaswamy Temple	539.52	1987

• Bramhagiri	181.29	1974
• Cauvery	510.51	1987
• Dandeli		
• Ghataprabha	29.78	1974
• Melkote Temple	49.82	1974
• Mukambika	247.00	1974
• Nugu	30.32	1974
• Pushpagiri	102.59	1987
• Ranganthittu		
• Ranebennur	119.00	1974
• Sharavathi Valley	431.23	1974
• Shettihally	395.60	1974
• Someswara	88.40	1974
• Talakaveri	105.00	1987

Kerala

National Parks	***Area in Sq. Km.***	***Year of Notification***
• Eravikulam	97.00	1978
• Periyar	305.00	1982
• Silent Valley	89.52	1980

Sanctuaries

• Aralam	55.00	1984
• Chimony	105.00	1984
• Chinnar	90.44	1984
• Idukki	77.00	1976
• Neyyar	128.00	1958
• Parambikulam	285.00	1973
• Peechi Vazhani	125.00	1958
• Peppara	53.00	1983
• Periyar	472.00	1950
• Shenduruny	100.32	1984
• Thattekkad Bird	25.00	1983
• Wynad	344.44	1973

Tamil Nadu

National Parks	***Area in Sq. Km.***	***Year of Notification***
• Guindy		
• Indira Gandhi	118.08	1989
• Anamalai	849.35	
Sanctuaries		
Kalakad	223.58	
Karikili		
Mudumalai	321.55	
Mukurthi	78.46	
Mundanthurai	567.38	
Point Calimere	17.26	
Pulicat	461.02	
Srivilliputhur	485.20	
Vedantangal		
Vettangudi		

THE ANDAMAN ISLANDS

National Parks	***Area in Sq. Km.***	***Year on Notification***
• Campbell Bay	426.23	1992
• Galathea	110.00	1992
• Wandur	281.50	1983
• Mount Harriet Island	46.22	1979
• Saddle Peak	32.55	1979
Sanctuaries		
• Barren Island	8.10	1977
• Battimalve Island	2.23	1985
• Benett Island	3.46	1987
• Bluff Island	1.14	1987
• Bondoville Island	2.55	1987
• Buchaan Island	9.33	1987
• Cinque Island	9.51	1987
• Crocodile (Lohabrrack)	22.21	1983

• Defence Island	10.49	1987
• East (Inglis) Island	3.55	1987
• East Island	6.11	1987
• Flat Island	9.36	1987
• Interview Island	133.00	1985
• James Island	2.10	1987
• Kyd Island	8.00	1987
• Landfall Island	29.48	1987
• North Reef Island	3.48	1977
• Paget Island	7.36	1987
• Pitman Island	1.37	1987
• Point Island	3.07	1987
• Ranger Island	4.26	1987
• Reef Island	1.74	1987
• Roper Island	4.26	1987
• Ross Island	1.01	1987
• Sandy Island	1.58	1987
• Shearme Island	7.85	1987
• Sir Hugh Rose Island	1.06	1987
• South Brother Island	1.24	1987
• South Reef Island	1.17	1987
• South Sentinel Island	1.61	1977
• Spike Island	211.70	1987
• Swamp Island	4.09	1987
• Table (Delgarno) Island	2.29	1987
• Table (Excelsior) Island	1.69	1987
• Talabaicha Island	3.21	1987
• Temple Island	1.04	1987
• Tillanchang Island	6.83	1985
• West Island	6.40	1987

विशिष्ट प्रजाति संरक्षण योजनायें (Special Project for Endangered spices):

संकटग्रस्त जातियों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय पार्क व वन्य जीव अभयारण्य के अलावा विशिष्ट प्रजातियों के लिए प्रोजेक्ट स्थापित किये गये है।

बाघ परियोजना (Tiger Project) : बाघों के संरक्षण के लिए निर्मित किया गया है। वर्तमान में बाघ परियोजना स्थलों की संख्या 18 है।

तालिका–11.6 : भारत के बाघ परियोजना क्षेत्र

क्र.स.	टाइगर रिजर्व	स्थापना	क्षेत्रफल वर्ग (कि.मी.)
1.	बान्दीपुर (कर्नाटक)	1973	866
2.	कॉरबेट (उत्तरांचल)	1973	1134
3.	कान्हा (मध्यप्रदेश)	1973	1945
4.	मानस (असम)	1973	2840
5.	मेलघाट (महाराष्ट्र)	1973	1597
6.	पलामू (झारखण्ड)	1973	928
7.	रणथम्भौर (राजस्थान)	1973	825
8.	सिमलिपाल (उड़ीसा)	1973	2750
9.	सुन्दरवन (पं. बंगाल)	1973	2585
10.	पेरियार (केरल)	1982	777
11.	सरिस्का (राजस्थान)	1982	800
12.	बक्सर (पं. बंगाल)	1983	759
13.	इन्द्रावती (छत्तीसगढ़)	1983	2799
14.	नागार्जुन सागर (आन्द्रप्रदेश)	1983	3568
15.	नामदमा (अरुणाचल प्रदेश)	1983	1985
16.	दुधवा (उत्तरप्रदेश)	1987	811
17.	कलकाड मुण्डनथूरई (तमिलनाडु)	1988	800
18.	वाल्मिकी (बीहर)	1990	840

इसी प्रकार 1972 में सिंह परियोजना (गुजरात), मगरमच्छ परियोजना (1975 में) विभिन्न नदियों जैसे महानदी, कृष्णा, गौमती, चम्बल आदि गैण्डा परियोजना (आसाम में 1981) में, हाथी परियोजना (1972 में दक्षिणी व पूर्वी भारत) हिम तेंदुआ परियोजना हिमालय क्षेत्र में, पक्षी विहारों में घना पक्षी उद्यान घना (भरतपुर), महाराष्ट्र एवं मध्यप्रदेश में ग्रेट इण्डियन बस्टर्ड पक्षी विहार, दिल्ली के निकट "यमुना बायोडायारसिटी पार्क" स्थापित किया गया। इसी प्रकार 2006 में बेंगलुरु के निकट बानरघाट नेशनल पार्क में कीट प्रजातियों के संरक्षण के लिए तितली संरक्षण गृह की स्थापना की गई है।

इस प्रकार स्व:आवासीय संरक्षण के अन्तर्गत वन्य जीवों एवं पादप जातियों को पूर्ण संरक्षण प्रदान किया जाता है।

11.10.2 बहिस्थाने/कृत्रिम आवासीय संरक्षण (Ex–Situ Conservation)

जैसा कि नाम से विदित होता है, जब संकटग्रस्त पादपों और जीवों को मूल आवास से घटाकर मानव द्वारा निर्मित सुरक्षित आवासों में संरक्षण प्रदान किया जाता है, तब उसे कृत्रिम आवासीय संरक्षण कहते हैं। बर्हिस्थाने संरक्षण केन्द्र पर दर्शक निर्भय बन कर वन्य जीवों को

देख सकते हैं। ऐसे केन्द्र जन्तुशालायें, बोटेनिकल गार्डन, आनुवांशिक स्टोर गृह, जीवाणुद्रव्य बैंक, उतक संवर्धन केन्द्र आदि है।

कृत्रिम आवास में प्राणियों व पादपों को प्राकृतिक आवास से मिलता–जुलता वातावरण उपलब्ध होने पर ही उनकी वंश वृद्धि की संभावना बनती है। प्राकृतिक आवासों से विलुप्त हो चुके एक जिम्नोस्पर्म पादप गिन्गो बाइलोबा (Ginkgo Biloba) को सुरक्षित रखा गया है। इसी प्रकार भारत में 'मगरमच्छ परियोजना' में कृत्रिम आवासीय संरक्षण विधि के प्रयोग द्वारा सर्वप्रथम टिकरपाड़ा (उड़ीसा) में 1975 में घड़ियाल के अण्डों को से कर बच्चे विकसित किये गये। पादप व जन्तु जातियों के बर्हिस्थाने संरक्षण में मुख्यत: निम्न उपाय अपनाये जा रहे हैं–

1. **जननद्रव्य संरक्षण (Germplams Conservation) :** विलुप्त हो रहे पादपों एवं जन्तुओं के जननद्रव्य अर्थात बीज, फल, पराग, जीवाणु, अण्डाणु आदि का संग्रहण करने के लिए जिस बैंक की स्थापना की जाती है उसे जननद्रव्य बैंक कहते है। इनका संरक्षण निम्न ताप सरंक्षण विधि (Cryopreservation) व मंद वृद्धि कल्चर (Slow Growth Culture) तकनीक से किया जाता है।
2. **जीन बैंक (Gene Bank)** अनेक संकटग्रस्त बहुमूल्य जातियाँ जिनके विलुप्त होने की सम्भावनाएं अधिक होती है। उन्हें जीवित अवस्था में संरक्षित कर लिया जाता है। जीवित अवस्था में संरक्षण प्रदान करने की इस विधि को जीन बैंक (Gene Bank) कहा जाता है। प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय कृषि केन्द्रों पर ऐसे 12 बैंक है, जहाँ 'जीन' सुरक्षित हैं। CGIAR (अन्तर्राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान फार जीन) इनको आर्थिक सहायता देता हैं। इन 12 केन्द्रों के पास लगभग 5 लाख जीन नमूने संरक्षित है। मेक्सिको में गेहूँ व मक्का के और फिलीपीन्स में चावल के जीन रखे है। भारत में NBPGR (National Bureau of Plant Genetic Research) दिल्ली में जीन बैंक की स्थापना की है। इस संस्थान ने देश में दुर्लभ तथा विलुप्त प्राय: पादपों के जननद्रव्य को संरक्षित रखा गया है। इसी प्रकार संकटग्रस्त जातियों के संरक्षण हेतु हैदराबाद के नेहरू जन्तु पार्क में अनुसंधान केन्द्र स्थापित किया गया है। जैव विविधता के संरक्षण के लिए उपरोक्त संरक्षण विधियों के अतिरिक्त वन्य जीवों के शिकार पर प्रतिबन्ध, प्राकृतिक आवास स्थलों की सुरक्षा, विलुप्त होने वाले पादपों व जीवों का कृत्रिम संग्रहण, जंगलों की कटाई पर रोक व सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान करना सम्मिलित है।

बोध प्रश्न – 4

1. जैव विविधता के लोप का प्रमुख कारण मानवीय गतिविधि को किस सम्मेलन में बताया है?

   .....

   .....

2. भारत में 2003 के संसद द्वारा कौन सा विधेयक पारित किया गया था।

.....

.....

3. जैव–विविधता के संरक्षण के दो मुख्य आधार किनसे हैं?

.....

.....

4. भारत में सर्वप्रथम किनसे नेशनल पार्क की स्थापना की गई थी?

.....

.....

11.11 सारांश (Summery)

जैव विविधता और पारिस्थितिक तंत्र पर समाज आधारित है। पारिस्थितिक संतुलन और जैव विविधता में पारस्परिक अर्न्तसंबंध है। जितनी अधिक जैव विविधता उतना ही अच्छा पारिस्थितिक संतुलन होगा। लेकिन प्राकृतिक कारकों के साथ–साथ निरन्तर मानवीय हस्तक्षेप बढ़ते रहने के कारण जैव विविधता का हास हो रहा है। यदि जैव विविधता का संरक्षण नहीं किया गया तो यह एक विकराल समस्या उत्पन्न करेगा, जिसके कारण मानव जीवन भी प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होगा। अत: जैव विविधता के संरक्षण के लिए स्थानीय, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किये जा रहे है।

11.12 शब्दावली (Glossary)

1. **जैव विविधता :** जैव विविधता से तात्पर्य पारिस्थितिकी से जुड़े समस्त पौधें, पशु एवं सूक्ष्म जीवों के समुदाय एवं प्रजातियों के सम्मिलित होने से है।
2. **पारिस्थितिक तंत्र :** किसी पर्यावरण के समस्त जीवित एवं अजीवित कारकों की पारस्परिक अंतःक्रिया तथा उनके समाकलन से उत्पन्न तंत्र।
3. **आवास जैव विविधता :** राष्ट्रीय स्तर पर मिलने वाले विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रो के कारण भिन्नता मिलती है। इसे आवास जैव विविधता कहते है।
4. **स्थानीय जैव विविधता :** किसी भी स्थान पर मिलने वाले जीवों की जातियों की संख्या व विविधता को स्थानीय जैव विविधता कहते हैं।
5. **संवेदनशील क्षेत्र तप्त स्थल :** वे स्थान जो जैव विविधता की दृष्टि से अत्यधिक सम्पन्न तप्त स्थल है, किन्तु वर्तमान में संकटग्रस्त हो गये है।
6. **स्वस्थाने संरक्षण :** इसमें जीवों का सरंक्षण प्राकृतिक आवासों में ही किया जाता है।
7. **बर्हिस्थाने संरक्षण :** इसमें जीवों का संरक्षण कृत्रिम आवासों में किया जाता है।

11.13 संदर्भ ग्रंथ (Reference Books)

1. विल्सन : **इ.ओ. कांसीलिएन्स,** नॉफ, N.Y. 1998
2. मीणा, वेद प्रकाश : **डेजर्ट नेशनल पार्क** (एनाल्स ऑफ दि राजस्थान ज्यागाफिकल एसोसिएशन, भीलवाड़ा, राज.)

3. कुमार, एच.डी. : **बायोडाइवरसिटी एण्ड सस्टेनेबिल कन्जरवेशन,** ऑक्सफोर्ड I.B.H., न्यू देहली
4. वर्मा, एल.एन., खत्री, एल.सी., कायमखानी, इशाक मोहम्मद : **पर्यावरण अध्ययन,** राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर,
5. जोशी, रतन : **जैव भूगोल एवं जैव विविधता,** राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2007
6. शर्मा, एम.एल. **पर्यावरण अध्ययन,** माया प्रकाशन मंदिर, जयपुर, 2005
7. कलवार, सुगन चन्द : **पर्यावरण संरक्षण,** पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2000
8. Kalwar, S.C : Environmental Issues and Sustainable Development, Pointer Publishers, Jaipur, 2003
9. कलवार, सुगन चन्द : **पर्यावरण एवं परती भूमि,** पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 1996
10. Kalwar, S.C. et al., : **Geomorphology and Environmental Sustainability,** Concept Publishing Company, New Delhi, 2005
11. Kalwar, S.C. : **Wastelands and Planning for Development,** Concept Publishing Company, New Delhi, 2008

11.14 बोध प्रश्नों के उतर

बोध प्रश्न – 1

1. जैव विविधता
2. (i)आनुवांशिक विविधता
   (ii) जातीय विविधता
   (iii) पारिस्थितिकी तंत्र विविधता
3. आनुवांशिक विविधता

बोध प्रश्न – 2

1. छः
2. पैलिआर्कटिक परिमण्डल या पुरानी दुनिया
   निआर्कटिक परिमण्डल या उतरी अमेरिका
   इथयोपी परिमण्डल
   प्राच्य परिमण्डल
   निओट्रॉपिकल परिमण्डल
   आस्ट्रेलियाई परिमण्डल
3. 5 प्रतिशत
4. दसवाँ

बोध प्रश्न – 3

1. Botanical Survey of India (बॉटेनिकल सर्वे ऑफ इण्डिया) या भारतीय वानस्पतिक सर्वेक्षण।
2. संवेदनशील क्षेत्र या तप्त स्थल
3. मानस

बोध प्रश्न – 4

1. पृथ्वी शिखर सम्मेलन (1992)
2. जैव विविधता विधेयक
3. (i) स्वस्थाने/स्व आवासीय संरक्षण
   (ii) बहिस्थाने/कृत्रिम आवासीय संरक्षण
4. हैली नेशनल पार्क (कालान्तर में जिम कार्बेट नेशनल पार्क, उत्तरांचल)

11.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जैव विविधता के प्रकारों का वर्णन कीजिये।
2. जैव विविधता पर संकट के कारणों का वर्णन कीजिये।
3. जैव विविधता संरक्षण के दो मुख्य आधार कौन–कौन से है? स्वस्थाने/स्व आवासीय संरक्षण का विस्तृत वर्णन कीजिये।

इकाई 12 : पर्यावरणीय प्रभाव का मूल्यांकन (Environmental Impact Assessment)

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन की अवधारणा
12.3 पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन की आवश्यकता
12.4 पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन के उद्देश्य
12.5 पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन के उपागम
12.6 पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन के सोपान
12.7 पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन विधि तंत्र पक्ष
12.8 पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन विधि तंत्र तथा विधियाँ
12.9 सारांश
12.10 शब्दावली
12.11 संदर्भ ग्रन्थ
12.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगें कि–

- मानवीय क्रियाकलापों का पर्यावरण पर प्रभाव,
- पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन का उद्देश्य व उपागम,
- पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन के विभिन्न चरण,
- पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन की विधियाँ,
- विभिन्न विकास परियोजनाओं के पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन।

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव पर्यावरण की उपज है। पर्यावरण के विभिन्न घटक उसके जीवन के आधार है। मानव प्रारम्भ से ही खोजी प्रवृति का रहा है। अपनी बुद्धिमत्ता के बल पर इसने प्राकृतिक संसाधनों का शोषण करके अपने जीवन स्तर को बढ़ाने में सफलता अर्जित की। आज उसे अपने भौतिक विकास या आर्थिक विकास का मूल्य पर्यावरण प्रदूषण एवम् पारिस्थितिक असंतुलन के रूप में चुकाना पड़ रहा है। मानव के प्रारंभिक क्रियाकलाप इतने सीमित थे कि उनसे पर्यावरण पर किंचित प्रभाव ही पड़ा एवम् वह भी प्रकृति की स्वनियामक प्रणाली के कारण कुछ अवधि पश्चात् समायोजित हो गया। तकनीकी दक्षता में वृद्धि के साथ उसके क्रियाकलाप पर्यावरण को

अस्थिर करने लगे। पर्यावरण के जीवनदायी घटक जल, वायु, मृदा इत्यादि गुणवत्ता में ह्रास के कारण जीव जगत को हानि पहुँचाने लगे। प्राकृतिक प्रकोपों मे वृद्धि हुयीं। मानव लाख प्रयत्न के उपरान्त भी इनका ठोस उपाय नहीं ढूँढ पाया। अंतत: निष्कर्ष पर पहुँचा कि उसके स्वयं के क्रियाकलाप ही इसके लिये उत्तरदायी है। अत: प्रकृति में हस्तक्षेप करने वाले प्रत्येक क्रियाकलाप के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों के मूल्यांकन की क्रिया विधि विकसित की गयी। आर्थिक विकास के लिये स्थापित की जाने वाली या स्थापित कोई परियोजना पर्यावरण को किस सीमा तक प्रभावित करेगी ? पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन के आधार पर इसका निर्णय लिया जाने लगा।

12.2 पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन की अवधारणा (Concept of Environmental Impact Assessment)

प्राकृतिक संसाधनों के दोहन एवम् उपयोग से संबंधित मानवीय क्रियाकलापों के प्राकृतिक पर्यावरण पर पड़ने वाले संभावित प्रभावों के आंकलन एवम् मूल्यांकन को सम्मिलित रूप से पर्यावरण प्रभाव मूल्याकंन (Environmental Impact Assessment, E.I.A.) कहते है। इसके द्वारा कोई भी परियोजना प्रारंभ होने से पूर्व ही आंकलन कर लिया जाता है कि, यह पर्यावरण हितैषी होगी या नहीं। मानव के क्रियाकलापों के प्राकृतिक पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों के विषय में सामान्य वक्तव्य को पर्यावरण प्रभाव कथन (Environment Impact Statement, E.I.S.) कहते है।

पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन में मात्र यह आंकलन नहीं किया जाता है कि पर्यावरण के प्राकृतिक घटकों पर क्या प्रभाव पड़ेगा अपितु पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के मानव समाज पर प्रभावों का भी आंकलन किया जाता है। इस प्रकार किसी भी क्षेत्र में स्थापित की जाने वाली परियोजना (उद्योग, सिचाई, कृषि, खनन, अधिवास, परिवहन मार्ग, जलाशय आदि) से स्थानीय पर्यावरण में होने वाले संभावित परिवर्तन, अथवा पर्यावरण की नवीन दशाओं की सृष्टि, प्रस्तावित कार्य के कारण होने वाले लाभदायक या प्रतिकूल प्रभाव, जो प्रस्तावित कार्य योजना की प्रकृति, आकार, अवस्थिति या प्रयुक्त की जाने वाली प्रौद्योगिकी के अनुसार भिन्न हो सकते हैं, का मूल्यांकन पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन कहलाता है। पर्यावरण प्रभाव का मूल्यांकन किसी योजना के प्रारंभ होने से पूर्व होता है, किन्तु यह स्थापित परियोजना की निरंतरता की स्वीकृति के लिये भी किया जाता है। किसी परियोजना के प्रारंभ होने के थोड़ी–थोड़ी अवधि बाद भी किया जा सकता है। इस प्रकार पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन मानव के विविध कार्यो (भूमि उपयोग में परिवर्तन, निर्माण, उत्पादन, मनोरंजन आदि) द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों तथा इनसे मानव समाज पर पड़ने वाले प्रभावों के आंकलन एवम् निर्धारण की एक विधि है। इससे पर्यावरण पर पड़ने वाले विपरीत प्रभावों से बचा जा सकता है।

12.3 पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन की आवश्यकता (Necessity of Environmental Impact Assessment)

औद्योगिक क्रान्ति के बाद हुये तीव्र औद्योगीकरण, नगरीकरण, उत्खनन आदि गतिविधियों के अबाध रूप से जारी रहने से अनेक पर्यावरणीय समस्यायें उत्पन्न हो गयी। क्योंकि इनकी शुरूआत से पूर्व यह सोचा तक नहीं गया कि इनसे पर्यावरण को कितनी क्षति होगी। अब मानव के समक्ष निरंतर घटते प्राकृतिक संसाधनों के कारण भविष्य की चिंता सताने लगी एवम् ग्रीन हाउस प्रभाव, ओजोन क्षरण, भू तापन आदि पर्यावरणीय संकटों से घिर गया। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन की प्रक्रिया को अपनाया जाने लगा। आज यह प्रक्रिया पर्यावरण प्रबंध का अभिन्न अंग है। इससे पर्यावरणीय प्रबंध को वैज्ञानिक आधार प्राप्त हुआ है। पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन तर्कपूर्ण प्रबंधन का आधार प्रस्तुत करता है। जिसके आधार पर नीतियाँ एवम् योजना बनायी जाती हैं। मानव क्रियाकलापों से उत्पन्न वर्तमान एवम् संभाव्य संकटों को समझने के लिये पर्यावरण के तत्वों का सही मूल्यांकन आवश्यक है। उदाहरणार्थ किसी उद्योग की स्थापना से पूर्व ही उससे होने वाले पर्यावरण प्रदूषण के दुष्प्रभावों का आकलन करने से संभावित प्रदूषण की रोकथाम के उपाय प्रांरभ में ही कर लियें जायेंगे। इस प्रकार उद्योग की स्थापना से स्थानीय पर्यावरण प्रदूषित भी नहीं होगा। पर्यावरण पर पड़ने वाले विपरीत प्रभावों से बचने के लियें किसी भी परियोजना को प्रारंभ करने से पूर्व पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन की आवश्यकता होती है, जैसे उद्योग, खनन, ताप विद्युतगृह, नदीघाटी, रेलमार्ग, सड़क, बंदरगाह, पोताश्रय, हवाईअड्डा, आवासीय बस्ती इत्यादि।

12.4 पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन के उद्देश्य (Objectives of Environmental Impact Assessment)

पर्यावरण प्रभावों का मूल्यांकन जहाँ तात्कालिक लाभ के लिये आवश्यक है वहीं भविष्यगत पर्यावरणीय संकटों से भी मुक्ति दिलाता है। पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं–

1. पर्यावरण की गुणवत्ता बनाये रखना,
2. पर्यावरण एवम् जीवमण्डल को हानि पहुँचाने वाले मानवीय क्रियाकलापों को हतोत्साहित करना,
3. आर्थिक विकास एवम् पर्यावरण संरक्षण, दोनों को ही ध्यान में रखते हुये मूल्यांकन एवम्आकलन,
4. वनस्पति एवम् प्राणियों के कल्याण के अनुकूल कार्यों को बढ़ावा,
5. परियोजना के अल्पकालिक एवम् दीर्घकालिक अधिप्रभावों का उल्लेख,
6. परियोजना के प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष अधिप्रभावों का आंकलन,
7. प्रस्तावित परियोजना की अवस्थिति का आर्थिक व पर्यावरणीय विश्लेषण एवम् विकल्पों का तुलनात्मक विवरण,

8. परियोजना से होने वाले प्रतिकूल प्रभावों को दूर करने के कारगर एवं ठोस उपायों का उल्लेख।

बोध प्रश्न – 1

1. पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन के लिये प्रयुक्त संक्षिप्ताक्षर बताइये।

   .....

   .....

2. पर्यावरण प्रभाव कथन के लिये प्रयुक्त संक्षिप्ताक्षर बताइये।

   .....

   .....

3. पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन किस का अभिन्न अंग है?

   .....

   .....

4. कोई दो मानवीय क्रियाकलाप बताइये, जिनके लिये E.I.A. आवश्यक होता है।

   .....

   .....

12.5 पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन के उपागम (Approaches to Environmental Impact Assessment)

पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन के लिये अनेक उपागम अपनाये जाते हैं–

1. **प्रादेशिक उपागम :** इसे पारिस्थितिकी तंत्र के आधार पर मूल्यांकन भी कहते हैं। इसमें किसी क्षेत्र या पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव का मूल्यांकन किया जाता है।
2. **आवास उपागम :** इसमें विविध प्रकार के प्राकृतिक आवास्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का मूल्यांकन किया जाता है। इसके अंतर्गत एकाकी जाति के आधार पर मूल्यांकन भी सम्मिलित है।
3. **उपयोग और संरक्षण उपाय :** इसके अंतर्गत उपयोग की दर पर प्राकृतिक संसाधनों का मूल्यांकन किया जाता है।
4. **कालिक उपागम :** इसके अतंगर्त पर्यावरण के विभिन्न घटकों तथा मानव समाज पर पड़ने वाले तात्कालिक एवम् दूरगामी प्रभावों का मूल्यांकन समय के संदर्भ में किया जाता है।

12.6 पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन के सोपान (Steps to Environmental Impact Assessment)

सामान्यत : किसी भी क्षेत्र में प्रस्तावित परियोजना के पर्यावरण प्रभाव कथन (E.I.S.) या मूल्यांकन (E.I.S.) की प्रक्रिया निम्न सोपानो में पूर्ण होती है–

1. पर्यावरण की वर्तमान दशा व गुणवत्ता के स्तर का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना,
2. प्रस्तावित परियोजना के लक्ष्यों एवम् आवश्यकताओं का विवरण प्रस्तुत करना,

3. परियोजना के क्रियान्वयन की स्थिति में प्राकृतिक पर्यावरण पर पड़ने वाले अल्पकालिक एवम् दीर्घकालिक प्रभावों का उल्लेख करना,
4. परियोजना के क्रियान्वयन से प्रभावित क्षेत्र के निवासियो तथा सांस्कृतिक भूदृश्य पर पड़ने वाले लाभदायक व हानिकारक प्रभावो का विवरण प्रस्तुत करना,
5. परियोजना की अवस्थिति का विश्लेषण तथा वैकल्पिक स्थितियों का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत करना,
6. परियोजना के क्रियान्वयन से उत्पन्न होने वाले प्रतिकूल प्रभावो की रोकथाम हेतु उपायो का विवरण व सुझाव देना।

12.7 पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन के विविध पक्ष (Various Aspects of Environmental Impact Assessment)

पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन के महत्वपूर्ण पक्ष निम्न है–

1. **क्षेत्र की पर्यावरणीय दशायें :** जिस क्षेत्र में प्रस्तावित परियोजना को प्रारंभ करना है ,उस क्षेत्र की वर्तमान पर्यावरणीय दशाओं की विस्तृत जानकारी पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन को आधार प्रदान करती है। उस क्षेत्र का उच्चावच, भूगर्मिक संरचना, भूगर्मिक हलचलों के प्रति संवेदनशीलता, मृदा स्वरूप, जैव विविधता, प्राकृतिक प्रकोप, जलवायु दशा, भूजल स्रोत, खनिज संपदा, भूमि उपयोग, ऐतिहासिक महत्व, मानव समुदाय, व्यवसाय, सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्वरूप इत्यादि की अद्यतन तथा दीर्घकालिक जानकारी इस दृष्टि से अत्यंत उपयोगी होती है। इसे अन्य शब्दों में कहें तो क्षेत्र के प्राकृतिक एवम् मानवीय संसाधनों का सर्वेक्षण एवम् आकंलन आवश्यक होता है।
2. **संसाधन उपयोग की दर तथा भविष्यगत संभावना :** क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित कोई परियोजना प्रस्तावित है, तो उस संसाधन की उपलब्धता, संसाधन उपयोग की वर्तमान दर तथा भविष्य की आवश्यकताओं या संभावनाओं का आंकलन पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन का महत्वपूर्ण पक्ष हैं। उदाहरणार्थ – उत्खनन परियोजना या खनिज प्रगालक संयंत्र के लिये भूगर्भ में उपलब्ध निक्षेपों का आंकलन आवश्यक हैं। यदि संसाधन की स्थानीय आपूर्ति दीर्घकाल तक संभव नहीं है या अत्यधिक गहराई के कारण अनार्थिक हो सकती है तो परियोजना की स्थापना के लियें प्राकृतिक भू–दृश्य में किया गया परिवर्तन पर्यावरण की स्थायी हानि बन जायेगा।

   संसाधनों के उपयोग का अन्य पक्ष भी हैं। कोई भी परियोजना स्थापित होने पर उसमें कार्य करने वाले श्रमिकों एवं कर्मचारियों के साथ ही परिवहन, विपणन तथा सेवा में संलग्र व्यक्तियो का संकेन्द्रण होने लगता है। इससे स्थानीय संसाधनों पर दबाव बढ़ता है।उदाहरणार्थ, कम वर्षा एवम् भू–जल की कमी वाले क्षेत्र में जन दबाव बढ़ने पर जलाभाव की समस्या उत्पन्न हो सकती है। अत: परियोजना के लिये संसाधन उपयोग मूल्यांकन करते समय इस पक्ष को भी ध्यान में रखना चाहिये।

3. **पर्यावरण अवनयन से उत्पन्न समस्यायें व उपाय :** पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन में परियोजना के क्रियान्वयन पर क्षेत्र के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का विस्तृत उल्लेख किया जाता है। उस क्षेत्र के लोगों के साथ ही वनस्पति, जीव जन्तु, मृदा, जलराशियाँ, वायु, तापमान इत्यादि पर पड़ने वाले प्रभाव इसमें सम्मिलित होते हैं। अनेक बार क्षेत्रीय विकास तथा समाज को मिलने वाले व्यापक लाभ के दृष्टिगत पर्यावरण हानि को नजर अंदाज करना होता है। ऐसी स्थिति में पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन में पर्यावरण हानि की रोकथाम के लिये प्रस्तुत किये गये उपाय अत्यंत लाभकारी सिद्ध होते हैं। यह अध्ययन व आंकलन परियोजना की स्थापना से पूर्व किये जाते हैं अत: पर्यावरण पर पड़ने वाले विपरीत प्रभावों से बचा जा सकता है या उपचारात्मक उपाय किये जा सकते हैं।

12.8 पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन विधितंत्र तथा विधियाँ (Rules and Regulation of Environmental Impact Assessment)

पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन के लिये अनेक विधितंत्र एवम् उपाय सुझाये गयें हैं। अमेरिकी पर्यावरणविद एल.बी. लिओपोल्ड तथा उसके साथियों ने 1971 में लिओपोल्ड मेट्रिक्स विधि का प्रतिपादन किया। इसमें क्षैतिज अक्ष के सहारे परियोजना के 100 कार्यो तथा लंबवत अक्ष के सहारे 88 पर्यावरण दशाओं को सम्मिलित किया गया। इस विधि के निम्न सोपान हैं–

1. प्रस्तावित परियोजना के लक्ष्यों का विवरण तथा परिभाषा,
2. उक्त लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु तकनीकी संभावनायें,
3. निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रस्तावित कार्य एवं वैकल्पिक योजनायें,
4. योजना के प्रारंभ से पूर्व पर्यावरणीय दशाओं का विस्तृत विवरण,
5. प्रस्तावित योजना के अन्तर्गत आने वाली अभियान्त्रिक लागत एवं लाभों का विश्लेषण,
6. परियोजना से सम्बन्धित अभियान्त्रिक प्रतिवेदन एवं पर्यावरण दशाओं का विवरण, जिस आधार पर संभावित पर्यावरणीय प्रभावों का मूल्यांकन किया जाता है,
7. प्रत्येक वैकल्पिक योजना के कार्यो के पर्यावरणीय अधिप्रभावों का अलग–अलग मूल्यांकन करना
8. पर्यावरण अधिप्रभाव कथन का प्रस्तुतीकरण, जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण विश्लेषण का सारांश प्रस्तुत किया जाता है, तथा योजना के संबंध में अंतिम संस्तुति दी जाती है।

लिओपोल्ड मेट्रिक्स

भाग–अ (लंबवत रखना)	**भाग–ब (क्षैतिज रखना)**
प्रभावित पर्यावरणीय दशायें	**परियोजना से संबंधित कार्य**
1. भौतिक एवं रासायनिक विशेषताएँ	**1. क्षेत्रगत रूपान्तरण**
1. पृथ्वी	1. बाहरी पादपों तथा जन्तुओं का प्रवेश
1. खनिज	2. जैविक नियंत्रण

2. निर्माण सामग्री
3. मृदायें
4. स्थलरूप
5. शक्तियाँ
6. अनूठी भौतिक आकृतियाँ

2. जल संघटक
1. सतही जल
2. सागरीय जल
3. भूजल
4. जल की गुणवत्ता
5. जल का तापमान
6. पुनर्भरण
7. हिम, बर्फ तथा स्थायी बर्फ

3. वायुमण्डल
1. गुणवता विभिन्न तत्वों में
2. जलवायु
3. तापमान

4. प्रक्रम
1. बाढ़
2. अपरदन
3. निक्षेप
4. विलयीकरण
5. शोषण फण, आयन विनियम
6. संहनन तथा स्थिरता
7. स्थिरता
8. तनाव
9. वायु संचरण

2. जीवीय दशायें

1. वनस्पति
1. वृक्ष
3. आवास में रूपान्तरण
4. धरातलीय आवरण में परिवर्तन
5. भूजल में परिवर्तन
6. अपवाह में परिवर्तन
7. नदी का नियंत्रण तथा उसके प्रवाह में परिवर्तन
8. नहरीकरण
9. सिंचाई
10. मौसम में परिवर्तन
11. दहन
12. भूमि पर खडंजा बिछाना
13. शोर तथा कम्पन

2. भूमि में रूपान्तरण तथा निर्माण
1. नगरीकरण
2. औद्यसोकिरण
3. हवाई अड्डे
4. सड़के तथा पुल
5. सड़के तथा पगडंडी
6. रेलमार्ग
7. केबिल तथा लिपट
8. संचार लाइनें
9. अवरोधक एवं बाड़बन्दी
10. नदियों से अवसाद निष्कासन तथा नदियों के जलमार्ग को सीधा करना
11. नदियों के किनारो को पक्का करना
12. नहरीकरण
13. बाँधों का निर्माण एवं जलाशयों में जल संग्रह
14. सागर तटीय क्षेत्रों पर पक्की दीवार व खम्भों का निर्माण
15. तट से दूर सागर में निर्माण
16. आमोद–प्रमोद से सम्बन्धित संरचनाएँ
17. विस्फोटन तथा ड्रिलिंग खनन.
18. खुदाई तथा गड्ढे की भराई

2. झाड़ी

3. घास

4. फसलें

5. सूक्ष्म पौधे

6. जलीय पौधे

7. संकटापन्न जातियाँ

8. भौगोलिक अवरोध

9. गलियारे

2. जन्तु

1. पक्षी

2. उभयचरों सहित स्थलवासी जन्तु

3. मछलियाँ

4. सागरीय तलवासी जीव

5. कीड़े–मकोड़े

6. सूक्ष्म जीव

7. सकटापन जाति

8. भौगोलिक अवरोध

9. गलियारे

3. सांस्कृतिक कारक

1. भूमि उपयोग

1. वन क्षेत्र तथा खुले क्षेत्र

2. तर भूमि

3. वानिकी

4. चराई

5. कृषि

6. आवासी

7. व्यापारिक क्षेत्र

8. औद्योगिक क्षेत्र

9. खनन कार्य

2. आमोद–प्रमोद

1. आखेट

19. सुरंग निर्माण तथा सतह के नीचे निर्माण कार्य।

3. संसाधनों का विदोहन

1. चट्टानों को तोड़ना व ड्रिलिंग

2. भू–सतह पर उत्खनन

3. भू –सतह के नीचे उत्खनन

4. जल एवं खनिज तेल के लिए कुओं की ड्रिलिंग

5. नदियों व नहरों से अवसादों को बाहर निकालना

6. वनोमुलन एवं लकड़ी काटना

7. मत्स व्यवसाय तथा आखेट

4. संसाधित करना

1. कृषि

2. रैंचिंग तथा चराई

3. भोज्य अंश

4. दुग्ध व्यवसाय

5. ऊर्जा का उत्पादन

6. खनिजों का संशोधन

7. धातु शोधन

8. रासायनिक उद्योग

9. स्वचालित वाहन तथा वायुयान उद्योग

10. तेल शोधन

11. खाद्य पदार्थ संशोधन

12. लकड़ी उद्योग

13. लुग्दी एवं कागज उद्योग

14. उत्पादों का भण्डारण

15. वस्त्र उद्योग

5. भूमि में परिवर्तन

1. अपरदन नियंत्रण तथा वेदिका निर्माण

2. खनन एवं अपशिष्टों पर नियंत्रण

3. पट्टीदार खनन क्षेत्रों में पुनर्वास

4. भूदृश्यवारण

5. बन्दरगाहों से अवसादों को हटाना

2. मतस्य पालन
3. नौकावहन
4. तैरना
5. पिकनिक करना
6. रिसोर्ट

3. सौन्दर्यात्मक एवं मानव हित

1. प्राकृतिक परिदृश्य
2. वन्य प्रदेश
3. खुले क्षेत्रों की गुणवत्ता
4. स्थलाकृतिक रूपरेखा
5. विशिष्ट भौतिक आकृतियाँ
6. उद्यान तथा रिजर्व
7. स्मारक
8. दुर्लभ पारिस्थितिक तन्त्र
9. पुरातात्विक अवस्थितियाँ
10. अनुपयुक्त वस्तुएँ

4. सांस्कृतिक परिदृश्य

1. सांस्कृतिक प्रतिरूप
2. स्वास्थ्य एवं सुरक्षा
3. रोजगार
4. जनसंख्या घनत्व

5. मानव–निर्मित सुविधायें तथा कार्य

1. संरचनाएँ
2. परिवहन जाल
3. उपयोगिता तन्त्र
4. अपशिष्टों का निस्तारण
5. अवरोध
6. गलियारे

6. पारिस्थितिकीय सम्बन्ध

1. जल संसाधन का क्षारीयकरण
2. जलीय भागों में पोषक तत्वों की भरमार
3. रणेकारी कीटाणु
6. दलदलों को भरना

6. संसाधनों का नव्यकरण

1. पुन : वनीकरण
2. वन्य जीवों का संरक्षण एवं प्रबंधन
3. भूजल का पुनर्भरण
4. उर्वरकों का प्रयोग
5. अपशिष्ट का चक्रीयकरण
7. रेल्मार्ग
1. यातायात मे परिवर्तन
2. स्वचालित वाहन
3. ट्रकों का परिवहन–
4. जलयानों का परिवहन
5. वायुयानों का परिवहन
6. नदियों तथा नहरों में परिवहन
7. मनोरंजन के लिये नौकावहन
8. पैदल सैर
9. केबिल्स तथा लिफ्ट
10. संचार
11. पाइप लाईन

8. अपशिष्टों का निस्तारण

1. सागर में सन्निक्षेपण
2. भूमि में निस्तारण
3. पछोड़न विनष्ट एवं खनन कार्य से उत्पन्न मलबे का उचित स्थानों पर निस्तारण
4. भूमिगत भण्डार
5. कूड़ा–कबाड़ का निस्तारण
6. तेलीय कुपों का भराव
7. गहरे कुओं में भराव
8. नगर पालिकाओं के अपशिष्टों का निस्तारण
9. मलजल का विसर्जन
10. स्थिरीकरण एवं आक्सीकरण–जलाशय
11. सैप्टिक टैंक

4. आहार श्रृंखला
5. भू–पृष्ठीय पदार्थो का क्षारीयकरण
6. झाड़–झंकाड़ु में वृद्धि
7. अन्य

12. एग्जास्ट उत्सर्जन
13. उपयोग में लाये गये स्नेहक

9. रासायनिक शोधन

1. उर्वरकों का प्रयोग
2. सड़क पर आच्छादित हिम को रासायनिक तत्वों से पिघलाना
3. मृदाओं का रासायनिक स्थिरीकरण
4. खरपतवार परनियत्रण
5. कीटनाशी रसायनों के प्रयोग से कीटों का नियंत्रण

10. दुर्घटनाएँ

1. विस्फोट 2. रिसाव 3. मशीनों आदि के परिचालन में खराबी 4. अन्य

अंतिम पर्यावरण प्रभाव कथन (E.I.S.) के अंतर्गत चार विवरण अंकित होते है–

1. प्रस्ताव का औचित्य,
2. प्रस्तावित परियोजना से प्रभावित होने वाली पर्यावरण दशायें,
3. प्रस्तावित परियोजना का विशद् विवरण,
4. पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन का पूर्ण विवरण।

पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन के लिये प्रयुक्त लिओपोल्ड की मेटिक्स विधि वैज्ञानिक होते हुये भी इसमें कतिपय कमियों पायी गयी। इसमें अत्यधिक सूचनायें एवम् विशद् विवरण के कारण सार्थक सूचना का चयन कठिन हो जाता है।

बोध प्रश्न –

1. पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन हेतु प्रयुक्त कोई दो उपागम बताइये।
   .....
   .....
2. पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन की किसी एक विधि का नाम बताइये।
   .....
   .....
3. लियोपोल्ड विधि में स्थापित होने वाली परियोजना का कितने कार्यो का उल्लेख होता है ?
   .....
   .....
4. लियोपोल्ड विधि में कितनी पर्यावरण दशाओं को अंकित किया जाता है?
   .....
   .....

12.9 सारांश (Summary)

पर्यावरण के निरंतर अवकर्षण एवम् बढ़ते प्रदूषण के कारण पृथ्वी के निवासियों पर संकट के बादल मंडराने लगे हैं। बढ़ते प्राकृतिक प्रकोपों के कारण मानव यह सोचने पर विवश हो गया कि उसके कौन से क्रियाकलाप पर्यावरण को सर्वाधिक आघात पहुँचा रहे हैं। उसने निर्णय किया कि अब कोई भी निर्माण या उत्पादन संबंधी परियोजना प्रारंभ करने से पूर्व उसके द्वारा पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में सोचा जाये। इसी क्रम में पर्यावरणविदों ने 'पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन' के विचार को मूर्त रूप दिया। किसी भी प्रस्तावित योजना, उद्योग, खनन निर्माण, आदि के प्रारंभ करने से पूर्व पर्यावरण के विभिन्न तत्वों पर पड़ने वाले प्रभावों का आंकलन किया जाना आवश्यक हो गया। परियोजना की स्थापना से पूर्व ही उससे पर्यावरण को होने वाली हानि की भरपाई के कारगर उपाय किये जाने लगे। अर्थात् पर्यावरण प्रभाव आंकलन से यह निर्णय लेने में आसानी रहती है कि कोई परियोजना किसी क्षेत्र में स्थापित करने से पर्यावरण को अधिक हानि तो नहीं होगी। पर्यावरण पर पड़ने वाले विपरीत प्रभावों से बचने के लिये उसकी स्थिति, आकार, अभिकल्प व प्रौद्योगिकी में समय रहते परिवर्तन किया जा सकता है।

12.10 शब्दावली (Glossary)

- **E.I.S. :** पर्यावरणीय प्रभाव कथन (Environmental Impact Statement)
- **E.I.A. :** पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन (Environmental Impact Assessment)
- **आवास्य (Habitat) :** जीवों के प्राकृतिक आवास,
- **पारिस्थितिक तंत्र :** वातावरण के सभी जैविक एवं अजैविक कारकों के एकीकरण के फलस्वरूप निर्मित तंत्र

12.11 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. P.D. Sharma : Ecology and Environment, Rastogi Pub, Meerut; 1975
2. 2.E.J. Kormomdy : **Concept of Ecology,** 1982
3. 3.T.R.Detwyler : **Man's Impact on Environment,** Mc Grawhill, Delhi, 1971
4. रतन जोशी : **मानव एवं पर्यावरण,** साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा, 2002
5. सविन्द्र सिंह : **पर्यावरण भूगोल,** प्रयाग पुस्तक भवन, 1991

12.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

(1) E.I.S.

(2) E.I.A.

(3) पर्यावरण प्रबंध का

(4) नदी घाटी परियोजना, खनन

बोध प्रश्न –2

(1) प्रादेशिक उपागम, आवास उपागम

(2) लिओपोल्ड मेट्रिक्स विधि

(3) 100

(4) 88

12.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन की आवश्यकता को प्रतिपादित करते हुये इसके विभिन्न सोपानों का वर्णन कीजिये।
2. पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन की अवधारणा तथा विविध पक्षों का विवरण प्रस्तुत कीजिये।
3. पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन की 'लिओपोल्ड मेट्रिक्स' को सविस्तार समझाइये।

इकाई–13 :सतत् विकास : संकल्पना का विकास मूल आधार, नियंत्रक सिद्धान्त एवं सूचकांक, सतत् विकास हेतु विश्वव्यापी प्रयास (Sustainable Development : Conceptual Development, Basis, Controller Principles and Index, Worldwide Initiative for Sustainable Development)

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 सतत् विकास की संकल्पना

13.3 सतत् विकास का महत्व

13.4 सतत् विकास के मूल आधार

13.5 सतत् विकास का सिद्धान्त एवं प्रमुख पक्ष

13.6 सतत् विकास के उद्देश्य

13.7 सतत् या सतत उपभोग की संकल्पना

13.8 सतत् विकास हेतु विश्यव्यापी प्रयास

13.10 शब्दावली

13.11 संदर्भ ग्रन्थ

13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई मे हम निम्न बिन्दुओं को समझने का प्रयत्न करेंगे–

- सतत् विकास क्या है ?
- सतत् विकास की आवश्यकता,
- मात्र आर्थिक विकार पारिस्थितिक असंतुलन का कारण,
- सतत् विकास के सिद्धान्त के मूल आधार,
- सतत् विकास एवम् सतत् उपभोग की संकल्पना में संबंध
- सतत् विकास ही पर्यावरण संरक्षण का उचित उपाय,
- सतत् विकास की दिशा में किये जा रहे प्रयास।

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग मानव सहित सभी जीव आदिकाल से करते आ रहे हैं। मानव अपने ज्ञान, कौशल और तकनीक के बल पर प्रकृति के अवरोधों पर नियंत्रण स्थापित करने में काफी हद तक सफल रहा। इससे उसमें सर्वश्रेष्ठ, शक्तिशाली एवम् समर्थ होने का अहम् बढ़ा, जिसकी तुष्टि के लिये उसने प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध शोषण शुरू कर दिया। वनस्पति एवम् प्राणीजगत संकुचित होता गया तथा मानव आधिपत्य का विस्तार होता गया। इससे प्रकृति पर दबाव बढ़ता गया। अब संसाधनों की तुलना में जनसंख्या बहुत अधिक बढ़ गयी। पर्यावरण के जीवनदायी तत्व दूषित होकर हानिकारक प्रभाव देने लगे। अनव्यकरणीय संसाधन समाप्ति के निकट पहुँचने लगे। संसाधनों के अविवेकपूर्ण उपयोग से अनेक पर्यावरणीय समस्यायें उत्पन्न हो गयी। इससे भौतिकवादी संस्कृति में पूर्णत : रच बस चुका मानव अपने क्रियाकलापों का पुनरीक्षण करने को विवश हुआ। संसाधनों के समाप्त होने की आशंका, भविष्य में आवश्यकताओं की पूर्ति पर प्रश्नचिन्ह तथा बढ़ते प्राकृतिक प्रकोपों के कारण सतत् विकास या संतुलित विकास का विचार उत्पन्न हुआ। इसमें पर्यावरण के जैविक तथा अजैविक घटकों का संरक्षण, पुनर्स्थापपन तथा संसाधनों के दीर्घकाल तक दोहन को महत्व प्रदान किया गया। विनाश रहित विकास पर बल दिया जाने लगा।

13.2 सतत् विकास की संकल्पना (Concept of Sustainable Development)

संधृत विकास या पारिस्थितिक विकास पर्यावरण प्रबंधन का महत्वपूर्ण पक्ष है। संधृत विकास को सतत् विकास, टिकाऊ विकास, संविकास, जीवनधारण करने योग्य विकास, पीरपोषणीय विकास, पीरपालनीय विकास इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। विश्व के सीमित संसाधनों के निरंतर बढ़ते उपभोग तथा पर्यावरण के जीवनदायी घटकों की गुणवत्ता में गिरावट जैसी दशा में संधृत विकास की धारणा विकसित हुयी। सतत् विकास से अभिप्राय ऐसे विकास से है, जो पर्यावरण को हानि पहुँचाये बिना जीवन की गुणवत्ता जारी रख सके।

संधृत विकास मूलक प्रस्ताव सर्वप्रथम 1972 में स्टॉकहोम सम्मेलन में रखा गया। इसके अनुसार पर्यावरण संरक्षण एवम् प्रदूषण नियंत्रण पर जोर दिया गया। संधृत विकास की संकल्पना का विकास मुख्यत: बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में हुआ। संधृत विकास (Sustainable Development) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम विश्व सरंक्षण रणनीति में 1980 में किया गया। विषय की गंभीरता को देखते हुये संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1983 में पर्यावरण एवम् विकास पर एक अंतर्राष्ट्रीय आयोग (WCED) गठित किया गया। आयोग की अध्यक्ष नॉर्वे की प्रधानमंत्री ब्रटलैण्ड थी, अत: 1987 में प्रस्तुत रिपोर्ट को "ब्रटलैण्ड रिपोर्ट" कहा गया। इसमें संधृत विकास को परिभाषित करने के साथ ही मूल संकल्पना को रेखांकित किया गया।

ब्रटलैण्ड रिपोर्ट के अनुसार "भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता में हास किये बिना वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करना ही संधृत विकास है।" कृषि एवम् खाद्य संगठन के अनुसार "संधृत विकास से अभिप्राय प्राकृतिक संपदाओं की सुरक्षा एवम् व्यवस्था को

बनाये रखते हुये विकास की उस प्रक्रिया से है, जिसमें तकनीकी नवीनीकरण एवम् सामाजिक अनुकूलन के आधार पर मानव की वर्तमान एवम् भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।"

वास्तव में संधृत विकास परिवर्तन की ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें संसाधनों के दोहन, पर्यावरण संरक्षण एवम् भविष्य की आवश्यकताओं में तालमेल बिठाने की कोशिश की गयी है। इससे अभिप्राय है विकास की एसी गतिविधियाँ जो हमारी वर्तमान की आवश्यकताओं की तो आपूर्ति करे, परन्तु भविष्य की पीढ़ियों के स्वयं के उपयोगार्थ क्षमता के साथ कोई समझौता न करे। अर्थात इन्हें अपनी आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए किसी कठिनाई का सामना न करना पड़े। यह अवधारणा उन परिवर्तनों की पक्षधर है जहाँ संख्या वृद्धि व संस्थागत परिवर्तनों के मध्य पूर्ण सामंजस्य स्थापित हो रहा हो। स्पष्ट है कि इस प्रकार के विकास मानव समाज की वर्तमान एवं भविष्य की आंकाक्षओं की भरपाई सुदृढ़ रूप से कर सकेंगे। अत: यह स्थापित हो जाता है कि संधृत या स्थिर विकास की अवधारणा की कार्य योजनाओं, विकासीय गतिविधियों एवं पर्यावरणीय नीतियों का समाकलन एवं क्रियान्वयन प्रादेशिक, राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तरों पर किया जाना अवश्यम्भावी है। यह भली प्रकार से समझ लेना चाहिये कि हमारे जीवन को सारगर्भित बनाने वाले एवं इसका समर्थन करने वाले प्राकृतिक तन्त्रों पर मानव क्रियाओं एवं विकास का कोई ऐसा प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये जो इनकी उपस्थिति अथवा स्थायित्व के लिए खतरा सिद्ध हो।

13.3 सतत् विकास का महत्व (Importance of Sustainable Development)

विश्व समुदाय के समक्ष उपस्थित पर्यावरणीय समस्याओं तथा घटते संसाधनों के कारण भावी पीढ़ी के अंधकारपूर्ण भविष्य की चिन्ता के सर्वसम्मान उपाय के रूप में संधृत विकास की संकल्पना का अत्यधिक महत्व है। यह हमारे परंपरागत विकास को ऐसी दिशा प्रदान करती हैं, जो विकास के चक्र को सतत् रूप से चलायमान रख सकें। विकास के नाम पर अब तक मात्र एक पक्षीय सोच रही है– प्राकृतिक संसाधनों का अनवरत दोहन, जिससे आर्थिक समृद्धि बड़े। विकास के ऐसे दौर में आगामी पीढ़ीयों के हितों की बलि चढ़ा दी गयी। पर्यावरण की गुणवत्ता की उपेक्षा की गयी। भुला दिया गया कि पर्यावरणीय संसाधन सीमित हैं। मानव के अलावा अन्य जीव भी पर्यावरण पर निर्भर है।

प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अब मात्र उसकी आवश्यकता नहीं रह गयी बल्कि लिप्सा व लालच की पूर्ति का साधन बन गया। जैसे–जैसे विकास की गति बढ़ती गयी, वैसे ही प्राकृतिक संसाधन घटते रहे। संसाधनों के स्त्रोत निकट भविष्य में समाप्त होने की चिंता सताने लगी । इसी के फलस्वरूप सधृत विकास की आवश्यकता को समझने के प्रयास होने लगे। हमारे पूर्वजों ने संधृत विकास के महत्व को समझा था। उनमें प्राकृतिक संसाधनों का आवश्यकतानुसार ही दोहन करने की चेतना थी। उन्होनें प्रकृति से सांमजस्य बनाये रखा।

आधुनिक काल में स्वार्थपरक आर्थिक विकास की दौड़ तथा जनसंख्या की तीव्र वृद्धि से प्राकृतिक संतुलन गड़बड़ाने लगा। घटते वन तथा बढ़ते तापमान के कारण जलवायु दशाओ में व्यापक

परिवर्तन हो रहा है। अब संधृत विकास के महत्व को समझा जाने लगा है। घटते संसाधनों की चिन्ता का हल सधृत विकास में नजर आता है। प्राकृतिक बाधाओं से बचने का मात्र यही उपाय दिखायी देता है। धनी देश अधिक धनी होते जाने से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक विषमता बढ़ती जा रहीं है। इस विषमता को दूर करने के लिये संधृत विकास आवश्यक है। आने वाली पीढ़ीयों को आवश्यकताओं की पूर्ति सतत् रूप से होती रहे, इसके लिये संधृत विकास की आवश्यकता है।

13.4 सतत् विकास के मूल आधार (Basis of Sustainable Development)

"ब्रटलैण्ड रिपोर्ट" में सतत् विकास की संकल्पना के दो प्रमुख आधार बताये गये :

1. आवश्यकताओं की संकल्पना पर विचार किया जाना चाहिये, जिसमें विशेष रूप से विश्व के गरीब लोगों की आवश्यकताओं पर बल दिया जाये।
2. मानव की वर्तमान एवं भावी आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाली पर्यावरणीय क्षमता पर प्रौद्योगिकी और सामाजिक संगठन द्वारा निर्धारित सीमाओं पर विचार किया जाये।

सामान्यत: सतत् विकास के मूल आधार निम्न हैं :

1. पर्यावरण की धारण क्षमता एवम् सहन शक्ति को ध्यान में रखते हुये विकास की गति को निर्धारित करना,
2. प्राकृतिक पर्यावरण तंत्रों का संरक्षण,
3. विश्व समुदाय के निर्धन तबके की आवश्यकताओं की पूर्ति के उपाय,
4. संसाधनों के दोहन के साथ क्षतिपूर्ति का प्रंबधन,
5. आर्थिक विकास के स्थान पर समग्र विकास पर बल तथा भावी आवश्यकताओं का आंकलन करते हुये उपलब्ध संसाधनों के उपयोग की दर का निर्धारण,
6. संसाधनों की अभिवृद्धि के प्रयास–प्रौद्योगिकी विकास,
7. विकास की निरंतरता एवम् संसाधनों के संरक्षण में तालमेल बिठाना आदि।

13.5 सतत् विकास का सिद्धान्त एवं प्रमुख पक्ष (Principles and Main aspects of Sustainable Development)

संसाधन दोहन एवम् संसाधन संरक्षण या आवश्यकताओं एवम् उपलब्धता के मध्य सामंजस्य बनाये रखना संधृत विकास का सिद्धान्त है। पारिस्थितिक संतुलन एवम् सामाजिक आर्थिक विकास के बीच समन्वय इस सिद्धान्त का अनिवार्य पक्ष है। निरंतर विकास मानव की स्वाभाविक प्रवृति है, तथा पर्यावरण हमारे जीवन का आधार है। पर्यावरणीय समस्याओं तथा घटते संसाधनों के कारण विकास की प्रक्रिया को रोका नहीं जा सकता है, किन्तु सीमाबद्ध किया जा सकता है। संधृत विकास सिद्धान्त के अनुसार तीन प्रकार की प्रक्रियाओं के मध्य समन्वय बनाये रखना है– (1) सामाजिक आर्थिक विकास की प्रक्रिया को जारी रखना (2) संसाधनों का दोहन (3) संसाधन संरक्षण तथा पर्यावरण सुरक्षा। इनके तालमेल होने पर ही सतत् विकास की

प्रक्रिया में निरंतरता बनी रहती है। इनमें से किसी भी पक्ष की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इस सिद्धान्त का अनुमोदन सभी देशों ने किया है।

पृथ्वी पर संसाधनों की उपलब्धता निरंतर बनी रहे और आवश्यकताओं की पूर्ति भी निरंतर होती रहे। जनसंख्या नियंत्रण, प्रौद्योगिकी विकास तथा मानव की आवश्यकताओं के परिसीमन से ही इस अभीष्ट की प्राप्ति हो सकती है।

बोध प्रश्न –1

1. संधृत विकास के लिये प्रयुक्त होने वाले समानार्थी शब्द बताइये।

   .....

   .....

2. स्टॉकहोम सम्मेलन कब हुआ ?

   .....

   .....

3. संधृत विकास शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कहाँ किया गया ?

   .....

   .....

4. 'ब्रटलैण्ड आयोग' का गठन कब किया गया ?

   .....

   .....

5. 'ब्रटलैण्ड रिपोर्ट' किससे संबंधित है ?

   .....

   .....

13.6 सतत् विकास के उद्देश्य (Objectives of Sustainable Development)

सतत् विकास के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं :

1. पृथ्वी पर जीवन को परिचालित करने वाली प्राकृतिक प्रणालियों को खतरे से बचाना,
2. मानव की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो तथा वंचित लोगों को भी बेहतर जीवन जीने के अवसर मिले,
3. पारिस्थितिक तंत्र को पुन: संतुलित करने के लिये पर्यावरण का संरक्षण,
4. संसाधनों की दीर्घकालीन उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिये संसाधनों का पुनश्चक्रण, पुनउर्पयोग तथा विकल्पों की खोज,
5. आवश्यकतायें सीमित करते हुये संसाधन उपयोग में कमी लाना,
6. अनव्यकरणीय संसाधनों की अपेक्षा नव्यकरणीय संसाधनों के अधिक उपयोग पर बल,
7. उत्पादन, निर्माण एवम् उपभोग गतिविधियों के दौरान निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों का
8. सही निस्तारण,

9. समग्र एवम् स्थायी विकास।

13.7 सतत् उपभोग की संकल्पना (Concept of Sustainable use)

संसाधनों को उपयोग में लाना सामान्य अर्थ में उपभोग कहा जाता है। सभी प्राणियों को जीवित रहने के लिये भोजन, जल, वायु एवम् आवास की आवश्यकता होती है। सभी प्राणी संसाधनों का उपयोग करते है, अत: उपभोक्ता की श्रेणी में आते हैं। मानव अपने आविर्भाव के समय से ही प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग करता रहा है। न्यूनतम आवश्यकताओं को प्राप्त करना प्रत्येक मानव का अधिकार है। यह न्यूनतम आवश्यकता आर्थिक, जैविक या सामाजिक हो सकती है। देश काल–परिस्थिति के अनुसार इसके मानदण्ड भी बदलते रहे हैं। न्यूनतम आवश्यकता को परिभाषित करना एक समस्या है। विकास की दौड़ में कुछ देश या समाज संसाधनों का अतिदोहन करके इतने साधन सम्पन्न हो गये कि विलासिता के साधन उनकी न्यूनतम आवश्यकता में सम्मिलित हो गये। दूसरी ओर कुछ देश या समाज इतने पिछड़ गये कि जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक साधन जुटाना भी उनके लिये दूभर है। एसी वंचित जनसंख्या अफ्रीका व एशिया महाद्वीपों में मुख्यत: निवास करती है।

मौलिक मानवीय आवश्यकताओं के अंतर्गत भोजन, वस्त्र, मकान, शिक्षा, स्वास्थय आदि आते हैं। इन्हीं मौलिक आवश्यकताओं के लिये संसाधनों का प्रयत्नो किया जाता है। मानव आजीवन संसाधनों का उपयोग करता है। यदि वह मौलिक आवश्यकताओं के स्थान पर अंतहीन इच्छाओं एवम् भौतिक सुविधाओं को जुटाने के लिये उपभोग करता है, तो संसाधनों का शीघ्र समाप्त होना निश्चित है। संसाधनों की उपलब्धता निरंतर बनी रहे और मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी निरंतर होती रहे, यही सतत् उपभोग है। आवश्यकतायें बढ़ती रहेगी या सीमित नहीं होगी, तो संसाधनों की कमी के कारण सतत् उपभोग जारी नहीं रह पायेगा। उपभोक्तावादी संस्कृति ने पर्यावरण का सर्वाधिक विनाश किया है। असीमित आवश्यकताओं तथा असीमित उपभोग पर आधारित इस जीवन शैली के स्थान पर सतत् विकास के भारतीय दर्शन को अपनाने की आवश्यकता है। यह सात्विक जीवन शैली पर्यावरण के प्रति कृतज्ञता से ओतप्रोत है, अत: उसके समस्त घटकों के संरक्षण के प्रति सजगता का संदेश देती है।

13.8 सतत् विकास हेतु विश्वव्यापी प्रयास (Worldurde Initiative for Sustainable Development)

पर्यावरण की विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिये तथा संधृत विकास की संकल्पना को मूर्त रूप देने के लिये अनेक अंतर्राष्ट्रीय संस्थायें कार्यशील हैं। इनमें से कुछ निम्न है–

1. **संयुक्त राष्ट्र का पर्यावरण कार्यक्रम (U.N.E.P.) :** सर्वप्रथम जून 1972 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा स्टॉकहोम में आयोजित मानव–पर्यावरण सम्मेलन में संधृत विकास मूलक प्रस्ताव रखा गया। इसी समय संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण कार्यक्रम (U.N.E.P.) की शुरूआत हुयी। इसका कार्यालय नैरोबी में हैं। इसका प्रमुख कार्य पर्यावरणीय समस्याओं के अध्ययन व निराकरण में संलग्न देशों की सरकारों को सहयोग करना तथा समय–समय पर आयोजित गोष्ठियों व सम्मेलनों की संस्कृतियों को व्यावहारिक रूप देना हैं। स्टॉकहोम सम्मेलन के

घोषणा पत्र को "विश्व पर्यावरण का मैग्राकार्टा" कहा गया। इसमें भाग लेने वाले 119 देशों ने "एक ही पृथ्वी" (ONLY ONE EARTH) का सिद्धान्त स्वीकार किया तथा प्रतिवर्ष 5 जून को पर्यावरण दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया।

2. **अंतर्राष्ट्रीय जैविक कार्यक्रम (I.B.P) :** 1964 में प्रारंभ किया गया एक अंतर्राष्ट्रीय शोध कार्यक्रम जिसमें उत्पादकता के जीवीय आधार तथा मानव कल्याण के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया जाता है।
3. **मानव एवम् जीवमण्डल कार्यक्रम (MAB) :** यूनेस्को द्वारा 1970 में मानव एवम् जीवमण्डल कार्यक्रम प्रारंभ किया गया। इसका प्रमुख उद्देश्य मानव क्रियाकलापों तथा प्राकृतिक पर्यावरण के मध्य होने वाली अंतक्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न समस्याओं का प्रबंधन करना है। यह मानव तथा वातावरण के मध्य सुधार करने की दिशा में प्रयासरत है।
4. **अंतर्राष्ट्रीय भूमंडल–जीवमंडल कार्यक्रम (I.GBP) :** वैज्ञानिक संघ की अंतर्राष्ट्रीय परिषद द्वारा 1986 में (IGBP) प्रांरभ किया गया। इसका प्रमुख उद्देश्य संपूर्ण पृथ्वीतंत्र को संतुलित करने में भौतिक रासायनिक एवम् जैविक प्रक्रियाओं की अत: क्रिया को समझना रहा है।

   इनके अलावा पृथ्वी निरीक्षण कार्यक्रम (WWP), विश्व वन्यजीव कोष (WWF), विश्व प्रकृति कोष (WWFN) आदि संगठन भी विश्व पर्यावरण संरक्षण व संधृत विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य कर रहें है।

- पृथ्वी सम्मेलन : संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्वाधान में 1992 में ब्राजील के रियो डि जेनेरो शहर में विश्व पर्यावरण सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसे 'रियो सम्मेलन' या 'पृथ्वी सम्मेलन' 1992 नाम दिया गया। इसमें विकास के साथ–साथ पर्यावरणीय सुरक्षा पर बल दिया गया। इसमें पर्यावरण सम्मत विकास' तथा 'संघात विकास' के लिये 800 पृष्ठों का विस्तृत दस्तावेज 'एजेण्डा 21' स्वीकृत किया गया। चार खण्डों में विभक्त इस एजेण्डा में गरीबी, जनसंख्या नीति, स्वास्थ्य, सुरक्षा, शिक्षा, जीविकोपार्जन का अधिकार, स्वच्छ जलापूर्ति, जलराशियों की जोखिम से सुरक्षा, वन संरक्षण इत्यादि का विस्तृत वर्णन है। यह सम्मेलन न केवल विश्व की सरकारों को पर्यावरण के प्रति सावचेत करने में सफल रहा, बल्कि सामान्य जन में भी पर्यावरण एवम् संसाधन के प्रति नयी सोच जगाई।

  रियो सम्मेलन के एक दशक उपरान्त जोहन्सबर्ग में द्वितीय विश्व पर्यावरण सम्मेलन आयोजित किया गया। इसका शीर्षक "सतत् विकास पर विश्व सम्मेलन" (World Summit on Sustainable Development) रखा गया। इसमें गरीबी हटाने, सामाजिक विकास, जैव विविधता एवं ऊर्जा संरक्षण, जलवायु परिवर्तन आदि विषयों पर नवीन कार्य योजना बनाई गई।

बोध प्रश्न –2

1. सतत् विकास का कोई प्रमुख उद्देश्य बताइये।

.....

.....

2. UNEP से क्या अभिप्राय है ?

.....

.....

3. MAB से क्या अभिप्राय है ?

.....

.....

4. "एक ही पृथ्वी" का सिद्धान्त किस सम्मेलन में स्वीकृत हुआ ?

.....

.....

5. रियो पृथ्वी सम्मेलन कहाँ आयोजित हुआ ?

.....

.....

13.9 सारांश (Summary)

मानव विकास की प्रारम्भिक अवस्था में सीमित जनसंख्या तथा सीमित आवश्यकताओं के कारण प्राकृतिक संसाधनों के उपभोग के उपरान्त भी उसका पर्यावरण से सामंजस्य बना रहा। किन्तु बढ़ती जनसंख्या तथा तकनीकी प्रगति के साथ–साथ प्रकृति के शोषण की दर में वृद्धि होती गई। आर्थिक विकास की दौड़ में पर्यावरण पर दबाव बढ़ता गया। पर्यावरण से शत्रुतापूर्ण व्यवहार करके विकास जो किया गया, विकास स्वयं मानव के लिए ही आत्मघाती सिद्ध हुआ। पर्यावरण प्रदूषण, संसाधनों का संकट आदि इसके दुष्परिणाम हैं। पर्यावरणीय समस्याओं के कारण विकास की प्रक्रिया को रोका नहीं जा सकते है, तो पर्यावरण ह्रास के कारण समस्त जीव जगत पर बढ़ते संकट की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती है। अत: पर्यावरण को बचाते हुए सतत् विकास की अवधारणा विकसित हुई, जिसे संधृत विकास कहा गया।

विकास में पारिस्थितिकी दृष्टिकोण को सम्मिलित करके प्राकृतिक पर्यावरण का उपयोग भी किया जा सकता है तथा पारिस्थितिकी संकट भी दूर किया जा सकता है। सन्तुलित विकास, समन्वित विकास तथा सतत् विकास इसके विभिन्न पक्ष हैं। सतत् विकास से अभिप्राय ऐसे विकास से है, जो पर्यावरण को हानि पहुंचाये बिना जीवन की गुणवत्ता जारी रख सके। विकास को मात्र आर्थिक उत्पादन से न जोड़कर उसके सामाजिक–आर्थिक व पारिस्थितिक पक्षों पर भी ध्यान देना चाहिए। पारिस्थितिक तन्त्र के अनुरूप विकास हेतु पर्यावरण को कम से कम हानि पहुंचाने वाली प्रौद्योगिकी का विकास, जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण, भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए संसाधनों का नियन्त्रित उपभोग, संसाधन संरक्षण, पुनर्चक्रण इत्यादि तथ्यों पर ध्यान देना होगा।

13.10 शब्दावली (Glossary)

- **सतत् विकास :** संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, जिससे कि उनका दीर्घकालीन एवम् सुरक्षित दोहन किया सके ।
- **ब्रटलैण्ड रिपोर्ट :** पर्यावरण एवम् विकास पर 1983 में ब्रटलैण्ड की अध्यक्षता में गठित आयोग की रिपोर्ट ।
- **समग्र विकास :** पारिस्थितिक संरक्षण के साथ सामाजिक–आर्थिक विकास ।
- **सतत् उपभोग :** संसाधनों की उपलब्धता तथा आवश्यकताओं की पूर्ति में निरंतरता।
- **पर्यावरण मेग्राकार्टा :** स्टॉकहोम पर्यावरण सम्मेलन का घोषणा पत्र ।

13.11 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. जोशी, रतन : **पर्यावरण भूगोल,** साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा, 2002
2. सिंह, सविन्द्र : **पर्यावरण भूगोल,** प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1991
3. श्रीवास्तव, वी.के. : **पर्यावरण एवम् पारिस्थितिकी,** वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर, 1990
4. जोशी, रतन : **जैव भूगोल एवम् जैव विविधता,** राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2007

13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न –1

1. सतत् विकास, पोषणीय विकास, टिकाऊ विकास, संविकास आदि।
2. 1972 ।
3. विश्व संरक्षण रणनीति, 1980 ।
4. 1983 ।
5. संधृत विकास से ।

बोध प्रश्न –2

1. संसाधनों की दीर्घकालीन उपलब्धता ।
2. संयुक्त राष्ट्र संघ का पर्यावरण कार्यक्रम ।
3. यूनेस्को का मानव एवम् जीवमंडल कार्यक्रम ।
4. स्टॉकहोम सम्मेलन ।
5. रियो डि जेनेरो ।

13.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सतत् विकास की संकल्पना को सविस्तार समझाते हुये इसके महत्व पर प्रकाश डालिये ।
2. सतत् विकास के सिद्धान्त का वर्णन करते हुये इसके मूल आधार बताइये।
3. सतत् विकास के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुये इस दिशा में कार्यरत विश्व संगठनों का लेखा प्रस्तुत कीजिये।

इकाई 14: भूमण्डलीय पर्यावरणीय मुद्दे : ओजोन परत की विरलता, हरित गृह प्रभाव एवं विश्व तापमान वृद्धि (Global Environmental Issues : Depletion of Ozone Layer, Green House Effect and Global Warming)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 ओजोन परत

14.2.1 ओजोन परत की विरलता

14.2.2 पराबैंगनी किरणों के प्रकार

14.2.3 ओजोन परत की विरलता के कारण

14.2.4 ओजोन परत की विरलता को रोकने के उपाय

14.3 हरित गृह प्रभाव

14.3.1 हरित गृह प्रभाव के कारण

14.3.2 हरित गृह प्रभाव के प्रभाव

14.3.3 हरित गृह प्रभाव को रोकने के उपाय

14.4 विश्व तापमान वृद्धि

14.4.1 विश्व तापमान वृद्धि के कारण

14.4.2 विश्व तापमान वृद्धि के प्रभाव

14.4.3 विश्व तापमान वृद्धि को रोकने के उपाय

14.5 सारांश

14.6 शब्दावली

14.7 संदर्भ ग्रंथ

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेगें :

- भूमण्डलीय पर्यावरणीय मुद्दों के अन्तर्गत ओजोन परत की विरलता, हरित गृह प्रभाव एवं विश्व तापमान वृद्धि,
- ओजोन परत की विरलता के कारण, प्रभाव एवं उपाय,

- हरित गृह प्रभाव के कारण, प्रभाव एवं उपाय,
- विश्व तापमान वृद्धि के कारण, प्रभाव एवं उपाय ।

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

पर्यावरण एक ऐसा तंत्र हैं जो मानव समुदायों सहित अन्य सभी जीवों को आवृत्त किए हुए है। पर्यावरण अनेक प्राकृतिक बलों और प्रक्रियाओं का परिणाम है। पर्यावरण में संतुलन बने रहने के लिए आवश्यक है कि प्रकृति और मानव के मध्य सामंजस्य बना रहे, लेकिन निरंतर प्रकृति के साथ मानवीय हस्तक्षेप बढ़ते रहने के कारण अनेक पर्यावरणी समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। ओजोन परत को विरल करने वाली गैसों में प्रमुख रूप से क्लोरो फ्लोरो कार्बन (CFC) है जिसके कारण पराबैंगनी विकिरणें पृथ्वी तक पहुँच कर अनेक समस्यायें उत्पन्न करती है। इसी प्रकार मानवजनित कार्बन–डाइ–आक्साइड के आवरण प्रभाव के कारण पृथ्वी की सतह के प्रगामी तापन हरित गृह प्रभाव का उद्भव हुआ है। इन्ही गैसों (CH_4, CO_2, CFC) में वृद्धि होने का परिणाम (ग्लोबल वार्मिंग) विश्व तापमान वृद्धि है। ये पर्यावरणीय समस्यायें राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हैं। इसके लिए अनेक संगोष्ठियां, सम्मेलन आदि विश्वस्तर पर आयोजित किये जाते हैं।

14.2 ओजोन परत (Ozone Layer)

पृथ्वी की वायुमण्डल की परत जो हमें आवरित (surrounded) किये हुये है, अधोमण्डल (troposphere) कहलाता है। इसका विस्तार पृथ्वी की सतह से 10 कि.मी. तक है। अगली उच्च परत समताप (Stratosphere) का विस्तार पृथ्वी की सतह से 10 से 50 कि.मी. तक है। ओजोन की परत समताप मण्डल में 15 से 35 कि.मी. के मध्य पाई जाती है। ओजोन की अधिकतम सघनता 25 कि.मी. पर पाई जाती है । ओजोन परत में ओजोन गैस की परत पाई जाती है, जिसका निर्माण ऑक्सीजन (O_2) के अणुओं के टूटकर मिलने से होता है। इस ऊँचाई पर तीव्र पराबैंगनी किरणों के कारण पर्याप्त तापमान मिलता है जिसके कारण O_2 के अणु टूटकर $O+O$ ही जाते है तथा दूसरे O_2 से मिलकर ओजोन $(O_3 = O_2 + O)$ का निर्माण करते हैं। इसकी सर्वाधिक सघनता भूमध्य रेखीय क्षेत्रों में मिलती है, ध्रुवीय क्षेत्रों में इसकी सघनता कम मिलती है।

14.2.1 ओजोन परत की विरलता (Depletion of Ozone Layer)

जिसे हम ओजोन छिद्र (Ozone hole) के नाम से जानते है, वह वस्तुत: कोई छिद्र नहीं है, बल्कि समताप मण्डल में उपस्थित ओजोन गैस की एक सघन व मोटी परत का क्षीण होना है। इसे ओजोन परत क्षरण या ओजोन परत की विरलता या ओजोन छिद्र कहते हैं। समतापमण्डलीय ओजोन में तेजी से अल्पता (Depletion) आ रही है, जिसकी पुष्टि जीसेफ फरमन के नेतृत्व में 1985 में अण्टार्कटिका गये ब्रिटिश वैज्ञानिकों के दल ने की तथा ओजोन परत में विशाल छिद्र होने की पृष्टि की।

14.2.2 पराबैंगनी किरणों के प्रकार (Types of Ultraviolet Rays)

ओजोन परत का सबसे महत्वपूर्ण कार्य पराबैंगनी किरणों को अवशोषित करना है, जिसके परिणामस्वरूप पृथ्वी पर जीवन सुरक्षित बना है। पराबैंगनी किरणे सूर्य से निकली विद्युत चुम्बकीय किरणें होती है। इन्हें प्रमुख रूप से तीन वर्गों में विभक्त किया जाता है :

(1) पराबैंगनी - A (Ultraviolet–A) : इस प्रकार की पराबैंगनी किरणें हमारी पृथ्वी तक पहुँचती है किन्तु यह हानिकारक नहीं है। ओजोन का इन पराबैंगनी किरणों पर प्रभाव नहीं होता है।

(2) पराबैंगनी – B (Ultraviolet–B) : इसके अन्तर्गत् वे पराबैंगनी विकिरणें सम्मिलित की जाती है, जो ओजोन द्वारा अवशोषित होती है। इस प्रकार की विकिरणों का पृथ्वी पर पहुँचना हानिकारक है। यदि ओजोन की परत क्षीण हो जाये गे यह पराबैंगनी – B पृथ्वी पर पहुँच कर जन–जीवन को हानि पहुँचाएगी।

(3) पराबैंगनी – C (Ultravoilet–C) : यह पराबैंगनी विकिरण अधिक उष्ण है और बहुत हानिकारक है। यह ऑक्सीजन द्वारा अवशोषित कर ली जाती है और पृथ्वी तक नहीं पहुँचता है।

14.2.3 ओजोन परत की विरलता के कारण (Causes of Depletion of Ozone layer)

ओजोन परत की विरलता के निम्नलिखित कारण है

1. ओजोन परत को क्षीण करने वाली गैसें : इनमें प्रमुख रूप से क्लोरो फ्लोरो कार्बन (CFC) हैं, जिसका प्रमुख स्रोत, रेफ्रीजरेशन, वातानुकूलन, रेजिन, फोम, नर्म प्लास्टिक, इलेक्ट्रानिक उद्योगों में रसायन है। इसी प्रकार अग्निशमन के लिए जहाजों, वायुयानों एवं कम्पयूटर कंट्रोल के रूप में काम आने वाली हैलोन्स गैसें है। हाइड्रोब्रोमोफ्लोरो (HCFS & HBCr) मिथाईल क्लोरोफार्म गैसें रेफ्रिजरेशन फोम ब्लोईंग में CFC की जगह विलायक के रूप में कई उद्योगों में काम में आती है। ये रसायन विशेषकर CFC - 11 व CFC - 12 (जिन्हें फ्रीयोन भी कहते है) में हाइड्रोजन बिलकुल नहीं होता है। ये फ्रियोन वायुमण्डल में अधिक ऊंचाई पर पहुँचकर (CFC का एक अणु अकेला ओजोने के कई हजार ओजोने अणु को खत्म करता है) ओजोन अणु को समाप्त करता है। जेट विमान और अग्निशिमन अंतरिक्ष रॉकेट के द्वारा भी ओजोने परत का विनाश होता है। जेट विमानों के द्वारा बाहर निकले विस्फोटक से उच्च तापमान पर वायुमण्डलीय ऑक्सीजन और नाइट्रोजन नाइट्रिक ऑक्साइड में परिवर्तित हो जाते हैं। ये आक्साइड ओजोन परत को नष्ट करते है।

$$N_2 + O_2 \xrightarrow[Temp.]{High} 2NO$$

ओजोन गैसें CFC की उपस्थिति में ऑक्सीजन में निम्न प्रकार से परिवर्तित होती है :

$$O_3 \xrightarrow{CFC} O_2 + O$$

14.2.4 ओजोन परत की विरलता के प्रभाव (Effects of Depletion of Ozone Layer)

1. ओजोने परत में 5% की विरलता पृथ्वी पर पराबैंगनी विकिरणों को 10% अधिक पहुँचाती है।

2. त्वचा कैंसर, मोतियाबिन्द के लिए उत्तरदायी हैं। इसके कारण प्रतिरक्षा तंत्र सही ढंग से कार्य नही कर पाता है।
3. ओजोन के प्रभाव से पौधों की प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) की प्रक्रिया पर भी प्रभाव पड़ता है। पौधों की उपापचयी क्रियायें भी ओजोन को प्रभावित करती है।
4. ओजोन की अल्पता से पृथ्वी का तापमान बढ़ेगा क्योंकि ये सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों को रोकती है। दक्षिणी ध्रुवीय क्षेत्र में औसत तापमान में वृद्धि से ताप–संतुलन गड़बड़ा गया है।
5. पर्यावरण के संदर्भ में, सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र पर इसका विनाशकारी प्रभाव पड़ता है।
6. ओजोन के हास होने के कारण वनस्पतियों का सूखना, फसलों की उर्वरता घटना तथा अन्य जीवों के विकास पर घातक प्रभाव पड़ेगा।
7. ओजोन हास के कारण पृथ्वी के तापवृद्धि के कारण बाढ़ों, द्वीपों के डूब जाने तथा विनाशकारी तूफानों के खतरे गंभीरतर हो सकते हैं।
8. दक्षिणी ध्रुव प्रदेश के ऊपर ओजोन छिद्र CFCसे उत्पन्न क्लोरीन परमाणुओं से बढ़ा है। यहाँ पर हिम की 2000 मीटर मोटी परत पूरे महाद्वीप को ढके हुए है। यदि किसी कारणवश यह पिघल जाये तो जल प्लावन की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी, जिसके कारण समुद्री जल स्तर में वृद्धि हो जायेगी और तटीय जन–जीवन ही समुद्र में समाहित हो जायेगा। अंटार्कटिक के क्षेत्र में ओजोन क्षरण से उत्पन्न छिद्र लगभग 70 लाख वर्ग कि. मी. में विस्तृत है।

चित्र - 14.1 : अंटार्कटिक पर ओजोन छिद्र, (B) ओजोन परत ढाल के समान

14.2.5 ओजोन परत की विरलता को रोकने के उपाय (Steps to Control Ozone Layer Depletion)

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पृथ्वी के पर्यावरण को ओजोन विनाश से बचने के लिए 1978 में स. राष्ट्र संघ के तत्वाधान में माण्टरियाल संधि के नाम से जाना जाता है। इसमें 26 देशों ने हस्ताक्षर किए, इसमे यह निश्चित किया गया था की CFC के उत्पादनों एवं उपभोग को बंद किया जाये। लंदन सम्मेलन (1990) में विकासशील देशों को धन के साथ–साथ CFC रहित तकनीकी ज्ञान में सहयोग दिया जाना निश्चित किया गया। 1992 में कोपेनहेगन सम्मेलन में निर्णय लिया गया की जहां तक हो सभी देश CFC'$_S$ का उपयोग समाप्त करेंगे। CFC के विकल्पों के विकास की दिशा

में भारत सहित अनेक देश शोध कर रहे है। हैदराबाद स्थित रासायनिक प्रौद्योगिक संस्थान द्वारा एक ऐसे यौगिक का संश्लेषण किया गया है जिसके गुण तो हैलोकार्बन जैसे है परन्तु उनमें क्लोरीन अनुपस्थित है। एस यौगिक के उपयोग से ओजोन का संरक्षण किया जा सकता है।

चित्र - 14.2 : ओजोन परत की विरलता का प्रभाव

बोध प्रश्न – 1

1. ओजोन का सूत्र क्या होता है ?

   .....

   .....

2. ओजोन परत का सबसे महत्वपूर्ण कार्य क्या है?

   .....

   .....

3. कौन सी पराबैंगनी किरणें पृथ्वी तक पहुँचने पर हानिकारक नहीं होती?

   .....

   .....

4. CFC का पूरा नाम क्या है?

   .....

   .....

5. उच्च तापमान पर वायुमण्डलीय ऑक्सीजन और नाइट्रोजन किसमें परिवर्तित हो जाते है?

   .....

   .....

6. ओजोन परत की कितने प्रतिशत विरलता पृथ्वी पर पराबैंगनी विकीरणों को 10 प्रतिशत अधिक पहुँचाती है?

   .....

   .....

7. ओजोन की अल्पता से पृथ्वी के तापमान पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

.....

.....

14.3 हरित गृह प्रभाव (Green house effect)

हरितगृह काँच का बना घर होता है, जिसके अंदर पौधों की वृद्धि और सुरक्षा होती है। शीत प्रदेशों में तापमान की कमी के कारण सब्जियों का उत्पादन नहीं हो पाता हैं। अत: वहाँ सब्जियों के उत्पादन के लिए इस प्रकार के काँच के घर निर्मित किये जाते हैं। इस हरित गृह की यह विशेषता होती है कि सूर्य का प्रकाश इस काँच की दिवारों से अंदर जाकर मृदा को ऊष्मा प्रदान करता है, जिससे पौधों में वृद्धि होती है। ये उष्मा मृदा से वापिस अवरक्त (Infrared) तरंगो के रूप में विकीरीत लेकिन कोच से बाहर नहीं निकाल पाती है इस विधि से वायुमंडल का तापमान सामान्य से 0.05 से $0.07^{\circ}c$ तक बढ़ जाता है।

इसी संदर्भ में पृथ्वी के वायुमण्डल में कुछ विशेष गैसों की मात्रा इस सीमा तक बढ़ गई कि धरती की उष्मा या गर्मी बाहर नहीं निकल पा रही है। इससे उत्पन्न प्रभाव को हरितगृह प्रभाव कहते है अर्थात् वायुमण्डल द्वारा प्राप्त सूर्याताप (Insolation) पृथ्वी के तापमान को नियंत्रित करता है। सूर्य से उत्पन्न लघु तरंग विकिरण आसानी से वायुमण्डल को पार कर धरती पर पहुँच जाती है, लेकिन पृथ्वी से दीर्घ तरंग के रूप में होने वाला पार्थिव विकिरण वायुमण्डल के जलवाष्प और अस्त गैसों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। अगर यह क्रिया संतुलित रूप से हो तो वायुमण्डल में ताप का संतुलन कायम रहता है। वायुमण्डल का यह प्रभाव हरित गृह के सीसे के अनुसार कार्य करता है।

ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार – "वायुमण्डल में मानव जनित कार्बनडाइऑक्साइड के आवरण प्रभाव के कारण पृथ्वी की सतह की प्रगामी तापन (Progressive Warming) को हरित गृह प्रभाव (Green House Effect) कहते है।

14.3.1 हरित गृह प्रभाव के कारण (Causes of Green house effect)

हरित गृह प्रभाव सूर्याभिताप के पार्थित विकिरण के वायुमण्डल द्वारा रोके जाने की क्रिया है जो सम्पूर्ण ग्लोब के तापमान को क्रमश : बढ़ा रही है। इसके लिए प्रमुख रूप से CO_2 (कार्बन–डाइ– ऑक्साइड) गैसें हैं जिसे हरित गृह गैसें (Green House gases) कहा जाता है। इसके अतिरिक्त हरित गृह गैसों के लिए मिथेन, क्लोरा फ्लोरो कार्बन, नाइट्रस ऑक्साइड आदि भी उत्तरदायी है।

गैसों की हरित गृह प्रभाव के लिए प्रतिशत में मात्रा

कार्बन–डाइ–ऑक्साइड (CO_2)	:	60%
मिथेन (CH_4)	:	20%
क्लोरोफ्लोरोकार्बन $(CFCs)$	:	14%
नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O)	:	6%

कार्बनडाइ ऑक्साइड् (CO_2) **:** ऑटोमोबाइल, रेल्वे, एयरक्राफ्ट से निकले पेट्रोल और डीजल के कारण बहुत अधिक मात्रा में कार्बनडाइऑक्साइड गैस निकलती है, इसी प्रकार उद्योगों, यातायात

के साधनों में दहन होने वाले ईंधन से तथा घरेलू उपयोग के दौरान लकड़ियों के दहन से, कोयला जलाने से वायुमण्डल में कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि हो जाती हे।

मिथेन (CH_4) **:** इस गैस की प्राप्ति आद्र भूमि, बाढ़ग्रस्त चावल के खेतों से होती है। यह मिथेनोजीन बैक्टिरियाँ द्वारा कचरे के विघटन से भी प्राप्त होती है।

क्लोरा फ्लोरो कार्बन $(CFCs)$ **:** यह यौगिक प्रशीतकों, रेफ्रिजरेटरों एरोसोल्स (Aerosols) से प्राप्त होता है। यह यौगिक कार्बन के साथ क्लोरीन और फ्लोरिन जैसे CCL_3F, CCL_2F_2 और $CCLF_3$ है। यह यौगिक अधिक स्थायी अविषैली (Nontoxic) होते हैं। यह वायुमण्डल में रेफ्रिजरेटरों, एयरकंडीशनर, स्प्रे और औद्योगिक पदार्थो से निष्कासित होते हैं।

नाइट्रोजन आँक्साइड : नाइट्रोजन ऑक्साइड का वायुमण्डल में प्रमुख स्रोत तड़ित (lightning)/ बिजली चमकना है। वायुमण्डलीय ऑक्सीजन और नाइट्रोजन तड़ित/बिजली (lightning) में निम्न क्रिया करती है :

$$N_2 + O_2 \xrightarrow{Lightning} 2NO$$ (नाइट्रिक आक्साइड)

$$2NO + O_2 \rightarrow 2NO_2$$ (नाइट्रिक परॉक्साइड)

जीवाश्मीय ईंधन के जलने और कृषिगत् क्रियाकलाप भी नाइट्रोजन के ऑक्साइड उत्पादित करते हैं।

14.3.2 हरित गृह प्रभाव के प्रभाव (Impact of Green House Effect)

1. कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की सांद्रता में वृद्धि के कारण पौधों में प्रकाश संश्लेषण की दर बढ़ जाती है।
2. हरित गृह गैसों की सांद्रता में वृद्धि होने से पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होती है। जिसे ग्लोबल वार्मिंग कहते हैं।
3. तापमान में वृद्धि के फलस्वरूप अण्टार्कटिका, ग्रीनलैण्ड और आर्कटिक क्षेत्रों की हिमचादर
4. पिघल जायेगी। सागर तल में 2050 तक एक मीटर की वृद्धि हो जायेगी।
   बाढ़ों की तीव्रता बढ़ जायेगी।
5. तापमान में वृद्धि के फलस्वरूप वर्षा तथा मृदा में नमी की मात्रा में कमी होगी, जिससे कृषि प्रभावित होगी।
6. वन क्षेत्र में कमी आयेगी।
7. महासागरीय जल में Co_2 का अवशोषण तथा विघटन सामान्य स्तर से अधिक होगा तो अम्लता बढ़ जायेगी, जिससे सागरीय पारिस्थितिक तंत्र की उत्पादकता घटेगी।
8. वैज्ञानिकों ने नवीन हरित गृह गैसों की खोज की है, जिसे ट्राइफ़्लोरो मिथाइल (F_3) कहते है। इसमें Co_2 की तुलना में 100 वर्षो की समयावधि तक अवरक्त किरणों का अवशोषण करने की लगभग 20,000 गुणा अधिक क्षमता रखती है।

14.3.3 हरित गृह प्रभाव को रोकने के उपाय (Steps to Control Green House Effect)

1. मेथेनॉल या इथेनॉल मिश्रित पेट्रोल का प्रयोग किया जाना चाहिये। इसके लिए उपयुक्त तकनीकी प्रयोग में ली जानी चाहिये। यह ईंधन अकेले पेट्रोल की तुलना में कम प्रदूषण फैलाता है।
2. जेट्रोपा पौध से तेल प्राप्त किया जाता है, जो पेट्रोल का विकल्प हो सकता है।
3. वृक्ष अधिक संख्या में लगाये जायें।
4. सीसा रहित पेट्रोल का प्रयोग इंजनों में किया जाना चाहिये।
5. क्लोरो फ्तोरो कार्बन गैसों के बजाय अहरित गैसे उपयोग में ली जाए।
6. वाहनों से निकलने वाले धुँए भी ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में सहायक होते हैं। इसीलिए वाहनो से निकले प्रदूषण को नियन्त्रित करने के लिए यूरो मानक अपनाये गये है। यूरो I, यूरो II और यूरो III प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए मानक है। जो मोटरगाड़ियों में उत्सर्जन की सीमा तय करते है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने एक जनहित याचिका की सुनवाई के दौरान सरकार से 1 जून 1999 से यूरो I तथा 1 अप्रेल, 2001 से यूरो II लागू करने को कहा है। यह आदेश केवल राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (NCR) के लिए था।

उत्सर्जी गैसे	**अधिकतम उत्सर्जन की सीमा ग्राम/कि.मी. में**			
	यूरो - I		**यूरो - II**	
	डीजल	**पेट्रोल**	**डीजल**	**पेट्रोल**
कार्बन मोनो ऑक्साइड	3.16	2.2	1.0	2.2
हाइड्रोकार्बन	1.13	1.13	0.7	0.5
नाइट्रस ऑक्साइड	1.13	1.13	0.7	0.5
तैरने वाले कण	0.14	Nil	0.08	Nil

बोध प्रश्न – 2

1. काँच निर्मित हरित गृह (ग्रीन हाउस) का निर्माण किन प्रदेशों में किया जाता है?

   .....

   .....

2. हरितगृह प्रभाव के लिए प्रमुख रूप से कौन सी गैस उत्तरदायी है?

   .....

   .....

3. कार्बन डाइ ऑक्साइड की सांद्रता में वृद्धि के कारण पौधों में प्रकाश संश्लेषण की दर पर क्या प्रभाव पड़ता है?

.....

.....

4. हरित गृह गैसों की सांद्रता में वृद्धि होने से पृथ्वी के तापमान में होने वाली वृद्धि क्या कहलाती है?

.....

.....

5. वाहनों से निकले प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिये कौन सा मानक अपनाया गया है?

.....

.....

14.4 विश्व तापमान वृद्धि (Global Warming)

औद्योगिकीकरण की दर में तीव्र गति से वृद्धि होने के कारण वायुमण्डल में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा में तीव्र वृद्धि हुई है। पृथ्वी पर पायी जाने वाली कार्बन डाइ आक्साइड की मात्रा धरती की सतह से परावर्तित किरणों द्वारा उत्सर्जित होने वाली तापीय ऊर्जा को वायुमण्डल से बाहर जाने से रोकती है। इस प्रकार तापीय ऊर्जा के वायुण्डल में सांद्रण से धरती के औसत तापमान में निरंतर वृद्धि होती है, जिसे विश्व तापमान वृद्धि (Global Warming) कहते हैं।

मौसम वैज्ञानिकों के अनुसार पिछली सदी में विश्व तापमान में 0.3 से 0.6° सेल्सियस की वृद्धि हुई है।

14.4.1 विश्व तापमान वृद्धि के कारण (Causes of Global Warning)

1. पृथ्वी का वायुमण्डल सूर्याताप से ऊर्जा 184×10^{4} जूल प्रति वर्ग मीटर प्रति मिनट ग्रहण करता है परन्तु यह पूर्णत: पृथ्वी तक नहीं पहुँचता है। वायुमण्डल में उपस्थित Co_2 और जलवाष्प द्वारा ताप अवशोषित करने के कारण केवल 47 प्रतिशत भाग ही पृथ्वी तक पहुँच पाता है और पुन: पृथ्वी पर परावर्तित कर देते है। यदि यह परावर्तन नही हो तो पृथ्वी की सतह का तापमान $20^{\circ}C$ से $40^{\circ}C$ हो जायेगा। अवशोषित होने के पश्चात् पुन: परावर्तित ताप औसतन पृथ्वी पर $15^{\circ}C$ रहता है अर्थात् साम्यावस्था में उष्ण रखता है। इस प्रकार यह वायुमण्डलीय संतुलन की स्थिति आवश्यक है। यही ग्रीनहाउस प्रभाव प्रक्रिया है जिसके कारण वायुमण्डल में इसकी सांद्रता में वृद्धि हो जाती है और सार्वभौम उष्णता भी बढ़ती है। यही तापमान में वृद्धि होना ही विश्व तापमान वृद्धि हैं।
2. ईधन जलाये जाने के कारण कार्बन डाइ ऑक्साइड उत्पन्न होती है तथा कार्बन डाई आक्साइड ग्रहण करने वाले वनों को नष्ट किये जाने के फलस्वरूप भी हरित गृह गैसों की मात्रा में वृद्धि होती है।
3. तीव्र औद्योगिकीकरण के कारण कार्बन डाइ ऑक्साइड और अन्य ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप भी विश्व तापमान में वृद्धि होती है।

4. तीव्र जनसंख्या वृद्धि, प्रकृति की घटनायें, प्राकृतिक संसाधनों का अतिमात्रा में उपयोग व कही शोषण, ऊर्जा के अधिकाधिक प्रयोग, कृषि अपशिष्ट पदार्थो में वृद्धि आदि भी इस घटना के लिए प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावी है।

14.4.2 विश्व तापमान वृद्धि के प्रभाव (Impact of Global Warming)

1. जलवायु मॉडल भविष्यवाणी करता है कि वैश्विक तापमान 2100 तक लगभग $1^{\circ}C$ से $3.5^{\circ}C$ तक बढ़ जायेगा, जिसके कारण अप्रत्याशित रूप से जलवायु परिवर्तन होगा।
2. भूमध्य सागर के जल स्तर में 2100 तक 15.95 सेण्टीमीटर की वृद्धि होने की आशा है, जो बाढ़ और अन्य क्षति का कारण होगा।
3. अनावश्यक रूप से पृथ्वी पर तापमान में वृद्धि होने के कारण जैव विविधता, जीव –जन्तु, पेड़–पौधें, मानव क्रियायें प्रभावित होगी और जन जीवन विनाश के कगार पर पहुँच जायेगा।
4. उष्ण प्रधान क्षेत्र और अधिक गर्म हो जायेंगे और वहाँ मरूस्थलीय स्थिति उत्पन्न हो जायेगी।
5. शीत स्थल आद्र बनेंगे और वहाँ वनों का विनाश अधिक होगा।
6. मानवीय स्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ेगा व अनेक रोगों से ग्रसित हो जायेंगे।
7. विश्व तापमान वृद्धि के कारण हिम पिघलेगी, भूकम्प, प्रतिचक्रवात, चक्रवात आदि घटनाओं के कारण पृथ्वी पर असंतुलन उत्पन्न होगा।
8. अतिरिक्त ताप वृद्धि के कारण ध्रुवीय एवं उच्च पर्वतीय बर्फ पिघलने से समुद्री किनारे पर स्थित कई शहर डूब सकते हैं। एक प्रतिष्ठित पत्रिका 'टाइम' के अनुसार मालद्वीप 2025 तक सागर में समा जायेगा। मेरीलैण्ड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों के अनुसार सागर का जलस्तर एक मीटर ऊपर उठने से मिस्त्र, बांग्लादेश, चीन, नाइजीरिया के लगभग 9.40 करोड़ लोगों का जीवन संकट में पड़ जायेगा। पारिस्थितिकी दलदली तंत्र नष्ट हो जायेगा।
9. अमेरिकी पर्यावरण सुरक्षा एजेंसी के अनुसार 2060 तक विश्व में चावल, गेहूँ तथा अन्य खाद्यान्नों में करीब 1.2 से 7.6 प्रतिशत तक कमी हो जायेगी।
10. तंजानिया के माउंट किलिमजारो पर सन् 1912 में 12 वर्ग कि.मी. क्षेत्र पर हिम आवरण था जो निरंतर विश्व तापमान में वृद्धि के कारण केवल 2.6 वर्ग कि.मी. रह गया है।
11. भूण्डलीय तापन द्वारा पूर्वी एवं पश्चिमी आर्कटिक सागर के बीच व्यापार मार्ग में बाधा बने हुए बर्फखण्डों के तेजी से पिघलने के कारण एक नया मार्ग खुलने की संभावना प्रबल हो गई है।
12. आर्कटिक रूस के विशाल तेल, गैस, खनिज क्षेत्रों तथा जंगल के दोहन की संभावना आर्थिक और पर्यावरणीय दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है।

14.4.3 विश्व तापमान वृद्धि को रोकने के उपाय (Steps to Control Global Warming)

1. स्वीडन के वैज्ञानिक स्वान्ते अहरेनियस ने 1898 में चेतावनी दी थी कि कार्बन डाई ऑक्साइड उत्सर्जन वैश्विक तापमान को बढ़ा सकता है। इसके पश्चात् जलवायु परिवर्तन पर केन्द्रीय अन्तर्राज्यीय सम्मेलन 1980 के अन्त में और 1990 के प्रारम्भ में आयोजित

किये गये। सन् 1990 में द्वितीय विश्व जलवायु सम्मेलन में जलवायु परिवर्तन पर संरचना संधि का आह्वान किया गया।

अन्तर्सरकारी बातचीत समिति फरवरी 1991 और मई 1992 में ब्राजील के रियो–डी–जनेरिया शहर में संयुक्त राष्ट्र का "पर्यावरण और विकास सम्मेलन" आयोजित किया गया जिसमें जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र का कनवेन्सन स्वीकार किया गया। 1992 में रियो शहर में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन में 160 देशों ने विश्व की जलवायु परिवर्तन पर हस्ताक्षर किये तथा दिसम्बर 1997 में जापान में हुए क्योटो सम्मेलन में विश्व के कई देशो ने कार्बन डाइ ऑक्साइड के स्तर को कम करने के लिए सहमत हुये इसमें 160 देशों और 300 गैर सरकारी संगठनों ने भाग लिया था। इसी प्रकार जोहान्सबर्ग में सन् 2002 में पूर्व के समझौतों की पुनरावृत्ति मात्र की गई लेकिन कोई प्रभावी निर्णय नहीं लिया गया। विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों की सहायता करने के लिए वित्त पोषक प्रौद्योगिकी के अंतरण में वृद्धि करने के लिए सहयोग किये है।

2. ऊर्जा के क्षेत्र के लिए नीतियों में निम्न या कार्बनहीन ईंधन शामिल है, जो प्रतियोगिता को समाप्त करने के लिए बाजार में विनिमय में सुधार करता है।
3. कृषीय उपायों में उर्वरक प्रयोग को कम करना तथा अपशिष्ट प्रबंधन को सुधारना शामिल है।
4. वन विनाश पर रोक लगायें, वृक्षारोपण अधिक से अधिक मात्रा में करें।
5. कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि के फलस्वरूप विश्व व्यापी उष्णता में वृद्धि आ रही है अत: इस पर नियंत्रण करने के प्रयास करने चाहिये।
6. परम्परागत ईंधनों की अपेक्षा अधिकाधिक मात्रा में सौर ऊर्जा तथा विद्युत उपकरणों से काम चलाना चाहिये।
7. उत्पादों को निर्मित करने के लिए नवीकरण ऊर्जा का प्रयोग करना चाहिये।
8. लोगों में जागरूकता उत्पन्न करनी चाहिये।
9. वैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों द्वारा निर्धारित मानक–नियमों का पालन करना चाहिये तथा सरकार द्वारा निर्धारित कानूनों का पालन करने में ही मानवहित निहित है।

बोध प्रश्न – 3

1. मौसम वैज्ञानिकों के अनुसार पिछली सदी में विश्व तापमान में कितनी वृद्धि हुई है?

   .....

   .....

2. पृथ्वी का वायुमण्डल सूर्यताप से कितनी ऊर्जा ग्रहण करता है?

   .....

   .....

3. वैश्विक तापमान सन् 2100 तक कितना बढ़ जायेगा?

.....

.....

4. 1992 में रियो शहर में कौन सा सम्मेलन आयोजित किया गया था?

.....

.....

5. किसकी मात्रा में वृद्धि के फलस्वरूप विश्वव्यापी उष्णता में वृद्धि आ रही है?

.....

.....

14.5 सारांश (Summary)

पर्यावरण सम्पूर्ण जीव–जगत् का आधार है लेकिन पर्यावरण के अत्यधिक शोषण से आज सम्पूर्ण विश्व के सामने पर्यावरणीय समस्यायें उत्पन्न हो गई है, जिनमें प्रमुखत: ओजोन परत में विरलता, हरित गृह प्रभाव और विश्व तापमान में वृद्धि प्रमुख है। जिसके कारण विश्वस्तर पर इन्हे दूर करने के लिए एक्जूट होकर प्रयास किये जा रहे है। गैर सरकारी संगठनो (NGO's) के द्वारा इसके लिए अनेक शोध, अनुसंधान किये जा रहे है। जन चेतना जागत की जा रही है। पर्यावरण को संतुलित बनाये रखने के लिए 21 मार्च को विश्व वन दिवस, 22 अप्रेल को पृथ्वी दिवस, 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस, 16 सितम्बर को अन्तर्राष्ट्रीय ओजोन परत दिवस आदि मनाये जा रहे है ताकि इन समस्याओं का कुछ न कुछ समाधान निकाला जा सके।

14.6 शब्दावली (Glossary)

- **अधोमण्डल :** पृथ्वी के वायुमण्डल की परत जो हमे आवरित किये हुए है।
- **ओजोन छिद्र :** समताप मण्डल में उपस्थित ओजोन गैस की एक सघन व मोटी परत का क्षीण होना है।
- **पराबैंगनी किरणें :** सूर्य से निकलने वाली विद्युत चुम्बकीय किरणें।
- **पारिस्थितिकी :** जीवो तथा उनके पर्यावरण के परस्पर सम्बंधों का विज्ञान है।
- **हरित गृह प्रभाव :** वायुमण्डल में मानव जनित कार्बन डाइ ऑक्साइड के आवरण प्रभाव के कारण पृथ्वी की सतह की प्रगामी तापन को हरित गृह प्रभाव कहते हैं।
- **F_3 :** ट्राइफ़्लोरो मिथाइल को कहते है। यह नवीन हरित गृह गैस है।
- **यूरो मानक :** वाहनों से निकले प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए अपनाया गया मानक।
- **विश्व तापमान वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) :** तापीय ऊर्जा के वायुमण्डल में सांद्रण से धरती के औसत तापमान में होने वाली वृद्धि।
- **प्रकाश संश्लेषण :** प्रकृति में यह क्रिया तापमान के एक व्यापक परिसर में होती है। जैसे–जैसे तापमान बढ़कर बायोम के इष्टतम सीमा पर पहुँचता हैं, प्रकाश संश्लेषण की गति की वृद्धि में स्थिरता आती है।

14.7 सन्दर्भ ग्रंथ (Reference Books)

1. Dogra, Bharat : **Forest and People,** Himalaya Darshan Prakashan Samiti, Rishikesh.
2. Gilpin, Alon : **Dictionary of Environment Terms,** United Nations, Newyork
3. Thaunt, U : **Problems of the Human Environment,** United Nations, Newyork.
4. वर्मा, खत्री, कायमखानी : **पर्यावरण अध्ययन,** राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2008
5. Kalwar, S.C. : **Wastelands and Planning for Development,** Concept Publishing Company, New Delhi, 2008
6. एच.एम.सक्सेना : **पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी भूगोल,** राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2008
7. एम.एल.शर्मा एवं प्रकाश नारायण नाटाणी : **पर्यावरण अध्ययन,** माया प्रकाशन मन्दिर, जयपुर, 2006
8. राम आसरे चौरसिया : **पर्यावरण भूगोल,** किताब महल एजेन्सीज, पटना, 1998
9. आर. के. गुर्जर व बी.सी. जाट **पर्यावरण अध्ययन,** पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2007
10. कलवार सुगनचन्द : **पर्यावरण संरक्षण,** पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2000
11. Kalwar S.C. : **Environmental Issues and Sustainable Development,** Pointer Publishers, Jaipur, 2003.
12. Kalwar S.C. et al.,: **Geomorphology and Environmental Sustainability,** Concept Publishing Company, New Delhi, 2005
13. भावना माथुर एवं महेश नारायण निगम : **मानव और पर्यावरण,** हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1997
14. रतन जोशी : **जैव भूगोल एवं जैव विविधता,** राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2007

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न –1

1. O_3
2. पराबैंगनी किरणों को अवशोषित करना।
3. पराबैंगनी -A
4. क्लोरोफ्लोरो कार्बन
5. नाइट्रिक ऑक्साइड

6. 5 प्रतिशत
7. पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होगी

बोध प्रश्न –2

1. शीत प्रदेशों में
2. कार्बन–डाइ–ऑक्साइड, मिथेन, क्लोरो फ्लोरो कार्बन और नाइट्रस ऑक्साइड
3. प्रकाश संश्लेषण की दर में वृद्धि
4. ग्लोबल वार्मिंग
5. यूरो मानक

बोध प्रश्न –3

1. 0.3 से 0.6° सेल्सियस
2. 184×10^{4} जूल प्रति वर्ग मीटर प्रति मिनट
3. 1 से 3.5 सेल्सियस
4. पृथ्वी सम्मेलन
5. कार्बन–डाइ–ऑक्साइड

14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ओजोन परत की विरलता से क्या तात्पर्य है, ओजोन परत की विरलता के कारणों की विवेचना कीजिये?
2. ओजोन परत की विरलता को रोकने के उपाय लिखिये।
3. हरित गृह (ग्रीन हाउस) से क्या तात्पर्य है, हरित गृह प्रभावों के कारणों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये?
4. विश्व तापमान वृद्धि से आप क्या समझते है?
5. विश्व तापमान वृद्धि के कारण, प्रभाव व रोकने के उपाय का वर्णन कीजिये।

इकाई 15 : मरूस्थलीकरण एवं वनोन्मूलन (Desertification and Deforestation)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 मरूस्थलीकरण
15.2.1 मरूस्थलीकरण की संकल्पना
15.2.2 मरूस्थलीकरण के सूचक
15.3 संसार के प्रमुख मरुस्थल
15.3.1 संसार में मरूस्थलीकरण के कारण
15.4 थार के मरूस्थल के क्षेत्र में मरूस्थलीकरण के प्रमुख कारण
15.5 मरूस्थलीकरण के वैश्विक प्रभाव
15.6 मरूस्थलीकरण रोकने के उपाय
15.7 वन विनाश/वनोन्मूलन
15.7.1 वनविनाश के कारण
15.7.2 वनविनाश के प्रभाव
15.7.3 वन–संरक्षण
15.8 सारांश
15.9 शब्दावली
15.10 संदर्भ ग्रंथ
15.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे कि:

- मरुस्थलीकरण एवं वनोन्मूलन
- मरूस्थलीकरण की संकल्पनाएँ एंव सूचक,
- संसार के प्रमुख मरूस्थल व मरूस्थलीकरण के प्रमुख कारण,
- मरूस्थलीकरण के वैश्विक प्रभाव,
- मरूस्थलीकरण रोकने के उपाय,
- वनविनाश, वनविनाश के कारण,
- वनविनाश के प्रभाव
- वन–संरक्षण (वन विनाश रोकने के उपाय)

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

मरूस्थलीकरण जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, मृदा, जीव–जन्तु एंव मानवीय क्रियाओं का परिणाम हैं। इसे मानव द्वारा पारिस्थितिक क्रम में अवरोध माना जा सकता हैं। यह जलवायु एंव जैविक तत्वों की क्रिया–प्रतिक्रिया का परिणाम होता है। विश्व में शुष्क मरूस्थलीय क्षेत्रों का विस्तार हैं। वनोन्मूलन बीसवी शताब्दी में तीव्र गति से हुआ है। विश्व पर्यावरण की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण उष्ण कटिबंधीय वर्षा वनों का विनाश चरम पर है। वनोन्मूलन प्राकृतिक व मानवजनित कारणो से होता हैं। वनोन्मूलन मात्र वृक्षों का समाप्त होना ही नही अपितु इसका बहुआयामी प्रभाव होता है। भारत में वर्तमान वनोन्मूलन की प्रवृत्ति में निरन्तर वृद्धि देश के पर्यावरण के लिए सबसे अधिक खतरा है।

15.2 मरूस्थलीकरण (Desertification)

मरूस्थल का शाब्दिक अर्थ हैं मृत्त भूखण्ड (Dead Land) यह एक अत्यन्त नाजुक एंव परिवर्तनशील पारिस्थितितंत्र हैं। मरूस्थलीकरण का सामान्य अर्थ है उपजाऊ एवं अमरूस्थली भूमि का मरूस्थली भूमि में परिवर्तित हो जाना। जबकि पारिस्थितिक एंव पर्यावरणवेत्ता इसे एक क्रमबद्ध प्रक्रिया मानते है जो जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, मृदा, जीव–जन्तु एंव मानवीय क्रियाओं का परिणाम हैं। केंद्रीय शुष्क क्षेत्र शोध संस्थान (CAZRI) के अनुसार – "मरूस्थलीकरण से तात्पर्य उन सभी प्रक्रमों के सामूहिक प्रभाव से है जिनके कारण एक विशेष पारिस्थितिक तंत्र में मूलभूत परिवर्तन आ जाता है तथा जिससे अमरूस्थली क्षेत्र मरूस्थल में परिवर्तित होने लगता है । यह जलवायु एंव जैविक तत्वों की क्रिया प्रतिक्रिया का परिणाम होता है।" यह प्रक्रिया मरूस्थल बनने से पूर्व ही प्रारम्भ हो जाती है और मरूस्थल इसी का परिणाम है। यह प्रक्रिया मरूस्थली दशाओं को सघन एंव जटिल बनाती है। जिसके परिणामस्वरूप सीमावर्ती क्षेत्रों में मरूस्थल विस्तार होता जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट के अनुसार अविवेकपूर्ण मानवीय क्रियाओं के कारण विश्व में 1 करोड़ 30 लाख वर्ग किमी. क्षेत्र में मरूस्थली भूमि हो गई है। विश्व में यह प्रक्रिया अनवरत रूप से चल रही है अर्थात् मरूस्थलीकरण सम्पूर्ण विश्व में पर्यावरण की एक प्रमुख समस्या है। भारत में थार का मरूस्थल भी इसी प्रक्रिया का शिकार है, इसके कारण यहाँ का पर्यावरण अवकर्षित हो रहा है।

बोध प्रश्न– 1

1. मरूस्थल का शाब्दिक अर्थ क्या होता है?

   .....

   .....

2. किसके अनुसार मरूस्थलीकरण एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है?

   .....

   .....

3. CAZRI का पूरा नाम क्या है?

.....

.....

4. किस रिपोर्ट के अनुसार विश्व में 1 करोड़ 30 लाख वर्ग किमी. क्षेत्र में मरूस्थली भूमि हो गई है?

.....

.....

15.2.1 मरूस्थलीकरण की संकल्पनाएँ (Concepts of Desertification)

मरूस्थलीकरण से सम्बन्धित संकल्पनायें निम्नलिखित है :–

1. यह पारिस्थितितंत्र के हास, शुष्कीपन, विनाश अथवा अपक्षय की प्रक्रिया है जो मानव द्वारा बढ़ते परिवर्तनशील भूमि–उपयोग के दबाव की परिस्थितियों में सक्रिय रहती है।
2. मरूस्थलीकरणोन्मुख उस स्थिति में होता है, पर्यावरण जिसका सूक्ष्म वाष्पोत्सर्जन वृष्टि से बहुत ज्यादा बढ़ जाता है।
3. मरूस्थलीकरण के कारण भूमि के जैविक शाक्य उत्पादन कम हो जाता है और भूमि के उत्पादन शक्य में दीर्घकाली हास लाता है। जिसके परिणामस्वरूप भूमि बंजर हो जाती है।
4. पारिस्थितितंत्र विशेष रूप से शुष्क और अर्द्धशुष्क पारिस्थितितंत्रों में पारिस्थितितंत्र के पुन: स्वास्थ्य लाभ की प्रक्रिया अतिव्यापित उपयोग के कारण अत्यंत क्षीण होती है।
5. मरूस्थलीकरण मानवनिर्मित प्रक्रिया है अथवा प्रकृतिनिर्मित यह विवादास्पद है।

15.2.2 मरूस्थलीकरण के सूचक (Indicator of Desertification)

जब भी भौगोलिक अध्ययन किया जाता है, उसमें मात्रात्मक विश्लेषण अनिवार्य होते है क्योंकि मात्रात्क विश्लेषण अत्यन्त शुद्ध परिणाम प्रदान करता है।

मरूस्थलीकरण के सूचकों को निम्नलिखित छ: वर्गो में विभक्त कर सकते है :–

1. भौतिक सूचक (Physical indicators)
2. मौसम विज्ञान संबधी सूचक (Meterolgical indicators)
3. जलविज्ञान सम्बन्धी सूचक (Hydrolgical indicators)
4. मृदा संबंधी सूचक (Edaphic indicators)
5. जैविक सूचक (Biotic indicators)
6. मानवीय सूचक (Anthropogenic indicators)

उपरोक्त सूचको की सहायता से भू क्षेत्रीय सर्वेक्षण करके मानचित्रात्मक विवियों को यदि उपयोग में लिया जाता है तो मरूस्थलीकरणोन्मुख क्षेत्रों तथा मरूस्थलीकरण की सघनता का ज्ञान सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

1. **मरूस्थलीकरण के भौतिक सूचक :** भौतिक सूचकों के अन्तर्गत निम्न को सम्मिलित किया जाता है :

   (a) बालुका स्तूप सघनता : इसकी सघनता ज्ञात करने के लिए ब्लाक, तहसील या जिला स्तर पर बालुका स्तूपों की संख्या ज्ञात करके मानचित्र में उनका वितरण कोरोप्लेथ विधियों से प्रदर्शित किया जाता है। अनेक वितरण मानचित्र जो अलग – अलग

कालांतरों में बनाये गये होते है, को अध्यारोपित करके बालुकास्तूप सघनता ज्ञात कर सकते है। इस प्रकार अध्यारोपित मानचित्र का विश्लेषणकरके हम यह परिणाम ज्ञात कर सकते हैं, कि मरूस्थल घट रहा है या बढ़ रहा है।

(b) अन्त: स्तूपीय मैदान का सिकुड़ना : जब बालुकास्तूप का आकार बढता है तब अन्त : स्कूपीय मैदान सिकुड़ने लगता है। अन्त : स्तूपीय मैदान का क्षेत्रफल घटने पर मरूस्थल बढ़ता है और अन्त: स्तूपीय मैदान का क्षेत्रफल बढने पर मरूस्थल का आकार घटता है। अर्थात् इनमें विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है।

(c) खारे गर्तों का विस्तार : यदि खारे पानी के गर्तो व झीलों की संख्या बढ़ती जाती है तो मरूस्थलीकरण में वृद्धि का सूचक होती है। यदि संख्या में कमी हो तो मरूस्थलीकरण में कमी होगी।

(d) कंकरीली एंव पथरीली भूमि का विस्तार : रेतीले मरूस्थल के निकटवर्ती क्षेत्रों में तथा वर्षा की न्यूनता से प्रभावित क्षेत्रों में प्राय: कंकडों का विस्तार एवं नग्र पथरीली भूमि का फैलाव होता है। जिन्हें संक्रमण क्षेत्र कहते हैं। इस प्रकार इनमें विस्तार होना मरूस्थलीकरण का सूचक होता है।

मरूस्थलीकरण के सूचक
1. भौतिक सूचक
2. मौसमविज्ञान संबंधी सूचक
3. जलविज्ञान संबंधी सूचक
4. मृदा संबंधी सूचक
5. जैविक सूचक
6. मानवीय सूचक
बालुका स्तूप सघनता
अंतःस्तूपीय मैदान का सिकुड़ना
कंकरीली एवं पथरीली भूमि का विस्तार
खारे गर्तो का विस्तार
धरातलीय प्रवाह सघनता
स्थिर जल राशियां
अधौभौमिक जल का खारापन
अधोभौमिक जलस्तर
प्रभावशाली मृदा गहराई
मृदा का पर्यावरण
मृदा का क्षारीय एवं खारेपन का स्तर
मृदा उर्वरता स्तर
मृदा का अपदनशीलता स्तर
अति पशुचारण
जनसंख्या में वृद्धि
वनों की कटाई
वर्षा का वितरण
वर्षा की विषमता
तापीय राज्यकम
सूखा सघनता प्रदेश
पवनगति प्रतिरूप
धूल भरी आंधियो की बारंबारता
जलसंतुलन
जलोपलब्धि अवधि
वनस्पति सधनता सूचक
धरातलोपरि जीव समुदाय
मौलिक प्रजातियां
कृन्तक जनसंख्या

2. **मौसम विज्ञान संबंधी सूचक (Meterological indicators) :** इस सूचक के अन्तर्गत् निम्न को सम्मिलित किया जाता है–

(a) **वर्षा का वितरण :** वर्षा का कालिक एंव भू क्षेत्रीय वितरण मरूस्थलीकरण की दिशा एंव प्रवृत्ति निर्धारित करने में बहुत सहायक होता है। 25 सेमी. और 30 सेमी. वार्षिक वर्षा वाले प्रदेशों में मरूस्थलीकरण को परिस्थितियां अन्य क्षेत्रों की तुलना में सघनतम होती है।

(b) **वर्षा की विषमता :** वर्षा की विषमता का प्रतिशत उच्च होने पर यह शुष्क एंव मरूस्थलीय दशाओं का सूचक होता है। जिन क्षेत्रों में यह प्रतिशत समयानुसार बढ़ रहा है, वे शीघ्र मरूस्थलीकृत हो जाते है ।

(c) **तापीय राज्यक्रम :** जिन क्षेत्रों में उच्च औसत न्यूनतम एंव अधिकतम तापमान एंव उच्च तापांतर पाया जाता है। वहाँ शुष्क दशाओं के विकसित होने की संभावना अधिक रहती है।

(d) **जल सन्तुलन :** वाष्पीकरण की बढ़ती दर और घटती वर्षा की मात्रा किसी भी क्षेत्र में शुष्कता की दशायें उत्पन्न कर सकती है। विभिन्न क्षेत्रों में सुनिश्चित कालांतर पर ज्ञात किये गये जल सन्तुलन से मरूस्थलीकरण की दिशा एंव प्रसार की प्रवृत्ति ज्ञात कर सकते है। बिगड़ते हुए जल सन्तुलन से मरूस्थलीकरण की दर निर्धारित की जा सकती है।

सूत्र :– P = E+R

यहाँ P = Precipitation (वृष्टि)

E = Evaporation (वाष्पीकरण)

R = Run off (प्रवाह)

(e) **जलोपलब्धि अवधि :** कालक्रमानुसार घटते वर्षा दिवस किसी भी प्रदेश में मरूस्थलीकरण की दशाओं के द्योतक होते हैं।

(f) **सूखा सघनता प्रदेश :** यदि किसी प्रदेश की सूखे की सघनता मे वृद्धि हो तो मरूस्थलीकरण में वृद्धि तथा सूखे की सघनता का घटता प्रतिशत मरूस्थल समापन का सूचक होता है।

(g) **धूलभरी आंधियों की बारम्बारता :** यदि किसी क्षेत्र में धूलभरी आंधियों की संख्या निर्धारित समय में बढ़ रही होती है तो यह मरूस्थल के प्रसार का सूचक माना जाता है।

(h) **पवनगति प्रतिरूप :** उच्च पवन गति वाले क्षेत्रों में मिट्टी का पवन द्वारा कटाव तीव्र होता है, बालू का फैलाव तीव्रतर गति से होता है, अत: ऐसे क्षेत्र मरूस्थल बन जाते है जबकि कम पवनगति वाले क्षेत्रों में मरूस्थल बनने की संभावना कम हो जाती है।

3. **जलविज्ञान सम्बन्धी सूचक :** इस सूचक के अन्तर्गत हम धरातलीय प्रवाह सघनता, अधोभौमिक जलस्तर, स्थिर जलराशियां व अधोभौमिक जल के खारेपन को सम्मिलित करते है।

(a) **धरातलीय प्रवाह सधनता :** जिन क्षेत्रों में प्रवाह की सघनता निम्न होती है वहाँ मरूस्थलीकरणोन्दुख होते हैं।

(b) **अधोभौमिक जलस्तर :** जल स्तर में गिरावट मरूस्थलीय परिस्थितियों का सूचक होता है। उन अर्धमरूस्थलीय क्षेत्रों में जहाँ कुओं का जलस्तर तीव्रता से कम होता है, वहाँ मरूस्थलीय परिस्थितियों की संभावनायें बढ़ जाती है।

(c) **स्थिर जल राशियाँ :** तालाबों, पोखरों, झीलों का धीरे–धीरे सूखकर जलविहिन हो जाना भी मरूस्थलीकरण की दशाओं का सूचक होता है।

(d) **अधोभौमिक जल का खारापन :** विभिन्न कुओं के जल के खारेपन की मात्रा का प्रतिदशक अंकन करके मरूस्थलीकरण के बढ़ने और घटने का अनुमान लगाया जा सकता है। यदि अधोभौमिक जल के खारेपन में लगातार वृद्धि हो तो यह क्षेत्र के सूखोन्मुख होने का सूचक होगा।

4. **मृदा सम्बन्धी सूचक :** इस सूचक के अन्तर्गत हम प्रभावशाली मृदा की गहराई, मिट्टी का पर्यावरण, मृदा का क्षारी एवं खारेपन का स्तर अपरदनशीलता स्तर, एवं मृदा के उर्वरत स्तर को सम्मिलित करते है।

(a) **प्रभावशाली मृदा गहराई :** जिन क्षेत्रों में मिट्टी की गहराई न्यून होती है, उनमें मिट्टी के पोषक तत्व कम होते है। पवनों द्वारा इन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान तक उड़ा कर ले जाया जाता है, जिसके कारण यह क्षेत्र बंजर में परिवर्तित हो जाता है और कालान्तर में रेगिस्तान में बदल सकता है।

(b) **मिट्टी का पर्यावरण :** मृदा वैज्ञानिकों द्वारा मिट्टी के पर्यावरण (जैविक पदार्थ, हूमस का स्तर एवं नाइट्रोजन) का परीक्षण किया जाता है। यदि इनकी मात्रा घटती है तो मरूस्थलीकरण एंव बढती हुई मात्रा मरूस्थलेतर परिस्थितियों की द्योतक होती है। नाइट्रोजन की मात्रा में कमी होने पर कृषि का उत्पादन कम होता है, और वनस्पतियों की वृद्धि में रूकावट होती है।

(c) **मृदा का क्षारीय एंव खारेपन का स्तर :** जब मृदा में क्षारीय व खारेपन की अधिकता हो जाती है, तो धीरे–धीरे मृदा रेत और बंजर भूमि में परिवर्तित हो जाती है। जिससे इस क्षेत्र में जलस्तर में कमी हो जाती है, वाष्पीकरण बढ़ जाता है अत: इस प्रकार इस क्षेत्र का मरूस्थल में परिवर्तन हो जाता है।

(d) **मृदा का अपरदनशीलता स्तर :** वनस्पति रहित क्षेत्र और ढ़ीले सगठन वाली मिट्टी में अपरदन अधिक मात्रा में होता है, जिसके कारण इन क्षेत्रों का मरूस्थलीकरण होता है।

(e) **मृदा उर्वरता स्तर :** मृदा के उर्वरता स्तर में कमी होना मरूस्थलीकरण की प्रवृत्ति को दर्शाता है।

5. **जैव सूचक (Biotic Indicators) :** मरूस्थलीकरण के सूचकों के अन्तर्गत् जैव सूचक को भी सम्मिलित किया जाता है। इसमें प्रमुखतया: वनस्पति सघनता प्रदेश, धरातलोपीर जीव समुदाय, मौलिक प्रजातियाँ व कृन्तक जनसंख्या शामिल होते हैं।

(a) वनस्पति सघनता प्रदेश : सुदूर संवेदी तकनीक द्वारा क्षेत्र में वनस्पति की सघनता का पता लगाया जाता है, यदि क्षेत्र में वनस्पति की विरलता दृष्टिगोचर होती है, तो यह स्थिति मरूस्थलीय प्रवृत्ति को दर्शाती है।

(b) धरातलोपरि जीव समुदाय : यदि किसी क्षेत्र विशेष में पक्षियों तथा वृक्षों पर रहने वाले जीव–जन्तुओं की संख्या का कालिक सर्वेक्षण कराया जाता है, उनकी संख्या में कमी होना अकाल का सूचक होता है।

(c) मौलिक प्रजातियां : प्रत्येक क्षेत्र में पौधों और जीवों की मौलिक प्रजातियां होती है। यदि क्षेत्र में 100 प्रकार की प्रजातियां पाई जाये तो वहां शक्तिशाली पर्यावरण एवं 40 प्रजातियों वाला क्षेत्र कमजोर पर्यावरण का क्षेत्र होता है। कमजोर पर्यावरण वाले क्षेत्र में मरूस्थलीय परिस्थितियां शीघ्र उत्पन्न हो सकती है।

(d) कृन्तक जनसंख्या : कृन्तक जीव (कुतरकर खाने वाले जीव) की संख्या में निरंतर वृद्धि होने पर पर्यावरण की निर्वाहन क्षमता अधिक होती है। यदि इनकी संख्या घटने लगे तो समझना चाहिये कि पर्यावरण का हास हो रहा है।

6. मानवजनित सूचक : मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वन, खनिज और ऊर्जा संसाधनों का अविवेकपूर्ण विदोहन करना प्रारंभ कर दिया, जिसके कारण अनेक समस्यायें उत्पन्न हो गई जिनमें मरूस्थलीकरण भी है। मानवजनित सूचकों के अन्तर्गत अति पशुचारण, वनों की कटाई और जनसंख्या में वृद्धि है।

(a) अतिपशुचारण : संसार के अनेक क्षेत्रों में पशुपालन एक महत्वपूर्ण अर्थव्यवस्था है। पर्यावरण विशेष में पशुओं की एक निश्चित संख्या का पोषण करने की क्षमता होती है। उसकी क्षमता से अधिक पशुओं की संख्या बढ़ने के परिणामस्वरूप चरागाहों एवं पशुचारण क्षेत्रों का क्षेत्रफल कम हो गया, जिससे मरूस्थल का प्रसार हो रहा है।

(b) वनों की कटाई : मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए वनों की अंधाधुंध कटाई कर रहा है। जिससे पर्यावरण असन्तुलन उत्पन्न हो रहा है। वनों की कटाई के कारण मरूस्थल का विस्तार हो रहा है।

(c) जनसंख्या में वृद्धि : विश्व में जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि के कारण संसाधनों पर निरंतर दबाव पड़ रहा है, जिसके कारण पर्यावरण असंतुलन उत्पन्न हो रहा है इस प्रकार जनसंख्या में वृद्धि भी मरूस्थलीकरण के संदर्भ में मानवजनित सूचक है।

बोध प्रश्न – 2

1. भौगोलिक अध्ययन के लिए किस प्रकार का विश्लेषण अनिवार्य होता है?

   .....

   .....

2. अन्त : स्तूपीय मैदान का सिकुड़ना व खारे गर्तों के विस्तार को मरूस्थलीकरण के किस प्रकार के सूचक के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है ?

.....

.....

3. बिगड़ते हुये जल संसाधन से मरूस्थलीकरण की दर निर्धारित करने का सूत्र क्या है ?

.....

.....

4. जल विज्ञान संबंधी सूचक के अन्तर्गत क्या सम्मिलित होते है ?

.....

.....

5. कृन्तक जीव किसे कहां जाता है ?

.....

.....

6. अतिपशुचारण किस सूचक के अन्तर्गत शामिल है ?

.....

.....

15.3 संसार के प्रमुख मरूस्थल (Importance Deserts of World)

वर्तमान समय में विश्व का लगभग 20 प्रतिशत भाग मरूस्थलों, अर्द्धमरूस्थलों के रूप में विस्तृत है। विश्व में मरूस्थलों का विस्तार क्रमश: यूरोप के 2 प्रतिशत, एशिया के 31 प्रतिशत, अमेरिका के 19 प्रतिशत, अफ्रीका के 34 प्रतिशत तथा आस्ट्रलिया के 75 प्रतिशत भाग पर है। अफ्रीका का सहारा मरूस्थल अपना विस्तार निरन्तर कर रहा है, जिसके कारण आगामी कुछ वर्षों में सहारा मरूस्थल का आकार 20 प्रतिशत बढ़ जायेगा।

इसी प्रकार थार मरूस्थल का भी विस्तार हो रहा है। अक्षांशों की स्थिति के अनुसार मरूस्थलों का विस्तार 20 डिग्री से 30 डिग्री उत्तरी अक्षांशों के मध्य पाया जाता है। मरूस्थलों को प्रमुखत: तीन वर्गो में रख सकते है :–

(i) **अतिशुष्क मरूस्थल :** इस प्रकार के मरूस्थलों के अन्तर्गत अफ्रीका के सहारा, अमेरिका के सोनोरान और मोजेब मरूस्थल को सम्मिलित करते है।

(ii) **शुष्क मरूस्थल :** अफ्रीका का सहेल, मैक्सिको का चिहुवाहुनान और चीन के गोबी और सामो मरूस्थल को शुष्क मरूस्थल के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।

(iii) **अर्धशुष्क मरूस्थल :** इस प्रकार के मरूस्थल के अन्तर्गत अफ्रीका का कालाहारी मरूस्थल, संयुक्त राज्य अमेरिका के मैदान को सम्मिलित करते है।

- **स्थिति के आधार पर मरूस्थलों को दो वर्गो में वर्गीकृत किया जा सकता है :**

1. महाद्विपीय मरूस्थल : इस प्रकार के मरूस्थल महाद्विपों के मध्य में पाये जाते है, किन्तु समुद्रों से सुदूरवर्ती क्षेत्रों में स्थित होते है। उदाहरण के लिए गोबी का मरूस्थल।

2. उष्ण कटिबंधीय मरूस्थल : इस प्रकार के मरूस्थल विषुवत रेखा के दोंनो ओर 5 डिग्री से 30 डिग्री अक्षांशों मे पाये जाते हैं उदाहरण के लिए सहारा मरूस्थल व थार मरूस्थल।

तालिका–15.1 : विश्व के प्रमुख मरूस्थल

क्र.सं	नाम	क्षेत्रफल (हजार वर्ग किमी.)	स्थिति एवं विस्तार
1.	सहारा	8400.0	अल्जीरिया, चाड, लीबिया, माली, मारीटिनिया, नाइजर, सूडान, ट्यूनीशिया, मिश्र, मोरक्को।
2.	आस्ट्रेलिया		
	(i) ग्रेट सैंडी	1550.0	आस्ट्रेलिया
	(ii) ग्रेटविक्टोरिया	42.0	
	(iii)आरूण्टा या सिम्पसन	325.0	
	(iv) गिब्सन	310.00	
3.	अरब मरुस्थल	1300.0	अरब प्रायद्वीप
	(i) रूप–अल खाली	647.5	
	(ii) सीरिया मरुभूमि	325.0	
	(iii) नेपद	129.5	
4.	गोबी	1040.0	मंगोलिया एवं आंतरिक मंगोलिया (चीन)
5.	कालाहारी	520.0	बोत्सवाना
6.	तकला मकान	320.0	सिकिन्यांग प्रान्त (चीन)
7.	सोनोरान	310	एरीजोना एवं कैलिफोर्निया (अमेरिका एवं मैक्सिको)
8.	नामीबिया	310	नामीबिया
9.	कराकुरम	270	तुर्कमेनिस्तान
10.	थार	260	उ.प. भारत एवं पाकिस्तान
11.	सोमाली	260	सोमालिया
12.	अटाकामा	180	उ. चिली
13.	काइजिल कुम	180	उज्बेकिस्तान एवं कजाकिस्तान
14.	दस्त–ए–लुत	52	पूर्वी ईरान
15.	मोजेव	35	द. कैलिफोर्निया (अमेरिका)
16.	सेचुरा मरुस्थल	26	उ.प. पेरु

मानचित्र–15.1 : विश्व में मरुस्थलों एवं शुष्क क्षेत्रों का वितरण

15.3.1 संसार में मरूस्थलीकरण के कारण

संसार में मरूस्थलीकरण के प्रमुख कारण निम्नलिखित है :–

1. अनियंत्रित पशुचारण,
2. मानव द्वारा वनस्पति का निमर्मता से उन्मूलन,
3. वायु अपरदन एवं स्थानान्तरण द्वारा विस्तार,
4. भूमिगत जल स्तर में निरंतर गिरावट,
5. न्यून वर्षा के कारण सूखा,
6. मरूस्थली प्रदेश में जनसंख्या वृद्धि,
7. कृषि भूमि में लगातार एक ही फसल का बोना,
8. मृदा की लवणता आदि।

स्पष्ट है कि मरूस्थलीकरण में पर्यावरण एवं पारिस्थितिक तंत्र में परिवर्तन के फलस्वरूप शुष्कता का विस्तार होता है। इस विस्तार में प्रमुख भूमिका चार कारकों की रहती है, वे है :–

1. वनस्पति आवरण में क्षति, फलस्वरूप वायुमण्डल की नमी में कमी, तापमान में वृद्धि तथा मिट्टी का कटान,
2. वायु द्वारा शुष्क प्रदेशों में निरंतर मृदा–अपरदन,
3. यदा कदा जल अपरदन
4. भूमि की लवणता से उपजाऊपन का क्षीण होना।

प्रारम्भ में यह प्रक्रिया सीमित होती है, जो मरूस्थलीकरण की प्रारम्भिक अवस्था होती है। यदि इस अवस्था में इस समस्या पर सामान्यतया ध्यान न देने से अवकर्षण क्रमश: अधिक होता है।

15.4 थार के मरूस्थल के क्षेत्र में मरूस्थलीकरण के प्रमुख कारण (Major Causes of Desertification of Thar Desert)

भारत में शुष्क क्षेत्र का विस्तार देश के लगभग 12 प्रतिशत क्षेत्र अर्थात् 3,20,000 वर्ग कि.मी. से अधिक है, तथा 29.13 प्रतिशत भाग पर अर्द्धशुष्क दशायें पायी जाती है। इनका

सर्वाधिक विस्तार राजस्थान, गुजरात, पंजाब व हरियाणा राज्य में है। जबकि आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक राज्यों में शुष्क एवं अर्द्धशुष्क दशाओं का विस्तार है।

भारतीय मरूस्थलीय प्रदेश में एक ओर जहाँ परिवर्तित एवं अतिशयतायुक्त जलवायु है जहाँ दैनिक तापान्तर अधिक होता है वही उसकी दो प्रमुख समस्याएं है– मानव जनसंख्या एवं पशुओं की संख्या। अन्य प्राकृतिक कारणों के अतिरिक्त ये दोनों अर्थात् जनसंख्या में वृद्वि, पशुओं की अनियंत्रित चराई भी क्लस्थलीकरण के लिए उत्तरदायी है, जिससे मरूस्थल का पर्यावरण और अधिक अपकर्षित हो जाता है।

थार के मरूस्थल के क्षेत्र में मरूस्थलीकरण की प्रकृति के मुख्य कारण निम्न है :

1. जलवायु की कठोरता, उच्च तापमान – न्यून वर्षा
2. वनस्पति का दिनों–दिन कटते जाना।
3. जनसंख्या की वृद्धि
4. पशुओं की संख्या में वृद्धि एवं अनियंत्रित पशुचारण
5. भूमिगत जल–स्तर में गिरावट
6. 6.संसाधनों का अत्यधिक शोषण
7. 7.निरन्तर सूखा और अकाल की घटना
8. 8.भू–क्षरण द्वारा मिट्टी का बढ़ता अनुपजाऊपन

बोध प्रश्न –3

1. वर्तमान समय में विश्व के मरूस्थल का लगभग कितने प्रतिशत भाग अर्द्धमरूस्थलों के रूप में विस्तृत है ?

   .....

   .....

2. अक्षांशों की स्थिति के आधार पर मरूस्थलों का विस्तार कितने डिग्री अक्षांशों के मध्य पाया जाता हे ?

   .....

   .....

3. विषुवत रेखा के दोनों ओर 5 डिग्री से 30 डिग्री अक्षांशों के मध्य कौन से मरूस्थल पाये जाते है।

   .....

   .....

4. मरूस्थलीकरण के विस्तार में प्रमुख भूमिका कितने कारकों की होती है ?

   .....

   .....

5. भारत में शुष्क क्षेत्र का विस्तार देश के लगभग कितने क्षेत्र में है ?

.....
.....

6. थार के मरूस्थल में मरूस्थलीकरण की प्रकृति के कोई दो कारण लिखिये।

.....
.....

15.5 मरूस्थलीकरण के वैश्विक प्रभाव (Global Impact of Desertification)

विश्व स्तर पर मरूस्थलों के विस्तार के निम्न परिणाम सामने आये है :–

1. हवा एवं जल द्वारा मृदा का तीव्र कटाव
2. मरूस्थल के तीव्र प्रसार से वनों का विनाश
3. कृषि क्षेत्र का ह्रास
4. चरवाहों की क्षति
5. नदियों एवं झीलों में अवसादी करण
6. भूमिगत जल स्तर में गिरावट
7. जलाऊ लकड़ी का अभाव
8. पेयजल स्रोतों का सूखना
9. चरागाह क्षेत्रों में कमी
10. बंजर भूमि का विस्तार
11. अकाल की संभावना
12. खाद्यान्न उत्पादन में कमी

15.6 मरूस्थलीकरण रोकने के उपाय (Steps to Control Desertification)

1. वृक्षों के कटाव को रोकना
2. वृक्षारोपण खुली जगहों पर
3. चातुर्यपूर्ण भूमि प्रबंध
4. नियंत्रित पशुचारण
5. ईंधन के वैकल्पिक स्रोत
6. जल प्रबंध
7. संरक्षण शिक्षा
8. मरूस्थलीय जलवायु के अनुकूल वृक्ष लगाना
9. पर्वतमालाओं के अन्तरालों में पादप सुरक्षा पटिटयाँ स्थापित की जानी चाहिये
10. फव्वारों द्वारा सिंचाई करके मरूभूमि विस्तार को रोकना
11. वायु प्रवाह की दिशा के लम्बवत् धारीदार फसल लगाई जानी चाहिये

12. राष्ट्रीय राजमार्गों के दोनों और सघन वृक्षारोपण
13. बालुका–स्कूप स्थायीकरण वृक्ष लगा कर किया जाये
14. अव्यवस्थित पत्थरों की खदानों को रोकना
15. कृषि व्यवस्था में परिवर्तन
16. जलग्रहण विकास कार्यक्रमों को लागू करना
17. सामाजिक वानिकी, कृषि वानिकी, वन खेती के द्वारा रेतीली बंजर भूमी का उपयोग किया जाना चाहिये।

बोध प्रश्न–4

1. मरुस्थलीकरण के वैश्विक प्रभाव के कोई दो परिणाम लिखिए ।

   .....

   .....

2. मरूस्थलीकरण रोकने के कोई तीन उपाय लिखिए ।

   .....

   .....

15.7 वनोन्मूलन या वनविनाश (Deforestation)

वनों के क्षेत्र में कमी आना तथा अनियमित कटाई को ही वन विनाश या वनोन्मूलन (Deforestation) कहते हैं। पर्यावरण को असंतुलित करने अथवा उसके स्तर को गिराने या अवकर्षित करने का प्रमुख कारण हैं।

वनोन्मूलन प्राकृतिक या मानवीय कारणों से होता है। संयुक्त राष्ट्र की (FAO) शाखा ने इस बारे में चिंता व्यक्त करते हुए कहा है कि विकासशील देशों में 1980 और 1995 की अवधि के मध्य लगभग 200 मिलियन हेक्टेयर वन क्षेत्र में कमी आई है। विकसित देशों में वृक्षारोपण का विस्तार होने के बावजूद भी प्रतिवर्ष औसतन 12 मिलियन हेक्टेयर वनों का लोप हो रहा है। ब्राजील के अमेजन क्षेत्र में 1988 से 1996 की अवधि में प्रतिवर्ष औसतन लगभग 20000 वर्ग किमी. की दर से वनों का विनाश हुआ था।

भारत में विश्व औसत से बहुत कम वनाच्छादित क्षेत्र है। 1952 तथा 1988 की राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार कम से कम 33 प्रतिशत भू भाग पर वन होने अनिवार्य है, पर्वतीय क्षेत्रों में वनो का प्रतिशत 65, मैदानी भागों में 20 से 25 प्रतिशत क्षेत्र पर वन होने की अपेक्षा की गई है। वर्तमान में देश के मात्र 11.88 प्रतिशत भू–भाग पर ही सघन वन है, जो राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार 19 प्रतिशत होने चाहिये। देश में वन विनाश की गति निरंतर बढती जा रही है, लेकिन छत्तीसगढ़ राज्य मे सघन वन क्षेत्र में वृद्वि होती जा रही है।

चित्र–15.2 : उष्ण कटिबन्धीय वनों का लोप होना

15.7.1 वन विनाश के कारण

स्थानीय, प्रादेशिक तथा विश्व स्तर पर वन विनाश के प्रमुख कारण निम्नलिखित है :–

1. कृषि भूमि का विस्तार
2. निर्माण कार्यों हेतु वनोन्मूलन
3. काष्ठ, ईंधन एंव अन्य उपयोग हेतु वनोन्मूलन
4. खनन हेतु वन विनाश
5. वनों में आग लगना
6. कीड़ों–दीमकों तथा बीमारियों का प्रकोप
7. वनों का चरागाहों में परिवर्तन
8. अतिचारण
9. स्थानान्तरणशील कृषि
10. अन्य कारक

1. **कृषि भूमि का विस्तार :** जैसे–जैसे जनसंख्या मं तीव्र गति से वृद्वि होती जाती है, खाद्यान्न की मांग को पूरा करने के लिए वनों को साफ किया जाता है। उष्ण व शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में घास के मैदानों व भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में वनों को साफ करके कृषि की जा रही है।

   इसी प्रकार उष्ण कटिबंधीय सदाबहार वन व मानसूनी वन भी कृषि भूमि में बदल गये हैं । एक अनुमान के अनुसार भारत में कृषि कार्य हेतु 1951–52 एवं 1987–88 के मध्य 29.7 लाख हेक्टेयर भूमि में वन विनाश हुआ है।

2. **निर्माण कार्यों हेतु वनोन्मूलन :** 1860 के दशक में औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त वन आधारित उद्योगों का तीव्र गति से विकास हुआ है। जनसंख्या वृद्वि,नगरो का फैलाव, आवासीय भूमि की आवश्यकता में वृद्वि, उद्योगों, रेल–लाइनों, सड़कों का निर्माण आदि निर्माण कार्यो के लिए वन का विनाश किया गया हैं। बांध आर्थिक विकास में योग प्रदान करते हैं, किन्तु इसके कारण आसपास का क्षेत्र जलमग्र रहता है, भूकम्पन का भय बढ़ता है, और वहाँ वनोन्मूलन होता है।

3. **काष्ठ, ईधन एंव अन्य उपयोग हेतु वनोन्मूलन :** वनों से प्राप्त लकड़ी का उपयोग करना मानव की प्रवृत्ति रही है। इसी प्रकार ईधन के लिए लकड़ी का उपयोग किया जाता है।

भवन निर्माण, फर्नीचर, जहाज, रेल के डिब्बे रेल लाइनों के स्लीपर, कागज, कत्था, रेजिन, लाख, पेन्ट, वार्निश, दियासलाई, रबड़ आदि के लिए वनों का विनाश किया जाता है।

4. **खनन हेतु वन विनाश :** खनिजों के खनन हेतु वनों का विनाश किया जाता है। भारत में पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश तथा उत्तराखण्ड में खनन के लिए वनों का विनाश किया जाता है। इसी प्रकार स्थानीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर भी इसका प्रभाव वन विनाश के रूप में पड़ता है। दूनघाटी में चूना पत्थर के खनन द्वारा 390000 हैक्टेयरर क्षेत्र प्रतिवर्ष प्रभावित हो रहा है। राजस्थान के अरावली पर्वतीय क्षेत्रों में संगमरमर तथा ताम्बा एंव अन्य खनिजों के खनन के लिए वनों का विनाश किया जा रहा है। विश्व स्तर पर वन विनाश हुआ है। किन्तु खनिजों से होने वाले लाभ अधिक होने से यह विनाश अवश्यंभावी हो जाता है।
5. **वनों में आग लगना :** वनों में प्राकृतिक या मानवजनित कारणों से लगने वाली आग से अत्यधिक विनाश होता है। प्राकृतिक कारणों में वायुमण्डलीय बिजली जबकि मानवीय कारणों में सोद्देश्य वनों का जलना है। कृषि एंव चारागाह विकास हेतु भूमि को साफ करने के लिए भी वनों को जलाया जाता है। कई बार मनुष्य की गलती से जलती सिगरेट एंव बीड़ी, चिंगारी आदि फेंकने अथवा अन्य किसी प्रकार की असावधानी के कारण भी वनो में आग लग जाती है। जिसके कारण मिट्टी में विद्यमान सभी प्रकार के जैव पदार्थ जल जाते है। सन् 1997 में इण्डोनेशिया व मलेशिया के सघन वनों में लगी भंयकर आग को कई सप्ताह तक काबू में नही किया जा सका था एवं हजारों वर्ग किमी. वन क्षेत्र नष्ट हो गया था।
6. **कीड़ों–दीमकों तथा बीमारियो का प्रकोप :** वनों में असंख्य कीड़े तथा दीमक ऐसे होते हैं, जो वृक्षों को बहुत नुकसान पहुँचाते हैं। कई बार वृक्षों को असमय बीमारियां लग जाती है । जिसके कारण भी वनों का विनाश हो जाता है।
7. **वनों का चरागाहों में परिवर्तन :** बढ़ती हुई जनंसख्या व घटते चारागाहों की स्थिति में रूपान्तरित कर लिया जाता है। जिसके कारण वनों का विनाश होता हैं।
8. **अतिचारण :** सामान्य घनत्व वाले वनों में अतिपशुचारण के कारण वनों का हास होता है । पशुओं की चराई के अतिरिक्त उनके खुरों से नव अंकुरित पादप नष्ट हो जाते है, जिसके कारण नये वृक्ष पनप नहीं पाते है।
9. **स्थानान्तरणशील कृषि :** इस प्रकार की कृषि दक्षिणी एंव दक्षिणी पूर्वी एशिया के पहाड़ी क्षेत्रों में की जाती है। वहाँ वनों को जलाकर उस भूमि को साफ किया जाता है, और वहाँ कृषि की जाती हैं, जब इस भूमि की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है तब उस भूमि पर कृषि नही की जाती बल्कि अन्य स्थान पर जाकर वनों को जलाकर पुन : कृषि की जाती है। अत: इसे स्थानान्तरणशील कृषि कहते हैं। इस कृषि के कारण वनों का विनाश अत्यधिक मात्रा में हुआ है।
10. **अन्य कारक :** अन्य कारकों के अन्तर्गत बाढ़, भूस्खलन, सूखा, ज्वालामुखी, तूफान आदि प्राकृतिक प्रकोपों को सम्मिलित किया जाता है। भूमण्डलीय तापन के कारण तटवर्ती भागों में उगने वाली मैंग्रोव वनस्पति पर संकट उत्पन्न हुआ है। खेती करने के परम्परागत

औजारों, सामग्री आदि के निर्माण द्वारा भी वन विनाश हुआ है। सरकारी नीतियों की उपेक्षा और जन साधारण में वन संरक्षण चेतना के अभाव की महत्ती भूमिका है।

15.7.1 वन विनाश के प्रभाव

वन विनाश का प्रभाव स्थानिय, प्रादेशिक एवं विश्व स्तर पर उत्पन्न हो गया है। वनो के विनाश के कारण पारिस्थितिक असंतुलन उत्पन्न हो गया है। वन विनाश के प्रमुख प्रभाव निम्नलिखित है :–

1. भूमण्डलीय तापन में वृद्धि
2. भू–जैवरासायनिक चक्र में बाधा
3. मृदा अपरदन में वृद्धि
4. बाढ़ों की पुनरावृत्ति
5. मरूस्थल विस्तार
6. जैव–विविधता में कमी
7. जल संसाधनों की मात्रा पर प्रभाव
8. ऑक्सीजन में कमी
9. आदिवासियों के जन–जीवन में संकट

15.7.2 वन संरक्षण

वन अमूल्य सम्पदा है। अत: वनों के विनाश को रोकने के लिए वनों का संरक्षण अति आवश्यक है, इसके लिए हमें निम्न उपाय अपनाने चाहिए –

1. वनारोपण द्वारा वनों का विस्तार
2. वनाग्नि से सुरक्षा
3. वनों को काटकर कृषि क्षेत्रों के विस्तार पर रोक
4. ईंधन के वैकल्पिक स्रोत
5. वनों का हानिकारक जीवों/कीटों से रक्षण
6. बहु उद्देशीय वृक्ष लगाये जायें
7. भू उपयोग में परिवर्तन पर रोक
8. निर्माण कार्यो हेतु वनोन्मूलन पर रोक
9. वन क्षेत्रों में खनन पर रोक
10. राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार वन विकास
11. लोगों में जागरूकता
12. सरकारी नीतियों व नियमों का कठोरतापूर्वक पालन
13. वैज्ञानिक व विवेकपूर्ण कटाई

बोध प्रश्न–5

1. वनोन्मूलन किसे कहते है ?

.....

.....

2. विकसित देशों में प्रतिवर्ष औसतन कितने वनों का लोप हो रहा है ?

.....

.....

3. 1988 की राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार कितने प्रतिशत भू–भाग पर वन होने अनिवार्य है ?

.....

.....

4. सन 1997 में किन देशों के सघन वनों में आग लगी थी ?

.....

.....

5. वनों को जलाकर की जाने वाली कृषि को क्या कहते है ?

.....

.....

6. वन सरंक्षण के कोई दो उपाय लिखिए।

.....

.....

15.8 सारांश (Summary)

मरूस्थलीकरण प्राकृतिक व मानवीय कारणों द्वारा होता है। मरूस्थलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो अल्प वर्षा, शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में चलती रहती है। विश्व में मरूस्थलीकरण के कारण हजारों हैक्टेयर भूमि प्रतिवर्ष मरूस्थल में बदल रही है। मरूस्थलीकरण पर्यावरण संकट का एक पक्ष हैं। इसका निरंतर विस्तार एक विकट समस्या है, इस समस्या पर रोक के लिए अनुसंधान के साथ–साथ सार्थक प्रयत्न भी करने चाहिए।

वन एक अमूल्य सम्पदा हैं। यह पारिस्थितिक संतुलन बनाये रखने के लिए आवश्यक है। वनों का विनाश होना एक चिंतनशील विषय है। वनों को इसकी महत्ता के कारण हरा सोना कहा जाता है । विश्व स्तर पर 76 देश ऐसे हैं जहाँ से आदिवनों का लोप हो चुका है। अत: वनों का सरंक्षण करना अतिआवश्यक हैं।

15.9 शब्दावली (Glossary)

1. **मरूस्थलीकरण :** उपजाऊ एंव अमरूस्थली भूमि का मरूस्थली भूमि में परिवर्तित हो जाना।
2. **अन्त:** स्तूपीय मैदान : दो बालुकास्तूपों के मध्य का मैदान।
3. **संक्रमण क्षेत्र :** रेतीले मरूस्थल के निकटवर्ती क्षेत्रों में कंकड़ों का विस्तार एंव नग्न पथरीली भूमि का फैलाव होना संक्रमण क्षेत्र होता है।

4. **मृदा का पर्यावरण :** मृदावैज्ञानिकों द्वारा मृदा के जैविक पदार्थ, हूमस का स्तर एंव नत्रजन का परीक्षण करना।
5. **जैव सूचक :** इसके अन्तर्गत् वनस्पति सघनता प्रदेश, धरातलोपीर जीवन समुदाय, मौलिक प्रजातियां व कृन्तक जनसंख्या शामिल की जाती है।
6. **कृन्तक जीव :** कुतरकर खाने वाले जीव।
7. **महाद्वीपीय मरूस्थल :** समुद्रों से दूर किन्तु महाद्वीपों के मध्य में पाये जाने वाले मरुस्थल।
8. **वनाग्नि :** वनों में आग लगना।
9. **वनोन्मूलन/वनविनाश :** वनों के क्षेत्र में कमी आना।
10. **जैव विविधता :** जैव मण्डल में अनेक प्रकार के जीव समुदायों का आवास है, यहाँ अति सूक्ष्म से लेकर विशालतम प्राणी है। इन विविध जीव–स्वरूपों का जीव मण्डल में अस्तितव बना हुआ है। इसे जैव विविधता कहते हैं।

15.10 संदर्भ ग्रंथ (Reference Books)

1. रतन जोशी : **जैव भूगोल एंव जैव विविधता,** राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2007
2. हीर मोहन सक्सेना : **पर्यावरण एंव पारिस्थितिकी भूगोल,** राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2000
3. कलवार सुगन चन्द : **पर्यावरण एवं पदती भूमि,** पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 1996
4. एम. एल. शर्मा एंव प्रकाश नारायण नाटाणी : **पर्यावरण अध्ययन,** माया प्रकाशन मन्दिर, उदयसिंह मार्केट, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर, 2005
5. आर. के. गुर्जर एंव बी.सी. जाट : **पर्यावरण अध्ययन,** पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2007
6. राम आसरे चौरसिया : **पर्यावरण भूगोल,** किताब महल, इलाहाबाद, 1988
7. Kalwar S.C. : **Wastelands and Planning for Development,** Concept Publishing Company, New Delhi, 2008.
8. Kalwar S.C. : **Environmental Issues and Sustainable Development,** pointer Publishers, Jaipur, 2003.
9. कलवार सुगन चन्द : **पर्यावरण संरक्षण,** पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2000

15.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. मृत भूखंड
2. पारिस्थितिविद् एंव पर्यावरणवेत्ता
3. केंद्रीय शुष्क क्षेत्र शोध संस्थान
4. संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट

बोध प्रश्न–2

1. मात्रात्मक विश्लेषण
2. भौतिक सूचक
3. P = E+R P= वृष्टि E= वाष्पीकरण R= प्रवाह
4. धरातलीय प्रवाह सघनता, अधोभौमिक जलस्तर, स्थिर जलराशियाँ व अधोभोमिक जल का खारापन।
5. कुतरकर खाने वाले जीवों को कृन्तक जीव कहते है।
6. मानवजनित सूचक।

बोध प्रश्न–3

1. लगभग 20 प्रतिशत
2. 20 डिग्री से 30 डिग्री उत्तरी अक्षांशों के मध्य
3. उष्ण कटिबंधीय मरूस्थल
4. चार कारक
5. लगभग 12 प्रतिशत
6. जनसंख्या वृद्धि व निरंतर सूखा, अकाल की घटना

बोध प्रश्न–4

1. कृषि क्षेत्र का हास, पेयजल स्रोतो का सूखना।
2. चातुर्यपूर्ण भूमि प्रबंध, नियंत्रित पशुचारण, जलप्रबंध।

बोध प्रश्न–5

1. वनों के क्षेत्र में कमी आना तथा अननियमित कटाई को ही वनोबूलन कहते है।
2. औसतन 12 मिलियन हैक्टेयर
3. 33 प्रतिशत
4. इण्डोनेशिया व मलेशिया
5. स्थानांतरणशील कृषि
6. ईंधन के वैकल्पिक स्रोत, वन क्षेत्रों में खनन पर रोक।

15.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मरूस्थलीकरण के सूचकों का वर्णन कीजिए।
2. थार के मरूस्थल के क्षेत्र में मरूस्थलीकरण के प्रमुख कारण बताईये।
3. वनोबूलन के कारणों का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
4. वन विनाश को रोकने के प्रमुख उपाय लिखिए।

इकाई 16: पर्यावरण की भू–राजनीति एवं संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका (Geo–Politics of Environment and Role of U.N.O.)

इकाई की रूपरेखा

16.1 उद्देश्य
16.2 प्रस्तावना
16.3 भू राजनीति का अर्थ एवं अवधारणा विकास
16.4 पर्यावरण की भू राजनीति
16.5 संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका
16.5.1 पर्यावरण सुरक्षा दिवस
16.5.2 संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यावरणीय कार्यक्रम
16.6 सारांश
16.7 शब्दावली
16.8 संदर्भ ग्रन्थ
16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
16.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.1 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन से आप समझ सकेंगे :

- भू–राजनीति का तात्पर्य,
- भू–राजनीति की अवधारणा का विकास,
- पर्यावरण की भू–राजनीति के तत्व,
- संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यावरण से सम्बन्धित कार्यक्रम।

16.2 प्रस्तावना (Introduction)

वर्तमान में पर्यावरण का मुद्दा अंतर्राष्ट्रीय चिन्ता का विषय बना हुआ है। पर्यावरण एक सार्वभौमिक सम्पदा है जिसे किसी राजनीतिक सीमा में बांधा जाना संभव नहीं है। विश्व के सभी देश राजनीतिक दृष्टि से विभाजित है लेकिन पर्यावरण की दृष्टि से ऐसा विभाजन संभव नहीं है। तापमान, वायुदाब, वायु प्रवाह, ज्वार भाटा एवं मेघों के विचरण को किसी राजनीतिक सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता है। पर्यावरण परिवर्तन आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विचारणीय विषय बन चुका है। पर्यावरण के अवक्रमण से उत्पन्न पारिस्थितिकी परिवर्तन समग्र विश्व के लिए चिन्तनीय है।

16.3 भू–राजनीति – अर्थ एवं अवधारणा विकास (Geopolitics - Meaning and Conceptual Development)

भू–राजनीति से तात्पर्य, राज्य के आचरण पर भौगोलिक कारकों के विश्लेषण से है। राष्ट्र के संदर्भ में भू–राजनीति का महत्व किसी भी अन्य तत्व से कम नहीं है। भू–राजनीति का आरंभिक रूप राष्ट्रवाद को बढ़ावा देते हुए किसी भी राष्ट्र को अंतर्राष्ट्रीय शक्ति बनाये जाना रहा है। भू राजनीति शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम रूडोल्फ के. जेलेन (Rudolf K. Jellen) द्वारा किया गया। इस स्वीडिश भूगोलवेत्ता ने शक्ति को राज्य का आवश्यक तत्व बताया।

भू–राजनीति को जर्मन विद्वानों ने राज्य की भौगोलिक आत्मा बताया है। जर्मनी के ही मोंटेस्क्यू (Montesque) तथा हीगल आदि ने पर्यावरणीय तत्वों धरातल, मिट्टी एवं जलवायु का राज्य पर प्रभाव स्पष्ट किया है। उन्नीसवीं सदी में भू–राजनीति के क्षेत्र में फ्रेडीरक रैटजेल (Freidrich Ratezel) व कार्ल हाउशोफर (Karl Haushofer) ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। रैटजेल की पुस्तक पोलिटिक ज्यॉग्राफी (Politische Geographie) 1897 में प्रकाशित हुई। कार्ल हाउशोफर ने भू–राजनीति को विस्तृत रूप से अपनी पुस्तक "Zeitschifttur geo–politick" में प्रस्तुत किया । यह पुस्तक 1924 में प्रकाशित हुई। इन्होंने बताया कि राज्य को शक्तिशाली बने रहने के लिए अपने क्षेत्र का विस्तार करते रहना चाहिये।

विश्व सामरिकता के दृष्टि कोण से मैकिण्डर, ए.टी. महान तथा स्पाइकमैन द्वारा भू–राजनीति पर प्रस्तुत विचार काफी महत्वपूर्ण हैं।

मैकिण्डर ने भू–राजनीतिक विचारधारा को नया मोड़ दिया। उनके लेख "The Geographical Pivot of History" में उन्होंने बताया कि मध्य एशिया व साइबेरिया की आंतरिक जलप्रवाह प्रणाली मिलकर हृदय स्थल का निर्माण करते हैं। मैकिण्डर ने सन 1918 में Demographic Ideals and Reality में लिखा–

“Who rules the Europe, commands the heartland, who rules the heartland commands the world–island, who rules the world island commands the world.”

ए.टी. महान द्वारा समुद्री शक्ति को प्रधानता दी गई। निकोलस स्पाइकमैन द्वारा मैकिण्डर के पर्यावरण की भू–राजनीति आन्तरिक क्षेत्र को रिमलैण्ड नाम दिया। उन्होंने बताया कि “Who controls the Rimland, rules euroasia and who rules euraisa control the destinies of the world.”

इस प्रकार भू–राजनीति की बुनियादी अवधारणाओं में सामरिक स्थिति (राज्य की स्थिति, आकार व स्वरूप) महत्वपूर्ण तत्व रहा है। भू–राजनीतिक दृष्टि से वर्तमान में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन तथा जनसंख्या भी महत्त्वपूर्ण है। खाद्य सुरक्षा, पर्यावरण सुरक्षा एवं ऊर्जा सुरक्षा भू–राजनीति के अध्ययन के महत्त्वपूर्ण विषय बन गये हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ–साथ पर्यावरण की सुरक्षा भी अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है।

16.4 पर्यावरण की भू–राजनीति (Geopolitics of Environment)

वर्तमान में स्थानीय, प्रादेशिक तथा वैश्विक स्तर पर पर्यावरण चिंतन का विषय है। पर्यावरण की भू–राजनीति विश्व में अत्यधिक जटिल स्वरूप लेती जा रही है। पर्यावरण के विषय में अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में नए किस्म के संकट उपस्थित हुए है उन सभी की जड़ें भू–राजनीति में ही है। इसका प्रमुख उदाहरण नदियों का जल बंटवारा है जिसको लेकर स्थानीय, प्रादेशिक तथा वैश्विक स्तर पर पर्यावरणीय भू–राजनीति की जा रही है। जल संसाधनों के समतापूर्ण उपयोग की चुनौती के साथ–साथ ही विभिन्न बांधों उच्च जलाशयों के निर्माण से उत्पन्न पर्यावरण संकट सभी स्तरों पर चिंता का विषय है। सामरिक दृष्टि से यह चेतावनी भू–राजनीति का महत्वपूर्ण सबब है कि शत्रु को पराजित करना है तो उसके पर्यावरण को नुकसान पहुंचाओ। पर्यावरण विषयक भू–राजनीति को वर्तमान में अनदेखा नहीं किया जा सकता हैं। मानव निर्मित राजनीतिक सीमाओं में जैव– विविधता, नदीं प्रवाह, सागर संसाधनों को कैसे बांधा जा सकता है। हजारों वर्षो से यह प्रामाणिक है कि मौसम परिवर्तन के लिए जिन हवाओं का प्रवाह जिम्मेदार है वह प्रभावित होने वाले भू– भाग से हजारों किलोमीटर दूर उत्पन्न होती है।

पर्यावरण की भू–राजनीति विद्रूप लेती जा रही है। इससे विकसित, विकासशील व अविकसित देशों के संदर्भ में समझा जा सकता है।

पर्यावरण विषयक चेतना विश्व स्तर पर सर्वप्रथम आणविक अस्त्रों के परीक्षणों के संदर्भ में जागृत हुई। हिरोशिमा व नागासाकी में रेडियोधर्मी विकिरण से उत्पन्न प्रदूषण ने मानव को झकझोर दिया। आणविक हथियारों का प्रयोग ही नहीं बल्कि इनका परीक्षण भी स्थल व वायुमण्डल को प्रदूषित कर रहा है। अत: इनका परीक्षण भूमिगत या सागर तल में किया जाने लगा तो भी अंतत : हानिकारक ही है। पर्यावरण प्रदूषण के अन्य मुख्य चिन्तनीय मुद्दे है – रासायनिक कीटनाशकों एवं उर्वरकों का उपयोग, अम्लवर्षा, ओजोन परत में छेद, बढ़ता तापमान, पिघलते व घटते हिमनद, घटते प्राकृतिक संसाधन आदि।

ओजोन परत में छेद तथा अम्लवर्षा के पर्यावरण विषयक मुद्दे उपभोक्तावादी पश्चिमी संस्कृति की देन है। ऐसे राष्ट्रों को प्रदूषण की विशेष चिन्ता नहीं थी क्योंकि वहाँ उन्नत तकनीकी कौशल के साथ ही उत्तम स्वास्थ्य की आधुनिक सुविधायें विकसित थी।

वर्तमान में पर्यावरण विकासशील ही नहीं विकसित देशों के लिए भी चिन्ता का विषय है। सन् 1960 के दशक तक पर्यावरण विषयक मुद्दे सार्वभौमिक नहीं थे। वास्तव में 1970 के दशक में पर्यावरण विषयक चिन्तायें मानव जाति के समक्ष शोचनीय होने लगी। रैशेल वेल्व द्वारा लिखित 'द साइलैण्ट स्प्रिंग' (The Silent Spring) पुस्तक में डी.डी.टी. जैसे रसायन कीटनाशक के अंधाधुंध प्रयोग से होने वाले खतरे की ओर ध्यानाकर्षित किया गया था। अमेरिकी भूगोल शास्त्री हैराल्ड तथा स्प्राऊटने अपनी पुस्तक 'स्पेसशिप अर्थ' (Spaceship Earth) में बताया कि मानव जाति के अस्तित्व को प्रकृति के कोप द्वारा नष्ट किये जाने से बचाने का एक ही रास्ता है, पर्यावरण को सार्वभौमिक मुद्दा समझ सहकारी ढंग से इसके संरक्षण के लिए प्रयास करना।

सन 1970 के बाद से ही पर्यावरण से सम्बन्धित चिन्तनीय मुद्दे उभरते रहे हैं। परमाणु हथियारों के प्रयोग व परीक्षण से शुरू हुई पर्यावरण भू–राजनीति अब जलवायु परिवर्तन जैसे विषय पर पहुँच चुकी है। पर्यावरण समग्र विश्व एवं राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के लिए जटिल चुनौतियाँ प्रस्तुत कर रहा है। ईरान–ईराक के तेल कुओं का प्रश्न, चीन व वियतनाम के बीच स्पार्टले द्वीप समूह की रस्साकशी, हिन्द महासागरीय सैनिक अड्डे, नदी जल विवाद, खनन, वन विनाश, जैव–विविधता हास आदि ऐसे पर्यावरणीय प्रश्न हैं जिनका मानव जाति के हित में भू–राजनीतिक हल निकालने पर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा समेकित विकास की भावना बलवती होना आवश्यक है। स्थानीय प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों द्वारा चिन्तनीय पर्यावरण कार्यक्रम चलाये जा रहे है। इस दिशा में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा भी अनेक कार्यक्रम चलाये जा रहे है।

आर्कटिक से पिघलती बर्फ से नया भू–राजनैतिक संकट सामने आ रहा है। संसाधनों की राजनीति आरम्भ होगी व फिर से शीतयुद्ध की आहट हो सकती है। इस क्षेत्र के खनिजों पर रूस, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, डेनमार्क व नार्वे आदि अपना दावा कर रहे हैं। विडम्बना यह है कि जीवाश्मीय ईंधन का दहन यहाँ की बर्फ को पिघला रहा है। संसाधनों का दोहन ही संसाधनों का भू –राजनीतिक संकट उत्पन्न करेगा।

16.5 संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका (Role of United Nations Organisation)

अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के लिए विभिन्न राष्ट्रों के मध्य आपसी सहयोग के लिए 24 अक्टूबर 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई। आज संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा पर्यावरण के क्षेत्र में महती भूमिका निभाई जा रही है। इसके द्वारा विश्व स्तर पर अनेक ऐसे कार्यक्रम, सम्मेलन किये जा रहे है, जिससे पर्यावरणीय समस्याओं के निदान में मदद मिल सकती है। इसके द्वारा चलाये जाने वाले कार्यक्रमों से विश्वस्तरीय विचार–विमर्श, पर्यावरणीय चेतना, पारस्परिक सहयोग तथा अधुनातम शोध, तकनीकी मदद को बढ़ावा मिला है। संयुक्त राष्ट्र संघ का पर्यावरणीय कार्यक्रम मुख्यालय नैरोबी (कीनिया) में है।

16.5.1 पर्यावरण सुरक्षा दिवस (Environment Protection Day)

राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण अवबोध व सुरक्षा हेतु विभिन्न दिवसों पर कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। मुख्य दिवस निम्नलिखित हैं –

विश्व वेटलेण्ड्स दिवस	:	फरवरी, 2
विश्व जल दिवस	:	मार्च, 22
विश्व मौसम दिवस	:	मार्च, 23
पृथ्वी दिवस	:	अप्रैल, 22
जैव विविधता अंतर्राष्ट्रीय दिवस	:	मई, 22
विश्व तम्बाकू निषेध दिवस	:	मई, 31

विश्व पर्यावरण दिवस	:	जून, 5
विश्व मरूप्रसार व सूखा दिवस	:	जून, 17
राष्ट्रीय भूमि दिवस	:	जून, 25
विश्व जनसंख्या दिवस	:	जुलाई, 11
ओजोन परत सुरक्षा अंर्तराष्ट्रीय दिवस	:	सितम्बर, 16
विश्व पर्यटक दिवस	:	सितम्बर, 27
विश्व पशु दिवस	:	अक्टूबर, 4
विश्व खाद्य दिवस	:	अक्टूबर, 16

16.5.2 संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यावरणीय कार्यक्रम (Environmental Programmes of UNO)

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा पर्यावरण विषयक पहल सर्वप्रथम 1972 में स्वीडन के शहर स्टॉकहोम में आयोजित सम्मेलन से आरम्भ हुई। विश्व के 119 देशों द्वारा 5 जून, 1972 को स्टॉकहोम में पहली बार पर्यावरण को प्राथमिकता देते हुए एक ही पृथ्वी के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया। स्टॉकहोम में भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व. श्रीमति इंदिरा गांधी ही बडी राजनैतिक हस्ती थी, अन्य बड़ी ताकतों ने तो अपने विदेश मंत्री ही भेजकर इति श्री कर ली थी। स्टॉकहोम में पर्यावरण संरक्षण व विकास के संदर्भ एक विशिष्ट कार्यक्रम बनाया गया जिसे स्टॉकहोम घोषणापत्र, 1972 नाम दिया गया। इसमें पर्यावरण संरक्षण हेतु 26 सिद्धान्त स्वीकृत किये गये। पर्यावरण व विकास पर केन्द्रित इस अंर्तराष्ट्रीय सम्मेलन ने इस मुद्दे को अंर्तराष्ट्रीय व्यवस्था की प्राथमिकताओं में तेजी से ऊपर उठाया।

स्टॉकहोम सम्मेलन के बाद लगभग दो दशक तक इस दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई। इसका कारण यह रहा कि विश्व के विभिन्न क्षेत्रों के अलग–अलग राष्ट्रों के पर्यावरणीय सम्बन्धी सरोकार अलग–अलग हैं। प्रादेशिक समस्याओं यथा – वर्षा वनों का विनाश, जैव विविधता हास, मरूस्थलीकरण, प्राकृतिक संसाधन हास आदि को अलग–अलग हिस्सों में बांटकर ही पर्यावरण विषयक भू– राजनीतिक परामर्श चलता रहा।

अफ्रीका के नैरोबी में सन 1977 में मरूस्थलीकरण पर गोष्ठी का आयोजन हुआ। कनाड़ा के माँट्रियल में वन कटाव तथा इमारती लकडी विषयक समझौता हुआ। रामसर में वेटलेण्ड्स (wetlands) के संरक्षण हेतु आयोजन हुआ। स्विट्जरलैण्ड के वेसन में जहरीले जोखिम भरे प्रदूषक पदार्थों के निस्तारण के बारे में संधि सम्पन्न हुई। वेडिर आयोग की रिपोर्ट "North - South : A Programme for Survival" का प्रकाशन हुआ। सन् 1983 में इसे समाप्त कर WECD (World Commission on Environment and Development) की स्थापना ब्रूटलैण्ड की अध्यक्षता में की गई। ब्रूटलैण्ड नार्वे की तत्कालीन प्रधानमंत्री थी। सन् 1987 की रिपोर्ट "Our common Future" इसी का महत्वपूर्ण पर्यावरण संरक्षण का दस्तावेज है। यूनेस्को द्वारा मनुष्य तथा जैवमण्डल कार्यक्रम (Man and Biosphere Programme, MAB) चला कर मानव–पर्यावरण सम्बन्धों को नई दिशा दी गई।

16.5.2.1 रियो सम्मेलन (Rio Summit)

ब्राजील के रिओ–डी–जेनेरो (Rio–De–Jenero) नगर में 14 जून, 1992 में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन आयोजित किया गया, इसे ही रियो सम्मेलन तथा पृथ्वी सम्मेलन (Earth Summit) कहा जाता है। स्टॉकहोम के बाद यह पहला वृहद् प्रयास था जिसमें विश्व के 178 देशों ने वैचारिक आदान–प्रदान किया। इसमें पर्यावरण संरक्षण एवं सतत विकास हेतु एजेण्डा– 21 (Agenda–21) तैयार किया जिसको "The United Nations Programme of Action from Rio" कहा गया।

एजेण्डा–21 एक विस्तृत घोषणा आलेख है। यह योजना चार खण्डों में समाहित है। इसके चार खण्डों में विभक्त महत्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार हैं–

खण्ड–I : सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष (Social and Economic Dimension): गरीबी उन्मूलन,जनसंख्या एवं सतत विकास, उपभोक्ता का परिवर्तन प्रतिरूप मानव स्वास्थ्य, मानव अधिकार तथा पर्यावरण एवं विकास।

खण्ड–II : विकास हेतु संसाधन प्रबंधन एवं संरक्षण (Conservation and Management of Resource for Development) : वायुमण्डल सुरक्षा, भूमि संसाधन नियोजन, सूखा व मरूस्थल नियंत्रण, सतत पर्वतीय विकास, ग्रामीण व कृषि विकास, जैव विविधता संरक्षण, जैव प्रौद्योगिकी, सागरीय संरक्षण, स्वच्छ जल आपूर्ति व जल संरक्षण, रसायन व कीटनाशक नियंत्रण, विषैले अपशिष्ट प्रबंधन, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन, रेडियोधर्मी अपशिष्ट प्रबंधन

खण्ड–III : प्रमुख समूहों की भूमिका को मजबूत करना (Strengthening the Role of Major Groups) : महिलाओं, बच्चों व युवाओं की विकास योजना, स्थानीय जन विकास गैर सरकारी संगठनों का दायित्व, स्थानीय प्रशासन, व्यापार एवं उद्योग, मजदूरों व उनके संघों, वैज्ञानिकों व किसानों का योगदान

खण्ड–IV : क्रियान्वयन के साधन (Means of implementation) : इसके अन्तर्गत विभिन्न योजनाओं हेतु वित्तीय एवं अन्य संसाधनों की व्यवस्था की रूपरेखा के साथ तकनीकी एवं वैज्ञानिक सहायता, तकनीकी हस्तांतरण, प्रशिक्षण, जन सहभागिता, अंर्तराष्ट्रीय सहयोग एवं कानूनी पक्ष को प्रस्तुत किया गया है।

धरती को मरूस्थलीकरण से बचाने हेतु जून, 1994 में एक मसौदा तैयार किया गया। यह विशेषत : अफ्रीका महादीप के संदर्भ में था। सन् 1994 में बारबडोस में एक अंर्तराष्ट्रीय सम्मेलन छोटे राज्यों की पर्यावरण समस्याओं के लिए हुआ।

16.5.2.2 बायोसेफ्टी प्रोटोकोल–2000 (Biosafety Protocol–2000)

कनाडा के मांट्रियल में 24 जनवरी से 28 जनवरी, 2000 तक बायोसेफ्टी प्रोटोकोल सम्पन्न हुआ। इसमें अंर्तराष्ट्रीय व्यापार के संदर्भ में प्राकृतिक जैव–विविधता संरक्षण पर ध्यान दिया गया तथा अंर्तराष्ट्रीय व्यापार से उत्पन्न पर्यावरण समस्याओं के निदान के लिए सभी राष्ट्र सहमत हुए। "The Biosafety Protocol is not a trade agreement. It aims to

protect people and the environment from a technology whose risks and impacts are poorly understood. Subordinating the protocol to current".

“Free trade procedure will not only result in a weak agreement, but could seriously undermine food security and have a potentially devasting effect on biodiversity”.

16.5.2.3 पृथ्वी सम्मेलन–2002 (Earth Summit–2002)

पृथ्वी सम्मेलन का आयोजन 26 अगस्त से 4 सितम्बर, 2002 तक दक्षिणी अफ्रीका के जोहान्सबर्ग में किया गया। इसमें रियो सम्मेलन की समीक्षा की गई। इसमें विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के मध्य तापमान वृद्धि एवं आर्थिक मदद जैसे मुद्दों पर गतिरोध सामने आया। इस सम्मेलन के मुख्य कार्य बिन्दु है– जल एवं स्वच्छता, ऊर्जा, कृषि, जैव विविधता, स्वास्थ्य, गरीबी निवारण, वैश्वीकरण, मात्स्यिकी, व्यापार आदि।

इस सम्मेलन की विडम्बना यह रही कि पर्यावरण का मुद्दा अन्य सार्वभौमिक मुद्दों द्वारा हाशिये पर धकेल दिया गया। जोहान्सबर्ग में विचार–विमर्श पर्यावरण तक सीमित नहीं रहकर विभिन्न राष्ट्रों की घरेलू चर्चाओं या विश्व व्यापार की भू–राजनीति में उलझ गया।

16.5.2.4 क्योटो प्रोटोकोल (Kyoto Protocol)

सन 2004 में पर्यावरण विषयक क्योटो प्रोटोकोल सम्पन्न हुआ। इसमें पर्यावरण की भू–राजनीति स्पष्ट उजागर हुई। संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया। अमेरिका ने तर्क दिया कि चूंकि पर्यावरण का मुद्दा सार्वभौमिक है, प्रदूषण की जिम्मेदारी का लेखा–जोखा तैयार करते समय प्रति व्यक्ति के स्तर पर नहीं बल्कि प्रतिराष्ट्र के आधार पर आंकी जानी चाहिये। इस तर्क का मंतव्य एकदम स्पष्ट है। चीन व भारत दुनिया के दो बड़े देशों के लिए प्रतिराष्ट्र वाला तर्क नुकसान देह ही है। चीन व भारत की तरह कई अन्य विकासशील राष्ट्र तेल, कोयला, गैस के स्वामी हैं तथा यदि इनके ऊर्जा भण्डारों को प्रदूषक घोषित किया जाता है तो उनकी ऊर्जा सुरक्षा व स्वाधीनता ही संकट में होगी।

संयुक्त राष्ट्र संघ विभिन्न सम्मेलनों के साथ ही विभिन्न एजेन्सियों के माध्यम से भी पर्यावरण कार्यक्रम चला रहा है। 1988 में UNEP के अंतर्गत IPCC (Intergovernmental Panel on Climate Change) की स्थापना की गई तथा WMO (World Meterological Organization) द्वारा विश्व तापन की वैज्ञानिक जानकारी के मूल्यांकन हेतु अधिकृत किया गया । विश्व तापन से उत्पन्न जलवायु परिवर्तन पर UNO द्वारा अनेक सम्मेलन आयोजित किये जा रहे है। बाली रोडमेप (इण्डोनेशिया) दिसम्बर, 2007 ऐसा ही प्रयास है।

पर्यावरणीय भू–राजनीति का सबसे दुर्भाग्य विषय यह सामने आ रहा है कि विकसित व विकासशील देशों के सरकारी अंर्तराष्ट्रीय संगठनों और गैर सरकारी अंर्तराष्ट्रीय संगठनों के बीच पर्यावरण के मुद्दे को लेकर भयंकर शत्रुता का भाव उभरा है। पर्यावरण का मुद्दा अरबों लोगों के जीवन–मरण से जुड़ा हुआ है। शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों द्वारा विषमता कम करते हुए 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना से कार्य किया जाना चाहिये। इसी पर संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यावरणीय कार्यक्रमों की सफलता निर्भर है।

बोध प्रश्न

1. भू–राजनीति से क्या तात्पर्य है?

   .....

   .....

2. भू–राजनीतिक अवधारणा के बुनियादी विचारकों के नाम लिखिये।

   .....

   .....

3. पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख चिन्तनीय मुद्दे कौन–कौन से है?

   .....

   .....

4. विश्व पर्यावरण दिवस कब मनाया जाता है?

   .....

   .....

5. संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यावरणीय कार्यक्रमों के अंतर्गत किये प्रसिद्ध सम्मेलनों के नाम बताये।

   .....

   .....

16.7 सारांश (Summary)

पर्यावरण का मुद्दा अंर्तराष्ट्रीय चिन्ता का विषय है। पर्यावरण को राजनैतिक सीमा में नहीं बांधा जा सकता है। भू–राजनीति से अर्थ राज्य के आचरण पर भौगोलिक कारकों के विश्लेषण से है। भू –राजनीति शब्द प्रयोग सर्वप्रथम के. जेलेन द्वारा किया गया। इस अवधारणा के विकास में रैटजेल, हाउशोफर, मैकिण्डर, ए.टी. महान तथा स्पाइकमैन द्वारा विशेष योगदान दिया गया। भू–राजनीति की बुनियादी अवधारणा में सामरिक स्थिति महत्वपूर्ण तत्व रहा है।

पर्यावरण की भूराजनीति विश्व में अत्यधिक जटिल स्वरूप लेती जा रही है। पर्यावरण विषय भू–राजनीति के महत्वपूर्ण विषय आणविक हथियारों का परीक्षण व प्रयोग, कीटनाशकों व रसायनों का प्रयोग, वनविनाश, ओजोन परत में छेद, अम्लवर्षा, बढ़ता तापमान पिघलते हिमनद व जलवायु परिवर्तन से सम्बन्धित है। संसाधनों को विनष्ट करना, अधिकार जमाना यथा तेल पर, सैनिक अड्डों का प्रसार, नदी जल बंटवारा, जैव विविधता हास, निस्तारण प्रबंधन आदि पर्यावरणीय भू–राजनीति से ही उत्पन्न विषय है।

पर्यावरण संरक्षण में संयुक्त राष्ट्र संघ की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसके द्वारा इस क्षेत्र में स्टॉकहोम सम्मेलन, ब्रांटलैण्ड आयोग, रियो सम्मेलन, जलवायु परिवर्तन अध्ययन हेतु IPCC, बाली रोडमैप आदि पर्यावरण कार्यक्रम पर्यावरणीय अवबोध, जनजाग्रति तथा संरक्षण में प्रभावी भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं।

16.8 शब्दावली (Glossary)

- **सार्वभौमिक :** जिस पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं हो। सर्वजन हेतु उपलब्धता।
- **भूराजनीति :** राज्य के आचरण पर भौगोलिक कारकों का विश्लेषण किया जाना।
- **हार्टलैण्ड :** मैकिण्डर द्वारा बताया वह क्षेत्र जहाँ से विश्व शक्ति का नियंत्रण किया जा सकता है।
- **रिमलैण्ड :** निकोलस स्पाइकमैन द्वारा सुझाया वह क्षेत्र जहाँ से विश्व पर नियंत्रण संभव।

16.9 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Alexander, L.M. : **World Political Pattern,** John Murray, London, 1966
2. Blij. H.J.de : **Systematic Political Geography,** John Wiley, 1973
3. सक्सेना, एच.एम. : **विश्व का प्रादेशिक भूगोल,** रस्तौगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2006–2007
4. कलवार, सुगन चन्द : **पर्यावरण संरक्षण,** पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 1996
5. सक्सेना, एच.एम. : **राजनीतिक भूगोल,** रस्तौगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2005
6. Dixit, R.D. : **Political Geography,** Tata McGraw Hill, New Delhi, 1982
7. Jackson, W.A.D. : **Politics and Geographic Relationships,** Prentice Hall, 1965
8. Sukhwal, BL. :**Modern Political Geography of India,** Sterling New Delhi, 1965
9. Pounds, N.J.G. : **Political Geography,** McGraw Hill, 1963
10. Kalwar S.C. : **Environmental issues and Sustainable Development,** Pointer Publishers, Jaipur, 2003
11. Kalwar S.C. : **Wastelands and Planning for Development,** Concept Publishing, New Delhi, 2008

16.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. भू–राजनीति से तात्पर्य राज्य के आचरण पर भौगोलिक कारकों के विश्लेषण से है।
2. रैटजेल, कार्ल हाउशोफर, मैकिण्डर, ए.टी. महान एवं स्पाइकमैन।
3. आणविक अस्त्र प्रयोग व परीक्षण, रसायनों व कीटनाशकों का प्रयोग, अम्लवर्षा, ओजोन परत में छेद, बढ़ता तापमान आदि।
4. जून, 5
5. स्टॉकहोम सम्मेलन, रियो सम्मेलन, क्योटो प्रोटोकोल, जोहान्सबर्ग सम्मेलन आदि।

16.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भू–राजनीति का अर्थ व अवधारणा विकास को स्पष्ट करिये।

2. पर्यावरण की भू–राजनीति के विभिन्न मुद्दों को स्पष्ट कीजिये।
3. संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यावरणीय कार्यक्रमों की समीक्षा कीजिये।

इकाई 17 :भारत की प्रमुख पर्यावरणीय समस्याएँ : वायु,जल एवं ध्वनि प्रदूषण, ठोस अपशिष्ट निस्तारण, वनोन्मूलन एवं मृदा अवकर्षण निस्तारण, वनोन्मूलन एवं मृदा अवकर्षण (Important Environmental Problems of India : Air, Water and Noise Pollution, Solid Waste Disposal, Deforestation and Soil Degradation)

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 वायु प्रदूषण समस्या

17.3 भारत में घटी दर्दनाक भोपाल गैस त्रासदी

17.4 भारत में जल प्रदूषण समस्या

17.5 नदी जल प्रदूषण

17.6 झील तथा सागरीय जल का प्रदूषण

17.7 भूमिगत जल प्रदूषण

17.8 ध्वनि प्रदूषण

17.9 ठोस अपशिष्ट निस्तारण

17.10 ठोस अपशिष्ट

17.11 ठोस अपशिष्टों के स्रोत

17.12 ठोस अपशिष्टों के प्रभाव और उससे उत्पन्न समस्यायें

17.13 वनोन्मूलन

17.14 वन विनाश से होने वाली हानियाँ

17.15 वन विनाश के प्रमुख कारण

17.16 वन विनाश के प्रभाव

17.17 मृदा अवकर्षण

17.18 मृदा अवकर्षण के प्रमुख कारण

17.19 जल द्वारा अपरदन

17.20 वायु द्वारा अपरदन

17.21 मृदा संरक्षण
17.22 सारांश
17.23 शब्दावली
17.24 संदर्भ ग्रन्थ
17.25 बोध प्रश्नों के उत्तर
17.26 अभ्यार्थ प्रश्न

17.0 उद्देश्य (Objectives)

भारत में वायु प्रदूषण की समस्या से अवगत हो जायेंगे,

- वायु प्रदूषण से होने वाली भारत की भोपाल गैस त्रासदी से मानवीय क्षति को समझ पायेंगे,
- भारत में जल प्रदूषण से होने वाली समस्याओं को समझ सकेंगे,
- नदी, झील, सागर तथा भूमिगत जल प्रदूषण एवं उसकी समस्याओं का क्षेत्रीय अध्ययन कर पायेंगे,
- भारत के महानगरों में ध्वनि प्रदूषण का स्तर जान पायेंगे,
- भारत की मूल समस्या ठोस अपशिष्ट निस्तारण की समस्या एवं उस पर नियंत्रण के उपाय जान पायेंगे,
- वनोन्मूलन क्या है तथा इससे होने वाले विनाश की जानकारी मिल जायेगी,
- मृदा अवकर्षण का तात्पर्य, इसके कारण, समस्या तथा निवारण के उपाय समझ सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना (Introduction)

ऋग्वेद को विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ मानने के आधार पर भारतवासियों को विश्व में सर्वप्रथम ऋतुवेत्ता कहा जा सकता है यजुर्वेद में कहा गया है–

वेदाइमस्य भुवनस्यनाभि,
वेद सूर्यस्म वृहतो जनिनमर्थोवदे
चन्द्र संयतोजा।।

सृष्टि के आरम्भ से ही मानव ने अपने को सितारों की छांव में पाया और यही से उनके प्रकृति के बारे में अनुसंधान की भावना का उदय हुआ।

प्राचीन भारत में प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों से अत्यधिक आवात्मक लगाव था इसीलिए प्रकृति प्रदत्त संसाधनों के बारे में उनकी भावना थी कि वृक्षों को मत काटो, जल और पृथ्वी की रक्षा करना धर्म है। पृथ्वी से उतना ही निकालो जिसकी पूर्ति की जा सके परन्तु आज पर्यावरण से जुड़ी इन भावनाओं पर प्रश्न चिन्ह लग गया है। आदिकाल से लेकर आज तक प्रकृति से भावनात्मक सम्बन्ध रखने के पीछे उद्देश्य पारिस्थितिकी के सन्तुलन को बनाए रखना था और यही कारण था कि राजस्थान में पर्यावरण प्रेमियों ने अपनी गर्दनें कटाकर भी वृक्षों की रक्षा की थी।

वर्तमान में भारत में जनसंख्या में तीव्र वृद्धि, औद्योगिकरण, नगरीकरण एवं कृषि विकास में हो रहे भूमि उपयोग के कारण जल एवं वनस्पति पर दबाव बढ़ता जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप

भारत में पर्यावरण एवं प्रदूषण सम्बन्धी अनेक समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं। इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय स्तर की प्रमुख समस्यायें वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, ठोस अपशिष्ट निस्तारण वनोन्मूलन तथा मृदा अवनयन पर विचार करना जरूरी है। उपरोक्त समस्याओं का विभिन्न पक्षों के अन्तर्गत भारतीय उदाहरणों सहित विवेचन किया गया है।

17.2 वायु प्रदूषण समस्या (Problem of Air Pollution)

वायु प्रदूषण मुख्य रूप से औद्योगिकरण एवं नगरीकरण की देन है। यह समस्या विकसित देशों के साथ विकासशील देशों में अत्यधिक विकराल है। भारत एक विकासशील देश है इसके महानगरों में सर्वाधिक वायु प्रदूषण हो रहा है। वायु प्रदूषण की दर की वृद्धि को देखते हुए भारत विश्व के विकसित देशों के महानगरों के वायु प्रदूषण के स्तर की ओर अग्रसर है। भारत का ग्रामीण क्षेत्र जो अब तक इस प्रदूषण से प्रभावित नहीं था लेकिन धीरे–धीरे ग्रामीण क्षेत्रों में भी वायु प्रदूषण पैर पसार रहा है।

भारत के चार महानगरों में औद्योगिकरण के द्वारा तो वायु प्रदूषण होता ही है लेकिन वाहनों द्वारा होने वाला वायु प्रदूषण दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। तालिका संख्या 17.1 में भारत के महानगरों में वाहनों द्वारा वायु प्रदूषण की मात्रा को दिखाया गया है।

तालिका–17.1 भारत के महानगरों में वाहनों द्वारा प्रदूषण की मात्रा

(प्रतिदिन की मात्रा टन में)

महानगर	एस.पी.एम	सल्फर डाई ऑक्साइड	नाइट्रोजन	हाईड्रो कार्बन ऑक्साइड	कार्बन मोनो ऑक्साइड	योग
दिल्ली	8.58	7.47	105.38	207.98	542.51	872
मुम्बई	4.66	3.36	59.02	90.17	391.6	549
कोलकाता	2.71	3.04	45.58	36.57	156.87	245
चेन्नई	1.95	1.68	53.51	45.05	119.35	188

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि देश के चार महानगरों में वाहनों के द्वारा होने वाले वायु प्रदूषण से दिल्ली सर्वाधिक प्रभावित है। दिल्ली में वायु प्रदूषण का 60 प्रतिशत से अधिक भाग वाहनों के द्वारा होता है। इन वाहनों के प्रतिदिन 542 टन कार्बन मोनो ऑक्साइड 2.8 टन हाइड्रोकाब्रन, 105 टन नाइट्रोजन तथा 9 टन निलम्बित कणिकीय पदार्थ निकलते है। W.H.O. के अनुसार 1990 में 15वाँ सर्वाधिक प्रदूषित नगर रहा है। दिल्ली में वायु प्रदूषण वाहनों के अलावा, ताप शक्ति सयंत्र, उद्योग तथा घरेलू स्रोत से भी हो रहा है।

भारत के चार महानगरों में केवल चेन्नई की वायु अपेक्षाकृत शुद्ध है। उद्योगों से फैलने वाला वायु प्रदूषण भी भारत के औद्योगिक क्षेत्रों में एक बड़ी समस्या है। अकेले मुम्बई नगर में 5000 से अधिक औद्योगिक इकाइयां है। इन सब उद्योगों का केन्द्रीकरण चेम्बूर–ट्राम्बे क्षेत्र में है। जहां वायु में धूल की सान्द्रता 238 माइक्रोग्राम धन सेन्टीमीटर तक है। इस क्षेत्र को गैस चेम्बर के नाम से भी जाना जाता है।

भारत में वायु की गुणवत्ता का निगरानी कार्य NEERI द्वारा 1978 में प्रारम्भ किया गया परन्तु यह कार्य 1989 में स्थगित कर दिया गया। 1985 से CPCB (Central Pollution Control Board) के तत्वाधान में NAAQM (National Ambient Air Quality Monitoring) योजना के अन्तर्गत वायु की गुणवत्ता का अभिलेखन एवं गिनरानी की जाती है।

17.3 भारत में घटी दर्दनाक भोपाल गैस त्रासदी (Bhopal Gas Tragedy)

2–3 दिसम्बर 1984 को भोपाल (म.प्र.) स्थित अमेरिकन यूनियन कार्बाइड कारखाने के गैस सयंत्र में हुई दुर्घटना प्राणाघातक गैसों के रख–रखाव में असावधानी बरतने से वायु प्रदूषण का प्रमुख उदाहरण है। इस कारखाने से दिसम्बर की रात में जहरीली गैसे (MIC–Methyle 50 cynate) के अचानक निकलकर वायु प्रदूषण की सबसे बड़ी दुर्घटना घटित हुई थी। इस घटना में सरकारी सूत्रों के अनुसार 2500 व्यक्तियों की मौत होना बताया गया है। जबकि गैर सरकारी सूत्रों में इनकी संख्या 500 व्यक्तियों से अधिक बताई गई है। दुर्घटना वाले कारखाने में कीटनाशी रसायन के निर्माण के लिए मिक गैस का उत्पादन किया जाता था जिसके लिए उसका भूमिगत कन्टेनरों में भण्डारण किया जाता था तकनीकी खराबी के कारण इन कन्टेनरों में से मिक गैस का रिसाव शुरू हुआ जो 40 मिनट तक चलता रहा इस गैस के फैलने के कारण घनी आबादी वाले क्षेत्रों में हजारों लोगों की मौत होने लग गयी तथा हजारों जानवरों के प्राण पखेरू उड़ गये। इसके अलावा इससे पेयजल, जलाशयों का जल, मिट्टियाँ भी प्रभावित हो गई है। इस गैस के प्रभाव से गर्भस्थ भ्रूण इतनी बुरी तरह प्रभावित हुए कि 200 महिलाओं ने मृत शिशुओं को जन्म दिया तथा 400 बच्चों के जन्म के बाद मृत्यु हो गई जबकि सभी गर्भवती महिलाओं में से 47 प्रतिशत महिलाओं को तुरन्त गर्भपात हो गया। 10000 व्यक्ति स्थायी तौर पर विकलांग हो गये तथा 30000 व्यक्ति आंशिक रूप से शारीरिक दृष्टि से अक्षम हो गये एवं 150000 लोग लघु विकलांगता (Minor Disability) के शिकार हो गये।

इस गैस त्रासदी के बाद मुम्बई के चिकित्सकों के एक दल के सर्वेक्षण करने पर पाया गया कि गैस के रिसाव के कारण जल में थामोसाइनेट के सान्द्रण में वृद्धि होने से जल अत्यधिक प्रदूषित हो गया था। जल में इसका सान्द्रण 3 से 4 PPm पाया गया। जिसके सेवन के द्वारा भोपाल के रहने वालों के रक्त में थायोसाइनेट का स्तर बढ़ रहा था। इसकी वजह से इस दल ने गैस प्रभावित क्षेत्रों के लोगों को 3 वर्ष के लिए भोपाल छोड़ने के लिए कहा था।

वायु प्रदूषण के प्रति अब पूरे देश में विभिन्न मंचो से आवाज से उठाई जा रही है। इसके नियत्रंण के लिए राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर अनेक अनुसंधान एवं नियंत्रण केन्द्र स्थापित किए गए है। राष्ट्रीय पर्यावरणीय अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (NEERI) नागपुर, परमाणु ऊर्जा आयोग, गिंडी इंजीनियरिंग महाविद्यालय के अलावा कई अनुसंधान केन्द्रों में शोध कार्य चल रहा है। आज देश की प्रमुख आवश्यकता प्रदूषण नियंत्रण का सख्ती से पालन तथा वायु प्रदूषण के प्रति जन चेतना जागृत करना है।

बोध प्रश्न – 1

1. दिल्ली में प्रतिदिन वाहनों द्वारा कितने टन एस.पी.म. की मात्रा निकलती है।

.....

.....

2. भारत के चार महानगरों में वाहनों द्वारा सर्वाधिक वायु प्रदूषण किस नगर में होता है?

.....

.....

3. भोपाल गैस त्रासदी कब हुई थी।

.....

.....

4. भोपाल गैस काण्ड में कौनसी गैस ने प्रभावित किया था?

.....

.....

5. भोपाल गैस काण्ड के प्रभाव से रक्त में किस का स्तर बढ़ रहा था?

.....

.....

17.4 भारत में जल प्रदूषण समस्या (Water Pollution Problem in India)

भारत में जल प्रदूषण की सबसे अधिक कठिन समस्या नदियों में है। प्राचीन सभ्यताओं की जनक कही जाने वाली ये नदियाँ ही इनके पालितों द्वारा ही सबसे ज्यादा प्रदूषित हो रही है। इनके किनारे बसे बड़े–बड़े नगर ही इनके विनाश के कारण बन रहे हैं। औद्योगिक क्रान्ति एवं जनसंख्या की बढ़ती तीव्र दर के कारण नगरों के बढ़ते आकार एवं संख्या ने इन नदियों के जल को प्रदूषित किया है। नगरों का अपशिष्ट, वाहित मल, उद्योगों के जहरीले निस्तृत पदार्थ और अनेक घातक रसायन इतनी बढ़ी मात्रा में नदी जल में घुल रहे हैं कि नदियों के पानी का स्वरूप ही बदल गया है। इस प्रकार भारत की अधिकांश नदियों का जल प्रदूषित होता जा रहा है।

भारत की सबसे पवित्र एवं धार्मिक मानी जाने वाली गंगा नदी का जल ऋषिकेश से लेकर कोलकाता तक प्रदूषित हो चुका है। गंगा नदी के जल में जो प्राकृतिक गुण पाया जाता था कि इसके पानी को किसी भी पात्र में रखे रहने पर वर्षो तक सड़ता नहीं था। जो भी व्यक्ति, गंगा स्नान करने जाता था वह अपने साथ किसी पात्र में गंगा का पानी लेकर आता था तथा वर्षों तक वह धार्मिक कार्यों एवं मृत्यु शय्या पर पड़े लोगों के मुंह में गंगा जल डाल देता था। परन्तु अब इस पानी के प्रदूषित होने से कुछ ही दिनों में यह सड़ने लग जाता है और अब तो यह स्थिति हो गई है कि इसको पीना तो दूर कहीं कही तो इसमें स्नान करने को भी खतरनाक बताया जा रहा है। कानपुर के समीप इस नदी की दशा ऐसी ही स्थिति तक पहुंच गई है,

क्योंकि यहां चर्म शोधन का कार्य होने के कारण चमड़े को रंगने में जो रसायन काम में लिए जाते है। वे बाद में पानी के साथ इसी नदी में बहा दिए जाते है जो नदी पतितों का उद्धार करती थी अब स्वयं पतित हो रही है। इसके जल सेवन से अनेक बीमारियाँ होने लगी है। जो मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा बन गई है।

17.5 नदी जल प्रदूषण (River Water Pollution)

नदियों के किनारे बसे नगरों का विकास जिन नदियों की वजह से आज सम्भव हुआ है वे ही नगर आज इनके विनाश के कारण बन गए है। इन नगरों का कूड़ा–करकट, वाहित मल, उद्योगों का विषैला बहिस्त्राव और घातक रसायन इतनी बड़ी मात्रा में नदी जल में घुल रहे है कि इनकी स्व:शुद्धीकरण की क्रिया समाप्त हो गई है। इसलिए नदियों का जल जहर बनता जा रहा है। शुरू में तो यह प्रदूषण स्थानीय स्तर तक ही सीमित था लेकिन वर्तमान में इसका फैलाव बहुत बढ़ गया है।

उदाहरण के लिए भारत की पवित्र गंगा नदी के कुल 2255 कि.मी. लम्बे जल मार्ग में 600 कि. मी. लम्बा मार्ग अत्यधिक प्रदूषित हो गया है।

अनेक अध्ययनों से निष्कर्ष निकला है कि हजारों टन दूषित सामग्री प्रतिवर्ष गंगा में प्रवाहित की जाती है जिसमें से अकेले उत्तरप्रदेश और उत्तराखण्ड की हिस्सेदारी 50 प्रतिशत से अधिक है।

गंगा के इस हालात पर जनता ही नहीं सरकार भी सोचने के लिए मजबूर हो गई है कि हम विकास के नाम पर हमारी पवित्र धरोहर की रक्षा करने में असफल रहे है। 1984 में भारत की प्रधान मंत्री स्वर्गीया श्रीमती इंदिरा गांधी ने इस समस्या को राष्ट्रीय महत्व देते हुए गंगा जल सुधार और नियंत्रण के लिए कार्य योजना का प्रारम्भ किया और इस योजना का नामकरण "गंगा सफाई योजना" रखा गया। गंगा सफाई योजना के अन्तर्गत गंगा प्रदूषण नियंत्रण के लिए केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (CPCB) 1984 के तहत पंचवर्षीय गंगा सफाई परियोजना का कार्य चला रखा हैं। इसके तहत ही 1985 में केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण का संगठन किया गया। इस संस्था द्वारा गंगा में प्रदूषण कम करने के लिए गंगा कार्य योजना Ganga Action Plan का शुभारम्भ किया गया। योजनान्तर्गत भारत की प्रमुख पर्यावरणीय समस्याएँ. वायु जल रख उत्तराखण्ड एवं उत्तरप्रदेश के 26, बिहार के 15 एवं प. बंगाल के 59 नगरों का चुनाव किया गया है। जो गंगा जल को सर्वाधिक प्रदूषित कर रहे हैं।

गंगा ही नहीं भारत की छोटी बड़ी सभी नदियाँ प्रदूषण से प्रभावित हैं। दामोदर नदी में बोकारो, राउर केला एवं इंडियन आयरन एण्ड स्टील के तथा बंगाल पेपर मिल से, सिंदरी के उर्वरक कारखाने से एवं दुर्गापुर केमिकल से दूषित अपशिष्ट पदार्थ छोड़े जाते है। बिहार में सोन नदी में मिर्जापुर के समीप स्थित कागज और रसायन उद्योग से इतने अपशिष्ट पदार्थ डाले जाते है कि जल में क्लोरीन की काफी अधिक मात्रा हो जाती है।

यमुना नदी में दिल्ली महानगर से 96 करोड़ लीटर अनुपचारित मल बहाया जाता है एवं ओखला के समीप कई गन्दे नाले आकर मिलते हैं जिससे यहां कोली फार्म बेक्टीरिया

24000,000 प्रति 100 सी.सी. तक पहुंच जाती है। दिल्ली और आगरा के बीच यमुना का जल अत्यधिक प्रदूषित हो गया है।

दक्षिणी भारत की नदियां भी प्रदूषण से अछूती नहीं है। तमिलनाडू की कावेरी नदी भारत हेवी इलेक्ट्रीकल्स लि. (BHEL) द्वारा छोड़े गये रसायनों से केरल की चालियार नदी का अनेक नगरों के अपशिष्ट पदार्थों एवं रेयन फैक्ट्री द्वारा छोड़े गये जल में पारे के अंश से प्रदूषित हो रहा है। तमिलनाडू में रानीपेट, आशु में बनयाबाड़ी शहरों में चमड़ा शोधन के कारण पालान नदी प्रदूषित हो गई है। प. बंगाल की हुगली नदी जूट उद्योग, कागज की लुग्दी उद्योग के कारण अपना वास्तविक रूप खो चुकी है।

17.6 झील तथा सागरीय जल का प्रदूषण (Lake and Ocean Water Pollution)

झील प्रदूषण : झीलों के जल का प्रदूषण प्राकृतिक एवं मानवीय दोनों ही स्रोत से होता है। पहाड़ी क्षेत्रों की झीलों में वन विभाग के कारण, मृदा अपरदन से उत्पन्न अत्यधिक अवसादों के जमाव के कारण एवं मानव जनित स्रोत से होने वाले झील का प्रमुख कारण है। नैनीताल की नैना झील की गहराई 20 मीटर से लेकर 27 मीटर तक कम हो गई है।

झीलों के पास स्थित नगरों के मलजल तथा कारखानों से निकले अपशिष्ट पदार्थों को झीलों एवं तालाबों में डालने के कारण इनका स्थिर जल अधिक प्रदूषित होता है। श्रीनगर की सुप्रसिद्ध डल झील अपशिष्टों के कारण सर्वाधिक प्रदूषण की समस्या से ग्रसित है। राजस्थान में पुष्कर झील में प्रवाहित भस्मी एवं पूजा अर्चना में चढ़ाये फूलों से प्रदूषित होती जा रही है।

सागरीय जल प्रदूषण : सागरीय जल का प्रदूषण मुख्य रूप से सागरीय तटों पर बसे नगरों एवं वहां स्थापित उद्योगों के अपशिष्ट पदार्थों के विसर्जन से होता है। इसके अलावा समुद्रों में छोड़े जाने वाले रेडियोधर्मी पदार्थ तथा तेलीय प्रदूषण से होता है। उद्योगों द्वारा छोड़े गये अपशिष्टों से अन्डमान–निकोबार द्वीपों के निकट अनेक कोरल (मूंगे) मर गये है तथा मछलियाँ प्रभावित हो रही हैं।

भारत में मुम्बई के अपतट स्थित बाम्बे हाई में 30 जुलाई 1987 को हुई भयंकर दुर्घटना में युनियन ऑयल कम्पनी के आयल टैंकर के दुर्घटना होने से 1,17,000 टन खनिज तेल का अरब सागर में रिसाव हो गया। सन 1991 में खाड़ी युद्ध के समय इराक ने खनिज तेल को सामरिक अस्त्र के रूप में प्रयोग करके फारस की खाड़ी में उंडेल दिया जिससे समुद्र सागरीय जल प्रदूषित हो गया और लाखों की संख्या में जल जीव और सागरीय पक्षियों की मौत हो गई।

17.7 भूमिगत जल प्रदूषण (Ground Water Pollution)

मानव को भूमिगत जल प्रदूषण से अधिक खतरा है। भूमिगत जल आसानी से प्रदूषित हो जाता है। भूमिगत जल का प्रवाह धीमा और हलचल रहित होता है, इसलिए प्रदूषकों का भूमिगत जल में धरातलीय जल की तरह फैलाव नहीं होता है और भूमिगत जल प्रदूषित अधिक होता है। भूमिगत जल की कुओं तथा हैंड पम्पों के द्वारा प्राप्ति होती है जिसमें प्रदूषित जल का शोधन करने की क्रिया धीमी और बहुत अधिक खर्चीली होती है।

भारत में भूमिगत जल प्रदूषण की समस्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। आन्ध्रप्रदेश के मेडक जिले में हैदराबाद से 30 कि.मी. दूर स्थित पाटन चेरू औद्योगिक क्षेत्र के रासायनिक कारखानों से निस्तृत विषाक्त अपशिष्ट जल के कारण नजदीकी क्षेत्रों के कुओं के जल के प्रदूषण का 1989 में पता चला कि जब यहां के लोगों को कुओं का पानी पीने से उल्टी होने लगती या जी मिचलाने लगता। इसका कारण था कि इस क्षेत्र में स्थित 50 रासायनिक कारखानों तथा 300 औद्योगिक इकाइयों द्वारा विसर्जित विषैले रसायनों से युक्त अपशिष्ट जल जमीन में रिसने के कारण 14 गांवों के कुओं में पहुंच गया और पानी इतना प्रदूषित हो गया कि इन कुओं के जल का रंग लाल हो गया।

पश्चिमी बंगाल में प्रदूषित भूमिगत जल से आर्सेनिक विष के प्रभाव के अनेक उदाहरण है जो भूमिगत जल प्रदूषण का बहतरीन उदाहरण है। पर्यावरण विज्ञान संस्थान, जाखपुर, विश्वविद्यालय, पश्चिमी बंगाल में आर्सेनिक की समस्या के परिणाम का सर्वेक्षण कर रहा है। इनके अलावा भूमिगत जल की समस्या पूरे भारत वर्ष में उत्पन्न हो रही है। भारत की राजधानी दिल्ली में हैण्ड पम्पों को निकालकर पीने के पानी से कई लोग मौत के मुंह में समा गये थे अत: भूमिगत जल प्रदूषण की समस्या बहुत बड़ी समस्या है जिसका निराकरण आवश्यक है।

पेय जल की समस्या (Drinking Water Problem)

जल प्रदूषण के कारण पेययोग्य जल की समस्या अत्यन्त गंभीर होती जा रही है। पेयजल के प्रमुख स्रोत नदियाँ, तालाब और भूमिगत जल किसी न किसी तरह से प्रदूषित होते जा रहे है शहरी और ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में शुद्ध जल की कमी होती जा रही है।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की समस्या विकट रूप धारण कर रही है। प्रदूषित जल पीने से विविध बीमारियां बढ़ रही हैं। दक्षिण भारत के अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में जहां प्रधानत: तालाबों का जल प्रयोग किया जाता है, उनके अनुचित रख–रखाव के कारण ग्रामीण लोग दूषित पानी के लिए बाध्य है। बिहार के पठारी भाग में विशेषकर पलामू जनपद में पेय जल की समस्या इतनी गंभीर हो जाती है कि सरकार को टैकरों से जल की व्यवस्था करनी पड़ती है। कमोबेश राजस्थान, गुजरात और कर्नाटक में भी हो रही है। भारत के आधे से अधिक ग्रामों में सुरक्षित पेय जल उपलब्ध नहीं है।

इनमें सर्वाधिक संख्या दक्षिण के पठारी भाग में है। जहां अधिकतर धरातलीय जल पेय के लिए प्रयोग किया जाता है। कई क्षेत्रों में तो पेयजल की प्राप्ति कई किलोमीटर दूर से की जाती है। राजस्थान का मरू क्षेत्र इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। बिहार के पठारी भारी के अधिकांश आदिवासियों के लिए जलप्रदूषण के कारण पेयजल की समस्या बढ़ गई है। दामोदर घाटी का क्षेत्र सबसे अधिक प्रभावित है।

जल प्रदूषण के प्रभाव और उस पर नियंत्रण के उपायों के बारे में इस पुस्तक की इकाई 6 में विस्तृत विवरण दिया गया है। इसके लिए इकाई 6 का अवलोकन करें। भारत सरकार के सामने जल प्रदूषण एक ऐसी समस्या है जिसे सरकार ही नही हम सब मिलकर नियंत्रित करें तथा स्वच्छ रख सुरक्षित जल प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

बोध प्रश्न – 2

1. गंगा नदी में कानपुर नगर के पास सबसे अधिक जल प्रदूषण किस कारण होता है?

   .....

   .....

2. गंगा नदी का कितना कि मी. लम्बा भाग सर्वाधिक प्रदूषित है?

   .....

   .....

3. दामोदर नदी में किस उर्वरक कारखाने से दूषित अपशिष्ट पदार्थ छोड़े जाते है?

   .....

   .....

4. भारत की कौन सी झील सर्वाधिक प्रदूषित हो रही है?

   .....

   .....

5. प. बंगाल में भूमिगत जल में कौन सा विष पाया जाता है?

   .....

   .....

17.8 ध्वनि प्रदूषण (Nosie Pollution)

किसी भी वस्तु से उत्पन्न सामान्य आवाज को ध्वनि कहते है। जब ध्वनि की तीव्रता जरूरत से अधिक लगने लगे तथा कानों को नहीं सुहाए तो उसे शोर कहते है। इस शोर के कारण मानव वर्ग में अशांति रच बैचेनी की दशा को ध्वनि प्रदूषण कहते है।

ध्वनि प्रदूषण का अर्थ, स्रोत प्रभाव रण नियंत्रण के बारे में इस पुस्तक की इकाई 7 में विस्तृत विवरण दिया जा चुका है। इस इकाई में ध्वनि प्रदूषण से उत्पन्न समस्याओं के बारे में वर्णन किया है।

भारत में औद्योगिक विकास, नगरीकरण में वृद्धि एवं वाहनों की संख्या में बेतहाशा बढ़ोतरी से शोर में अत्यधिक वृद्धि होती जा रही है जिसके कारण ध्वनि प्रदूषण का स्तर बढ़ता जा रहा है। भारत के अधिकांश नगरों में ध्वनि प्रदूषण का स्तर स्वीकार्य स्तर रात्रि में 45 डेसीबल तथा दिन में 65 डेसीबल से अधिक रहने लगा है। निम्न तालिका में भारत के महानगरों में ध्वनि प्रदूषण स्तर को दिखाया गया है।

तालिका 17.2 भारत के महानगरों में ध्वनि प्रदूषण स्तर (डेसीबल में)

महानगर	औद्योगिक क्षेत्र		व्यापारिक क्षेत्र		आवासीय क्षेत्र		शान्त क्षेत्र	
	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि	दिन	रात्रि
कोलकाता	78	67	82	75	79	65	79	65
मुम्बई	76	65	75	66	70	62	66	52
चेन्नई	71	66	78	71	66	48	63	49

बैंगलूर	78	53	76	57	67	50	67	–
स्वीकार्य मानक	75	70	65	55	55	45	50	40

स्रोत : Down to Earth अगस्त 15, 1998 पृष्ठ 60

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि भारत के महानगरों के व्यापारिक, आवासीय क्षेत्र तथा शान्त क्षेत्रों में ध्वनि प्रदूषण स्वीकार्य मानक स्तर से बहुत अधिक है। जबकि औद्योगिक क्षेत्रों में दिन के समय थोड़ा अधिक तथा रात्रि में कम है।

भारत के महानगरों के अलावा हवाई अड्डों पर वायुमान के चलने और उतरने के समय, रेल्वे स्टेशन पर, बस स्टेण्ड पर, भीड़े भरे ट्रेफिक मार्गों पर होने वाला ध्वनि प्रदूषण बहरापन लाने के साथ अनेक बीमारियों का कारण बन रहा है। अत: भारत में ध्वनि प्रदूषण के प्रति जो उदासीनता रही है उसे अब बदलना होगा तथा इस समस्या से बचने के लिए इस पर नियन्त्रण करना होगा।

बोध प्रश्न – 3

1. व्यापारिक क्षेत्रों में दिन एवं रात्रि के समय कितना डेसीबल शोर स्वीकार्य है।

   .....

   .....

2. कोलकाता के औद्योगिक क्षेत्र में दिन और रात्रि का ध्वनि स्तर कितना डेसीबल है।

   .....

   .....

3. भारत के महानगरों में ध्वनि स्तर बढ़ने के प्रमुख कारण क्या है?

   .....

   .....

4. ध्वनि प्रदूषण से मानव को सुनने में किस रोग का सामना करना पड़ता है?

   .....

   .....

17.9 ठोस अपशिष्ट निस्तारण (Solid Waste Disposal)

वर्तमान समाज की आधुनिकता का एक अवगुण "उपभोग करो और फेंक दो" (Use and Throw) ने पृथ्वी को अपशिष्टों का कचरागाह बना दिया है, जो पर्यावरण को प्रदूषण करने के साथ ही एक समस्या बन गई है, विकसित देश तो इस समस्या का सामना कर ही कर रहे है, लेकिन विकासशील देशों में भारत के सामने यह एक विकट समस्या हो गई है।

17.10 ठोस अपशिष्ट

ठोस अपशिष्ट पदार्थ वे है जो उपयोग के बाद निरर्थक और बेकार हो जाते है जैसे समाचार पत्रा, डिब्बे,बोतल, पोलिथिन की थैली, के कांच के सामान, घरेलू अपशिष्ट, खनन अपशिष्ट,

कृषि अपशिष्ट, रेडियोधर्मी अपशिष्ट आदि। इन ठोस अपशिष्ट पदार्थों की समुचित डम्पिगं तथा निस्तारण के लिए पर्याप्त स्थान की आवश्यकता होती हैं। ठोस अपशिष्टों में वृद्धि के फलस्वरूप उत्पन्न उनके निपटान की समस्या विकसित देशों के लिए ही नहीं भारत जैसे विकासशील देश के लिए भी गम्भीर समस्या बन गई है।

ठोस अपशिष्टों के स्रोत

ठोस अशिष्टों के स्रोतों को प्रमुखत : निम्नलिखित 5 भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है : –

1. घरेलू अपशिष्ट
2. स्वायतशासी संस्थानों का अपशिष्ट
3. चिकित्सा सम्बन्धी अपशिष्ट
4. औद्योगिक अपशिष्ट
5. कृषि अपशिष्ट

नोट : उपरोक्त स्रोतों का विस्तृत वर्णन इकाई 7.8 के मृदा प्रदूषण के अन्तर्गत दिया जा चुका है। पाठकगण इकाई 7 का अवलोकन करें।

भारत की प्रमुख पर्यावरणीय समस्याएँ : वायु,जल एवं ध्वनि प्रदूषण, ठोस अपशिष्ट निस्तारण, वनोबूलन एवं मृदा अवकर्षण

ठोस अपशिष्टों के प्रभाव और उसकी समस्यायें

विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न ठोस अपशिष्ट मृदा प्रदूषण का तो बड़ा कारण होता ही है साथ में इससे जल तथा वायु प्रदूषण भी होता है। ठोस अपशिष्ट के बहुत खतरनाक प्रभाव होते हैं इससे पर्यावरण प्रदूषित होने के कारण मनुष्य के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। विभिन्न पदार्थों के सड़ने से कीटाणु पैदा होकर अनेक रोगों को जन्म देते हैं। इसके अलावा विशेषत: नगरीय क्षेत्रों में कूड़ा करकट उठाना व उसका निस्तारण एक विकट समस्या है। देश में सरकार प्रतिवर्ष नगरीय क्षेत्र के कूड़े करकट को एकत्र करने व इसके निस्तारण में 50700 मिलियन से अधिक रूपया काम व्यय कर रही है। देश के नियोजकों व वैज्ञानिकों के सामने यह एक महान समस्या चुनौती के रूप में है।

भारत जैसे विकासशील देश में चाय के प्याले से लेकर कलम, कुर्सी, घड़ी, थैलियां, चश्में के फ्रेम, चप्पल, जूते, टोपी, रोगी शरीर में डाली जाने वाली चिकित्सीय नलियां एवं हृदय में लगाए जाने वाले वालों कृत्रिम 'वाल्व' तक प्लास्टिक के बनने लगे हैं। जिसे 20वीं सदी की प्लास्टिक क्रान्ति के नाम से जाना जाता है। इस प्लास्टिक युग में हमारे दैनिक जीवन में इसका उपयोग तीव्र गति से बढ़ा है जिसके कारण महानगरों, नगरों, कस्बों यहां तक कि छोटे–छोटे गांवों में भी प्लास्टिक की गन्दगी के ढेर जगह जगह दिखाई देते हैं। नदियों रथ समुद्रों के किनारे इन्हें बहते हुए देखा जा सकता है।

हिमालय की रमणीय वादियों तथा प्राकृतिक सौंदर्य से ओतप्रोत क्षेत्रों में भी इन्हें देखा जा सकता है। प्लास्टिक के विभिन्न उत्पाद, मिट्टी में नहीं मिल पाते हैं। प्लास्टिक की थैलियाँ सीवर लाईनों तथा नालों को जाम कर देती हैं। जिससे पूरी सीवर व्यवस्था गड़बड़ा जाती है।

आम उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य के लिए भी पालिथीन बहुत हानिकारक है, विशेषकर अगर इसका उपयोग खाद्य वस्तुओं को लाने ले जाने तथा रखने के लिए किया जावे। रंगीन पॉलीथीन तथा इसमें मिश्रित खतरनाक रसायन का असर गर्म खाद्य सामग्री में शीघ्र पहुंच जाता है।

पॉलीथिन के उपयोग पर रोक लगानी चाहिए इसके लिए पॉलिथिन से होने वाले नुकसान के बारे में प्रचार अभियान चलाना चाहिए। सरकार को नियम बनाकर पाबन्दी लगानी चाहिए।

महाराष्ट्र सरकार ने 1988 में 20 माइक्रोन से कम मोटाई वाली प्लास्टिक की थैलियों पर प्रतिबंध लगा दिया है। राजस्थान सरकार ने पर्यटक स्थलों पर प्लास्टिक की थैलियां ले जाने पर तथा रंगीन थैली के उपयोग पर कानूनन रोक लगा दी है।

कुछ वर्षों पूर्व प्लेग की भयावह बीमारी फैलने के कारण गुजरात का सूरत शहर जो सबसे गंदा औद्योगिक नगर जाना जाता था आज भारत के सबसे साफ नगरों में जाना जाता है। इसे स्वच्छ बनाने के लिए प्लास्टिक पर प्रतिबन्ध लगाया जाना प्रमुख है।

पूरे देश के छोटे व बड़े चिकित्सालयों के अपशिष्ट पदार्थों से अनेक संक्रामक रोगों के सक्रमण की स्थिति भयावह होती जा रही है। अमूनन इस जैसे कचरे को नगरीय अपशिष्ट में मिला दिया जाता है। जबकि इस जैव कचरे में मानव रक्त, पस, कटे अंग, दवाइयाँ, मानव टिश्यू मल–मूत्र, सूक्ष्म कृमि, रोगाणु, विषाणु, मानव शरीर के जैविक स्त्राव, कफ, क्या, डिस्पोजेवल इन्जेक्शन, सर्जिकल दस्ताने, ग्लूकोज की बोतलें, भ्रूण, आदि होते हैं, जो किसी न किसी तरह मानव के सम्पर्क में आकर रोगों का विस्तार करते है।

भारत में तीन लाख से अधिक जनसंख्या वाले 45 नगर प्रतिदिन 3 लाख टन से अधिक ठोस अपशिष्ट निकालते हैं भारत के चार महानगर (दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई तथा कोलकाता) तो सर्वाधिक अपशिष्ट उत्पन्न करते हैं। कोलकाता में प्रतिदिन 2500 टन कचरा निकलता है तथा अनुमान किया गया है कि इस महानगर का वार्षिक कचरा 912000 टन हो जाएगा जो प्रतिदिन 7600 टन होगा जिसका तात्पर्य है कि कचरा उत्पादन तिगुना हो जायेगा। मुम्बई महानगर में प्रतिदिन 3000 टन कचरा निकलता है। दिल्ली महानगर में 2000 टन तथा चेन्नई में 1200 टन ठोस अपशिष्ट प्रतिदिन उत्पादित होता है।

भारतीय नगरों में तो कचरा एवं अपशिष्टों को संग्रह की व्यवस्था है परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में तो इसके लिए व्यवस्था नाम मात्र की होती है। भारत के कस्बों तथा छोटे नगरों में ठोस अपशिष्टों एवं आवासीय सीवरेज संग्रह तथा निबटान की विकट समस्या है।

देश में ठोस अपशिष्ट के शोधन तथा उसके उचित उपयोग की आवश्यकता कुछ पदार्थों को पुन: रासायनिक प्रक्रिया से उपयोग में लिया जा सकता है। कुछ से ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है तथा कुछ का उपयोग उर्वरकों के रूप में किया जा सकता है। ठोस अपशिष्ट के निस्तारण के लिए भारत सरकार ने 1975 में एक कमेटी का गठन किया जिसके प्रथम अध्यक्ष बी. शिवारमन थे, इन्होंने कई सुझाव दिए थे।

नोट : ठोस अपशिष्ट निस्तारण के लिए कमेटी के सुझाव तथा अन्य विधियाँ विस्तृत रूप में इकाई 7 में दी गई है। इनका अवलोकन इकाई 71 1वें भाग में करे।

बोध प्रश्न – 4

रिक्त स्थानों की पूर्ति करों –

1. महाराष्ट्र सरकार ..... से 20 माइक्रोन से कम मोटाई वाली प्लास्टिक की थैलियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया है।
2. राजस्थान सरकार ने ..... स्थलों पर ..... की थैलिया ले जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया है।
3. भारत सरकार ने ठोस अपशिष्ट निस्तारण के लिए गठित कमेटी के प्रथम अध्याय .....थे।
4. चिकित्सालय के अपशिष्ट पदार्थों से अनेक रोग हो जाते है।

.....

.....

17.13 वनोन्यूलन (Deforestation)

वन प्रत्येक देश की मूल्यवान सम्पत्ति होती है। ये खुशहाली एवं समृद्धि के प्रतीक होते हैं। किसी भी देश का कल्याण तथा समृद्धि उस देश की स्वस्थ एवं समृद्ध वन सम्पदा पर आधारित होती है।

वास्तव में वनों को उस देश की जीवन रेखा (Life Line) भी कहा जाता है। वनों से हमें जीवनदायिनी औषधियाँ उद्योगों के लिए कच्चे पदार्थ, भवन निर्माण के लिए उपयोगी लकड़ियाँ, पशुओं के लिए चारा, फल–फूल मिलते हैं। विभिन्न प्रजाति के जन्तुओं तथा सूक्ष्म जीवों के लिए आवास उपलब्ध होते है, जैविक एवं पौषक तत्वों से भरपूर मिट्टियों का निर्माण होता है, मिट्टियों के अपरदन से बचाव होता है भूमिगत जल में वृद्धि के साथ–साथ वर्षा में वृद्धि होती है, कार्बन–डाइ–ऑक्साइड को अवशोषित कर शुद्ध ऑक्सीजन उपलब्ध करवाते हैं। अत: हरेक देश के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है तथा उस देश का पर्यावरण पारिस्थितिकीय सन्तुलन उस क्षेत्र की वन सम्पदा पर आधारित होती है। आधुनिक सभ्यता को इनकी बड़ी आवश्यकता है। ये केवल जलाने की लकड़ी ही नहीं देते प्रत्युत: हमारे उद्योग धन्धों के लिए कच्चा माल और पशुओं के लिए चारा भी प्रदान करते हैं किन्तु इसका अप्रत्यक्ष महत्व सबसे अधिक है।

वर्तमान में औद्योगिक एवं तकनीकी विकास, तीव्र जनसंख्या वृद्धि, नगरीकरण, बांध और स्थल मार्गों का निर्माण वनों में स्थित खनिजों का कानूनी एवं गैर कानूनी दोहन के कारण ईंधन की बढ़ती मांग, कृषि के लिए अत्यधिक भूमि की आवश्यकता, वनाग्रि फैलने, बाढ़ों के प्रकोप द्वारा वनों का भारी शोषण हुआ हैं। मानव ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनों का बड़ी क्रूरता से विनाश किया है।

भारत में प्रतिवर्ष 1500 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में वनों की कमी हो रही है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते है कि प्रत्येक तीन वर्ष में हरियाणा राज्य के क्षेत्रफल के बराबर वनों का क्षेत्र समाप्त हो रहा है। किसी भी प्रदेश के पारिस्थितिकी तन्त्र को संतुलित रखने के लिए उसकी कुल भूमि पर वनों का आवरण 33 प्रतिशत होना चाहिए जबकि भारत में 2003 में 67,833 वर्ग कि.मी.

क्षेत्रफल पर भौगोलिक क्षेत्रफल का 20.64 प्रतिशत भाग पर वन विस्तृत है। इसके साथ सम्पूर्ण क्षेत्र में वन भूमि का अनुपात समान नहीं है। राज्यों के वन क्षेत्र में अत्यधिक अन्तर है। देश के पूर्वोत्तर राज्य नागालैण्ड, मिजोरम में सर्वाधिक लगभग 87 प्रतिशत वन क्षेत्र है तो न्यूनतम हरियाणा में लगभग 2 प्रतिशत ही वन क्षेत्र है। यदि वनों का वितरण धरातल सम्बन्धी विशेषताओं को ध्यान में रखकर उनका भौतिक प्रदेशों से वितरण देखा जाये तो प्रायद्वीपीय, पहाड़ियों एवं पठार पर कुल वन क्षेत्रफल का 50 प्रतिशत तथा सबसे कम विशाल मैदानी प्रदेश में 7.5 प्रतिशत है। निम्न तालिका में भौतिक प्रदेशों के अनुसार वनों का वितरण दिखाया गया है।

तालिका 17.3 : भौतिक प्रदेशों के अनुसार वनों का वितरण

भौतिक प्रदेश	**कुल वनों का वितरण**
हिमालय पर्वतीय प्रदेश	20.00
विशाल मैदानी प्रदेश	7.50
प्रायद्वीपीय पहाड़ियाँ एवं पठार	50.00
पश्चिमी घाट व तर प्रदेश	10.50
पूर्वी घाट व तर प्रदेश	12.00
कुल	**100.00**

वनों के विनाश से होने वाले दुष्प्रभावों से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष में होने वाली हानियों का विवरण भारत की प्रमुख पर्यावरणीय निम्नलिखित है–

17.14 वन विनाश से होने वाली हानियां (Loss due to Deforestation)

1. वनों के विनाश से देश की जलवायु पर गहरा प्रभाव पड़ता है। हिमालय प्रदेश में शिवालिक पर्वतमाला के ढालों पर स्थित वनों को नष्ट कर दिए जाने से वहां की जलवायु शुष्क हो गयी है। जिससे वहां की भूमि अनुउपजाऊ बनती जा रही है।
2. पर्वतीय ढालों के वन कट जाने से नदियों का प्रवाह तेज हो जाता है। जिससे मिट्टी का क्षरण अधिक होने लगता है। और बाढ़ का प्रकोप बढ़ जाता है जिससे तटवर्ती गांवों को अपार जन–धन की हानि उठानी पड़ती है।
3. वनों के कट जाने से वर्षा कम होती है और भूमि का जल अधिक मात्रा में वाष्प बनकर उड़ने लगता है।
4. पश्चिमी घाटों के ढलानों पर चाय, रबड़, कहवा और इलायची की फसलें पैदा किए जाने से भी वनों का क्षेत्रफल कम हुआ है।
5. वनों के कट जाने से पशुओं के लिए चारे की कमी हो रही है जिससे दुधारू पशु निर्बल होने से दूध कम देते हैं।
6. वनों के कट जाने से इन पर निर्भर उद्योग धन्धों को भी कच्चे माल का अभाव हो जाता है।

7. वनों का ह्लास भूमि के कटाव में सहायक सिद्ध हो रहा है। इससे भूमि की ऊपरी परत (Top Soil) का विनाश हो रहा है जिसकी वजह से प्रतिवर्ष 5 करोड़ टन अनाज के उत्पादन में कमी आती है।

वनोन्मूलन से तात्पर्य मात्र वनों के क्षेत्र में कमी होना ही नहीं है। अपितु इसके बहुआयामी प्रभाव होते है जो देश की आर्थिक, सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक वैभव में परिवर्तन ला देते है तथा वनोन्मूलन की प्रवृत्ति पर रोक नहीं लगायी जा सकी तो राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड (NWDB) के अध्ययन के अनुसार यदि बड़े व सघन पैमाने पर वृक्षारोपण कार्यक्रम नहीं चलाया गया तो अगले 15 वर्षो में उत्तरी भारत के विशाल मैदान की स्थिति थार मरूस्थल जैसी हो सकती है। थार मरूस्थल के क्षेत्र में कभी सरस्वती नदीं बहा करती थी और वहां पर वनस्पति की काफी मात्रा थी। वर्तमान में भारत में वनोन्मूलन की प्रवृत्ति में निरन्तर वृद्धि देश के पर्यावरण के लिए सबसे अधिक खतरा है वनों की सुरक्षा एवं संरक्षण के साथ–साथ वन क्षेत्र में वृद्धि की आवश्यकता है।

वनोन्मूलन रोकने तथा वन संरक्षण के प्रति भारत सरकार ही नहीं उसकी राज्य सरकारें भी पूर्णतया सचेत है। केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा वनोन्मूलन को रोकने तथा उसके संरक्षण के लिए कई कानून बनाए है। भारत में ब्रिटिश शासनकाल में सन् 1894 में प्रथम वन नीति बनाई गई।

17.15 वन विनाश के प्रमुख कारण (Main Causes of Deforestation)

राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार वास्तविक रूप से हिमालय पर्वत और दक्षिणी पठार एवं पहाड़ी क्षेत्रों पर कुल भूमि के 60 प्रतिशत भू–भाग तथा मैदानों की 20 प्रतिशत भूमि पर वनों का विस्तार होना चाहिए। परन्तु वनों का विस्तार होने की बजाय वनों का विनाश हो रहा है। जिसके मुख्य कारण निम्न है -

1. जनसंख्या वृद्धि एवं नगरीकरण के कारण वन भूमि को आवासीय भूमि में बदलना।
2. बढ़ती जनसंख्या की उदर पूर्ति हेतु उत्पादन बढ़ाने के लिए वन भूमि को कृषि उपयोग में लेना।
3. वृहत् बांध बनाने से वन क्षेत्र का जल ग्रहण क्षेत्र में जल मग्र होना।
4. वन क्षेत्रों में वैध एवं अवैध खनन होना।
5. भूमि का कटाव होना।
6. ईंधन एवं अन्य उपयोग हेतु वनों की कटाई
7. वन आधारित उद्योगों के लिए कच्चे माल की आवश्यकता हेतु।
8. सरकारी वन नीतियों की अवहेलना
9. वनों की लकड़ी से इमारती फर्नीचर बनाना
10. जनसाधारण में वन संरक्षण चेतना का प्रभाव आदि।

17.16 वन विनाश के दुष्प्रभाव (Effects of Deforestation)

उपरोक्त कारणों से सिर्फ वन क्षेत्रों में कमी ही नहीं होती बल्कि इसके अनेक दुष्प्रभाव होते है जिन्हें हम मुख्य रूप से चार भागों में विभक्त कर सकते हैं–

वन विनाश के दुष्प्रभाव

वनोमुलन के परिणामस्वरूप सम्पूर्ण हिमालय का पारिस्थितिकी तन्त्र (Ecosystem) बदल गया है। तापमान बढ़ रहा है, जिससे ग्लेशियर्स पिघल रहे हैं। आन्ध्रप्रदेश में शीतोषण वन क्षेत्र रात्रि में गर्म क्षेत्रों में परिवर्तित हो रहे है। राजस्थान में धीरे धीरे बंजर भूमि के क्षेत्र में वृद्धि हो रही है। तमिलनाडु व हिमालय प्रदेश जैसे राज्यों में कभी–कभी सूखा पड़ना आम बात हो गई है। गंगा नदी में पानी का स्तर काफी गिर गया है। देश के विज्ञान एवं पर्यावरण केन्द्र (Centre for Science and Environment) के अनुसार देश का कोई भी भाग पर्यावरण में विनाशकारी परिवर्तन से नहीं बचा है। हरियाणा का सोनीपत जिला जो हरित क्रान्ति का केन्द्र था उस क्षेत्र में स्थित वनों से घिरा हुआ गांव अकबरपुर वनों के काटे जाने के कारण बंजर व उबड़ खाबड़ भूमि में परिवर्तित हो गया है। तमिलनाडु के थिरूवेल्लूर, धर्मापुरी जिलों के कुछ गांवों में वर्ष में एक फसल उगाना भी कठिन हो गया है। अरूणाचल प्रदेश के पश्चिमी कामेंग जिले के पर्वतीय ढालों पर वनस्पति का सफाया हो गया है। झारखण्ड के रांची जिले में साल वनों के काटे जाने के बाद अब वहां पर नंगी चट्टानें व झाड़ियाँ मिलती है।

वन विनाश को रोकने के लिए अनेक मूलभूत नीतियां बनाई गई जैसे –

1. वनारोपण द्वारा वनों का विस्तार किया जाए।
2. सामान्य कार्य हेतु ग्रामीणों के ईधन हेतु लकड़ी की समुचित आपूर्ति की व्यवस्था तथा पशुओं के चरागाह का संरक्षण किया जाए।
3. वनों को काटकर कृषि भूमि के विस्तार पर रोक लगायी जाए।
4. निर्माण कार्यों के लिए वनों के विनाश पर रोक लगायी जाए।
5. पहाड़ी ढलानों पर वनों की सुरक्षा की जाए।
6. वनों का समुचित वर्गीकरण कर उन्हें संरक्षित वन, आरक्षित वन, तथा ग्राम्य वन आदि में विभक्त किया जाए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के 5 वर्ष बाद 1952 में दूसरी राष्ट्रीय वन नीति घोषित हुई जिसमें निम्नलिखित मूल सिद्धान्त निर्धारित किए गये :–

1. कुल भौगोलिक क्षेत्र के 33.3 प्रतिशत में वन क्षेत्रों होने चाहिए।

2. वनों के कार्यमूलक आधार पर वर्गीकृत करना (आरक्षित वन, राष्ट्रीयन वन, गांव के वन आदि)
3. स्थानीय तथा सामान्य कल्याण के लिए कृषि एवं वन भूमि में सन्तुलन बनाए रखना।
4. नदियों के उदगम स्थल, भू–क्षरण वाले क्षेत्र तथा समुद्र तटीय रेत के टीलों को रोकने लिए वहां के क्षेत्र में लकड़ी की कटाई रोककर वानिकी का विस्तार करना।

उपरोक्त नीतियों के लागू होने के बाद 1980 में वन संरक्षण अधिनियम बनाया गया जिसके अन्तर्गत वन भूमि के अंधाधुंध अनारक्षण और उपयोग को रोकने पर महत्व दिया गया है।

वनों एवं वन जीवन क्षेत्र के कामकाज की समीक्षा के लिए वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने 7 फरवरी 2003 को राष्ट्रीय वन आयोग का गठन किया जिसका कार्यकाल 31 मार्च 2006 को समाप्त हुआ, जिसके अगले 20 वर्षो के लिए एक वृहद राजनीतिक योजना के रूप में राष्ट्रीय वन कार्यक्रम (N.F.A.P.) तैयार किया गया है मंत्रालय ने वन संरक्षण नियम 2003 को अधिसूचित कर 1981 में पारित वन अधिनियम को संशोधित किया है।

वनों का पर्यावरण का पर्याय मानकर सरकारी एवं गैर सरकारी दोनों ही स्तरों पर व्यापक प्रयत्न किए जा रहे है। 'चिपको' जैसे जन आन्दोलन वनों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। फिर भी वनोमूलन के कारण आज देश के सामने पारिस्थितिकी संकट खड़ा हो गया है। जिसका निराकरण नितान्त आवश्यक है।

बोध प्रश्न - 5

1. कुल भौगोलिक भूमि के कितने प्रतिशत भाग पर वन होने चाहिए?

   .....

   .....

2. देश के किस भौतिक प्रदेश में 50 प्रतिशत वन पाये जाते है ?

   .....

   .....

3. पश्चिमी घाट के ढलानों पर कौन सी फसलों का उत्पादन किया जाता है?

   .....

   .....

4. थार मरुस्थल में पहले कौन सी नदी बहती है?

   .....

   .....

17.17 मृदा अवकर्षण (Soil Degradation)

मिट्टी एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए तो इसका महत्व सर्वाधिक है। मिट्टियाँ भारतीय कृषक की अमूल्य सम्पदा है जिस पर देश का सम्पूर्ण कृषि उत्पादन निर्भर करता है। कृषि भूमि पर जनसंख्या का दबाव निरन्तर बढ़ते रहने से भारत में मिट्टियों का दोहन उनकी क्षमता से अधिक हो रहा है तथा कुछ प्राकृतिक कारणों से भी मिट्टियों का अवकर्षण हो रहा है। भारतीय मिट्टियों की उर्वरा शक्ति प्रति वर्ष गिरती जा रही है इसके

साथ साथ कई भागों की उपजाऊ मिट्टियाँ पानी के कटाव से अपरदित होती हुई समुद्रों में जाकर जमा हो रही है। भूमि के अपक्षरण की यह समस्या भारत में एक बहुत बड़ी समस्या बनती जा रही है। इसे दूसरे शब्दों में 'रेंगती हुई मृत्यु' (Creeping Death) कहा जाता है।

17.18 मृदा अवकर्षण के प्रमुख कारण (Main Causes of Soil Degradation)

भारत में मिट्टी के उपजाऊ पन में कमी आने के कारण मिट्टी अवकर्षण हो रहा है। भारत में मिट्टी अवकर्षण के प्रमुख कारण निम्न है–

1. मिट्टी अपरदन (Soil Erosion)
2. जल शक्ति (Water Logging)
3. क्षारीय भूमि (Alkine Land)
4. बंजर भूमि (Waste Land)
5. मरू भूमि विस्तार (Expansion of Desert Land)
6. मानव द्वारा भूमि शोषण (Exploitation of Land by Men)
7. नगरों, उद्योग धन्धों एवं यातायात के साधनों के विकास के कारण कृषि भूमि के अपहरण की समस्या (Exploitation of Agricultural land for settlements, Industries and Transportation)

मृदा अवकर्षण के उपरोक्त कारणों का वर्णन इकाई 7 में मृदा प्रदूषण के अन्तर्गत कर चुके हैं, इसके विस्तृत अध्ययन के लिए इकाई 7 का अवलोकन करें।

भारत के अनेक क्षेत्रों में मिट्टी अपरदन एक बहुत बड़ा खतरा बन गया है। पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, उड़ीसा, असम राज्य अपरदन की समस्या से सर्वाधिक पीड़ित है। डॉ. ग्लोवर के अनुसार मिट्टी अपरदन से भारत में 15 करोड़ एकड़ भूमि की क्षति हो रही है। जे. रसेल का अनुमान है कि देश के विभिन्न भागों में प्रति हेक्टेअर 2. 5 से 288 टन मिट्टी नष्ट हो रही है। इस प्रकार भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल में से लगभग 8 करोड़ हेक्टेयर तथा वास्तविक कृषि क्षेत्र में से लगभग 4 करोड़ हेक्टेयर कृषि भूमि जल एवं वायु द्वारा प्रभावित है। एक अन्य अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष वर्षा से भूमि की .125 मिली मीटर ऊपरी सतह की उपजाऊ मिट्टी नष्ट हो रही है। प्रतिवर्ष मिट्टी का औसतन 2 प्रतिशत भाग बहकर चला जाता है।

मानचित्र: 17.1 : मिट्टी का क्षरण

स्त्रोत: भरत का वृहत भूगोल, चतुर्भुज मामोरिया

भारत में मृदा अपरदन के द्वारा मृदा अवकर्षण को जल एवं वायु द्वारा अपरदन में प्रभावित क्षेत्रों में विभाजित कर अध्ययन कर सकते है।

17.19 जल द्वारा अपरदन (Water Erosion)

उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और पश्चिमी बंगाल में जल द्वारा अपरदन की समस्या अधिक है। उ.प्र. तथा म.प्र. में चम्बल नदी क्षेत्र में तो जल द्वारा अपरदित 'चम्बल के बीहड़' प्रसिद्ध है। भारत में जल द्वारा अपरदन मुख्यत: ब्रह्मपुत्र, टोरसा, तिस्ता, हुगली, गंडक, गंगा, यमुना, और चम्बल के किनारे अधिक होता है। इन नदियों के द्वारा अपरदन से तो भूमि का अवकर्षण होता ही है नमक, क्षार तथा जल प्लावन के कारण भूमि कृषि अयोग्य हो जाती है। भारत में हो रहे जल द्वारा अपरदन को क्षेत्रवार निम्न प्रकार अध्ययन किया गया है।

1. मध्यप्रदेश में चम्बल नदी की निचली घाटी में भारी अपरदन होता है जिससे लगभग 15 लाख एकड़ भूमि प्रभावित हो चुकी है जिसमें 6 लाख एकड़ तो भिण्ड, ग्वालियर, मुरेना जिलों की है इसमें से हजारों हैक्टेयर खड्डों के रूप में (बीहड़) परिवर्तित हो चुकी है। चम्बल। नदी को मिट्टी अपरदन को सर्वाधिक प्रोत्साहित करने वाली मानी जाती है इसके द्वारा बने विशाल बीहड़ों में कुछ तो ऐसे है जिनमें पूरी की पूरी सेना समा सकती है पहले इन बीहड़ों में डाकू दल विचरण किया करते थे परन्तु अब अधितकर डाकुओं के समर्पण के बाद विश्व बैंक की सहायता से इसे कृषि योग्य बनाने के लिए समतल करने के प्रयास किए जा रहे है।
2. उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार तथा अन्य राज्य जो गंगा एवं उसकी सहायक नदियों के क्षेत्र में आते है वे क्षेत्र भी अपरदन की विभीषिका से मुक्त नहीं है। ये नदियाँ धीरे धीरे क्रम से मैदानों में गहरे नाले बनाकर भूमि की उर्वरा युक्त परत को बहा कर साफ करती रहती है। विद्वानों का मत है अकेली गंगा नदी प्रतिवर्ष 30 करोड़ टन मिट्टी ले जाकर बंगाल की खाड़ी में डालती है।

   उत्तर प्रदेश के आगरा मथुरा एवं इटावा जिलों में दूर दूर तक विशाल बंजर भूमि दिखाई देती है। अकेले इटावा में ही 48 हजार हैक्टेअर बंजर भूमि है। जो चम्बल, यमुना एवं सहायक नदियों के परिणाम है। उत्तर प्रदेश में भूमि अपरदन से ध्वस्त भूमि 36 लाख हेक्टेयर है। लखनऊ, बुन्देलखण्ड और आगरा की बंजर भूमि से धरातलीय अपरदन पिछले 200 वर्षों से हो रहा है जिससे लगभग 30 सेन्टीमीटर गहराई तक मिट्टी कटकर चली गई है।

मानचित्र – 17.2 : नदियों द्वारा निर्मित बीहड़ क्षेत्र

स्रोत: भारत का वृहत भूगोल, चतुर्भुज मामोरिया

3. पंजाब और हरियाणा में शिवालिक पहाड़ियाँ से आने वाली नदियाँ अपने साथ रेत बहाकर लाती है। इन्हें 'चो' रेतली नदियाँ कहते है। होशियारपुर और अम्बाला जिलों में ऐसी नदियां काफी अधिक प्रभावकारी है। शिवालिक तथा हिमालय पर्वतमाला में जल बहाव के द्वारा खड्डे और नाले सैकड़ों मीटर गहरे बन गये हैं। जिस कारण से भूमि में दरारें पड़ जाती हैं। इसलिए वहां के लोग गांव और घर छोड़कर अन्यत्र जाने के लिए बाध्य हो गये हैं।
4. महाराष्ट्र तथा दक्कन के पठार पर कपास उत्पादक मिट्टी जल की घातक क्रियाओं को बिल्कुल सहन नहीं कर पाती है। यहां अनुमानत् प्रतिवर्ष प्रति एकड़ 133 टन मिट्टी क्षतिग्रस्त होती है।
5. तमिलनाडु में थिरूवेल्लूर, वेरूपुँल्लम धर्मापुरी, कन्याकुमारी, तिरूचिरापल्ली, चिंगलपेट, सलेम और कोयम्बटूर जिलों में भी नदियों द्वारा अपरदित भूखण्ड पाये जाते है।
6. पश्चिम बंगाल में कांग्सवती नदी के प्रवाह क्षेत्र में विशेष कर पुरूलिया जिले में जल द्वारा निर्मित अनेक गहरी नालियां पायी जाती है। इस क्षेत्र में मिट्टी क्षरण द्वारा प्रभावित क्षेत्र लगभग एक लाख एकड़ तक पहुंच गया है।
7. नदियों के अलावा इन नदियों पर बनाये गये अनेक बांधो के डूब क्षेत्र में आने वाली भूमि का ह्लास हो जाता है यह भूमि पानी के भराव क्षेत्र के अलावा किसी भी काम में नहीं आती है।

17.20 वायु द्वारा अपरदन (Erosion by Wind)

वायु द्वारा मृदा अपरदन होने वाले क्षेत्रों में राजस्थान, उत्तरप्रदेश, हरियाणा एवं दिल्ली का मुख्य स्थान है। राजस्थान स्थित थार मरूस्थल का धीरे धीरे विस्तार राजस्थान के उत्तरी व पूर्वी सीमावर्ती राज्यों की ओर हो रहा है। जो लगभग 0.8 कि.मी. की गति से बढ़ रहा है। राजस्थान की भूमि पर सिंध से अपरदित रेत बिछती जा रही है।

वायु द्वारा अपरदन सामान्यत: राजस्थान के जैसलमेर, जोधपुर, बाड़मेर, बीकानेर, जयपुर, चुरू जिलों तथा हरियाणा और पंजाब के क्षेत्रों में देखा जा सकता है। राजस्थान में इस प्रक्रिया से गत शताब्दी में प्रति वर्ग कि.मी. 34 लाख टन उपजाऊ मिट्टी वायु द्वारा उड़ाकर ले जाई गई। इस स्थल के अनेक क्षेत्रों में तेज वायु बहुधा जोते और बोये गये खेतों पर बालू की परत जमा देती है जिसके फलस्वरूप उत्पादन संभव नहीं हो पाता है।

मानचित्र – 17.3 : वायु द्वारा अपरदित क्षेत्र

स्त्रोत: भारत कर वृहद भूगोल, चतुर्भुज मामोरिया

जल एवं वायु द्वारा अपरदन के अलावा भी भूमि अवकर्षण के अन्य और भी कारण है जिससे भारत के विभिन्न क्षेत्रों में मृदा का अवकर्षण हुआ है। जिसमें जल शक्ति समस्या (Water Logging)से इन्दिरा गांधी केनाल कमाण्ड एरिया में गंगानगर एवं हनुमानगढ़ जिले में भूमि का अवकर्षण हुआ है। भारत के महानगरों सहित बड़े नगरों के विस्तार से इन नगरों के आस पास की उपजाऊ कृषि भूमि आवासीय, यातायात तथा उद्योगों की स्थापना में काम में ले ली गई। जिससे उपजाऊ मृदा का अवकर्षण हुआ है, उदाहरण के लिए राजस्थान की राजधानी जयपुर जो स्थापना के समय मात्र लगभग 7 वर्ग किलोमीटर में बसी थी आज उसका विस्तार 680 वर्ग कि मी. में लगभग 100 गुना हो चुका है। इन नगरों में बढ़ती आबादी के रहने हेतु मकान बनाने के लिए ईटों की आवश्यकता हेतु बस्ती के नजदीक की कृषि भूमि को खोदकर उसकी मिट्टी से ईंट पकायी जाती है। इससे भी मृदा का अवकर्षण होता है।

17.21 मृदा संरक्षण (Soil Conservation)

मृदा को अवकर्षण से बचाने के लिए इसका संरक्षण आवश्यक है क्योंकि मृदा अवकर्षण से पारिस्थितिक सन्तुलन बिगड़ रहा है। इसलिए मृदा को अवकर्षण से बचाने के लिए निम्न उपाय किए जा सकते है।

1. ठोस अपशिष्टों का निस्तारण
2. अनियन्त्रित खनन पर रोक
3. पशुचारण पर नियंत्रण

4. खेतों की उचित मेड़बन्दी
5. मृदा अपरदन को कम करने के उपाय
6. वृक्षारोपण कर वन क्षेत्र को बढ़ाना
7. नदियों में बाढ़ नियंत्रण हेतु उनकी धाटियों में बांध बनाना।
8. फसलों का चक्र बदलना
9. भूमि की उपजाऊ बनाने के लिए जैविक खाद का उपयोग करना।
10. स्थानान्तरित कृषि को स्थायी कृषि में बदलकर और वनों की नहीं काटना

भूमि संरक्षण के लिए दिए गए उपरोक्त सुझावों में ठोस अपशिष्ट निस्तारण का विस्तृत विवरण इकाई 7 में दिया जा चुका है, उसका अवलोकन करें।

हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में भूमि संरक्षण के अन्तर्गत मृदा का अपरदन रोकने सम्बन्धी उपाय करना, जल का संरक्षण करना, सिंचाई जल की निश्चित आपूर्ति, भूमि को समतल करना, भूमि सुधार लागू करना, क्षारीय भूमि को कृषि योग्य बनाना आदि को शामिल किया गया है।

क्षारीय भूमि के सुधार का कार्य सातवीं योजना से शुरू किया गया। इसका लक्ष्य क्षारीय भूमि को अधिकतम उत्पादन योग्य बनाने के लिए उसकी भौतिक स्थिति एवं उत्पादकता के स्तर में सुधार लाना है। यह योजना पंजाब ,हरियाणा, गुजरात, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश व राजस्थान में शुरू की गई है। उतरप्रदेश में क्षारीय भूमि के सुधार पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। यहां पर 1993–94 से 1999–2000 के सात वर्षों में 30825 हैक्टयेर भूमि का सुधार किया जा चुका है।

स्थानान्तरण कृषि क्षेत्रों को स्थायी कृषि क्षेत्रों में बदलने की योजना उत्तर–पूर्व में स्थित सात राज्यों में लागू की गई है।

बोध प्रश्न– 6

1. जे. रसेल के अनुसार प्रति हेक्टेयर कितनी मिट्टी नष्ट हो गई है?

   .....

   .....

2. अपरदन के मुख्य दो प्राकृतिक स्त्रोत कौन से है?

   .....

   .....

3. पंजाब व हरियाणा के शिवालिक पहाड़ियों से आने वाली नदियाँ अपने साथ रेत बहाकर लाती है, इन नदियों को क्या कहते है?

   .....

   .....

4. वायु द्वारा अपरदन होने वाले क्षेत्रों मुख्य राज्य कौन–कौन से है?

   .....

   .....

5. जल शिक्ती की समस्या (Water Logging) राजस्थान के कौन–कौन से जिलों में अधिक है।

.....

.....

17.12 सारांश (Summary)

भारत एक विकासशील देश है। यहां जनसंख्या वृद्धि ही तीव्र दर के साथ नगरीकरण में भी वृद्धि हो रही है। जिसके कारण औद्योगिक विकास तो हो ही रहा है तथा वाहनों की संख्या में भी बेशुमार वृद्धि हो रही है। जो वायु प्रदूषण के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान कर रहे हैं। इस वायु प्रदूषण से भारत के चारों महानगर, अन्य नगर तो प्रदूषित हो ही रहे हैं। साथ में धीरे धीरे ग्रामीण क्षेत्र भी वायु प्रदूषण की समस्या से आक्रान्त हैं।

भारत में घटी भोपाल गैस त्रासदी औद्योगिकीकरण के कारण हुई वायु प्रदूषण की सबसे खतरनाक समस्या थी। जिसका नुकसान आज भी भोपाल वासी भुगत रहे है।

वायु प्रदूषण की भांति जल प्रदूषण की समस्या भी एक ज्वलंत समस्या है। भारत की नदियां, झीलें, बांध, सागर तथा भूमिगत जल, जल प्रदूषण से मुक्त नहीं है। इस जल प्रदूषण ने भारत की पवित्र मानी जाने वाली गंगा नदी को सर्वाधिक प्रदूषित किया है। पेय जलों के स्रोत के प्रदूषित होने से पेय योग्य जल की तो भयंकर समस्या हो ही गई है। साथ ही प्रदूषित जल पीने से अनेक रोगों का सामना करना पड़ रहा है।

ध्वनि प्रदूषण भी धीरे –धीरे भारत के महानगरों के साथ धीरे–धीरे ग्रामीण अंचल में भी प्रवेश कर रहा है। लेकिन इस प्रदूषण की तरफ लोगों का ध्यान उतना नहीं है जितना जल एवं वायु प्रदूषण के बारे में है।

ठोस अपशिष्ट निस्तारण आज सरकार के सामने एक विकट समस्या खड़ी हो गई है, क्योंकि यह एक ऐसी समस्या है जिसमें सभी की भागीदारी है शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो इससे जुड़ा नहीं है। वर्तमान में तो उपयोग करो और फैंकों की नीति ने तो इस समस्या को और अधिक विकराल बना दिया है। प्रत्येक नगर और गांव से एकत्रित ठोस अपशिष्टों को एकत्र करने से लेकर उनके निस्तारण तक के प्रबन्धन की सुचारू व्यवस्था के बिना इस समस्या से निजात नहीं पाया जा सकता है।

वनोन्मूलन भी आज हमारे देश में एक विकट समस्या है जहां कुल भूमि का 33 प्रतिशत भाग वनों से वनाच्छादित होना चाहिए इसकी जगह सिर्फ 20 प्रतिशत ही आज वनाच्छादित है उसमें भी प्रतिवर्ष वन विनाश के कारण वन क्षेत्र में कमी हो रही है। जहां वनों से हमें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अनेक लाभ होते है उसके साथ ही वनोन्मूलन से भारी हानियाँ हो रही है।

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में मृदा का सर्वाधिक महत्व है। लेकिन प्राकृतिक एवं मानवीय कारणों से मृदा का अवकर्षण हो रहा है। मृदा का अपरदन तथा अपक्षरण भारत की बहुत बड़ी समस्या बनती जा रही है। इसे दूसरे शब्दों में "रंगती हुई मृत्यु" भी कहा जाता है। भारत में मृदा का सबसे अधिक अपरदन वायु तथा जल के द्वारा होता है। यदि हमने मृदा का संरक्षण

नहीं किया तो धीरे–धीरे उपजाऊ मृदा का पूर्ण अवकर्षण हो जायेगा तथा हमें कृषि के लिए भूमि की कमी हो जायेगी। अत: मृदा को अवकर्षण से बचाने के लिए उपाय करना जरूरी है।

17.23 शब्दावली (Glossary)

- **भूमिगत जल (Ground Water) :** धरातलीय जल प्रवाह के दौरान भूमिगत होकर जलभूतों (Aquifers) में संचित होता है उसे भूमिगत जल कहते है।
- **रेंगती हुई मृत्यु (Creeping Death)** मृत्यु अपरदन की बढ़ती दर को पर्यावरणीय
- पोषणता के संदर्भ में इसे लेती मृत्यु कहा जाता है।
- **अपक्षय (Weathering) :** किसी भूखण्ड के वायु, ताप तथा रासायनिक क्रियाओं द्वारा अपक्षयित होने के लिए प्रयोग में लिया जाता है।
- **अपरदन (Erosion) :** भौतिक एवं मानवीय क्रियाओं द्वारा मृदा कणों का अपनी सतह से अलग होना।
- **मृदा संरक्षण (Soil Conservation) :** मृदा को नष्ट होने से बचाने के लिए किए गए उपायों से मृदा को बचाना।
- **डेसीबल (Db) :** ध्वनि की मात्रा।
- **वनोब्लन (Deforestation) :** वनों के क्षेत्रों में कमी होना।

17.24 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Gilpin, Alena : **Dictionary of Environmental Terms,** 1978
2. Maxwell, K.E. : **Environmental of Life,** P. 61 Dicheman Peby Co., California, 1973
3. Rao, K.L : **Indian water wealth,** Orient Longman, N. Delhi, 1975
4. Sharma, H.S. (eds.) : **Environmental Design and Development.** Scientific Pub. Jodhpur., 1988
5. Stamp Dudley : **A Glossary of Geographical terms,** Longman, London, 1928
6. रघुवंशी, अरूण और चन्दलेखा रघवुंशी : **पर्यावरण तथा प्रदूषण,** म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1987
7. श्रीवास्तव,वी.के. एवं राव.बीपी : **पर्यावरण ओर पारिस्थितकी,** वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 1991
8. Gurjar, R.K. and Shukla Laxmi : **Water Resources, Environment and the People,** Pointer Publisher, Jaipur, 1998
9. दुबे, सुशील कुमार. **औद्योगिक प्रदूषण एवं मानव जीवन कानपुर नगर का भौगोलिक अध्ययन,** शोध पत्र, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका वाल्यूम 38, 2005
10. सिंह, सविन्दर : **पर्यावरण भूगोल,** प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद (यू.पी.), 1991

11. शर्मा, दामोदर एवं हरि महर्षि : **जल एवं जल प्रदूषण,** साहित्यागार, जयपुर, 1996
12. गुर्जर, रामकुमार : **पर्यावरणीय समस्याएं,** पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2000
13. अवस्थी, एन.एम. **पर्यावरणीय अध्ययन,** लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, 2004
14. जोशी, रतन **पर्यावरण अध्ययन,** साहित्य भवन, पब्लिकेशन, आगरा, 2007
15. सक्सेना, हरि मोहन. **पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी भूगोल,** राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1994
16. भरूचा, ईराक : **पर्यावरण अध्ययन,** विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के लिए निर्मित – ओरियंट लांग्मेन, प्राइवेट लिमिटेड, 2006
17. गुर्जर, रामकुमार एवं जाट बी.सी. : **पर्यावरण अध्ययन,** पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2004
18. शर्मा, एम.एल. एवं नाटानी पी.एन. : **पर्यावरणीय अध्ययन,** माया प्रकाशन मंदिर, जयपुर, 2005
19. Kalwar, S.C. : **Environtmental and Planning for Development,** Concept Publishing Company, New Delhi, 2008.
20. मित्तल, संतोष एवं अग्रवाल मीनू : **पर्यावरणीय शिक्षा,** नव चेतना पब्लिकेशन, जयपुर, 2004
21. जांगिड, मोहन लाल : **ऊर्जा के स्रोत,** स्थिति एवं संरक्षण, शिविरा पत्रिका, माध्यमिक शिक्षा, निदेशालय, राजस्थान, अंक 6 पृष्ठ 15 2002
22. कलवार, सुगन चन्द : पर्यावरण संरक्षण, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2000
23. Kalwar, S.C. : **Wastelands and Planning for Development,** Concept Publishing Company, New Delhi, 2008.

17.25 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. टन
2. दिल्ली
3. 2–3 दिसम्बर 1984
4. मिक (मिथाइल–आइसो–साइनाट)
5. थायोसाइनेट

बोध प्रश्न - 2

1. चमड़े को रंगने एवं साफ करने से
2. 600 कि.मी.
3. सिंदरी उर्वरक कारखान
4. डल झील
5. आर्सेनिक

बोध प्रश्न – 3

1. 65dB, 55dB
2. 78dB, 67dB
3. औद्योगिकरण, नगरीकरण, एवं वाहनों में वृद्धि
4. बहरापन

बोध प्रश्न – 4

1. 1988
2. पर्यटन, प्लास्टिक
3. बी. शिवारमन
4. संक्रामक

बोध प्रश्न – 5

1. 33 प्रतिशत
2. प्रायद्विपीय पहाड़िया एवं पठार
3. चाय, रबड़, कहवा और इलायची
4. सरस्वती नदी

बोध प्रश्न – 6

1. 2.5 से 2.8 टन
2. जल एवं वायु
3. 'चो' रेतीली नदियाँ
4. राजस्थान, उत्तरप्रदेश, हरियाणा
5. गंगानगर एवं हनुमानगढ़

17.26 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत में वायु प्रदूषण से होने वाली दुखद त्रासदी भोपाल गैस कांड पर एक लेख लिखिए।
2. भारत में वायु प्रदूषण के बढ़ते दुष्प्रभाव एवं उससे बचाव के उपाय लिखिए।
3. भारत में नदी जल प्रदूषण पर एक भौगोलिक लेख प्रस्तुत करें।
4. ठोस अपशिष्ट के प्रभाव एवं भारत में इसके निस्तारण से सम्बन्धी एक निबन्ध लिखें।
5. वनोन्मूलन से होने वाले दुष्प्रभावों पर एक आलोचनात्मक लेख लिखें।
6. मृदा अवकर्षण को समझाते हुए इसके प्रमुख कारण लिखिए।
7. भारत में मृदा अवकर्षण से होने वाली समस्याओं के बारे में लेख प्रस्तुत करते हुए उसके संरक्षण के उपाय लिखें।
8. टिप्पणी लिखिए –

   (अ) भारत के महानगरों में वाहनों द्वारा वायु प्रदूषण

   (ब) झील एवं सागरीय जल प्रदूषण

   (स) ध्वनि प्रदूषण

(द) चिकित्सालय अपशिष्ट

(य) भारतीय वन नीति

(र) जल एवं वायु द्वारा मृदा अपरदन

इकाई 18 : भारत में पर्यावरणीय विधि व्यवस्था (Environmental Legislation in India)

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 भारत में पर्यावरणीय विधि की पृष्ठ भूमि

18.3 स्वतन्त्र भारत में पर्यावरणीय विधि

18.3.1 पर्यावरण सम्बन्धी अधिनियम

18.3.1.1 जल प्रदूषण निवारण एवम् नियंत्रण अधिनियम, 1974

18.3.1.2 वायु प्रदूषण निवारण एवम् नियंत्रण अधिनियम, 1981

18.3.1.3 शोर प्रदूषण नियमन एवम् नियंत्रण नियम, 2000

18.3.1.4 वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980

18.3.1.5 वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972

18.3.1.6 पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986

18.3.2 परिसंकटमय अपशिष्ट प्रबन्धन सम्बन्धी नियम

18.3.3 अन्य अधिनियम एवं नियम

18.4 सारांश

18.5 शब्दावली

18.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

18.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

18.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के उद्देश्य हैं–

- भारत में पर्यावरणीय विधि के विकास से परिचित कराना
- भारत के विभिन्न पर्यावरणीय अधिनियमों एवं नियमों की जानकारी प्रदान करना

18.1 प्रस्तावना (Introduction)

पर्यावरण का संरक्षण करना तथा इसकी शुद्धता को बनाये रखना प्रत्येक देश की सरकार का दायित्व है। इसके लिये विभिन्न प्रकार के कानून बनाये जाते हैं, जिनके द्वारा न केवल पर्यावरण को संरक्षित करने में सहायता मिलती है अपितु पर्यावरण को हानि पहुँचाने वालों को सजा का भी प्रावधान होता है। भारत में प्राचीन काल से पर्यावरण के प्रति चेतना रही है तथा जल, वायु, भूमि, वनस्पति आदि को संरक्षित करना जीवन का अंग माना जाता था। यद्यपि उस समय पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्यायें भी नहीं थी। मध्यकाल में इस दिशा में विशेष

ध्यान नहीं दिया गया। ब्रिटिश शासन के समय कतिपय पर्यावरण सम्बन्धी क़ानूनों को लागू किया गया। वास्तविक रूप में स्वतन्त्रता के पश्चात् ही भारत में पर्यावरणीय विधि व्यवस्था का प्रारम्भ हुआ। भारतीय संसद में 42 वाँ संविधान संशोधन एक्ट 1976 के दो अनुच्छेदों (48 ए) और 51 ए (जी) द्वारा पर्यावरण संरक्षण को कानूनी स्वरूप प्रदान किया गया। वर्तमान में भारत में जल, वायु, ध्वनि (नियन्त्रण एवं निवारण) अधिनियम, वन संरक्षण अधिनियम, वन्य जीव संरक्षण अधिनियम के अतिरिक्त पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 के अन्तर्गत विभिन्न प्रावधान किये गये हैं। इसके अतिरिक्त अनेक नियम हैं जो पर्यावरण को हानि पहुँचाने से रोकते हैं तथा पर्यावरण का संरक्षण करने में सहायक होते है।

18.2 भारत में पर्यावरणीय विधि की पृष्ठ भूमि (Back Ground of Environmental Legislation in India)

वर्तमान विश्व में पर्यावरण के संरक्षण के प्रति सभी देश सचेष्ट है किन्तु भारत में प्राचीन काल से पर्यावरण के प्रति सजगता रही है। भारत में प्राचीन समय से इस सत्य को स्वीकार किया गया है कि, पर्यावरण जीवन का आधार है तथा स्वस्थ एवं स्वच्छ पर्यावरण में ही जीवन की गुणवत्ता सम्भव है। यद्यपि प्राचीन काल में पर्यावरण एवं प्रदूषण की समस्या नहीं थी और जनसंख्या अति सीमित थी, इस कारण पर्यावरण एवं मानव में सामन्जस्य था। इसके उपरान्त भी यहाँ पर्यावरण/प्रकृति को सर्वोच्चता प्रदान की गई और इसको संरक्षित करना जीवन का अंग बन गया । भारत के प्राचीन ग्रन्थों जैसे वेद, पुराण, उपनिषद, स्मृति, धर्मशास्त्र आदि में वायु, जल, मृदा, भूमि, वनस्पति तथा जीव–जन्तुओं को प्रकृति का अंग स्वीकार करते हुए उनको संरक्षित करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य माना गया। इसके लिये यहाँ उन्हें धार्मिक सर्वोच्चता प्रदान कर पूजनीय बनाया गया। भारत में जल, वृक्ष, वायु, सूर्य, पृथ्वी, पर्वत, नदियों आदि की पूजा की जाती है। अनेक जानवरों को देवताओं का वाहन होने के कारण उनका संरक्षण किया जाता रहा है । वास्तव में यह भारतीय संस्कृति की विशिष्टता है कि इसमें प्रकृति से तारतम्यता इस प्रकार स्थापित की कि जन भागीदारी स्वत: होती रही और पर्यावरण संरक्षण जीवन का अंग बन गया। यद्यपि यह प्रक्रिया कालान्तर में चलती रही किन्तु जनसंख्या वृद्धि, स्वार्थपरता एवं व्यापारिक प्रवृति के कारण इसमें परिवर्तन आता गया। कौटिल्य के अर्थशास्त्र (321–300 ई.पू.) में पर्यावरण संरक्षण के लिये प्रावधानों का वर्णन मिलता है।

यद्यपि मध्यकालीन भारत में इस दिशा में विशेष प्रयत्न नहीं किये गये। केवल विशाल बागानों (उद्यानों) का विकास तथा प्रमुख राजमार्गों के किनारे वृक्षारोपण तक ही इस दिशा में कार्य किये गये।

ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक काल में वनों के प्रति उदासीनता की नीति अपनाई गई। वनों का शोषण निरन्तर होता रहा। सर्वप्रथम 1865 में वन अधिनियम पारित किया गया तथा वनों पर राज्यों को अधिकार दिये गये। 1894 में वन नीति के अन्तर्गत सारे वनों को सरकार ने अपने अधिकार में ले लिया।

वन नीति के तीन उद्देश्य थे–

(i) देश में लोगों की सामान्य भलाई को बढ़ाना,

(ii) देश की जलवायु एवं भौतिक दशाओं का संरक्षण और

(iii) लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति।

सन 1927 में वन अधिनियम पारित कर वन संसाधनों के प्रबन्ध के अतिरिक्त ब्रिटिश शासन काल में प्रदूषण नियन्त्रण हेतु कई कदम उठाये गये। ये नियम जल प्रदूषण, वन्य जीव एवं भूमि प्रयोगों से सम्बन्धित थे। इनमें प्रमुख विधान थे–

(अ) जल प्रदूषण सम्बन्धी विधान

1. दी शोर न्यूसेन्स (बोम्बे एण्ड कोलाबा एक्ट), 1853
2. ओरियन्टल गैस कम्पनी एक्ट, 1857
3. दी इण्डियन पीनल कोड, 1860
4. इण्डियन ईजमेण्ट एक्ट, 1882
5. इण्डियन फिशरीज फट, 1897

(ब) वायु प्रदूषण सम्बन्धी विधान

1. बंगाल स्मोक न्यूसेन्स एक्ट, 1905
2. बोम्बे स्मोक न्यूसेन्स एक्ट, 1912

(स) वन्य जीवन संरक्षण विधान

1. दी एलिफैण्ड्स प्रीजर्वेशन एक्ट, 1879
2. फारेस्ट्रस एक्ट, 1878
3. वाइल्ड बर्ड्स एण्ड एनिमल प्रोटेक्शन एक्ट, 1912

इसके अतिरिक्त वन्य जीवों के संरक्षण हेतु 1926 में काजीरंगा और 1936 में हेली (अब कार्बेट) राष्ट्रीय उद्यान स्थापित किये गये। यद्यपि ब्रिटिश शासन में पर्यावरण संरक्षण हेतु कतिपय महत्वपूर्ण कदम उठाये गये, किन्तु उनका उद्देश्य राजस्व प्राप्त करना तथा संसाधनों का दोहन था, न कि पर्यावरण संरक्षण।

18.3 स्वतंत्र भारत में पर्यावरणीय विधि (Environmental Legislation in Independent India)

स्वतंत्र भारत में जब संविधान लागू किया गया तो उसमें पर्यावरण के सम्बन्ध में विशेष उल्लेख न होकर साधारण सन्दर्भ मात्र ही दिये गये थे किन्तु विश्व पर्यावरण सम्मेलन, स्टाकहोम, के पश्चात् जो पर्यावरण चेतना का सूत्रपात हुआ, उस पर उसको दृष्टिपात करते हुए भारतीय संसद ने 42 वाँ संविधान संशोधन एक्ट, 1976 का अनुमोदन किया। इस एक्ट के दो अनुच्छेद महत्वपूर्ण हैं, अर्थात् अनुच्छेद 48 ए और 51 ए (जी), जिनका सम्बन्ध पर्यावरण के सैर क्षण एवं उन्नयन से है। इसके द्वारा संविधान के सातवें शिड्यूल में कुछ परिवर्तन किये गये, ये परिवर्तन थे-

Article 48 A : "The state shall endeavour to protect and improve the environment and to safeguard the forest and wildlife of the country."

Article 51 A (g) : "it shall be a duty of every citizen of India.....to protect and improve the natural environment including forest, lakes and wildlife, and to have compassion for living creatures."

नि:संदेह उपर्युक्त संविधान संशोधन द्वारा न केवल सरकार को पर्यावरण सैर क्षण हेतु प्रतिबद्ध किया गया है, अपितु नागरिकों को भी अपने कर्तव्य के प्रति आगाह किया गया कि, यह मात्र सरकार का ही दायित्व नहीं अपितु प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि, वह पर्यावरण की रक्षा एवं संरक्षण में अपना दायित्व निभायें।

वास्तव में भारत में पर्यावरण विधि निर्माण का कार्य 1972 के विश्व पर्यावरण सम्मेलन के पश्चात् हुआ। इस सम्मेलन में भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इंदिरा गांधी ने जो सम्बोधन पर्यावरण पर दिया गया था उसने सम्पूर्ण विश्व का ध्यान आकृष्ट किया। इसमें उन्होंने भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण की महत्ता को वेदों एवं पुराणों के सन्दर्भों से न केवल पुष्ट किया अपितु वर्तमान विश्व में पर्यावरण की समस्याओं के लिये उनको आधार स्वरूप प्रस्तुत किया। स्टाकहोम सम्मेलन के पश्चात् जहाँ विश्व में पर्यावरण के प्रति चेतना का सूत्रपात हुआ वहीं केन्द्रीय सरकार ने भारत के लिये अनेक पर्यावरण संरक्षण की योजनायें तैयार की तथा पर्यावरण प्रदूषण एवं पर्यावरण संवर्द्धन हेतु अनेक नीतियों तथा कानूनों का निर्माण किया गया।

18.3.1 पर्यावरण सम्बन्धी अधिनियम

18.3.1.1 जल (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) अधिनियम,1974 (Water (prevention and Control of Pollution) Act,1974)

इस अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य जल की शुद्धता एवं स्वास्थ्य प्रदता को बनाये रखने हेतु इसे प्रदूषण से मुक्त करना तथा जल प्रदूषण को नियन्त्रण करना है। इस अधिनियम के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है

1. जल प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण और जल की स्वास्थ्य प्रदता बनाये रखने या उसे पूर्व स्थिति प्रदान करना;
2. जल प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण हेतु केन्द्रीय और राज्य बोर्डों की स्थापना करना;
3. जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण से सम्बन्धित विषयों हेतु बोर्डों को शक्तियाँ और कृत्य प्रदान करना;
4. अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए दण्ड का उपलब्ध करना और
5. बोर्डों को प्रदूषण की मात्रा आंकलन करने, मानक निर्धारित करने और अपराध या भूल स्थापित करने हेतु सक्षम बनाने के लिए केन्द्रीय एवं राज्य जल परीक्षण प्रयोगशालाओं की स्थापना करना।

यह अधिनियम 23 मार्च, 1974 में प्रवृत्त हो गया। इसमें 1978 में कतिपय संशोधन किये गये, तत्पश्चात् 1988 में इसे पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986 के उपबन्धों के समरूप बनाने के लिए पुनरक्षित किया गया और बोर्डों को कतिपय अतिरिक्त शक्तियाँ प्रदान की गई। जल प्रदूषण नियन्त्रण अधिनियम एक व्यापक अधिनियम है तथा पर्यावरणीय विधि के क्षेत्र में किया गया प्रथम प्रयास है। इसमें न केवल जल प्रदूषण की विस्तृत शब्दावली में परिभाषा की गई है, अपितु केन्द्रीय एवं राज्य जल बोर्डों के कार्यों एवं शक्तियों की समुचित व्याख्या की गई हैं। इसमें जल प्रदूषण के कारकों के साथ इसके नियन्त्रण की व्यापक योजना दी गई है। उद्योगों की स्थापना से पूर्व राज्य बोर्ड की सहमति आवश्यक है। इसके साथ ही जल प्रदूषण नियन्त्रण हेतु प्रदूषणकर्ताओ के लिये दण्ड का प्रावधान है। सन 1988 में किये गये संशोधन द्वारा केन्द्र और राज्य बोर्डों की शक्तियों में वृद्धि की गई है और नागरिक मुकदमा (Citizen's Suit) का उपबन्ध किया गया है। इससे अधिनियम की प्रवर्तनीयता ज्यादा प्रभावकारी बन गई है। इस अधिनियम के सहायक के रूप में दो नियम क्रमश: (1) जल (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) नियमावली, 1975 और (2) जल प्रदूषण (कार्य सम्पादन) नियमावली, 1975 बनाये गये। इसी प्रकार जल (प्रदूषण निवारण और नियन्त्रण) उपकर अधिनियम, 1977 में लागू किया गया। इसका उद्देश्य केन्द्र और राज्य बोर्डों हेतु आर्थिक संसाधन जुटाना है।

18.3.1.2 वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) अधिनियम, 1981 (Air (prevention and Control of Pollution) Act, 1981)

वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) अधिनियम, 1981, 29 मार्च 1981 को पारित किया गया। यह एक विशेषीकृत विधायी प्रयास है, जिसके माध्यम से पर्यावरण प्रदूषण के एक पहलू– वायु प्रदूषण को नियन्त्रित करने का प्रयास किया गया है। अधिनियम के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(i) वायु प्रदूषण के निवारण, नियन्त्रण और उपरामन के लिए उपबन्ध बनाना।

(ii) उपर्युक्त उद्देश्यों को लागू करने के लिये केन्द्रीय और राज्य बोर्डों की स्थापना करना।

(iii) ऐसे बोर्डों को शक्ति प्रदान करना तथा उनके कार्यों का निर्धारण करना।

(iv) उपर्युक्त से सम्बन्धित विषयों के बारे में उपबन्ध बनाना।

इस अधिनियम की जो पृष्ठ भूमि और कारण निर्धारित किये गये हैं, वे हैं –

(i) औद्योगिकीकरण की वृद्धि तथा उद्योगों के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के कारण देश में वायु प्रदूषण में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

(ii) वायु में कतिपय सीमा से ज्यादा औद्योगिक उत्सर्जनों और यातायात, तापवृद्धि, घरेलू ईंधन प्रयोग, कूड़ा–करकटों के भस्मीकरण के माध्यम से विभिन्न प्रदूषकों की हवा में उपस्थिति लोगों के स्वास्थ्य और पशु जीवन, वनस्पति आदि पर हानिकारक प्रभाव डाल रही है।

(iii) संयुक्त राष्ट्र विश्व पर्यावरण सम्मेलन, 1972 में वायु की गुणवत्ता का परीक्षण और प्रदूषण नियन्त्रण हेतु विशेष प्रयास की आवश्यकता पर जोर दिया गया था जिसे भारत ने इस अधिनियम के माध्यम से लागू किया।

(iv) यह महसूस किया गया कि प्रदूषण से सम्बन्धित पर्यावरणीय समस्याओं से निपटने के लिये एक समन्वित दृष्टिकोण होना चाहिए।

इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि वह किस क्षेत्र को वायु प्रदूषण नियन्त्रण क्षेत्र घोषित करें। इस क्षेत्र में स्थित सभी औद्योगिक संचालकों को राज्य बोर्ड से अनुमति आदेश लेना होगा। वायु प्रदूषण नियमों के पालन न करने पर उद्योगों को बन्द करवाने तथा उन पर जुर्माना करने के अधिकार भी दिये गये हैं।

इस अधिनियम में 'वायु प्रदूषक' की व्यापक परिभाषा दी गई है, जो है –

(i) ठोस पदार्थ जिसमें बालू कण, धूल कण, शंख, कोयला, कंकरीट, लकड़ी का बुरादा, कूड़ा–करकट सम्मिलित हैं।

(ii) इसमें तरल पदार्थ सम्मिलित हो सकते हैं, जिसमें गंदा जल, मल स्त्राव, व्यावसायिक बहि स्त्राव, मध्या, तेल आदि है।

(iii) इसमें गैसीय पदार्थ सम्मिलित हो सकते हैं जिसमें, धुआँ, रासायनिक गैसें और ध्वनि सम्मिलित है।

(iv) ऐसे पदार्थ वायुमण्डल में उपस्थित होकर किसी निश्चित सान्द्रता के कारण निम्नलिखित के लिए हानिकारक हो सकते हैं : मानव प्राणी, अन्य जीवित प्राणी, वनस्पति, सम्पत्ति, पर्यावरण।

इसी अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय एवं राज्य प्रदूषण बोर्डों के गठन रण शक्तियों का विस्तृत विवेचन किया गया है। वायु प्रदूषण अधिनियम को पुष्ट करने हेतु वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) नियमावली, 1982 बनाई गई।

18.3.1.3 शोर प्रदूषण (नियमन एवं नियन्त्रण) नियम–2000 (Noise (Regulation and Control) rules–2000)

प्रारम्भ में ध्वनि प्रदूषण हेतु अलग से कोई नियम नहीं थे, किन्तु वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) अधिनियम, 1981 में संशोधन कर ध्वनि प्रदूषण को सम्मिलित कर लिया गया था। यह संशोधन 1987 में किया गया। इसके लिये अलग से नियम पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अन्तर्गत किया गया। इस अधिनियम के नियम 3 के अन्तर्गत ध्वनि प्रदूषण नियन्त्रण एवं इसके लिए विभिन्न क्षेत्रों का निर्धारण करने का प्रावधान है। नियम तीन के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों के लिए ध्वनि सीमा निम्न प्रकार से निर्धारित की गयी है।

वायु गुणवत्ता हेतु ध्वनि के मानक

क्षेत्र कोड	क्षेत्र की श्रेणी	ध्वनि सीमा (db में)	
		दिन के समय	रात्रि में
(A)	औद्योगिक क्षेत्र	75	70
(B)	व्यापारिक क्षेत्र	65	55
(C)	रिहायशी क्षेत्र	55	45
(D)	शांत क्षेत्र	50	40

राज्य सरकारों को क्षेत्रों के निर्धारण का अधिकार दिया गया है, तथा इसी के अन्तर्गत वाहनों के शोर को भी सम्मिलित किया गया है। इसके नियम 4 में विकास से सम्बन्धित समस्त विभाग, स्थानीय निकाय और अन्य अधिकृत विभागों के लिये, नगर नियोजन करते समय ध्वनि प्रदूषण के समस्त पहलुओं पर ध्यान देना आवश्यक किया गया है, क्योंकि ध्वनि प्रदूषण का सीधा प्रभाव जीवन की गुणवत्ता पर होता है। इस नियम के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रावधान हैं -

नियम 4 : ध्वनि प्रदूषण के नियन्त्रण हेतु –

(i) निर्धारित क्षेत्र में ध्वनि का नियन्त्रण इस प्रकार करना होगा कि उससे वायु की गुणवत्ता पर प्रभाव न हो, तथा

(ii) इन नियमों को लागू करने वाली अधिकृत विभाग संस्था को यह पाबन्द करना आवश्यक है, कि उक्त नियम का परिपालन किया जाय।

नियम 5 : लाउडस्पीकर/सार्वजनिक उद्घोषणा व्यवस्था के अन्तर्गत–

(i) किसी सार्वजनिक स्थल पर बिना अनुमति के लाउडस्पीकर अथवा सार्वजनिक उद्घोषणा नहीं की जानी चाहिये, तथा

(ii) इनका उपयोग रात्रि 10 बजे से प्रात: 6 बजे तक नहीं होना चाहिये। बन्द ऑडिटोरियम, कान्फ्रेन्स हॉल तथा सामुदायिक भवनों को इनसे छूट प्रदान की है।

नियम 6 : में शान्त क्षेत्र में ध्वनि नियमों के पालन न करने जैसे तेज ध्वनि का संगीत बजाने, ड्रम बजाने, हार्न (प्रेशर हार्न) आदि पर जुर्माना करने का प्रावधान है।

नियम 7 : के अन्तर्गत ध्वनि सम्बन्धी नियमों के उल्लंघन पर शिकायत करने हेतु सक्षम अधिकारी का उल्लेख है तथा

नियम 8 : में ध्वनि प्रदूषण रोकने के अधिकार दिये गये है। इसके अन्तर्गत स्थानीय अधिकारियों भारत में पर्यावरण विधि को शिकायत मिलने पर अथवा स्वज्ञान के आधार पर कार्यवाही कर उसको रूकवाने का प्रावधान है।

18.3.1 वन (संरक्षण) अधिनियम 1980 (The Forest (Protection) Act, 1980)

वन (संरक्षण) अधिनियम सर 1980 में पारित किया गया, जिसे 1988 में संशोधित किया गया। इसे वनों के संरक्षण और सुरक्षा सम्बन्धी विधि प्रदान करने के लिये अधिनियमित किया गया। अधिनियम की धारा 2 में उपबन्धित किया गया है, कि राज्य के सम्बन्ध में किसी अन्य विधि के होते हुए भी राज्य सरकार अथवा अन्य प्राधिकारी केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति के बिना निम्नलिखित के सम्बन्ध में कोई आदेश पारित नहीं करेगा–

(i) कि आरक्षित वन या उसका कोई भाग आरक्षित नहीं रहेगा। आरक्षित वन का अर्थ वही होगा जो राज्य विशेष में पहले से लागू है।

(ii) कोई वन भूमि अथवा उसका कोई भाग का उपयोग गैर वन प्रयोजनों के लिये किया जायेगा।

गैर वन प्रयोजन की विस्तृत व्याख्या 1988 के संशोधन में की गई है। अस्तु गैर वन प्रयोजन का तात्पर्य किसी वन भूमि अथवा उसके किसी भाग को निम्नलिखित उद्देश्यों के लिये तोड़ना या सफाई करना है–

(i) चाय, काफी, मसाले, रबर, खजूर, तेल, उत्पादक पौधें, बागवानी सम्बन्धी फसलें अथवा चिकित्सकीय पौधे की खेती करना।

(ii) पुनर्वनीकरण के प्रयोजनों के अतिरिक्त अन्य प्रयोजन जैसे चेक पोस्ट, अग्नि नियंत्रण रेखायें, वायरलेस स्थापना, बाढ़, पुल, नाली, पुलिया, बांध, सीमा चिन्ह, पाइप लाइन अथवा अन्य समान प्रयोजनों के निर्माण के लिये।

इस अधिनियम द्वारा केन्द्रीय सरकार को अधिकृत किया गया है कि वनों के संरक्षण के मामले में सलाह देने के लिये सलाहकार समिति नियुक्त कर सकती है। वन संरक्षण अधिनियम को प्रभावशाली रूप से क्रियान्वित करने के लिये देश को 6 क्षेत्रीय कार्यालयों में बांटा गया है। ये कार्यालय बंगलौर, भोपाल, भुवनेश्वर, लखनऊ, शिलांग तथा चंडीगढ़ में हैं।

18.3.1.5 वन्य–जीवन (संरक्षण) अधिनियम, 1972 (Wildlife (Protection) Act. 1972)

वन्य जीवों के संरक्षण के लिये वन्य–जीवन (संरक्षण) अधिनियम–1972 लागू किया गया, इसे 1986 में संशोधित कर पशु शिकार, उनके चमड़े, खालों और उनसे निर्मित वस्तुओं के व्यापार को निषिद्ध किया गया। अधिनियम में 'पशु' के अन्तर्गत जल तथा स्थल में रहने वाले उभय चर जन्तु, रेंगने वाले तथा स्तनपायी जन्तु, उनके बच्चे तथा अण्डों को भी सम्मिलित किया गया है। इसी प्रकार **'पशु सामग्री'** में पशु अथवा वन्य पशु (अन्न को हानि पहुँचाने वाले कीडों को छोडकर) से निर्मित सामग्री सम्मिलित है।

'वन्य पशुओं' से तात्पर्य जो प्रकृति में वन्य पशु के रूप में पाये जाते हैं, इन्हें सूचीबद्ध किया गया है। **'वन्य–जीव'** से तात्पर्य किसी पशु, मधु मक्खी, तितली, क्रस्टासिया (Crustacea), मछली कीट पतंग और आवास्य निर्मित करने वाली भूमि वनस्पति से हैं।

इस अधिनियम के अन्तर्गत वन्य–जीव परामर्श बोर्ड की स्थापना तथा वन्य जीव निदेशक एवं अन्य अधिकारियों की नियुक्ति का प्रावधान है। इस अधिनियम के अन्तर्गत वन्य जीवों के शिकार के सम्बन्ध में उल्लेख है कि प्रथम अनुसूची में वर्णित का शिकार पूर्णत: निषिद्ध है। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अनुसूची में वर्णित वन्य–जीवों का शिकार प्रमुख वन्य–जीव वार्डन द्वारा जारी लाइसेन्स पर ही सम्भव है। शिक्षा, वैज्ञानिक शोध और वैज्ञानिक प्रबन्ध के लिये विशेष अनुमति दी जा सकती है। राज्य सरकारें अपने स्तर पर सात अथवा उससे कम, विनिर्दिष्ट पशुओं के शिकार पर रोक लगा सकती है।

अधिनियम की धारा 18 के अन्तर्गत राज्य सरकार किसी भी क्षेत्र को अभ्यारण्य घोषित कर सकती है। ऐसा वह तब करेगी जब वह समझती है कि ऐसा करना पारिस्थितिकी, वन्य जीव एवं वनस्पति, भू–आकृति, प्राकृतिक अथवा जन्तु वैज्ञानिक महत्व का है। इसी प्रकार केन्द्र सरकार राष्ट्रीय उद्यान स्थापित कर सकती है। राष्ट्रीय उद्यान ऐसा क्षेत्र है जो पर्यावरण, प्राकृतिक एवं ऐतिहासिक वस्तुओं/जीव जन्तुओं को संरक्षित करने तथा पर्यावरण में रहने वाले वन्य–जीवन को सुरक्षा प्रदान करता है। इसी प्रकार जैव मण्डल रिजर्व (Biosphere Reserve) की स्थापना भी पारिस्थितिकी तन्त्र और विभिन्न आनुवंशिकता के संरक्षण हेतु

बनाने का प्रावधान है। संक्षेप में इस अधिनियम द्वारा वन्य जीवों को सुरक्षा प्रदान की गई है तथा उन्हें हानि पहुंचाने पर दण्डात्मक प्रावधान किये गये हैं।

18.3.1.6. पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 (Environment (Protection) Act, 1986)

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986, पर्यावरण संरक्षण की दिशा में भारत में लिया गया एक अति महत्वपूर्ण कदम है। इसकी पृष्ठभूमि जून, 1972 में हुआ विश्व पर्यावरण सम्मेलन रहा है। इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख अधिनियम की उद्देशिका में इस प्रकार किया गया है –

- "संयुक्त राष्ट्र के मानवीय पर्यावरण सम्मेलन में जो जून, 1972 में स्टाकहोम में आयोजित हुआ था और जिसमें भारत ने भाग लिया था, यह विनिश्चय किया गया था कि मानवीय पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिये समुचित कदम उठाये जायें;
- यह आवश्यक समझा गया है कि पूर्वोक्त निर्णयों को, जहां तक उनका सम्बन्ध पर्यावरण संरक्षण और सुधार से तथा मानव, अन्य जीवित प्राणियों, पादपों और सम्पत्ति को होने वाले परिसंकट के निवारण से हैं, लागू किया जाये;

भारत गणराज्य के सैतीसवें वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियम पारित किया गया हे।"

इस अधिनियम के उद्देश्य हैं –

1. पर्यावरण का संरक्षण एवं सुधार करना;
2. मानवीय पर्यावरण पर स्टाकहोम सम्मेलन में लिए गये निर्णयों को लागू करना ;
3. मानव प्राणियों, जीवों, पादपों एवं सम्पत्तियों को परिसंकट से बचाना ;
4. पर्यावरण संरक्षण हेतु सामान्य एवं व्यापक विधि अधिनियमित करना ;
5. विद्यमान विधियों के अधीन विभिन्न अभिकरणों के कार्यकलापों के बीच समन्वय करना तथा पर्यावरण संरक्षण हेतु प्राधिकारियों का सृजन करना ;
6. मानवीय पर्यावरण सुरक्षा एवं स्वास्थ्य को खतरा उत्पन्न करने वालों के लिए निरोधात्मक दण्ड की व्यवस्था करना ;

यह अधिनियम एक व्यापक अधिनियम है जिसमें पर्यावरण के सभी पक्षों को सम्मिलित किया गया है। यह अधिनियम 23 मई, 1986 को राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षरित किये जाने के पश्चात् 19 नवम्बर, 1986 को प्रवृत्त हुआ। अधिनियम में 'पर्यावरण' की अति विस्तृत परिभाषा दी गई है, साथ ही पर्यावरण प्रदूषक का नियन्त्रण करना और परिसंकटमय पदार्थों को भी परिभाषित किया गया है। यह उद्योगों के साथ–साथ व्यक्तियों पर भी लागू किया गया है तथा केन्द्रीय सरकार का पर्यावरण संरक्षण और इसकी गुणवत्ता में सुधार हेतु शक्तियाँ दी गई हैं। इसके अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार नियम बना सकती है तथा नियमों की अनुपालना न करने वालों को दण्डित कर सकती है।

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अध्याय 3 में केन्द्रीय सरकार को ये शक्तियाँ दी गई हैं कि–

1. केन्द्रीय सरकार की पर्यावरण संरक्षण एवं उसमें सुधार हेतु शक्ति
2. अधिकारियों की नियुक्ति हेतु शक्ति
3. निर्देश देने की शक्ति
4. पर्यावरणीय प्रदूषण को विनियमित करने हेतु नियम बनाने की शक्ति।

पर्यावरण प्रदूषण, निवारण, नियन्त्रण एवं उपशमन धारा 7 से 17 में वर्णित हैं। इस अधिनियम के अन्तर्गत ही पर्यावरणीय प्रयोगशालाओं की स्थापना, प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड की स्थापना का प्रावधान है। सम्पूर्ण देश में पर्यावरण सम्बन्धी सूचनाओं का एकत्रीकरण, विश्लेषण और प्रभावशाली योजनाओं को बनाना इसमें सम्मिलित हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 एक व्यापक अधिनियम है जो एक ओर अन्य पूर्ववर्ती अधिनियमों में समन्वय करता है तो दूसरी ओर पर्यावरण के सभी घटकों को सम्मिलित करते हुए सरकार को इसके संरक्षण और गुणवत्ता को बनाये रखने की शक्ति देता है।

पर्यावरण नीति– 2006 (Environmental Policy–2006) : नवीन पर्यावरण नीति के अन्तर्गत भारत सरकार द्वारा पर्यावरण संवर्द्धन की दिशा में महत्वपूर्ण प्रावधान किये गये हैं। जैव–विविधता के संरक्षण तथा पर्यावरण संरक्षण में जन सहभागिता बढ़ाने के लिए व्यापक उपायों को इस नीति में स्थान दिया गया है। महिलाओं की भागीदारी भी पर्यावरण प्रबन्धन के लिए महत्वपूर्ण माना गया है। पर्यावरण संसाधन को प्रोत्साहन दिया गया है।

18.3.2 परिसंकटमय अपशिष्ट प्रबन्धन सम्बन्धी नियम (Rules regarding Hazardous wastes Management)

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार ने अनेक हानिकारक अपशिष्टों के उचित निस्तारण एवं प्रबन्धन हेतु अनेक नियम पारित किये हैं, ये हैं –

1. परिसंकटमय अपशिष्ट (प्रबन्धन एवं प्रहस्तन) नियमावली, 1989
   Hazardous Wastes (Management and Handling) Rules, 1989)
2. परिसंकटमय रसायनों के उत्पादन, भण्डारण एवं आयात नियम, 1989
   Manufacture, Storage and Import of Hazardous chemical Rules, 1989
3. परिसंकटमय सूक्ष्म–जीवाणु नियम, 1989
   Hazardous Micro–Organism Rules, 1989
4. राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्रधिकरण अधिनियम, 1997
   National Environment Appellate Authority Act, 1997
5. राष्ट्रीय पर्यावरण ट्रिब्यूनल एक्ट, 1995
   National Environmental Tribunal Act, 1995
6. जैव–चिकित्सीय अपशिष्ट (प्रबन्धन एवं प्रहस्तन) नियम, 1998
   Bio–Medical Wastes (Management and Handling) Rules, 1998

7. पुन: चक्रित प्लास्टिक उत्पादन एवं उपयोग नियम, 1999
   Recycles Plastic manufacture and uses Rules, 1999
8. नगर पालिका ठोस अपशिष्ट (प्रबन्धन एवं प्रहस्तन) नियम, 2000
   Municipal Solid Wastes (Management and Handling) Rules, 2000

उपर्युक्त सभी नियमों का उद्देश्य हानिकारक उत्पादों, पदार्थों, रसायनों एवं अपशिष्टों के उचित निस्तारण का प्रबन्धन करना है, क्योंकि ये हानिकारक पदार्थ मानव एवं जीव जगत को हानि पहुंचाते हैं, साथ ही ये पर्यावरण अवकर्षण का भी कारण होते हैं। इन नियमों से सरकार एवं स्थानीय निकायों को हानिकारक पदार्थों के उत्पादन, हस्तान्तरण एवं अपशिष्टों को नियन्त्रित करने में सहायता मिलती है।

18.3.3 अन्य अधिनियम एवं नियम (Other Act and Rules)

उपर्युक्त वर्णित नियमों के अतिरिक्त कुछ अन्य अधिनियम एवं नियम भी समय–समय पर बनाये गये हैं जो पर्यावरण से सम्बन्धित हैं, ये हैं –

1. आणविक शक्ति अधिनियम, 1962
   Atomic Energy Act, 1962
2. रेडियोधर्मिता (संरक्षण) नियम,
   Radiation (Protection) Rules, 1971
3. कीटनाशक अधिनियम, 1968
   Insecticides Act, 1968
4. खाद्य पदार्थ मिलावट रोकथाम अधिनियम, 1954
   Prevention of Food Adulteration Act, 1954)
5. खान अधिनियम, 1952
   Mines Act, 1952
6. खान एवं खनिज (नियमन एवं विकास) अधिनियम, 1957
   Mines and Minerals (Regulation and Development) Act, 1957
7. मोटर वाहन अधिनियम, 1988
   Motor Vehicle Act, 1952

बोध प्रश्न– 1

1. किस संविधान संशोधन द्वारा भारत में पर्यावरण संरक्षण को संवैधानिक स्वरूप दिया गया ?

   ……

   ……

2. जल (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) अधिनियम किस वर्ष में पारित किया गया ?

……

……

3. वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) अधिनियम किस वर्ष में लागू किया गया?

……

……

4. ध्वनि प्रदूषण (नियमन एवम् नियन्त्रण) अधिनियम किस वर्ष से लागू किया गया ?

……

……

5. वन (संरक्षण) अधिनियम किस वर्ष लागू किया गया ?

……

……

6. पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं को किस अधिनियम में सम्मिलित किया गया है?

……

……

7. पर्यावरण सम्बन्धी विवादों का निपटारा कौन करता है ?

……

……

18.4 सारांश (Summary)

भारत में पर्यावरण संरक्षण विधि का पर्याप्त विकास हुआ है। भारत विश्व के उन चुनिन्दा देशों में हैं जहां पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण नियन्त्रण के विस्तृत नियम हैं। पर्यावरण सम्बन्धी सभी समस्याओं को नियन्त्रित एवं नियमन करने हेतु यहाँ नियम बनाये गये है।

भारत में पर्यावरणीय कानूनों में प्रमुख है : जल प्रदूषण निवारण और नियन्त्रण अधिनियम, 1974, वायु प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण अधिनियम, 1981, ध्वनि प्रदूषण नियम, 2000, वन संरक्षण अधिनियम, 1980, वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम, 1972 एवं पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 है। इसके अतिरिक्त हानिकारक अपशिष्ट प्रबन्धन एवं अन्य अनेक विषयों पर कई अधिनियम एवम् नियम हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारत में पर्यावरण विधि व्यवस्था उत्तम है तथा इसके द्वारा पर्यावरण को संरक्षित किया जा सकता है।

18.5 शब्दावली (Glossary)

- **पर्यावरणीय विधि :** पर्यावरण सम्बन्धी कानून।
- **राजस्व प्राप्त करना :** सरकार द्वारा आमदनी प्राप्त करना।

- **पर्यावरण संवर्द्धन :** पर्यावरणीय विकास।
- **आर्थिक संसाधन :** ऐसे संसाधन जिनसे आय प्राप्त हों।
- **प्रदूषण निवारण :** प्रदूषण को समाप्त करना।
- **भस्मीकरण :** जलाना
- **क्राफ्रेन्स हॉल :** सम्मेलन करने के लिए बहुत बड़ा कमरा/हॉल।

18.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. अनिरूद्ध, प्रकाश : **पर्यावरण एवं पर्यावरणीय संरक्षण विधि की रूप रेखा,** सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, (2001)
2. Saxena, H.M. : **Environmental Geography (2nd ed.)** Rawat Publications, Jaipur (2004)
3. सक्सेना, हीर मोहन : **पर्यावरण एवं प्रदूषण,** राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर (2002)

18.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 42 वाँ संविधान संशोधन द्वारा
2. 1974 में
3. 1981 में
4. 2000 में
5. 1980 में
6. पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम– 1986
7. राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण

18.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में पर्यावरणीय विधि का वर्णन कीजिये।
2. स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में पर्यावरण संरक्षण के कौन–कौन से अधिनियम पारित किये गये ? संक्षिप्त परिचय दीजिये।
3. भारत में जल, वायु तथा ध्वनि प्रदूषण अधिनियमों का विवेचन कीजिये।
4. भारत के वन तथा वन्य जीव संरक्षण अधिनियमों का वर्णन कीजिये।
5. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम–1986 का विस्तार से विवेचन कीजिये।

ISBN No. - 13/978-81-8496-094-5